लोकोदय ग्रन्थमाला : ग्रन्थांक–१८
सम्पादक एवं नियामक :
लक्ष्मीचन्द्र जैन

Lokodaya Series : Title No. 18

BHARATIYA JYOTISHA

(Indian Astronomy)

Nemichandra Shastri

Bharatiya Jnanpith
Publication

Fifth Edition 1970

Price Rs. 12.00

भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन

प्रधान एवं विक्रय कार्यालय
३६२०।२१, नेताजी सुभाष मार्ग, दिल्ली–६

प्रकाशन कार्यालय
दुर्गाकुण्ड मार्ग, वाराणसी–५

पंचम संस्करण १९७०

मूल्य १२.००

सन्मति मुद्रणालय,
वाराणसी–५

अपनी बात

[प्रथम संस्करण]

आश्विन कृष्णा प्रतिपदा की सन्ध्या थी, नगर के सभी जिनालय विद्युत्-प्रकाश से आलोकित थे। धूप-घटों से निकलने वाले सुगन्धित धूम्र ने दिग्-दिगन्त को सुवासित कर दिया था। अगर-वत्तियो की सुगन्ध ने न जाने कितनी मर्मकथाओ से मेरा मन भर दिया, जिस से प्राण-प्राण की अन्त.पीड़ा मुखरित हो उठी है।

अपार जन-समुदाय उमड़ता हुआ जिनालयो की सुषमा, मोहक सजावट और दिव्यालोक के दर्शन की लालसा से चला जा रहा था। आज पर्यूषण की समाप्ति के पश्चात् जैन-धर्मानुयायियों ने अपने भीतर के समान वाहर को भी आलोकित किया था। दीपावली से भी मनोरम दृश्य विद्यमान था। जैन-मन्दिरो में फेनोज्ज्वल सौन्दर्य का प्रवाह देश और काल की सीमा से ऊपर था। इस लिए सैकड़ो की नही, सहस्रो की टोलियाँ आती और जाती थी। रंग-विरंगे झाड-फानूसो के वीच सन्ध्या के आकुल वक्ष पर यौवन का स्वर्णकलश भरा रखा था। झालर-तोरणो से सजे जिनालय दर्शको के मन को उलझा लेने मे पूर्ण सक्षम थे। सन्ध्यानिल के मादक झोंके मन्थर गति से प्रवाहित हो अपार भीड को सौन्दर्य की उस प्रभा से सम्बद्ध कर आत्म-विभोर वना रहे थे। देखते-देखते उत्सव का एक पारावार उमड़ आया। चित्र-विचित्र वस्त्राभूषणो में सहस्रों ग्रामीण नर-नारियो की अपार वसुन्धरा चारो ओर व्याप्त हो गयी। मैं सरस्वती भवन के वाहरी वरामदे में बैठा हुआ इस अपार भीड़ को अपने में खोया हुआ देख रहा था। आँखें विद्युत्प्रकाश की ओर थी और मन न मालूम कहाँ विचरण कर रहा था।

आज ही मध्याह्न में एक निवन्ध पढा था, जिस में लेखक ने वतलाया था कि "लाइब्रेरियन संसार के ज्ञानियों में एक विलक्षण ज्ञानी होता है।

यद्यपि विश्व में उस का सम्मान नहीं होता, पर विद्वत्ता में वह किसी से भी घट नहीं। वह लाइब्रेरियन अभागा है, जो पढ़ता और लिखता नहीं।" न मालूम मेरा मन आज क्यों उदास था, और अभी तक इसी निबन्ध में उलझा हुआ था। लाइब्रेरियन हुए मुझे अभी दो ही वर्ष हुए थे, अत. अनेक महत्त्वाकांक्षाओं के मसृण स्पर्श ने मेरे मन को गुदगुदाया और मेरी हृदय-वीन के तार झनझना उठे। विचार-विभोर होने से नेत्र बन्द हो गये और मुझे मालूम हुआ कि सामने 'भवन' के सिंहद्वार से वीणाधारिणी, हंसवाहिनी, शुभ्र-वसना, शान्तिदायिनी सरस्वती मुसकराती हुई आयी और उस ने मेरे मस्तक पर अपना वरद हस्त रखा। अवलम्बन पा मेरे अज्ञान-वारिद हटने लगे, विचार-वल्लरी झूमने लगी, मन-मधुकर गुनगुनाने लगा। मुझे ऐसा लगा कि चन्द्रमा और नक्षत्रों ने कहा—अब विलम्ब क्या ? दो वर्ष से निखट्टू बने बैठे हो, सावधान हो जाओ।

आँखें खोलते ही मूर्ति अदृश्य हो गयी, पर अपार भीड़ का कोलाहल ज्यों का त्यों था। मैं ने इधर-उधर दिव्य सौन्दर्य को देखा, पर अब वहाँ केवल सौरभ ही था। अतः कलेजे को हाथों से थामे बहुत देर तक किंकर्त्तव्यविमूढ बना रहा। सोचता रहा कि क्या सचमुच ही मैं ज्योतिष विषय पर लिख सकूँगा। रात के दो बजे भीड का ताँता बन्द हुआ, मैं 'भवन' बन्द कर घर गया।

प्रातःकाल जागने पर मन कुछ भारी-सा प्रतीत हुआ। रात की उलझन ऐंठती जा रही थी। रह-रह कर हृदय से असन्तोष और अतृप्ति के निश्वास निकल रहे थे। हर्ष और विषाद की धूप-छाया ने मन को बेचैन कर दिया था। अत. भाराक्रान्त मन लिये चल पडा अपने अभिन्न मित्र स्वर्गीय श्री पं० जगन्नाथ तिवारी के पास। मैं ने अपने हृदय को उन के समक्ष उडेल दिया और रात की घटना ज्यों की त्यों बिना किसी नमक-मिर्च के कह सुनायी। अपने स्वभावानुसार सुन कर वह खूब हँसे और बोले—"आखिरकार बात वही होगी, जो मैं कहा करता था। यदि इस

प्रेरणा को पा कर भी तुम अडियल घोडे की तरह अडे रहे तो तुम्हारे जीवन में यह सब से वडा दुर्भाग्य होगा।"

उन का मेरे लिए स्नेह का सम्बोधन था महाराजजी, अत' अपने इस सम्बोधन का प्रयोग करते हुए मेरी पीठ थपथपायी और आज्ञा के स्वर में कहा—"कल 'भारतीय ज्योतिष' की रूपरेखा वन जानी चाहिए और परसों से तुम को मुझे लिख कर प्रतिदिन कम से कम पाँच पृष्ठ देने होंगे। बस, अब महाराज जी जाइए, मैं इस से अधिक कन्सेशन करने वाला नही हूँ।"

उन के इस स्नेह ने मेरा मन हलका कर दिया। घर आते ही माथा-पच्ची कर रूपरेखा तैयार की और लिखना आरम्भ कर दिया। अपने लिखने में पूज्या माँ श्री पण्डिता चन्दाबाईजी से भी जब-तब सलाह ले लेता था। जिस-किसी तरह से दो वर्षों के कठिन परिश्रम के पश्चात् पुस्तक समाप्त हुई।

लिखने का कार्य पूर्ण होने के अनन्तर मैं ने एक पत्र श्रद्धेय पं० नाथूराम प्रेमी बम्बई को लिखा, जिस में अपनी इस रचना के देखने का अनुरोध किया। प्रेमी जी ने उत्तर में लिखा कि—"मैं ज्योतिष विषय से अभिज्ञ नही हूँ, अत अपनी पुस्तक अवलोकनार्थ मेरे पास न भेज कर श्री हजारीप्रसाद द्विवेदी के पास भेजें। मैं पत्र-व्यवहार कर आप की पुस्तक के अवलोकन की उन से स्वीकृति लिये लेता हूँ। आप को उपयुक्त सुझाव उन्ही से मिल सकेगा।"

एक सप्ताह के बाद पुन प्रेमीजी का पत्र मिला—"श्री हजारीप्रसाद द्विवेदी ने स्वीकृति दे दी है, आप अपनी रचना शान्ति-निकेतन के पते से उन्हें भेज दें।" मैं ने श्री प्रेमी जी के आदेशानुसार इस रचना को श्री हजारीप्रसाद द्विवेदी के पास भेज दिया। लगभग छह महीने के पश्चात् पुस्तक वहाँ से लौटी और साथ ही एक पत्र भी मिला, जिस में कुछ सुझाव थे।

पुस्तक कैसी है ? इस पर मुझे एक शब्द भी नही लिखना । पाठक स्वयं निर्णय कर सकेगे । विश्व में अपने दही को कोई भी खट्टा नही बतलाता है । अपना काना-कलूटा पुत्र भी प्रिय होता है ।

पुस्तक लिखने में अनेक प्राचीन और नवीन आचार्यों और लेखको की पुस्तको से सहायता ली है, अतः सर्वप्रथम उन सभी के प्रति कृतज्ञता ज्ञापन करना परम कर्त्तव्य है । जिन व्यक्तियो से पुस्तको-द्वारा या वाचनिक सम्मति-द्वारा सहायता प्राप्त हुई है, उन में सर्वश्री स्व० पं० जगन्नाथ तिवारी, श्री पं० नाथूराम प्रेमी, बम्बई, श्री डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी, बनारस, श्री पूज्य पं० कैलाशचन्द्रजी सिद्धान्तशास्त्री, बनारस, प्रो० गो० खुशालचन्द्र जैन एम० ए०, साहित्याचार्य, काशी, श्री रामनरेशलाल श्रीराम होटल, पटना, श्री पं० तारकेश्वर त्रिपाठी ज्योतिषाचार्य, आरा और अपनी धर्मपत्नी श्रीमती सुशीला देवी का मैं अत्यन्त आभारी हूँ ।

पुस्तक प्रकाशित करने में भारतीय ज्ञानपीठ काशी के सुयोग्य मन्त्री श्री० पं० अयोध्याप्रसादजी गोयलीय और लोकोदय ग्रन्थमाला के सम्पादक श्री बा० लक्ष्मीचन्द्रजी जैन एम० ए० का आभारी हूँ, आप दोनो महानुभावो की सत्कृपा से ही यह रचना प्रकाशित हो सकी है ।

प्रूफ-संशोधन में श्री सरस्वती प्रिंटिंग वर्क्स लि० आरा के व्यवस्थापक श्री जुगल किशोर जैन बी० एस-सी० से भी पर्याप्त सहायता मिली है, अतः आप का भी आभारी हूँ ।

निवेदक

अप्रैल १९५२ नेमिचन्द्र शास्त्री

विषय-सूची

द्वितीयाध्याय

तृतीयाध्याय

संकेत विवरण

ऋक् स०	ऋग्वेद सहिता
त्रि० सा० गा०	त्रिलोकसार गाथा
वृ० उ०	वृहदारण्यकोपनिपद्
तै० सं०	तैत्तिरीय सहिता
प्र० व्या०	प्रश्नव्याकरणाङ्ग
ऐ० ब्रा०	ऐतरेय ब्राह्मण
तै० ब्रा०	तैत्तिरीय ब्राह्मण
शत० ब्रा०	शतपथ ब्राह्मण
ठा० अ० सू०	ठाणाङ्ग अध्याय सूत्र
स० स० सू०	समवायाङ्ग समवाय सूत्र
अ० सं०	अथर्ववेद सहिता
स०	समवायाङ्ग
ऋ० ज्यो०	ऋक्ज्योतिष
अ० ज्यो०	अथर्व ज्योतिप
सू० प्र०	सूर्य प्रज्ञप्ति
च० प्र०	चन्द्र प्रज्ञप्ति
ज्यो० क०	ज्योतिषकरण्डक
आ० प० अ०	महाभारत का आदिपर्व, अध्याय
म० भा० व० प० अ०	महाभारत का वन पर्व, अध्याय
श० प० अ०	शतपथ ब्राह्मण, अध्याय
सू० सि०	सूर्यसिद्धान्त
आ० सू०	आचाराङ्ग सूत्र

पौ० सि०	पौलिश सिद्धान्त
तै० प्रा०	तैत्तिरीय-प्रातिशाख्य
तै० आ०	तैत्तिरीय-आरण्यक
छा० उ०	छान्दोग्योपनिषद्
छा० ब्रा०	छान्दोग्य-ब्राह्मण
ऋ० भू०	ऋग्वेदादिभाष्य-भूमिका
ऋ० इ०	ऋग्वैदिक इण्डिया
ए० रि०	एशियाटिक रिसर्चेज
ओ० टे०	ओरियण्टल सस्कृत टेक्स्ट
ग्रे० इ०	ग्रेटर इण्डिया
नारा० उ० अ०	नारायण उपनिपद् अनुच्छेद

■

भारतीय ज्योतिष

प्रथमाध्याय

आकाश की ओर दृष्टि डालते ही मानव-मस्तिष्क में उत्कण्ठा उत्पन्न होती है कि ये ग्रह-नक्षत्र क्या वस्तु हैं ? तारे क्यों टूट कर गिरते हैं ? पुच्छल तारे क्या है और ये कुछ दिनों में क्यो विलीन हो जाते है ? सूर्य प्रतिदिन पूर्व दिशा में ही क्यो उदित होता है ? ऋतुएँ क्रमानुसार क्यो आती है ? आदि।

मानव-स्वभाव ही कुछ ऐसा है कि वह जानना चाहता है---क्यो ? कैसे ? क्या हो रहा है ? और क्या होगा ? यह केवल प्रत्यक्ष बातों को ही जान कर सन्तुष्ट नही होता, बल्कि जिन बातो से प्रत्यक्ष लाभ होने की सम्भावना नही है, उन के जानने के लिए भी उत्सुक रहता है। जिस बात के जानने की मानव को उत्कट इच्छा रहती है, उस के अवगत हो जाने पर उसे जो आनन्द मिलता है, जो तृप्ति होती है उस से वह निहाल हो जाता है।

मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से विश्लेषण करने पर ज्ञात होगा कि मानव की उपर्युक्त जिज्ञासा ने ही उसे ज्योतिषशास्त्र के गम्भीर रहस्योद्घाटन के लिए प्रवृत्त किया है। आदिम मानव ने आकाश की प्रयोगशाला में सामने आने वाले ग्रह, नक्षत्र और तारो प्रभृति का अपने कुशल चक्षुओं द्वारा पर्यवेक्षण करना प्रारम्भ किया और अनेक रहस्यों का पता लगाया। परन्तु आश्चर्य की बात यह है कि तब से अब तक विश्व की रहस्यमयी प्रवृत्तियो के उद्घाटन करने का प्रयत्न करने पर भी यह और उलझता जा रहा है।

व्युत्पत्त्यर्थ

ज्योतिषशास्त्र की व्युत्पत्ति "ज्योतिषां सूर्यादिग्रहाणां बोधकं शास्त्रम्" की गयी है; अर्थात् सूर्यादि ग्रह और काल का बोध कराने वाले शास्त्र को

ज्योतिषशास्त्र कहा जाता है। इस में प्रधानत. ग्रह, नक्षत्र, धूमकेतु आदि ज्योतिःपदार्थों का स्वरूप, संचार, परिभ्रमणकाल, ग्रहण और स्थिति प्रभृति समस्त घटनाओं का निरूपणएवं ग्रह, नक्षत्रो की गति, स्थिति और संचारानुसार शुभाशुभ फलो का कथन किया जाता है। कुछ मनीषियो का अभिमत है कि नभोमण्डल में स्थित ज्योति सम्बन्धी विविध-विषयक विद्या को ज्योतिर्विद्या कहते हैं; जिस शास्त्र में इस विद्या का सांगोपांग वर्णन रहता है, वह ज्योतिषशास्त्र है। इस लक्षण और पहले वाले ज्योतिषशास्त्र के व्युत्पत्त्यर्थ में केवल इतना ही अन्तर है कि पहले में गणित और फलित दोनो प्रकार के विज्ञानो का समन्वय किया गया है, पर दूसरे में खगोल ज्ञान पर ही दृष्टिकोण रखा गया है। विद्वानो का कथन है कि इस शास्त्र का प्रादुर्भाव कब हुआ, यह अभी अनिश्चित है। हाँ, इस का विकास, इस के शास्त्रीय नियमो में संशोधन और परिवर्द्धन प्राचीन काल से आज तक निरन्तर होते चले आये हैं।

भारतीय ज्योतिषशास्त्र की परिभाषा और उस का क्रमिक विकास

भारतीय ज्योतिष की परिभाषा के स्कन्धत्रय—सिद्धान्त, होरा और संहिता अथवा स्कन्धपंच—सिद्धान्त, होरा, संहिता, प्रश्न और शकुन ये अंग माने गये हैं। यदि विराट् पंचस्कन्धात्मक परिभाषा का विश्लेषण किया जाये तो आज का मनोविज्ञान, जीवविज्ञान, पदार्थविज्ञान, रसायन-विज्ञान, चिकित्साशास्त्र इत्यादि भी इसी के अन्तर्भूत हो जाते हैं।

इस शास्त्र की परिभाषा भारतवर्ष में समय-समय पर विभिन्न रूपो में मानी जाती रही है। सुदूर प्राचीन काल में केवल ज्योतिःपदार्थों—ग्रह, नक्षत्र, तारो आदि के स्वरूपविज्ञान को ही ज्योतिष कहा जाता था। उस समय सैद्धान्तिक गणित का बोध इस शास्त्र से नही होता था क्योकि उस काल में केवल दृष्टि-पर्यवेक्षण-द्वारा नक्षत्रो का ज्ञान प्राप्त करना ही अभिप्रेत था।

भारतीयो की जब सर्वप्रथम दृष्टि सूर्य और चन्द्रमा पर पडी थी, उन्होने

इन से भयभीत हो कर इन्हें दैवत्व रूप में मान लिया था। वेदो में कई जगह नक्षत्र, सूर्य एवं चन्द्रमा के स्तुतिपरक मन्त्र आये है। निश्चय ही प्रागैतिहासिक भारतीय मानव ने इन के रहस्य से प्रभावित हो कर ही इन्हें दैवत्व रूप में माना है।

ब्राह्मण और आरण्यको के समय में यह परिभाषा और विकसित हुई तथा उस काल में नक्षत्रो की आकृति, स्वरूप, गुण एवं प्रभाव का प्रतिज्ञान प्राप्त करना ज्योतिष माना जाने लगा। आदिकाल में[1] नक्षत्रो के शुभाशुभ फलानुसार कार्यों का विवेचन तथा ऋतु, अयन, दिनमान, लग्न आदि के शुभाशुभानुसार विधायक कार्यो को करने का ज्ञान प्राप्त करना भी इस शास्त्र की परिभाषा में परिगणित हो गया। सूर्यप्रज्ञप्ति, ज्योतिष्करण्डक, वेदाग-ज्योतिष प्रभृति ग्रन्थो के प्रणयन तक ज्योतिष के गणित और फलित ये दो भेद अस्पष्ट नही हुए थे। यह परिभाषा यही सीमित नही रही, किन्तु ज्ञानोन्नति के साथ-साथ विकसित होती हुई राशि और ग्रहो के स्वरूप, रंग, दिशा, तत्त्व, धातु इत्यादि के विवेचन भी इस के अन्तर्गत आ गये।

आदिकाल के अन्त में ज्योतिष के गणित-सिद्धान्त और फलित ये दोनो भेद स्वतन्त्र रूप में प्रस्फुटित हो गये थे। ग्रहो की गति, स्थिति, अयनाश, पात आदि गणित ज्योतिष के अन्तर्गत तथा शुभाशुभ समय का निर्णय, विधायक, यज्ञ-यागादि कार्यो के करने के लिए समय और स्थान का निर्धारण फलित ज्योतिष का विषय माना जाता था। पूर्वमध्यकाल की[2] अन्तिम शताब्दियो में सिद्धान्त ज्योतिष के स्वरूप में भी विकास हुआ, लेकिन खगोलीय निरीक्षण और ग्रहवेध की परिपाटी के कम हो जाने से गणित के कल्पनाजाल-द्वारा ही ग्रहो के स्थानो का निश्चय करना सिद्धान्त ज्योतिष के अन्तर्गत आ गया। तथा पूर्वमध्यकाल के प्रारम्भ में ज्योतिष का अर्थ स्कन्धत्रय—

१ ई० पू० ५००—ई० ५०० तक का समय।
२. ई० ५०१—१००० तक का समय।

सिद्धान्त, सहिता और होरा के रूप में ग्रहण किया गया। परन्तु इस युग के मध्य में इस परिभाषा ने और भी सशोधन देखे और आगे जा कर यह पंच-रूपात्मक—होरा, गणित, संहिता, प्रश्न और निमित्त रूप हो गयी।

होरा

इस का दूसरा नाम जातकशास्त्र है। इस की उत्पत्ति अहोरात्र शब्द से है, आदि शब्द 'अ' और अन्तिम शब्द 'त्र' का लोप कर देने से होरा शब्द बनता है। जन्मकालीन ग्रहो की स्थिति के अनुसार व्यक्ति के लिए फलाफल का निरूपण इस में किया जाता है। इस शास्त्र मे जन्मकुण्डली के द्वादश भावों के फल उन में स्थित ग्रहो की अपेक्षा तथा दृष्टि रखने वाले ग्रहो के अनुसार विस्तारपूर्वक प्रतिपादित किये जाते हैं। मानवजीवन के सुख, दुःख, इष्ट, अनिष्ट, उन्नति, अवनति, भाग्योदय आदि समस्त शुभाशुभो का वर्णन इस शास्त्र में रहता है। होरा ग्रन्थो में फल-निरूपण के दो प्रकार है। एक में जातक के जन्म-नक्षत्र पर से और दूसरे में जन्म-लग्नादि द्वादश भावो पर से विस्तारपूर्वक विभिन्न दृष्टिकोणो से फलकथन की प्रणाली बतायी गयी है। होराशास्त्र पर अनेक स्वतन्त्र रचनाएँ हैं। समय-समय पर इस शास्त्र में अनेक संशोधन और परिवर्तन हुए है। इस शास्त्र के वराहमिहिर, नारचन्द्र, सिद्धसेन, ढुण्ढिराज, केशव आदि प्रधान रचयिता है। आचार्य वराहने इस शास्त्र में एक नवीन समन्वय की प्रणालो चलायी है। नारचन्द्र ने ग्रह और राशियो के स्वरूपानुसार भाव और दृष्टि के समन्वय तथा कारक, मारक आदि ग्रहो के सम्बन्धो की अपेक्षा से फल-प्रतिपादन की प्रक्रिया का प्रचलन किया है। श्रीपति एवं श्रीधर आदि ९वी, १०वी और ११वी शताब्दी के होरा शास्त्रकारो ने ग्रहबल, ग्रहवर्ग, विंशोत्तरी आदि दशाओ के फलो को इस शास्त्र की परिभाषा के अन्तर्गत मान लिया है।

गणित या सिद्धान्त

इस प्रकार होराशास्त्र की परिभाषा निरन्तर विकसित होती आ

रही है। इस में त्रुटि से ले कर कल्पकाल तक की कालगणना, सौर, चान्द्र मानो का प्रतिपादन, ग्रहगतियो का निरूपण, व्यक्त-अव्यक्त गणित का प्रयोजन, विविध प्रश्नोत्तर-विधि, ग्रह, नक्षत्र की स्थिति, नाना प्रकार के तुरीय, नलिका इत्यादि यन्त्रो की निर्माण-विधि, दिक्, देश, कालज्ञान के अनन्यतम उपयोगी अंग अक्षक्षेत्र-सम्बन्धी अक्षज्या, लम्बज्या, द्युज्या, कुज्या, तद्धृति, समशंकु इत्यादि का आनयन रहता है। प्राचीन काल में इस की परिभाषा केवल सिद्धान्त गणित के रूप में मानी जाती थी। आदिकाल में अंकगणित-द्वारा ही अहर्गण-मान साध कर ग्रहो का आनयन करना इस शास्त्र का प्रधान प्रतिपाद्य विषय था। पूर्वमध्यकाल में इस की यह परिभाषा ज्यो की त्यो अवस्थित रही। उत्तरमध्यकाल में इस ने अनेक पहलुओ के पल्लो को पकडा और इस युग के प्रारम्भ से वासनात्मक होती हुई भी व्यक्तगणित को अपनाती रही, इसी लिए इस काल में गणित के सिद्धान्त, तन्त्र और करण ये तीन भेद प्रकट हुए।

जिस में सृष्ट्यादि से इष्ट दिन पर्यन्त अहर्गण बना कर ग्रह सिद्ध किये जायें वह सिद्धान्त, जिस मे युगादि से इष्ट दिन पर्यन्त अहर्गण बना कर ग्रहगणित किया जाये वह तन्त्र और जिस में कल्पित इष्ट वर्ष का युग मान कर उस युग के भीतर ही किसी अभीष्ट दिन का अहर्गण ला कर ग्रहानयन किया जाये उसे करण कहते है। उत्तरमध्यकाल के अन्त में गणित ज्योतिष की परिभाषा विस्तृत होने की अपेक्षा सकुचित दिखलाई पडती है, क्योंकि इस युग में क्रियात्मक ग्रहगणित को छोड वासनात्मक (उपपत्तिविषयक) ग्रहगणित का ही आश्रय ज्योतिषियो ने ले लिया, जिस से वास्तविक ग्रहगणित का विकास कुछ रुक-सा गया। यद्यपि करण-ग्रन्थो की सारणियाँ तैयार की गयी थी, किन्तु आगे आकाश-निरीक्षण और व्यक्तक्रियात्मक ग्रहगणित के अभाव में सारणियो में संशोधन न हो सके। इस प्रकार गणित ज्योतिष की परिभाषा कभी शैशव और कभी यौवन के साथ अठखेलियाँ करती रही।

संहिता

इस में भूशोधन, दिक्शोधन, शल्योद्धार, मेलापक, आयाद्यानयन, गृहोपकरण, इष्टिकाद्वार, गेहारम्भ, गृहप्रवेश, जलाशय-निर्माण, मागलिक कार्यो के मुहूर्त्त, उल्कापात, वृष्टि, ग्रहो के उदयास्त का फल, ग्रहाचार का फल एवं ग्रहण-फल आदि बातो का निरूपण विस्तारपूर्वक किया जाता है। मध्य युग में संहिता की परिभाषा होरा, गणित और शकुन के मिश्रित रूप में मानी गयी है। ९वी और १०वी शताब्दो में क्रियाकाण्ड भी इस की परिभाषा के अन्तर्गत आ गया है। संहिताशास्त्र का जन्म आदिकाल में हुआ और इस की परिभाषा का क्षेत्र उत्तरोत्तर बढता चला गया। कुछ जैनाचार्यो ने जीवनोपयोगी आयुर्वेद की चर्चाएँ भी संहिता के अन्तर्गत रखी है। १२वी और १३वी शताब्दी में इस शास्त्र की परिभाषा इतनी विकसित हुई है कि जीवन से सम्बद्ध सभी उपयोगी लौकिक विषय इस के अन्तर्गत आ गये हैं।

प्रश्नशास्त्र

यह तत्काल फल बतलाने वाला शास्त्र है। इस में प्रश्नकर्त्ता के उच्चारित अक्षरो पर से फल का प्रतिपादन किया जाता है। ईसवी सन् की ५वी और ६ठी शताब्दी मे केवल पृच्छक के उच्चारित अक्षरो पर से फल बतलाना ही प्रश्नशास्त्र के अन्तर्गत था, लेकिन आगे जा कर इस शास्त्र में तीन सिद्धान्तो का प्रवेश हुआ—(१) प्रश्नाक्षर-सिद्धान्त, (२) प्रश्नलग्न-सिद्धान्त और (३) स्वरविज्ञान-सिद्धान्त। दिगम्बर जैनग्रन्थो की अधिकतर रचनाएँ दक्षिण-भारत में होने के कारण प्राय सभी प्रश्नग्रन्थ प्रश्नाक्षर-सिद्धान्त को ले कर निर्मित हुए हैं। अन्वेषण करने पर स्पष्ट मालूम होता है कि केवलज्ञानप्रश्नचूडामणि, चन्द्रोन्मीलन-प्रश्न, आयज्ञानतिलक, अर्हच्चूडामणि आदि ग्रन्थो के आधार पर ही आधुनिक काल में केरल प्रश्नशास्त्र की रचना हुई है।

वराहमिहिर के पुत्र पृथुयशा के समय से प्रश्नलग्न वाले सिद्धान्त का प्रचार भारत में जोरो से हुआ है। ९वी, १०वी और ११वी शती में इस सिद्धान्त को विकसित होने के लिए पूर्ण अवसर मिला है, जिस से अनेक स्वतन्त्र रचनाएँ भी इस विषय पर लिखी गयी है। इस शास्त्र की परिभाषा में उत्तरमध्यकाल तक अनेक सशोधन और परिवर्द्धन होते रहे है। चर्या, चेष्टा, हाव-भाव आदि के द्वारा मनोगत भावो का वैज्ञानिक दृष्टि से विश्लेषण करना भी इस शास्त्र के अन्तर्गत आ गया है।

शकुन

इस का अन्य नाम निमित्तशास्त्र भी मिलता है। पूर्वमध्यकाल तक इस ने पृथक् स्थान प्राप्त नहीं किया था, किन्तु संहिता के अन्तर्गत ही इस का विषय आता था। ईसवी सन् की १०वी ११वी और १२वी शतियो में इस विषय पर स्वतन्त्र विचार होने लग गया था, जिस से इस ने अलग शास्त्र का रूप प्राप्त कर लिया। वि० स० १०८९ में आचार्य दुर्गदेव ने अरिष्ट विषय को भी शकुनशास्त्र में मिला दिया था। आगे चल कर इस शास्त्र की परिभाषा और भी अधिक विकसित हुई और इस की विषय-सीमा में प्रत्येक कार्य के पूर्व में होने वाले शुभाशुभो का ज्ञान प्राप्त करना भी आ गया। वसन्तराजशकुन, अद्भुतसागर-जैसे शकुन-ग्रन्थो का निर्माण इसी परिभाषा को दृष्टि में रख कर किया गया प्रतीत होता है।

ज्योतिष का उद्भवस्थान और काल

यदि पक्षपात छोड कर विचार किया जाये तो स्पष्ट मालूम हो जायेगा कि अन्य शास्त्रो के समान भारतीय ही इस शास्त्र के आदि आविष्कर्ता है। योगविज्ञान, जो कि भारतीय आचार्यो की विभूति माना जाता है, इस का पृष्ठाधार है। यहाँ के ऋषियो ने योगाभ्यास-द्वारा अपनी-सूक्ष्म प्रज्ञा से शरीर के भीतर ही सौर-मण्डल के दर्शन किये और अपना निरीक्षण कर

आकाशीय सौर-मण्डल की व्यवस्था को ।[१] अंकविद्या जो इस शास्त्र का प्राण है, उस का श्रीगणेश भी भारत मे ही हुआ है । मध्यकालीन भारतीय संस्कृति नामक पुस्तक मे श्री ओझाजी ने लिखा है--"भारत ने अन्य देश-वासियो को जो अनेक बाते सिखायी, उन में सब से अधिक महत्त्व अंक-विद्या का है । संसार-भर में गणित, ज्योतिष, विज्ञान आदि की आज जो उन्नति पायी जाती है, उस का मूल कारण वर्तमान अंक-क्रम है, जिस में १ से ९ तक के अंक और शून्य इन १० चिह्नो से अंकविद्या का सारा काम चल रहा है । यह क्रम भारतवासियो ने ही निकाला और उसे सारे संसार ने अपनाया ।"[२]

उपर्युक्त उद्धरण से स्पष्ट है कि प्राचीनतम काल मे भारतीय ऋषि खगोल और ज्योतिषशास्त्र से परिचित थे । कुछ लोग भारतीय ज्योतिष में ग्रीक शब्दो का सम्मिश्रण होने के कारण तथा प्राचीन भारतीय ज्योतिष में मेष, वृष आदि १२ राशियो एव मंगल, बुध, गुरु इत्यादि ग्रहो के नामो का स्पष्ट उल्लेख न मिलने के कारण उसे ग्रीस से आया हुआ बतलाते है, परन्तु विचार करने पर वास्तविक बात ऐसी प्रतीत नही होगी । क्योकि उन लोगो ने आगत शब्दो के प्रमाण में होरा, (लग्न और राशि-भाग), हिबुक (जन्म कुण्डली का चतुर्थ भाव), आपोक्लीम, द्रेष्काण (राशि का तृतीयांश), कण्टक (चतुर्थ भाव), पणफर, अनफा, सुनफा, दुरधरा (योगविशेष), तुंग (उच्च-स्थान) मुसल्लह (नवमाश), मुन्था (जन्मलग्नस्थित किसी भी अभीष्ट वर्ष की राशि), इन्दुवार, इत्थशाल, ईसराफ, यमया; मणऊ (योगविशेष) को उपस्थित किया ।

प्राचीन भारत में ग्रीस देश से अनेक विद्यार्थी विभिन्न शास्त्रो का अध्य-यन करने के लिए आते थे और वर्षों रह कर भारतीय आचार्यों से भिन्न-भिन्न शास्त्रो का अध्ययन करते थे, जिस से उन के अत्यधिक सम्पर्क के

---

१. विशेष जानने के लिए इसी पुस्तक का 'जीवन और ज्योतिष' प्रकरण देखें ।

२. मध्यकालीन भारतीय संस्कृति · पृ० १०८ ।

कारण कुछ शब्द ई० पू० ३री शती मे, कुछ ई० ६ठी शती मे और कुछ १५वी-१६वी शती में ज्योतिष में मिल गये। भारत के कई ज्योतिर्विद् ईसवी सन् की ४थी और ५वी शताब्दी में ग्रीस गये थे, इस से ५वी शती के अन्त और ६ठी के प्रारम्भ में अनेक ग्रीक शब्द भारतीय ज्योतिष में आ गये।

डब्ल्यू० डब्ल्यू हण्टर ने लिखा है कि "८वी शती में अरबी विद्वानो ने भारत मे ज्योतिषविद्या सीखी और भारतीय ज्योतिष सिद्धान्तो का 'सिन्द हिन्द' नाम से अरबी में अनुवाद किया।[1] अरबी भाषा में लिखी गयी "आइन-उल-अस्त्राफितल कालूली अत्वा" नामक पुस्तक में लिखा है कि "भारतीय विद्वानो ने अरबी के अन्तर्गत बगदाद की राजसभा में जा कर ज्योतिष, चिकित्सा आदि शास्त्रों की शिक्षा दी थी। कर्क नाम के एक विद्वान् शक संवत् ६९४ में बादशाह अलमसूर के दरबार मे ज्योतिष और चिकित्सा के ज्ञानदान के निमित्त गये थे।"[2]

दूसरी युक्ति जो राशि और ग्रहो के स्पष्ट नामोल्लेख न मिलने के रूप में दी गयी है, निस्सार है। क्योकि जब प्राचीन साहित्य में सौर-जगत् के सूक्ष्म अवयव नक्षत्रो का जिक्र मिलता है तब स्थूल अवयव राशि का ज्ञान कैसे न रहा होगा? आकाश की ओर दृष्टि डालते ही सर्वप्रथम राशियो का ही दर्शन होता है, नक्षत्रो का नही। नक्षत्रो का दर्शन राशि-दर्शन के पश्चात् सूक्ष्म निरीक्षण करने पर होता है। अतएव राशिज्ञान के अभाव में नक्षत्रों का प्रतिपादन सम्भव नही कहा जा सकता।

ऋग्वेदसंहिता में चक्र शब्द आया है, जो राशिचक्र का बोधक है। "द्वादशारं नहि तज्जराय"[3] इस मन्त्र में द्वादशारं शब्द १२ राशियो का

---

१ हण्टर इण्डियन-गजेटियर-इण्डिया पृ० २१८।
२. ज्योतिषरत्नाकर' प्रथम भाग—भूमिका।
३ ऋक् सं० १, १६४, ११।

बोधक है। प्रकरणगत विशेषताओ के ऊपर ध्यान देने से इस मन्त्र मे स्पष्टतया द्वादश राशियो का निर्देश मिलेगा। श्री डॉ० सम्पूर्णानन्दजी,[1] सम्मान्य भू० पू० मुख्यमन्त्री, उत्तर-प्रदेश 'द्वादशारं' शब्द को द्वादश राशियो के बोधक होने में शंका करते है तथा द्वादश महीनो का द्योतक होने की सम्भावना करते है, परन्तु उन की सम्भावना तर्कसंगत नही। कारण स्पष्ट हैं कि इस मन्त्र के आगे वाले भाग मे ३६० दिन वर्ष—१२ राशियो के माने गये है। १२ महीनो के ३६० दिन नही हो सकते, क्योंकि चान्द्रमास २९½ दिन से अधिक नही होता, इस हिसाब से वर्ष में ३५४ दिन होते है, किन्तु मन्त्र में ३६० दिन बताये गये हैं, जो कि द्वादश राशि मान लेने पर ठीक आ जाते हैं। प्रत्येक राशि में ३० अंश तथा प्रत्येक अंश का मध्यम मान एक दिन इस प्रकार ३६० दिन द्वादश राश्यात्मक चक्र में हो जाते हैं। जैन-ज्योतिष के विद्वान् गर्ग, ऋषिपुत्र और कालकाचार्य ने परम्परागत राशिचक्र का निरूपण किया है।

कुछ पाश्चात्य विद्वान् भारतीय ज्योतिष को बैबिलोन से आया हुआ बतलाते है। उन्होने लिखा है कि भारतीय बैबिलोन गये और वहाँ से ज्योतिष सीख कर आये, मैक्समूलर ने इस मत की समीक्षा करते हुए लिखा है—

"The twenty seven constellations, which were chosen in India as a kind of lunar zodiac, were supposed to have come from Babylon Now the Babylonian zodiac was solar, and in spite of repeated researches, no trace of lunar zodiac has been found, ...But supposing even that a lunar zodiac had beed discovered in Babylon, no one acquainted with Vedic literature

---

१ क्या भारतीय ज्योतिष ग्रीस से आया है? 'साप्ताहिक संसार' ५ जुलाई १९४५।

and with the ancient Vedic Ceremonial would easily allow himself to be persuaded that the Hindus had borrowed that simple division of the sky from the Babylonians It is well known that most of the Vedic sacrifices depend on the moon, far more than on the sun "

— Vol XIII, Lecture iv, 'objections' pp 126-127

अर्थात्—प्राचीन भारतीय विद्वान् खगोल का ज्ञान प्राप्त करने के लिए बैविलोन गये और वहाँ की भाषा सीख कर खगोल विद्या सीखी। भारत वापस आ कर सूर्य को आधार मान कर आकाश के विभाग करने मे कठिनाई का अनुभव किया, क्योंकि सूर्योदय होने पर अधिकाश नक्षत्र दूर-दर्शक यन्त्र से भी नही देखे जा सकते और इस कारण चन्द्रमा के आधार पर आकाश को २७ नक्षत्रो में बाँटा, चन्द्रमा की विभिन्न कलाओं का अध्ययन कर के उस के अनुसार पक्ष, मास और वर्ष बनाये, जिन्हें आगे चल कर सौर समय से सम्बद्ध कर दिया गया। यह सब हास्यास्पद मालूम होता है। अनुकरण जहाँ भी किया जाता है, वहाँ पूर्ण रूप से, और उस अनुकरण की पूरी छाप इतिहास पर लग जाती है। भारतीय खगोल के इतिहास में बैविलोन के खगोल की छाप हमें मिलती ही नही है। बैविलोन में सूर्य की गतियों को दृष्टि में रख कर नक्षत्रो का विभाजन किया गया है, पर भारत में चन्द्रमा को प्रधान मान कर आकाश का बँटवारा २८ नक्षत्रो में किया है। मैक्समूलर ने आगे बताया है—

"We must never forget that what is natural in one place is natural in other places also, and no case has been made out in favour of a foreign origin of the elementary astronomical notions of the Hindus as found or presupposed in the Vedic hymns."

—Objections, p. 130

अर्थात्—भारतीयो की आकाश का रहस्य जानने की भावना विदेशीय प्रभाववश उद्भूत नही हुई, बल्कि स्वतन्त्र रूप से उत्पन्न हुई है। अतएव स्पष्ट है कि भारतीय ज्योतिष का जन्म स्थान भारत है, इस के ऊपर पूर्व-मध्यकाल में विदेशीय सम्पर्क के कारण कुछ प्रभाव अवश्य पडा है, परन्तु मूलभूत भावना भारत की ही है। मूल ज्योतिष के तत्त्व इसी पुण्यभूमि में आज से हजारो वर्ष पहले आविष्कृत हुए हैं।

ऋग्वेद और शतपथ ब्राह्मण आदि ग्रन्थो के अध्ययन से पता चलता है कि आज से कम से कम २८००० वर्ष पहले भारतीयो ने खगोल और ज्योतिष शास्त्र का मन्थन किया था। वे आकाश में चमकते हुए नक्षत्रपुंज, राशिपुंज, देवतापुंज, आकाशगंगा, नीहारिका आदि के नाम, रूप, रंग, आकृति से पूर्णतया परिचित थे।

कौन-सा नक्षत्र ज्योतिपूर्ण है, नभोमण्डल में ग्रहो के संचार से आकर्षण कैसे होता है? तथा ग्रहों के प्रकाश का प्रभाव पृथ्वी स्थित प्राणियो पर कैसे पड़ता है, इत्यादि बातो का वेदो में वर्णन है।[१]

जैनग्रन्थ सूर्यप्रज्ञप्ति, गर्गसंहिता, ज्योतिष्करण्डक इत्यादि मे ज्योतिष-शास्त्र की अनेक महत्त्वपूर्ण बातों का वर्णन किया गया है। इन ग्रन्थो के अवलोकन से स्पष्ट मालूम हो जाता है कि उदयकाल में भारतीय ज्योतिष कितना उन्नतिशील था। अयन, मलमास, क्षयमास, नक्षत्रो की श्रेणियाँ, सौरमास, चान्द्रमास आदि का सूक्ष्म विवेचन ज्योतिष्करण्डक में सुन्दर ढंग से भारतीय ज्योतिष की प्राचीनता और मौलिकता सिद्ध कर रहा है।[२]

भारतीय ज्योतिष की प्राचीनता पर विदेशी विद्वानों के अभिमत

भारतीय ज्योतिष को प्राचीन और मौलिक केवल भारतीय विद्वान्

---

१. Orion or Researches into the Antiquity of Vedas, pp 1-9, 17-38

२ देखें-वेदांगज्योतिष की भूमिका भाग पृ० १-२६ तक डॉ० श्यामशास्त्री।

ही सिद्ध नहीं करते हैं, बल्कि अनेक विदेशीय विद्वानों ने भी इस की प्राचीनता स्वीकार की है। यहाँ कुछ विद्वानो के मत दिये जाते हैं—

[१] अलबरूनी ने लिखा है कि "ज्योतिषशास्त्र में हिन्दू लोग ससार की सभी जातियो से बढ कर हैं। मैंने अनेक भाषाओ के अको के नाम सीखे हैं, पर किसी जाति में भी हज़ार से आगे की सख्या के लिए मुझे कोई नाम नही मिला। हिन्दुओं में अठारह अको तक की सख्या के लिए नाम हैं, जिन में अन्तिम सख्या का नाम परार्द्ध बताया गया है।[१]"

[२] प्रो० मैक्समूलर ने स्पष्ट शब्दो में कहा है कि "भारतवासी आकाश-मण्डल और नक्षत्र-मण्डल आदि के बारे में अन्य देशो के ऋणी नही हैं। मूल आविष्कर्ता वे ही इन वस्तुओं के हैं।[२]"

[३] फ़्रान्सीसी पर्यटक फ्राक्वीस बर्नियर भी भारतीय ज्योतिष-ज्ञान की प्रशसा करते हुए लिखते हैं कि "भारतीय अपनी गणना-द्वारा चन्द्र और सूर्य ग्रहण को बिलकुल ठीक भविष्यवाणी करते हैं। इन का ज्योतिषज्ञान प्राचीन और मौलिक है।[3]"

[४] फ़्रान्सीसी यात्री टरवीनियर ने भी भारतीय ज्योतिष की प्राचीनता और विशालता से प्रभावित हो कर कहा है कि "भारतीय ज्योतिष ज्ञान में प्राचीन काल से ही अतीव निपुण है।[४]"

[५] एन्साइक्लोपीडिया ऑफ ब्रिटैनिका में लिखा है कि "इस मे कोई सन्देह नही कि हमारे (अँगरेजी) वर्तमान अंक-क्रम की उत्पत्ति भारत से है। सम्भवत खगोल सम्बन्धी उन सारणियो के साथ जिन को एक भारतीय राजदूत ईसवी सन् ७७३ में बग़दाद में लाया, इन अंको का प्रवेश अरब में हुआ। फिर ईसवी सन् की ९वी शताब्दी के प्रारम्भिक

---

१ अलबरूनीज़ इण्डिया जिल्द १ पृ० १७४-१७७।
२. इण्डिया ह्वाट केन इट टीच अस पृ० ३६०-३६६।
३. ट्रावेल्स इन दी मुग़ल इम्पायर पृ० ३२९।
४ टरवीनियरस् ट्रेविल इन इण्डिया पृ० ४३३।

काल में प्रसिद्ध अबूजफ़र मोहम्मद अल् खारिज्मी ने अरबी में उक्त क्रम का विवेचन किया और उसी समय से अरबों में उस का प्रचार बढ़ने लगा। यूरोप में शून्यसहित यह सम्पूर्ण अंक-क्रम ईसवी सन् की १२वीं शताब्दी में अरबों से लिया गया और इस क्रम से बना हुआ अंकगणित 'अल् गोरिट्मस' नाम प्रसिद्ध हुआ।"[1]

[६] काउण्ट ऑर्मस्टर्जन ने लिखा है कि "बेलो-द्वारा किये गये गणित से यह प्रतीत होता है कि ईसवी सन् से ३००० वर्ष पूर्व में ही भारतवासियों ने ज्योतिषशास्त्र और भूमिति शास्त्र में अच्छी पारदर्शिता प्राप्त कर ली थी।[2]"

[७] कर्नल टॉड ने अपने राजस्थान नामक ग्रन्थ में लिखा है कि "हम उन ज्योतिषियों को कहाँ पा सकते हैं, जिनका ग्रहमण्डल सम्बन्धी ज्ञान अब भी यूरोप में आश्चर्य उत्पन्न कर रहा है।"[3]

[८] मिस्टर मारिया ग्राहम की सम्मति है कि 'समस्त मानवीय परिष्कृत विज्ञानों में ज्योतिष मनुष्य को ऊँचा उठा देता है।" इस के प्रारम्भिक विकास का इतिहास संसार की मानवता के उत्थान का इतिहास है। भारत में इस के आदिम अस्तित्व के बहुत-से प्रमाण मौजूद हैं।"

[९] मिस्टर सी० बी० क्लार्क एफ़० जी० एस० कहते हैं कि "अभी बहुत वर्ष पीछे तक हम सुदूर स्थानों के अक्षांश (Longitudes) के विषय में निश्चयात्मक रूप से ज्ञान नहीं रखते थे, किन्तु प्राचीन भारतीयों ने ग्रहण-ज्ञान के समय से ही इन्हें जान लिया था। इन की यह अक्षांश, रेखांशवाली प्रणाली वैज्ञानिक ही नहीं, अचूक है।"[5]

---

१ एन्साइक्लोपीडिया ऑफ़ ब्रिटैनिका : जिल्द १७, पृ० ६२६।

२. Theogony of the Hindus : p 37.

३ टॉड राजस्थान भूमिका : भाग पृ० ९-११।

४ Letters on India : p. 100-111.

५ Theogony of Hindus : p. 37

[१०] प्रो० विल्सन ने कहा है कि 'भारतीय ज्योतिषियो को प्राचीन खलीफो विशेषकर हारूँरशीद और अलमायन ने भली भाँति प्रोत्साहित किया। वे वगदाद आमन्त्रित किये गये और वहाँ उन के ग्रन्थो का अनुवाद हुआ।"[१]

[११] डॉक्टर रावर्टसन का कथन है कि "१२ राशियो का ज्ञान सब से पहले भारतवासियो को ही हुआ था। भारत ने प्राचीन काल में ही ज्योतिर्विद्या में अच्छी उन्नति की थी।"[२]

[१२] प्रो० कोलब्रुक और वेवर साहब ने लिखा है कि "भारत को ही सर्वप्रथम चान्द्रनक्षत्रो का ज्ञान था। चीन और अरब के ज्योतिष का विकास भारत से ही हुआ है। उन का क्रान्तिमण्डल हिन्दुओ का ही है। निस्सन्देह उन्ही से अरब वालो ने इसे लिया था।"

[१३] विख्यात चीनी विद्वान् लियांग चिचाव के शब्दो मे "वर्तमान सभ्य जातियो ने जब हाथ-पैर हिलाना भी प्रारम्भ नही किया था तभी हम दोनो भाइयो ने (चीन और भारत) मानव सम्बन्धी समस्याओ को ज्योतिष-जैसे विज्ञान-द्वारा सुलझाना आरम्भ कर दिया था।"[3]

[१४] प्रो० वेलस महोदय ने प्लेफसर साहब की कुछ पंक्तियाँ उद्धृत की हैं, जिन का आशय है कि ज्योतिष-ज्ञान के बिना बीजगणित की रचना कठिन है। विद्वान् विल्सन कहते हैं कि "भारत ने ज्योतिष और गणित के तत्त्वो का आविष्कार अति प्राचीन काल में किया था।"[४]

[१५] डी० मार्गन ने स्वीकार किया है कि "भारतीयो का गणित और ज्योतिष यूनान के किसी भी गणित या ज्योतिष के सिद्धान्तो की

---

१ Anciente and Mediaeval India Vol I, p 114

२ भारतीय सभ्यता और उस का विश्वव्यापी प्रभाव पृ० ११७ ॥

३ Letters on India p 109-111

४ Mill's India Vol II, p 151

अपेक्षा महान् है। इन के तत्त्व प्राचीन और मौलिक है।"[१]

[१६] डॉ० थीबो बहुत सोच-विचार और समालोचना के अनन्तर इस निष्कर्ष पर पहुँचे है कि "भारत ही रेखागणित के मूलसिद्धान्तो का आविष्कर्ता है। इस ने नक्षत्र विद्या में भी पुरातन काल मे ही प्रवीणता प्राप्त कर ली थी, यह रेखागणित के सिद्धान्तो का उपयोग इस विद्या को जानने के लिए करता था।"

[१७] बर्जेस महोदय ने सूर्यसिद्धान्त के अँगरेजी अनुवाद के परिशिष्ट में अपना मत उद्धृत करते हुए बताया है कि भारत का ज्योतिष टालमी के सिद्धान्तो पर आश्रित नही है, किन्तु इस ने ई० सन् के बहुत पहले ही इस विषय का पर्याप्त ज्ञान प्राप्त कर लिया था।[२]

उपर्युक्त उद्धरणो से स्पष्ट है कि भारतीय ज्योतिषशास्त्र का उद्भव-स्थान भारत ही है। इस ने किसी देश से सीख कर यहाँ प्रचार नहीं किया है। श्री लोकमान्य तिलक ने अपनी 'ओरायन' नामक पुस्तक में बताया है कि भारत का नक्षत्र-ज्ञान, जिस का कि वेदो में वर्णन आता है, ईसवी सन् से कम से कम पाँच हजार वर्ष पहले का है। भारतीय नक्षत्र विद्या मे अत्यन्त प्रवीण थे। अतएव बैबीलोन या यूनान अथवा ग्रीस से भारत में यह विद्या नही आयी है। ई० सन् पूर्व दूसरी शताब्दी तक इस शास्त्र में आदान-प्रदान भी नही हुआ है, किन्तु ई० सन् २–६ शती तक विदेशियो के अत्यधिक सम्पर्क के कारण पर्याप्त आदान-प्रदान हुआ है। पाश्चात्य सभ्यता के स्नेही कुछ समालोचक इसी काल के साहित्य को देख कर भारतीय ज्योतिष को यूनान या ग्रीस से आया बतलाते है।

बैबिलोनी भाषा के कुछ शब्द ऐसे भी हैं, जो संस्कृत में ज्यो के त्यो पाये जाते है, ज्योतिषशास्त्र में इन शब्दो का प्रयोग देख कर इसे बेबीलोन से आया हुआ सिद्ध करने की असफल चेष्टा कुछ समीक्षक करते है, किन्तु

---

१ Ancient and Mediaeval India : Vol, 1 P. 374,

२. पञ्चसिद्धान्तिका की भूमिका ' पृ० LIII—LV.

होता है, केवल यह कर्मों के अनादि प्रवाह के कारण पर्यायों को बदला करता है। अध्यात्मशास्त्र का कथन है कि दृश्य सृष्टि केवल नाम रूप या कर्म ही नहीं है, किन्तु इस नामरूपात्मक अनावरण के लिए आधारभूत एक अरूपी, स्वतन्त्र और अविनाशी आत्मतत्त्व है तथा प्राणीमात्र के शरीर में रहने वाला यह तत्त्व नित्य एवं चैतन्य है, केवल कर्मबन्ध के कारण वह परतन्त्र और विनाशीक दिखलाई पडता है। वैदिक दर्शनों में कर्म के सचित, प्रारब्ध और क्रियमाण ये तीन भेद माने गये है। किसी के द्वारा वर्तमान क्षण तक किया गया जो कर्म है—चाहे वह इस जन्म में किया गया हो या पूर्व जन्मो में, वह सब सचित कहलाता है। अनेक जन्म-जन्मान्तरो के सञ्चित कर्मों को एक साथ भोगना सम्भव नहो है, क्योंकि इन से मिलने वाले परिणामस्वरूप फल परस्पर-विरोधी होते हैं, अत इन्हें एक के बाद एक कर भोगना पडता है। सचित में से जितने कर्मों के फल को पहले भोगना शुरू होता है, उतने ही को प्रारब्ध कहते हैं। तात्पर्य यह है कि सञ्चित अर्थात् समस्त जन्म-जन्मान्तर के कर्मों के संग्रह में से एक छोटे भेद को प्रारब्ध कहते हैं। यहाँ इतना स्मरण रखना होगा कि समस्त सचित का नाम प्रारब्ध नही, बल्कि जितने भाग का भोगना आरम्भ हो गया है, प्रारब्ध है। जो कर्म अभी हो रहा है या जो अभी किया जा रहा है, वह क्रियमाण है। इस प्रकार इन तीन तरह के कर्मों के कारण आत्मा अनेक जन्मो—पर्यायो को धारण कर सस्कार अर्जन करता चला आ रहा है।

आत्मा के साथ अनादिकालीन कर्म-प्रवाह के कारण लिंग शरीर—कार्मण शरीर और भौतिक स्थूल शरीर का सम्बन्ध है। जब एक स्थान से आत्मा इस भौतिक शरीर का त्याग करता है तो लिंग शरीर उसे अन्य स्थूल शरीर की प्राप्ति में सहायक होता है। इस स्थूल भौतिक शरीर में विशेषता यह है कि इस मे प्रवेश करते ही आत्मा जन्म-जन्मान्तरो के सस्कारो की निश्चित स्मृति को खो देता है। इसलिए ज्योतिर्विदो ने प्राकृतिक ज्योतिष के आधार पर कहा है कि यह आत्मा मनुष्य के वर्तमान

पौ० सि०	पौलिश सिद्धान्त
तै० प्रा०	तैत्तिरीय-प्रातिशाख्य
तै० आ०	तैत्तिरीय-आरण्यक
छा० उ०	छान्दोग्योपनिषद्
छा० ब्रा०	छान्दोग्य-ब्राह्मण
ऋ० भू०	ऋग्वेदादिभाष्य-भूमिका
ऋ० इं०	ऋग्वैदिक इण्डिया
ए० रि०	एशियाटिक रिसर्चेज़
ओ० टे०	ओरियण्टल संस्कृत टेक्स्ट
ग्रे० इं०	ग्रेटर इण्डिया
नारा० उ० अ०	नारायण उपनिषद् अनुच्छेद

■

तीनो रूपों को मिलाने का कार्य करता है। दूसरे दृष्टिकोण से यह कहा जा सकता है कि ये तीनो रूप मौलिक अवस्था मे आकर्षण और विकर्षण की प्रवृत्ति-द्वारा अन्त.करण की सहायता से सन्तुलित रूप को प्राप्त होते हैं। तात्पर्य यह है कि आकर्षण की प्रवृत्ति वाह्य व्यक्तित्व को और विकपण की प्रवृत्ति आन्तरिक व्यक्तित्व को प्रभावित करती हैं और इन दोनो के वीच में रहने वाला अन्त.करण इन्हे सन्तुलन प्रदान करता है। मनुष्य की उन्नति और अवनति इन सन्तुलन के पलडे पर ही निर्भर है।

मानव जीवन के वाह्य व्यक्तित्व के तीन रूप और आन्तरिक व्यक्तित्व के तीन रूप तथा एक अन्त.करण इन सात के प्रतीक सौर जगत् में रहने वाले ७ ग्रह माने गये हैं। उपर्युक्त ७ रूप सब प्राणियो के एक से नही होते हैं, क्योकि जन्म-जन्मान्तरो के सचित, प्रारब्ध कर्म विभिन्न प्रकार के हैं, अतः प्रतीक रूप ग्रह अपने-अपने प्रतिरूप्य के सम्बन्ध में विभिन्न प्रकार की वातें प्रकट करते हैं। प्रतिरूप्यो की सच्ची अवस्था वीजगणित को अव्यक्त मान कल्पना-द्वारा निष्पन्न अंकों के समान प्रकट हो जाती है।

आधुनिक वैज्ञानिक प्रत्येक वस्तु की आन्तरिक रचना सौर-मण्डल से मिलती-जुलती वतलाते है। उन्होने परमाणु के सम्बन्ध में अन्वेषण करते हुए वताया है कि प्रत्येक पदार्थ की सूक्ष्म रचना का आधार परमाणु है। अथवा यो कहे कि परमाणु की ईंटो को जोड कर पदार्थ का विशाल भवन निष्पन्न होता है और यह परमाणु सौर-जगत् के समान आकार-प्रकार वाला है। इस के मध्य में एक घन विद्युत् का विन्दु है जिसे केन्द्र कहते हैं। इस का व्यास एक इच के १० लाखवे भाग का भी १० लाखवां भाग वताया गया है। परमाणु के जीवन का सार इसी केन्द्र में वसता है। इस केन्द्र के चारो ओर अनेक सूक्ष्मातिसूक्ष्म विद्युत्कण चक्कर लगाते रहते हैं और ये केन्द्र वाले घनविद्युत्कण के साथ मिलने का उपक्रम करते रहते है। इस प्रकार के अनन्त परमाणुओ के समाहार का एकत्र स्वरूप हमारा शरीर है। भारतीय दर्शन में भी 'यथा पिण्डे तथा ब्रह्माण्डे' का सिद्धान्त प्राचीन काल

मिश्रण, उदारता, अच्छा स्वभाव, सौन्दर्य प्रेम, शक्ति, भक्ति एवं व्यवस्था-बुद्धि, इत्यादि आत्मिक भावो का प्रतिनिधित्व करता है।

शरीर—इस दृष्टिकोण से पैर, जघा, जिगर, पाचनक्रिया, रक्त एव नसो का प्रतिनिधित्व करता है।

२. बाह्य व्यक्तित्व के द्वितीय रूप का प्रतीक मगल है। यह इन्द्रिय-ज्ञान और आनन्देच्छा का प्रतिनिधित्व करता है। जितने भी उत्तेजक और संवेदना-जन्य आवेग है उन का यह प्रधान केन्द्र है। बाह्य आनन्ददायक वस्तुओ के द्वारा यह क्रियाशील होता है और पूर्व की आनन्ददायक अनु-भवो की स्मृतियो को जागृत करता है। वाछित वस्तु की प्राप्ति तथा उन वस्तुओ की प्राप्ति के उपायो के कारणो की क्रिया का प्रधान उद्गम है। यह प्रधान रूप से इच्छाओ का प्रतीक है।

अनात्मिक दृष्टिकोण से—यह सैनिक, डॉक्टर, रासायनिक, नाई, बढई, लुहार, मशीन का कार्य करने वाला, मकान बनाने वाला, खेल एव खेल के सामान आदि का प्रतिनिधित्व करता है।

आत्मिक दृष्टिकोण से—यह साहस, बहादुरी, दृढता आत्मविश्वास, क्रोध, लडाकू प्रवृत्ति एव प्रभुत्व प्रभृति भावो और विचारो का प्रतिनिधि है।

शारीरिक दृष्टिकोण से—यह बाहरी सिर—खोपडी, नाक एवं गला का प्रतीक है। इस के द्वारा सक्रामक रोग, घाव, खरौंच, आपरेशन, रक्तदोष, दर्द आदि अभिव्यक्त होते है।

३. बाह्य व्यक्तित्व के तृतीय रूप का प्रतीक चन्द्रमा है, यह मानव पर शारीरिक प्रभाव डालता है और विभिन्न अंगो तथा उन के कार्यों में सुधार करता है। वस्तु-जगत् से सम्बन्ध रखने वाले पिछले मस्तिष्क पर इस का प्रभाव पडता है। बाह्य जगत् की वस्तुओ-द्वारा जो क्रियाएँ होती है, उन का इस से विशेष सम्बन्ध है। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि चन्द्रमा स्थूल शरीरगत चेतना के ऊपर प्रभाव डालता है तथा मस्तिष्क मे उत्पन्न होने वाले भावो का प्रतिनिधि है।

प्रथमाध्याय

आकाश की ओर दृष्टि डालते ही मानव-मस्तिष्क में उत्कण्ठा उत्पन्न होती है कि ये ग्रह-नक्षत्र क्या वस्तु हैं ? तारे क्यों टूट कर गिरते हैं ? पुच्छल तारे क्या हैं और ये कुछ दिनों में क्यों विलीन हो जाते हैं ? सूर्य प्रतिदिन पूर्व दिशा में ही क्यों उदित होता है ? ऋतुएँ क्रमानुसार क्यों आती हैं ? आदि ।

मानव-स्वभाव ही कुछ ऐसा है कि वह जानना चाहता है--क्यों ? कैसे ? क्या हो रहा है ? और क्या होगा ? यह केवल प्रत्यक्ष बातों को ही जान कर सन्तुष्ट नहीं होता, बल्कि जिन बातों से प्रत्यक्ष लाभ होने की सम्भावना नहीं है, उन के जानने के लिए भी उत्सुक रहता है। जिस बात के जानने की मानव को उत्कट इच्छा रहती है, उस के अवगत हो जाने पर उसे जो आनन्द मिलता है, जो तृप्ति होती है उस से वह निहाल हो जाता है।

मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से विश्लेषण करने पर ज्ञात होगा कि मानव की उपर्युक्त जिज्ञासा ने ही उसे ज्योतिषशास्त्र के गम्भीर रहस्योद्घाटन के लिए प्रवृत्त किया है। आदिम मानव ने आकाश को प्रयोगशाला में सामने आने वाले ग्रह, नक्षत्र और तारों प्रभृति का अपने कुशल चक्षुओं द्वारा पर्यवेक्षण करना प्रारम्भ किया और अनेक रहस्यों का पता लगाया। परन्तु आश्चर्य की बात यह है कि तब से अब तक विश्व की रहस्यमयी प्रवृत्तियों के उद्घाटन करने का प्रयत्न करने पर भी यह और उलझता जा रहा है।

व्युत्पत्त्यर्थ

ज्योतिषशास्त्र की व्युत्पत्ति "ज्योतिषां सूर्यादिग्रहाणां बोधकं शास्त्रम्" की गयी है; अर्थात् सूर्यादि ग्रह और काल का बोध कराने वाले शास्त्र को

गम्भीरतापूर्वक किये गये विचारो का विश्लेषण बडी खूबी से करता है।

अनात्मिक दृष्टिकोण से—स्कूल, कालेज का शिक्षण, विज्ञान, वैज्ञानिक और साहित्यिक स्थान, प्रकाशन-स्थान, सम्पादक, लेखक, प्रकाशक, पोस्ट-मास्टर, व्यापारी एवं बुद्धिजीवियो पर इस का विशेष प्रभाव पडता है। पीले रंग और पारा धातु पर भी यह अपना प्रभाव डालता है।

आत्मिक दृष्टिकोण से—यह समझ, स्मरणशक्ति, खण्डन-मण्डन शक्ति, सूक्ष्म कलाओ की उत्पादन शक्ति एवं तर्कणा आदि का प्रतिनिधि है।

शारीरिक दृष्टिकोण से—यह मस्तिष्क, स्नायुक्रिया, जिह्वा, वाणी, हाथ तथा कलापूर्ण कार्योत्पादक अगो पर प्रभाव डालता है।

६ आन्तरिक व्यक्तित्व के तृतीय रूप का प्रतिनिधि सूर्य है। यह पूर्ण दैवत्व की चेतना का प्रतीक है, इस की ७ किरणें है जो कार्य रूप से भिन्न होती हुई भी इच्छा के रूप में पूर्ण हो कर प्रकट होती है। मनुष्य के विकास मे सहायक तीनो प्रकार की चेतनाओ के सन्तुलित रूप का यह प्रतीक है। यह पूर्ण इच्छा-शक्ति, ज्ञान-शक्ति, सदाचार, विश्राम, शान्ति, जीवन की उन्नति एव विकास का द्योतक है।

अनात्मिक दृष्टिकोण की अपेक्षा से—जो व्यक्ति दूसरो पर अपना प्रभाव रखते हो ऐसे राजा, मन्त्री, सेनापति, सरदार, आविष्कारक, पुरातत्त्ववेत्ता आदि पर अपना प्रभाव डालता है।

आत्मिक दृष्टिकोण की अपेक्षा से—यह प्रभुता, ऐश्वर्य, प्रेम, उदारता, महत्त्वाकांक्षा, आत्मविश्वास, आत्मनियन्त्रण, विचार और भावनाओ का सन्तुलन एव सहृदयता का प्रतीक है।

शारीरिक दृष्टि से—हृदय, रक्त-सचालन, नेत्र, रक्त-वाहक छोटी नसें, दांत, कान आदि अंगो का प्रतिनिधि है।

७. अन्त:करण का प्रतीक शनि है। यह बाह्य चेतना और आन्तरिक चेतना को मिलाने में पुल का काम करता है। प्रत्येक नवजीवन में आन्तरिक व्यक्तित्व से जो कुछ प्राप्त होता है और जो मनुष्य के व्यक्तिगत जीवन

के अनुभवो से मिलता है, उस से मनुष्य को यह वृद्धिगत करता है। यह प्रधान रूप से 'अहं' भावना का प्रतीक होता हुआ भी व्यक्तिगत जीवन के विचार, इच्छा और कार्यों के सन्तुलन का भी प्रतीक है। विभिन्न प्रतीकों से मिलने पर यह नाना तरह से जीवन के रहस्यो को अभिव्यक्त करता है। उच्च स्थान अर्थात् तुला राशि का शनि विचार और भावो की समानता का द्योतक है।

अनात्मिक दृष्टिकोण से—कृपक, हलवाहक, पत्रवाहक, चरवाहा, कुम्हार, माली, मठाधीश, कृपण, पुलिस अफसर, उपवास करने वाले साधु-सन्यासी आदि व्यक्ति तथा पहाडी स्थान, चट्टानी प्रदेश, वंजर भूमि, गुफा, प्राचीन ध्वस स्थान, श्मशानघाट, कब्रस्थान एव चौरस मैदान आदि का प्रतिनिधि है।

आत्मिक दृष्टि से—तात्त्विकज्ञान, विचार-स्वातन्त्र्य, नायकत्व, मनन-शीलता, कार्यपरायणता, आत्मसयम, धैर्य, दृढता, गम्भीरता, चारित्रशुद्धि, सतर्कता, विचारशीलता एव कार्यक्षमता का प्रतीक है।

शारीरिक दृष्टि से—हड्डियाँ, नीचे के दाँत, वडी आँतें एव मांस-पेशियो पर प्रभाव डालता है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि सौर-जगत् के ७ ग्रह मानव-जीवन के विभिन्न अवयवो के प्रतीक हैं। इन सातो को क्रिया—फल-द्वारा ही जीवन का सचालन होता है। प्रधान सूर्य और चन्द्रमा वौद्धिक और शारीरिक उन्नति-अवनति के प्रतीक माने गये हैं। पूर्वोक्त जीवन के विभिन्न अवयवो के प्रतीक ग्रहो का क्रम दोनो व्यक्तित्वो के तृतीय, द्वितीय, प्रथम और अन्त -करण के प्रतीको के अनुसार है अर्थात् आन्तरिक व्यक्तित्व के तृतीय रूप का प्रतीक सूर्य, वाह्य व्यक्तित्व के तृतीय रूप का प्रतीक चन्द्रमा, वाह्य व्यक्तित्व के द्वितीय रूप का प्रतीक मंगल, आन्तरिक व्यक्तित्व के द्वितीय रूप का प्रतीक वुध, वाह्यव्यक्तित्व के प्रथम रूप का प्रतीक वृहस्पति, आन्त-रिक व्यक्तित्व के प्रथम रूप का प्रतीक शुक्र एव अन्त करण का प्रतीक शनि,

इस प्रकार सूर्य, चन्द्र, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र और शनि इन सातो ग्रहो का क्रम सिद्ध होता है। अत स्पष्ट है कि मानव जीवन के साथ ग्रहो का अभिन्न सम्बन्ध है।

आचार्य वराहमिहिर के सिद्धान्तो को मनन करने से ज्ञात होगा कि शरीरचक्र ही ग्रह-कक्षावृत्त है। इस कक्षावृत्त के द्वादश भाग मस्तक, मुख, वक्षस्थल, हृदय, उदर, कटि, वस्ति, लिंग, जघा, घुटना, पिण्डली और पैर क्रमश मेष, वृष, मिथुन, कर्क, सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक, धनु, मकर, कुम्भ और मीन सज्ञक है। इन वारह राशियो मे भ्रमण करने वाले ग्रहो में आत्मा रवि, मन चन्द्रमा, धैर्य मगल, वाणी बुध, विवेक गुरु, वीर्य शुक्र और सवेदन शनि है। तात्पर्य यह है कि वराहमिहिराचार्य ने ७ ग्रह और १२ राशियो की स्थिति देहधारी प्राणी के भीतर ही वतलायी है। इस शरीरस्थित सौरचक्र का भ्रमण आकाशस्थित सौर-मण्डल के नियमो के आधार पर ही होता है। ज्योतिषशास्त्र व्यक्त सौर-जगत् के ग्रहो की गति, स्थिति आदि के अनुसार अव्यक्त शरीर स्थित सौर-जगत् के ग्रहो की गति, स्थिति आदि को प्रकट करता है। इसी लिए इस शास्त्र-द्वारा निरूपित फलो का मानव जीवन से सम्बन्ध है।

प्राचीन भारतीय आचार्यों ने प्रयोगशालाओ के अभाव में भी अपने दिव्य योगवल-द्वारा आभ्यन्तर सौर-जगत् का पूर्ण दर्शन कर आकाशमण्डलीय सौर-जगत् के नियम निर्धारित किये थे, उन्होने अपने शरीरस्थित सूर्य की गति से ही आकाशीय सूर्य की गति निश्चित की थी। इसी कारण ज्योतिष के फलाफल का विवेचन आज भी विज्ञान-सम्मत माना जाता है।

भारतीय ज्योतिष का रहस्य

यद्यपि 'मानव-जीवन' और 'भारतीय ज्योतिष' इस प्रकरण से ही भारतीय ज्योतिष के रहस्य का आभास मिल जाता है, परन्तु तो भी इस विषय पर स्वतन्त्र विचार करना आवश्यक है। प्राय. समस्त भारतीय

विज्ञान का लक्ष्य एकमात्र अपनी आत्मा.का विकास कर उसे परमात्मा में मिला देना या तत्तुल्य बना लेना है। दर्शन या विज्ञान सभी का ध्येय विश्व की गूढ पहेली को सुलझाना है। ज्योतिष भी विज्ञान होने के कारण इस अखिल ब्रह्माण्ड के रहस्य को व्यक्त करने का प्रयत्न करता है।

यद्यपि आत्मा के स्वरूप का स्पष्टीकरण करना योग या दर्शन का विषय है, लेकिन ज्योतिषशास्त्र भी इस विषय मे अपने को अछूता नही रखता। भारत की प्रमुख विशेषता आत्मा की श्रेष्ठता है। इस प्रिय वस्तु की प्राप्ति के लिए सभी दार्शनिक या वैज्ञानिक अपने अनुभवो की थैली बिना खोले नही रह सकते। फलत दर्शन के समान ज्योतिष ने भी आत्मा के श्रवण, मनन और निदिध्यासन पर गणित के प्रतीकों-द्वारा जोर दिया है। यो तो स्पष्ट रूप से ज्योतिष में आत्मसाक्षात्कार के उक्त साधनो का कथन नही मिलेगा, लेकिन प्रतीको से उक्त विषय सहज में हृदयगम्य किये जा सकते हैं। प्राय देखा भी जाता है कि उत्कृष्ट आत्मज्ञानी ज्योतिष रहस्य का वेत्ता अवश्य होता है। प्राचीन या अर्वाचीन युग में दर्शन शास्त्र से अपरिचित व्यक्ति ज्योतिर्विद् के पद पर आसीन होने का अधिकारी नही माना गया है।

ज्योतिषशास्त्र का अन्य नाम ज्योति शास्त्र भी आता है, जिस का अर्थ प्रकाश देने वाला या प्रकाश के सम्बन्ध में बतलाने वाला शास्त्र होता है, अर्थात् जिस शास्त्र से संसार का मर्म, जीवन-मरण का रहस्य और जीवन के सुख-दु ख के सम्बन्ध में पूर्ण प्रकाश मिले वह ज्योतिषशास्त्र है। छान्दोग्य उपनिषद् में ब्रह्मा का वर्णन करते हुए बताया है कि, "मनुष्य का वर्तमान जीवन उन के पूर्व-सकल्पो और कामनाओं का परिणाम है तथा इस जीवन में वह जैसा संकल्प करता है, वैसा ही यहाँ से जाने पर बन जाता है। अत-एव पूर्ण प्राणमय, मनोमय, प्रकाशरूप एव समस्त कामनाओ और विषयो के अधिष्ठानभूत ब्रह्म का ध्यान करना चाहिए।"[1] इस से स्पष्ट है कि

१ मनोमय प्राणशरीरो-भारूप सत्यसकल्प आकाशात्मा सर्वकर्मा सर्वकाम

ज्योतिष के तत्वो के आधार पर वर्तमान जीवन का निर्माण कर प्रकाश-रूप—ज्योतिःस्वरूप ब्रह्म का सान्निध्य प्राप्त किया जा सकता है।

स्मरण रखने की बात यह है कि मानव जीवन नियमित सरल रेखा की गति से नही चलता, बल्कि इस पर विश्वजनीन कार्यकलापो के घात-प्रतिघात लगा करते हैं। सरल रेखा की गति से गमन करने पर जीवन की विशेषता भी चली जायेगी; क्योंकि जब तक जगत् के व्यापारों का प्रवाह जीवन रेखा को धक्का दे कर आगे नही बढ़ाता अथवा पीछे लौटा कर उस का ह्रास नही करता तबतक जीवन की दृढता प्रकट नही हो सकती। तात्पर्य यह है कि सुख और दु:ख के भाव ही मानव को गतिशील बनाते हैं, इन भावो की उत्पत्ति वाह्य और आन्तरिक जगत् की संवेदनाओ से होती है। इसी लिए मानव जीवन अनेक समस्याओ का सन्दोह और उन्नति-अवनति, आत्मविकास और ह्रास के विभिन्न रहस्यो का पिटारा है। ज्योतिषशास्त्र आत्मिक, अनात्मिक भावों और रहस्यो को व्यक्त करने के साथ-साथ उपर्युक्त सन्दोह और पिटारे का प्रत्यक्षीकरण कर देता है। भारतीय ज्योतिष का रहस्य इसी कारण अतिगूढ हो गया है। जीवन के आलोच्य सभी विषयों का इस शास्त्र का प्रतिपाद्य विषय बनना ही इस बात का साक्षी है कि यह जीवन का विश्लेषण करने वाला शास्त्र है।

भारतीय ज्योतिष शास्त्र के निर्माताओ के व्यावहारिक एवं पारमार्थिक ये दो लक्ष्य रहे हैं। प्रथम दृष्टि से इस शास्त्र का रहस्य गणना करना तथा दिक्, देश एवं काल के सम्बन्ध में मानव समाज को परिज्ञान कराना कहा जा सकता है। प्राकृतिक पदार्थों के अणु-अणु का परिशीलन एवं विश्लेषण करना भी इस शास्त्र का लक्ष्य है। सांसारिक समस्त व्यापार दिक्, देश और काल इन तीन के सम्बन्ध से ही परिचालित है, इन तीन के ज्ञान बिना व्यावहारिक जीवन की कोई भी क्रिया सम्यक् प्रकार सम्पादित नही

सर्वगन्ध सर्वरस, सर्वमिदमभ्यात्तोऽवाक्यनादर'।—छान्दो० ३।१४।

की जा सकती है। अतएव सुचारु रूप से दैनन्दिन कार्यों का संचालन करना ज्योतिष का व्यावहारिक उद्देश्य है। इस शास्त्र में काल—समय को पुरुष—ब्रह्म माना है और ग्रहो की रश्मियो के स्थितिवश इस पुरुष के उत्तम, मध्यम, उदासीन एवं अधम ये चार अंग विभाग किये है। त्रिगुणात्मक प्रकृति के द्वारा निर्मित समस्त जगत् सत्त्व, रज और तमोमय है। जिन ग्रहो में सत्त्व गुण अधिक रहता है उन की किरणें अमृतमय, जिन में रजोगुण अधिक रहता है उन की उभयगुण मिश्रित किरणें, जिन में तमोगुण अधिक रहता है उन की विषमय किरणें एव जिन में तीनों गुणो की अल्पता रहती है, उन को गुणहीन किरणें मानी गयी हैं। ग्रहो के शुभाशुभत्व का विभाजन भी इन किरणो के गुणो से ही हुआ है। आकाश में प्रतिक्षण अमृतरश्मि सौम्य ग्रह अपनी गति से जहाँ-जहाँ जाते है, उन की किरणें भूमण्डल के उन-उन प्रदेशो पर पड कर वहाँ के निवासियो के स्वास्थ्य, बुद्धि आदि पर अपना सौम्य प्रभाव डालती हैं। विषमय किरणो वाले क्रूर ग्रह अपनी गति से जहाँ गमन करते हैं, वहाँ वे अपने दुष्प्रभाव से वहाँ के निवासियो के स्वास्थ्य और बुद्धि पर अपना बुरा प्रभाव डालते हैं। मिश्रित रश्मि ग्रहों के प्रभाव मिश्रित एवं गुणहीन रश्मियो के ग्रहो का प्रभाव अकिंचित्कर होता है।

उत्पत्ति के समय जिन-जिन रश्मि वाले ग्रहो को प्रधानता होती है, जातक का स्वभाव वैसा ही वन जाता है। प्रसिद्धि भी है—

एते ग्रहा बलिष्ठा प्रसूतिकाले नृणां स्वमूर्तिसमम्।
कुर्युर्देहं नियत बहवश्च समागता मिश्रम्॥

अतएव स्पष्ट है कि संसार की प्रत्येक वस्तु आन्दोलित अवस्था में रहती है और हर वस्तु पर ग्रहो का प्रभाव पडता रहता है।

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एव शूद्र इन चारो वर्णों की उत्पत्ति भी ग्रहो के सम्बन्ध से ही होती है। जिन व्यक्तियो का जन्म कालपुरुष के उत्तमाग—अमृतमय रश्मियो के प्रभाव से होता है वे पूर्णबुद्धि, सत्यवादी, अप्रमादी, स्वाध्यायशील, जितेन्द्रिय, मनस्वी एवं सच्चरित्र होते है, अतएव

ब्राह्मण, जिन का जन्मकाल पुरुष के मध्यभाग—रजोगुणाधिक्य मिश्रित रश्मियों के प्रभाव से होता है वे मध्य बुद्धि, तेजस्वी, शूरवीर, प्रतापी, निर्भय, स्वाध्यायशील; साधु-अनुग्राहक एवं दुष्टनिग्राहक होते हैं, अतएव क्षत्रिय, जिन का जन्म उदासीन अंग—गुणत्रय की अल्पतावाली ग्रह-रश्मियों के प्रभाव से होता है वे उदासीन बुद्धि, व्यवसायकुशल पुरुषार्थी, स्वाध्यायरत एवं सम्पत्तिशाली होते है, अतएव वैश्य एव जिन का जन्म अधमाग—तमोगुणाधिक्य रश्मिवाले ग्रहो के प्रभाव से होता है वे विवेक-शून्य, दुर्बुद्धि, व्यसनी, सेवावृत्ति एव हीनाचरण वाले होते हैं अतएव शूद्र बताये गये हैं। ज्योतिष की यह वर्ण व्यवस्था वशपरम्परा से आगत वर्ण-व्यवस्था से भिन्न है, क्योकि हीन वर्ण में भी जन्मा व्यक्ति ग्रहो की रश्मियो के प्रभाव से उच्चवर्ण का हो सकता है।

भारतीय ज्योतिर्विदो का अभिमत है कि मानव जिस नक्षत्र-ग्रह-वातावरण के तत्त्व प्रभाव विशेष में उत्पन्न एवं पोषित होता है, उस में उसी तत्त्व की विशेपता रहती है। ग्रहो की स्थिति की विलक्षणता के कारण अन्य तत्त्वो का न्यूनाधिक प्रभाव होता है। देशकृत ग्रहो का संस्कार इस बात का द्योतक है कि स्थान-विशेष के वातावरण में उत्पन्न एव पुष्ट होने वाला प्राणी उस स्थान पर पडने वाली ग्रह-रश्मियो की अपनी निजी विशेपता के कारण अन्य स्थान पर उसी क्षण जन्मे व्यक्ति की अपेक्षा भिन्न स्वभाव, भिन्न आकृति एव विलक्षण शरीरावयव वाला होता है। ग्रह-रश्मियो का प्रभाव केवल मानव पर ही नही, बल्कि वन्य, स्थलज एवं उद्भिज्ज आदि पर भी अवश्य पडता है। ज्योतिषशास्त्र मे मुहूर्त—समय-विधान की जो मर्म-प्रधान व्यवस्था है, उस का रहस्य इतना ही है कि गगनगामी ग्रह-नक्षत्रो की अमृत, विष एवं उभय गुण वाली रश्मियो का प्रभाव सदा एक-सा नही रहता। गति की विलक्षणता के कारण किसी समय में ऐसे नक्षत्र या ग्रहो का वातावरण रहता है, जो अपने गुण और तत्त्वो की विशेषता के कारण किसी विशेष कार्य की सिद्धि के लिए ही उपयुक्त हो सकते है।

अतएव विभिन्न कार्यों के लिए मुहूर्तशोधन अन्धश्रद्धा या विश्वास की चीज नही हैं, किन्तु विज्ञान-सम्मत रहस्यपूर्ण है। हां, कुशल परीक्षक के अभाव में इन चीजो की परिणाम-विषमता दिखलाई पड सकती है।

ग्रहों के अनिष्ट प्रभाव को दूर करने के लिए जो रत्न धारण करने की परिपाटी ज्योतिषशास्त्र में प्रचलित है, निरर्थक नही है। इस के पीछे भी विज्ञान का रहस्य छिपा है। प्राय सभी लोग इस बात से परिचित है कि सौरमण्डलीय वातावरण का प्रभाव पाषाणों के रंग-रूप, आकार-प्रकार, एव पृथिवी, जल, अग्नि आदि तत्त्वो में से किसी तत्त्व की प्रधानता पर पडता है। समगुणवाली रश्मियो के ग्रहो से पुष्ट और संचालित व्यक्ति को वैसी ही रश्मियो के वातावरण मे उत्पन्न रत्न धारण कराया जाये तो वह उचित परिणाम देता है। प्रतिकूल प्रभाव के मानव को विपरीत स्वभावोत्पन्न रत्न धारण करा दिया जाये तो वह उस के लिए विषम हो जायेगा। स्वभावानुरूप रश्मि प्रभाव परीक्षण के पश्चात् तात्त्विक साम्य हो जाने पर रत्न सहज में लाभप्रद हो सकता है।

तात्पर्य यह है कि ग्रहो के जिन तत्त्वो के प्रभाव से रत्न-विशेष प्रभावित है, उस का प्रयोग उस ग्रह के तत्त्व के अभाव में उत्पन्न मनुष्य पर किया जाये तो वह अवश्य ही उस व्यक्ति को उचित शक्ति देने वाला होगा। कृष्णपक्ष में उत्पन्न जिन व्यक्तियो को चन्द्रमा का अरिष्ट होता है अर्थात् जिन्हें चन्द्रबल या चन्द्रमा की अमृत रश्मियो की शक्ति उपलब्ध नही होती है, उन के शरीर में केल्शियम—चूने की अल्पता रहती है। ऐसी अवस्था में उक्त कमी को पूरा करने के लिए चन्द्रप्रभावजन्य मौक्तिक मणि का प्रयोग लाभकारी होता है। ज्योतिषी चन्द्रमा के कष्ट से पीडित व्यक्ति को इसी कारण मुक्ताधारण करने का निर्देश करते हैं। अनुभवी ज्योतिर्विद् ग्रहों की गति से ही शारीरिक और मानसिक विकारो का अनुमान कर लेते हैं। अतएव सिद्ध है कि ग्रहो की रश्मियो का प्रभाव संसार के समस्त पदार्थों पर पडता है, ज्योतिषशास्त्र इस प्रभाव का विश्लेषण करता है।

भारतीय ज्योतिष के लौकिक पक्ष में एक रहस्यपूर्ण बात यह है कि ग्रह फलाफल के नियामक नही हैं, किन्तु सूचक हैं। अर्थात् ग्रह किसी को सुख-दु.ख नही देते, वल्कि आनेवाले सुख-दु ख की सूचना देते हैं। यद्यपि यह पहले कहा गया है कि ग्रहो की रश्मियो का प्रभाव पड़ता है, पर यहाँ इस का सदा स्मरण रखना होगा कि विपरीत वातावरण के होने पर रश्मियो के प्रभाव को अन्यथा भी सिद्ध किया जा सकता है। जैसे अग्नि का स्वभाव जलाने का है, पर जब चन्द्रकान्तमणि हाथ में ले ली जाती है, तो वही अग्नि जलाने के कार्य को नही करती, उस की दाहक शक्ति चन्द्र-कान्त के प्रभाव से क्षीण हो जाती है। इसी प्रकार ग्रहो की रश्मियो के अनुकूल और प्रतिकूल वातावरण का प्रभाव अनुकूल या प्रतिकूल रूप से अवश्य पडता है। आज के कृत्रिम जीवन में ग्रह-रश्मियाँ अपना प्रभाव डालने में प्राय असमर्थ रहती हैं। भारतीय दर्शन या अध्यात्मशास्त्र का यह सिद्धान्त भी उपेक्षणीय नही कि अर्जित संस्कार ही प्राणी के सुख-दु ख, जीवन-मरण, विकास-ह्रास, उन्नति-अवनति प्रभृति के कारण है। संस्कारो का अर्जन सर्वदा होता रहता है। पूर्व संचित संस्कारो को वर्तमान सचित संस्कारो से प्रभावित होना पडता है।

अभिप्राय यह है कि मनुष्य अपने पूर्वोपार्जित अदृष्ट के साथ-साथ वर्तमान में जो अच्छे या वुरे कार्य कर रहा है, उन कार्यों का प्रभाव उस के पूर्वोपार्जित अदृष्ट पर अवश्य पडता है। हाँ, कुछ कर्म ऐसे भी मजवूत हो सकते हैं जिन के ऊपर इस जन्म में किये गये कृत्यों का प्रभाव नही भी पडता है। उदाहरण के लिए एक कोष्ठवद्धता के रोगी को लिया जा सकता है। परीक्षा के वाद इस रोगी से डॉक्टर ने कहा कि तुम्हारी कोष्ठवद्धता १० दिन के उपवास करने पर ही ठीक हो सकती है। यदि इस रोगी को उपवास न कराके विरेचन की दवा दे दी जाये तो वह दूसरे दिन ही मल के निकल जाने पर तन्दुरुस्त हो जाता है। इसी प्रकार पूर्वोपार्जित कर्मों की स्थिति और उन की शक्ति को इस जन्म के कृत्यो के द्वारा सुधारा जा सकता है।

अतएव ज्योतिष का प्रधान उपयोग यही है कि ग्रहो के स्वभाव और गुणों द्वारा अन्वय, व्यतिरेक रूप कार्य-कारणजन्य अनुमान से अपने भावी सुख-दु ख प्रभृति को पहले से अवगत कर अपने कार्यों में सजग रहना चाहिए, जिस से आगामी दु ख को सुखरूप में परिणत किया जा सके। यदि ग्रहो का फल अनिवार्य रूप से भोगना ही पडे, पुरुपार्थ को व्यर्थ मानें तो फिर इस जीवन को कभी मुक्तिलाभ हो ही नही सकेगा। मेरी तो दृढ धारणा है कि जहाँ पुरुपार्थ प्रवल होता है, वहाँ अदृष्ट को टाला जा सकता है अथवा न्यून रूप में किया जा सकता है। कही-कही पुरुषार्थ अदृष्ट को पुष्ट करने वाला भी होता है। लेकिन जहाँ अदृष्ट अत्यन्त प्रवल होता है और पुरुषार्थ न्यून रूप में किया जाता है, वहाँ अदृष्ट की अपेक्षा पुरुषार्थहीन पड जाने के कारण अदृष्टजन्य फलाफल अवश्य भोगने पडते है। अतएव यह निश्चित है कि शास्त्र केवल आगामी शुभाशुभो की सूचना देने वाला है, क्योकि ग्रहो की गति के कारण उन की विप एवं अमृत रश्मियो की सूचना मिल जाती है। इस सूचना का यदि सदुपयोग किया जाये तो फिर ग्रहो के फलो का परिवर्तन करना कैसे असम्भव माना जा सकेगा? इसलिए यह ध्रुव सत्य है कि ज्योतिप सूचक शास्त्र है विघायक नही। लौकिक दृष्टि से इस शास्त्र का सव से वडा यही रहस्य है।

भारतीय ज्योतिप के रहस्य को यदि एक शब्द में व्यक्त किया जाये तो यही कहा जायेगा कि चिरन्तन और जीवन से सम्बद्ध सत्य का विश्लेषण करना ही इस शास्त्र का आभ्यन्तरिक मर्म है। संसार के समस्त शास्त्र जगत् के एक-एक अंश का निरूपण करते है, पर ज्योतिष आन्तरिक एवं वाह्य जगत् से सम्बद्ध समस्त ज्ञेयो का प्रतिपादन करता है। इस का सत्य दर्शन के समान जीव और ईश्वर से ही सम्बद्ध नही है, किन्तु उस से आगे का भाग है। दार्शनिको ने निरंश परमाणु को मान कर अपनी चर्चा का वही अन्त कर दिया, पर ज्योतिर्विदो ने इस निरंश को भी गणित-द्वारा सांश सिद्ध कर अपनी सूक्ष्मता का परिचय दिया है। कमलाकर भट्ट ने

दार्शनिको द्वारा अभिमत निरंश परमाणु पद्धति का जोरदार खण्डन कर सत्य को कल्पना से परे की वस्तु बतलाया है। यद्यपि ज्योतिष का सत्य जीवन और जगत् से सम्बद्ध है, किन्तु अतीन्द्रिय है।

इन्द्रियों-द्वारा होने वाला ज्ञान अपूर्ण होने के कारण कदाचित् ज्ञानान्तर से बाधित हो सकता है। कारण स्पष्ट है कि इन्द्रियज्ञान अव्यवहित ज्ञान नही है, इसी से इन्द्रियानुभूति में भेद का होना सम्भव है। ज्योतिष का ज्ञान आगम ज्ञान होते हुए भी अतीन्द्रिय ज्ञान के तुल्य सत्य के निकट पहुँचाने वाला है। इस के द्वारा मन की विविध प्रवृत्तियो का विश्लेषण जीवन की अनेक समस्याओ के समाधान को करता है। चित्तविश्लेषण शास्त्र फलित ज्योतिष का एक भेद है। फलितांग जहाँ अनेक जीवन के तत्त्वो की व्याख्या करता है, वहाँ मानसिक वृत्तियो का विश्लेषण भी। यद्यपि यह विश्लेपण साहित्य और मनोविज्ञान के विश्लेपण से भिन्न होता है, पर इस के द्वारा मानव जीवन के अनेक रहस्यो एव भेदो को अवगत किया जा सकता है।

मानव के समक्ष जहाँ दर्शन नैराश्यवाद की धूमिल रेखा अंकित करता है, वहाँ ज्योतिप कर्त्तव्य के क्षेत्र मे ला उपस्थित करता है। भविष्य को अवगत कर अपने कर्त्तव्यो-द्वारा उसे अपने अनुकूल बनाने के लिए ज्योतिष प्रेरणा करता है। यही प्रेरणा प्राणियो के लिए दु खविघातक और पुरुपार्थसाधक होती है।

पारमार्थिक दृष्टि से परिशीलन करने पर भारतीय ज्योतिप का रहस्य परम ब्रह्म को प्राप्त करना है। यद्यपि ज्योतिष तर्कशास्त्र है, इस का प्रत्येक सिद्धान्त सहेतुक बताया गया है, पर तो भी इस की नीव पर विचार करने से ज्ञात होता है कि इस की समस्त क्रियाएँ विन्दु-शून्य के आधार पर चलती हैं, जो कि निर्गुण निराकार ब्रह्म का प्रतीक है। विन्दु दैर्घ्य और विस्तार से रहित अस्तित्व वाला माना गया है। यद्यपि परिभाषा की दृष्टि से स्थूल है, पर वास्तव में वह अत्यन्त सूक्ष्म, कल्पनातीत, निराकार वस्तु है।

केवल व्यवहार चलाने के लिए हम उसे कागज या स्लेट पर अंकित कर लेते हैं। आगे चल कर यही विन्दु गतिशील होता हुआ रेखा-रूप में परिवर्तित होता है अर्थात् जिस प्रकार ब्रह्म से 'एकोऽहं बहु स्याम' कामना रूप उपाधि के कारण माया का आविर्भाव हुआ है, उसी प्रकार विन्दु से एक गुण—दैर्घ्य वाली रेखा उत्पन्न हुई है। अभिप्राय यह है कि भारतीय ज्योतिष में विन्दु ब्रह्म का प्रतीक और रेखा माया का प्रतीक है। इन दोनों के संयोग से ही क्षेत्रात्मक, वीजात्मक एवं अंकात्मक गणित का निर्माण हुआ है। भारतीय ज्योतिष का प्राण यही गणितशास्त्र है।

अनेक भारतीय दार्शनिकों ने रेखागणित और वीजगणित की क्रियाओं का दार्शनिक दृष्टि से विश्लेषण किया है। वीजगणित के समीकरण सिद्धान्त में अलीकमिश्रण की व्याख्या करते हुए कहा गया है कि अध्यारोप और अपवाद विधि से ब्रह्म के स्वरूप को—अध्यारोप निष्प्रपंच ब्रह्म में जगत् का आरोप कर देना है और अपवाद विधि से आरोपित वस्तु का पृथक्-पृथक् निराकरण करना होता है, इसी से उस के स्वरूप को ज्ञात कर सकते हैं। तात्पर्य यह है कि प्रथमतः आत्मा के ऊपर शरीर का आरोप कर दिया जाता है, पश्चात् साधना-द्वारा आत्मा को अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय और आनन्दमय इन पंचकोशों एवं स्थूल और सूक्ष्म कारण शरीरों से पृथक् कर उस आत्मा का ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। उदाहरण— $क^२ + २क = ३५$, यहाँ अज्ञात राशि का मूल्य निकालने के लिए दोनों में और कुछ जोड़ दिया जाये तो अज्ञात राशि का मूल्य ज्ञात हो जायेगा। अतएव यहाँ एक संख्या जोड दी तो—$क^२ + २क + १ = ३५ + १ = (क + १)^२ = (६)$ ∴ $क + १ = ६$ ∴ $(क + १) - १ = ६ - १$ ∴ $क = ५$, इस उदाहरण में पहले जो एक जोडा गया था, अन्त में उसी को निकाल दिया। इसी प्रकार जिस शरीर का आत्मा के ऊपर आरोप किया गया था, अपवाद-द्वारा उसी शरीर को पृथक् कर दिया जाता है। इसी प्रकार दर्शन के प्रकाश में वीजगणित के

सारे सिद्धान्त आध्यात्मिक दिखलाई पड़ेंगे ।

श्रद्धेय डॉ० भगवानदास जी ने[1] रेखागणित की प्रथम प्रतिज्ञा का विश्लेषण करते हुए कहा है कि यहाँ दो वृत्तों का आपस में जो सम्बन्ध बताया गया है, वह असीम, अनादि, अनन्त पुरुष और प्रकृति के अभेद्य सम्बन्ध का द्योतक है । लेकिन यहाँ अभेद्य सम्बन्ध ऐसा है जिस से इन का पृथक् होना भी सिद्ध है । इन के बीच रहने वाला त्रिभुज मन, इन्द्रिय और शरीर अथवा सत्त्व, रजस् और तमोगुण से विशिष्ट प्राणी का प्रतीक है । इसी कारण डॉक्टर सा० ने लिखा है कि "मैथेमैटिक्स—गणित का सच्चा रहस्य भी तभी खुलेगा जब वह गुप्त-लुप्त अश के प्रकाश में जाँची और जानी जायेगी ।"

ज्योतिषशास्त्र में प्रधान ग्रह सूर्य और चन्द्र माने गये हैं । सूर्य को पुरुष और चन्द्रमा को स्त्री अर्थात् पुरुष और प्रकृति के रूप में इन दोनों ग्रहों को माना है । पाँच तत्त्व रूप भौम, बुध, गुरु, शुक्र एवं शनि बताये गये हैं । इन प्रकृति, पुरुष और तत्त्वों के सम्बन्ध से ही सारा ज्योतिश्चक्र भ्रमण करता है अतएव संक्षेप में ही कहा जा सकता है कि पारमार्थिक दृष्टि से भारतीय ज्योतिषशास्त्र अध्यात्मशास्त्र है ।

ज्योतिष की उपयोगिता

मनुष्य के समस्त कार्य ज्योतिष के द्वारा ही चलते हैं । व्यवहार के लिए अत्यन्त उपयोगी दिन, सप्ताह, पक्ष, मास, अयन, ऋतु, वर्ष एवं उत्सव-तिथि आदि का परिज्ञान इसी शास्त्र से होता है । यदि मानव समाज को इस का ज्ञान न हो तो धार्मिक उत्सव, सामाजिक त्यौहार, महापुरुषों के जन्मदिन, अपनी प्राचीन-गौरव-गाथा का इतिहास प्रभृति किसी भी बात का ठीक-ठीक पता न लग सकेगा और न कोई उचित कृत्य ही यथा-समय सम्पन्न किया जा सकेगा । शिक्षित या सभ्य समाज की तो बात ही

१, देखें, दर्शन का प्रयोजन ' पृ० ७१ ।

क्या, भारतीय अपढ़ कृषक भी व्यवहारोपयोगी ज्योतिष ज्ञान से परिचित है; वह भलीभांति जानता है कि किस नक्षत्र में वर्षा अच्छी होती है, अतः कब बोना चाहिए जिस से फसल अच्छी हो। यदि कृषक ज्योतिषशास्त्र के उपयोगी तत्त्वों को न जानता तो उस का अधिकांश श्रम निष्फल जाता।

कुछ महानुभाव यह तर्क उपस्थित कर सकते हैं कि आज के वैज्ञानिक युग में कृषिशास्त्र के मर्मज्ञ असमय में ही आवश्यकतानुसार वर्षा का आयोजन या निवारण कर कृषि कर्म को सम्पन्न कर लेते हैं; इस दशा में कृषक के लिए ज्योतिष ज्ञान की आवश्यकता नहीं। पर उन्हें यह भूलना न चाहिए कि आज का विज्ञान भी प्राचीन ज्योतिष का एक लघु शिष्य है। ज्योतिषशास्त्र के तत्त्वों से पूर्णतया परिचित हुए बिना विज्ञान भी असमय में वर्षा का आयोजन और निवारण नहीं कर सकता है। वास्तविक बात यह है कि चन्द्रमा जिस समय जलचर राशि और जलचर नक्षत्रों पर रहता है, उसी समय वर्षा होती है। वैज्ञानिक प्रकृति के रहस्य को ज्ञात कर जब चन्द्रमा जलचर नक्षत्रों का भोग करता है, वृष्टि का आयोजन कर लेता है। वाराही-संहिता में भी कुछ ऐसे सिद्धान्त आये हैं जिन के द्वारा जलचर चान्द्र नक्षत्रों के दिनों में वर्षा का आयोजन किया जा सकता है। प्राचीन मन्त्रशास्त्र में जो वृष्टि के आयोजन और निवारण की प्रक्रिया बतायी गयी है, उस में जलचर नक्षत्रों को आलोडित करने का विधान है। सारांश यह है कि वैज्ञानिक जलचर चन्द्रमा के तत्त्वों को ज्ञात कर जलचर नक्षत्रों के दिनों में उन तत्त्वों का संयोजन कर असमय में वृष्टि कार्य को कर लेता है। इसी प्रकार वृष्टि का निवारण जलचर चन्द्रमा के जलीय परमाणुओं के विघटन-द्वारा सम्पन्न किया जा सकता है। प्राचीन ज्योतिष के अनन्यतम अंग संहिताशास्त्र में इस प्रकार की चर्चाएँ भी आयी हैं। भद्रबाहु संहिता के शुक्रचार अध्याय में शुक्र की गति के अध्ययन-द्वारा वृष्टि का निवारण किया गया है। अतएव यह मानना पड़ेगा कि ज्योतिष तत्त्वों की जानकारी के बिना कृषिकर्म सम्यक्तया सम्पन्न करना सम्भव नहीं।

जहाज के कप्तान को ज्योतिष की नित्य बड़ी आवश्यकता होती है; क्योंकि वे ज्योतिष के द्वारा ही समुद्र में जहाज की स्थिति का पता लगाते हैं। घड़ी के अभाव में सूर्य, चन्द्र, नक्षत्रों के पिण्डों को देख कर आसानी से समय का पता लगाया जा सकता है। ज्योतिष-ज्ञान के अभाव में लम्बी यात्रा तय करना निरापद नहीं है, क्योंकि ज्योतिष-ज्ञान के द्वारा ही नये देशों और रेगिस्तानों में रास्ता निकाला जा सकता है तथा अक्षांश और देशान्तर के द्वारा उस स्थान की स्थिति और उस की दिशा आदि का निर्णय किया जाता है। जहाँ की सीमा पैमायश-द्वारा निश्चित नहीं की जा सकती है, वहाँ ज्योतिष के द्वारा प्रतिपादित अक्षांश और देशान्तर के आधार पर सीमाएँ निश्चित की गयी हैं। भूगोल का अध्ययन तो इस शास्त्र के ज्ञान के बिना अधूरा ही समझा जायेगा।

अन्वेषण कार्य को सम्पन्न करना भी ज्योतिष-ज्ञान के बिना सम्भव नहीं। आज तक जितने भी नवीन अन्वेषक हुए हैं वे या तो स्वयं ज्योतिषी होते थे अथवा अपने साथ किसी ज्योतिषी को रखते थे। एक बार अमेरिका के एक विद्वान् ने कहा था कि ग्रह-नक्षत्रों के ज्ञान के बिना नवीन देश का पता लगाना सम्भव नहीं। जहाँ आधुनिक वैज्ञानिक यन्त्र कार्य नहीं करते, अधिक गरमी या सर्दी के कारण उन की शक्ति क्षीण हो जाती है, वहाँ चन्द्र-सूर्यादि ग्रह-नक्षत्रों के ज्ञान द्वारा दिक्, देश का बोध सरलतापूर्वक किया जा सकता है।

किसी उच्चतम पहाड़ की ऊँचाई और अति गम्भीर नदी की गहराई का ज्ञान ज्योतिषशास्त्र के द्वारा किया जा सकता है। शायद यहाँ यह शंका की जाये कि पहाड़ की ऊँचाई और नदी की गहराई का ज्ञान रेखागणित के द्वारा किया जाता है, ज्योतिष के द्वारा नहीं; पर गम्भीरता से विचार करने पर मालूम हो जायेगा कि रेखागणित ज्योतिष का अभिन्न अंग है। प्राचीन ज्योतिर्विदों ने रेखागणित के मुख्य सिद्धान्तों का निरूपण ईसवी सन् ५वीं और ६ठी शताब्दी में ही कर दिया है।

इतिहास को भी ज्योतिष ने बडी सहायता पहुँचायी है। जिन बातो की तिथि का पता अन्य साधनो के द्वारा नहीं लग सकता है, ज्योतिष के द्वारा सहज में ही लगाया जा सकता है। यदि ज्योतिषशास्त्र का ज्ञान नही होता तो वेद की प्राचीनता कदापि सिद्ध नही की जा सकती थी। श्रद्धेय लोकमान्य तिलक ने वेदो में प्रतिपादित नक्षत्र, अयन और ऋतु आदि के आधार पर ही वेदो का समय निर्धारित किया है। सूर्य और चन्द्र ग्रहणो के आधार पर अनेक प्राचीन ऐतिहासिक तिथियाँ क्रम-बद्ध की जा सकती हैं।

भूगर्भ से प्राप्त विभिन्न वस्तुओ का काल ज्योतिषशास्त्र के द्वारा जितनी सरलता और प्रामाणिकता के साथ निश्चित किया जा सकता है, उतना अन्य शास्त्रो के द्वारा नही। एक बार श्री गौरीशकर हीराचन्द्र ओझा ने बताया था कि पुरातत्त्व की वस्तुओ के यथार्थ समय को जानने के लिए ज्योतिष ज्ञान की आवश्यकता है।

सृष्टि के रहस्य का पता भी ज्योतिष से ही लगता है। प्राचीन काल से ही भारतवर्ष में सृष्टि के रहस्य की छान-बीन करने के लिए ज्योतिषशास्त्र का उपयोग किया जा रहा है। इसी कारण सिद्धान्त ज्योतिष के ग्रन्थो में सृष्टि का विवेचन अवश्य रहता है। प्रकृति के अणु-अणु का रहस्य ज्योतिष मे बताया गया है जिस से प्रत्येक व्यक्ति सृष्टि के रहस्य को ज्ञात कर अपने कार्यों का सम्पादन कर सकता है। जड-चेतन सभी पदार्थो की आयु, आकार-प्रकार, उपयोगिता एवं उन के भेद-प्रभेद का जितना सुन्दर विज्ञानसम्मत कथन इस शास्त्र में रहता है उतना अन्य में नही।

आयुर्वेद तो ज्योतिष का चचेरा भाई है। ज्योतिषज्ञान के बिना ओषधियो का निर्माण यथासमय सम्पन्न नही किया जा सकता। कारण स्पष्ट है कि ग्रहो के तत्त्व और स्वभाव को ज्ञात कर उन्ही के अनुसार उसी तत्त्व और स्वभाव वाली दवा का निर्माण करने से वह दवा विशेष गुणकारी होती है। जो भिषक् इस शास्त्र के ज्ञान से अपरिचित रहते हैं वे सुन्दर और अपूर्व गुणकारी दवाओ का निर्माण नही कर सकते।

एक अन्य बात यह है कि इस शास्त्र के ज्ञान-द्वारा रोगी की चर्या और चेष्टा को अवगत कर बहुत कुछ अंशो मे रोग की मर्यादा जानी जा सकती है। संवेगरंगशाला नामक ज्योतिष ग्रन्थ मे रोगी की रोग-मर्यादा जानने के अनेक नियम आये है। अतएव जो चिकित्सक आवश्यक ज्योतिष तत्त्वो को जान कर चिकित्सा कर्म को सम्पन्न करता है, वह अपने इस कार्य में अधिक सफल होता है।

साधारण व्यक्ति भी इस शास्त्र के सम्यक् ज्ञान से अनेक रोगो से बच सकते है; क्योकि अधिकाश रोग सूर्य और चन्द्रमा के विशेष प्रभावो से उत्पन्न होते हैं। फायलेरिया रोग चन्द्रमा के प्रभाव के कारण ही एकादशी और अमावस्या को बढता है। ज्योतिर्विदो का अनुमान है कि जिस प्रकार चन्द्रमा समुद्र के जल में उथल-पुथल मचा डालता है उसी प्रकार शरीर के रुधिर-प्रवाह में भी अपना प्रभाव डाल कर निर्बल मनुष्यो को रोगी बना डालता है। अतएव ज्योतिष-द्वारा चन्द्रमा के तत्त्वो को अवगत कर एकादशी और अमावस्या को वैसे तत्त्वो वाले पदार्थों के सेवन से बचने पर फायलेरिया रोग छूट जाता है तथा निर्बल मनुष्य रोगो के आक्रमण से अपनी रक्षा कर सकता है।

इस शास्त्र की सब से बडी उपयोगिता यही है कि यह समस्त मानव-जीवन के प्रत्यक्ष और परोक्ष रहस्यो का विवेचन करता है और प्रतीको-द्वारा समस्त जीवन को प्रत्यक्ष रूप में उस प्रकार प्रकट करता है जिस प्रकार दीपक अन्धकार में रखी हुई वस्तु को दिखलाता है। मानव का व्यावहारिक कोई भी कार्य इस शास्त्र के ज्ञान बिना नही चल सकता है।

भारतीय-ज्योतिष का कालवर्गीकरण

किसी भी शास्त्र या विज्ञान का सम्यक् अध्ययन करने के लिए उस का इतिहास जानना आवश्यक होता है, क्योकि उस शास्त्र के इतिहास-द्वारा तद्विषयक रहस्य समझ में आ जाता है। ज्योतिषशास्त्र सृष्टि और प्रकृति

के रहस्य को व्यक्त करने वाला है। मानव प्रकृति की पाठशाला में सदा से इस शास्त्र का अध्ययन करता चला आ रहा है, अत इस शास्त्र के उद्‌भव स्थान और काल का निश्चित रूप से पता लगाना ज़रा टेढी खीर है। चाहे अन्य ज्ञानो की निर्झरिणी के आदि स्रोत का पता लगाना सम्भव हो, पर प्रकृति के अनन्यतम अंग इस शास्त्र का छोर-पैंड ढूँढना मानव शक्ति से परे की बात है। अथवा दूसरे शब्दो में यह भी कहा जा सकता है कि जिस दिन से मानव ने होश सँभाला उसी दिन से उस ने ज्योतिष के आवश्यक तत्त्वो का अध्ययन करना शुरू कर दिया। भले ही वह इन तत्त्वो को अभिव्यक्त करने की योग्यता के अभाव में दूसरों को न बता सका हो, पर उस का जीवननिर्वाह इन तत्त्वो के बिना हो नहो सकता था, फलत. मानव जीवन के विकास के साथ-साथ ज्योतिष का भी विकास हुआ।

कालवर्गीकरण की दृष्टि से इस शास्त्र के इतिहास को निम्न युगो में विभक्त किया जा सकता है—

अन्धकारकाल—ई० पू० १०००० वर्ष के पहले का समय
उदयकाल—ई० पू० १००००—ई० पू० ५०० तक
आदिकाल—ई० पू० ४९९—ई० ५०० तक
पूर्वमध्यकाल—ई० ५०१—ई० १००० तक
उत्तरमध्यकाल—ई० १००१—ई० १६०० तक
आधुनिककाल—ई० १६०१—ई० १९४६ तक

उपर्युक्त कालों का वर्गीकरण ज्योतिषशास्त्र के विकास के आधार पर किया गया है। यो तो भारतीय सस्कृति के इतिहास को भी उपर्युक्त वर्गो में विभक्त किया जाता है, लेकिन यहाँ पर ज्योतिष को अनादिनिघन मानते हुए भी अभिव्यजन प्रणाली के विकास पर ही मुख्य दृष्टि रखी गयी है।

अन्धकारकाल (ई० पू० १०००० के पहले का समय)

यह पहले ही कहा जा चुका है कि ज्योतिषशास्त्र के जन्म का पता

लगाना शक्तिगम्य नही है। यह मानव सृष्टि के समान अनादि है। ज्योतिष का सिद्धान्त है कि एक कल्पकाल में ४३२००००००० वर्ष होते हैं, सृष्टि आरम्भ होते ही सभी ग्रह अपनी-अपनी कक्षा में नियमित रूप से भ्रमण करने लगते हैं। मानव सुदूर प्राचीन काल में सृष्टि के अनन्तर बहुत समय तक लिपि रूप भाषा शक्ति से रहित था। वह अपना काम चलाने के लिए केवल संकेतात्मक भाषा का ही प्रयोग करता था। विकासवाद बतलाता है कि आरम्भ में मनुष्य केवल नाद कर सकता था, इसी अस्पष्ट नाद-द्वारा अपने सुख-दुःख, हर्ष-पीडा आदि भाव प्रदर्शित करता था। जब अनुभव और अनुमान ने परस्पर एक दूसरे की सहायता कर मानव जाति की विकसित परम्परा क़ायम कर दी तो सम्भाषण-शक्ति का आविर्भाव हुआ। नाद को निरन्तर उच्चारित कर विभिन्न भावो, विचारों और उन के भेदो को क्रमश. प्रदर्शित करने की चेष्टा की गयी। ज्ञानाभ्युदय के साथ-साथ नाद शक्ति भी वृद्धिगत होने लगी और धीरे-धीरे भावो के साथ इगित, चेष्टा और व्यक्तनाद का आरम्भ हुआ। इसी बीच में अनुकरण की मात्रा ने प्रकृति प्रदत्त भाव और विचारो के विनिमय में पर्याप्त योग दिया, जिस से मानव ने आज के समान सम्भाषण की योग्यता प्राप्त की।

यहाँ इतना और स्मरण रखना होगा कि सम्भाषण की भाषा के आविर्भूत होने पर लिपि की भाषा अभी प्राचीन मानव को अज्ञात थी। इस समय उस के सारे कार्य मौलिक ही चलते थे। वेद शब्द का अर्थ जो 'श्रुत' किया गया है वह भी इस बात का द्योतक है कि प्राचीन मानव का समस्त ज्ञान-भाण्डार मुखाग्र था, उस में उस के लिपिबद्ध करने की क्षमता नही थी।

मानव की स्वाभाविक प्रवृत्तियो का विश्लेषण करने पर अवगत होगा कि 'क्यो' और 'कैसे' ये दो जिज्ञासाएँ उस की प्रधान हैं। वह प्रत्येक वस्तु के आदि कारण की खोज करता है और उस के सम्बन्ध में सभी अद्भुत बातो को जानने के लिए लालायित रहता है। जब तक उस की यह ज्ञान-पिपासा शान्त नही होती उसे चैन नही पड़ता। फलतः आदि मानव के

मस्तिष्क में भी यत्किंचित् विकास के अनन्तर ही समय, दिशा और स्थान जिन के बिना उस का काम चलना कठिन ही नही, बल्कि असम्भव था; के सम्बन्ध में क्यो और कैसे ये प्रश्न अवश्य उत्पन्न हुए होगे तथा इन प्रश्नो के उत्तर पाने की भी उस ने चेष्टा की होगी। यह निश्चित है कि किसी भी प्रकार के ज्ञान का स्रोत समय, दिशा और स्थान के ज्ञान के बिना प्रवाहित नही हो सकता है। इसलिए उक्त तीनो विषयो का ज्ञान ज्योतिष के द्वारा सम्पन्न होने पर ही अन्य विषयो का ज्ञान मानव को हुआ होगा।

भारत की अपनी निजी विशेषता आध्यात्मिक ज्ञान की है और इस का सम्पादन योग-क्रिया-द्वारा प्राचीन काल से होता चला आ रहा है। इस सिद्धान्त के अनुसार महाकुण्डलिनी नाम की शक्ति समस्त सृष्टि में परिव्याप्त रहती है और व्यक्ति मे यही शक्ति कुण्डलिनी के रूप मे व्यक्त होती है। इस का विश्लेषण इस प्रकार समझना चाहिए कि पीठ में स्थित मेरुदण्ड सीधे जहाँ जा कर पायु और उपस्थ के मध्य भाग में लगता है, वहाँ त्रिकोण चक्र में स्वयम्भू लिंगस्थित है। इस चक्र का अन्य नाम अग्निचक्र भी बताया गया है। इस स्वयम्भू लिंग को साढे तीन वलयो में लपेटे सर्प की तरह कुण्डलिनी अवस्थित है। इस के अनन्तर मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत, विशुद्धाख्य और आज्ञा ये षट्चक्र क्रमश ऊपर-ऊपर स्थित है। इन चक्रों को भेद करने के बाद मस्तक में शून्यचक्र है, जहाँ जीवात्मा को पहुँचा देना योगी का चरम लक्ष्य होता है, इस स्थान पर सहस्रारचक्र होता है। प्राणवायु को वहन करने वाली मेरुदण्ड से सम्बद्ध इडा, पिंगला और सुषुम्ना ये तीन नाडियाँ है। इन में इडा और पिंगला को सूर्य और चन्द्र भी कहा गया है। सुषुम्ना के भीतर वज्रा, चित्रिणी और ब्रह्मा ये तीन नाडियाँ कुण्डलिनी शक्ति का वास्तविक मार्ग है। साधक नाना प्रकार की साधनाओ-द्वारा कुण्डलिनी शक्ति को उद्बुद्ध कर स्फोट—नाद करता है। इस नाद से सूर्य, चन्द्र और अग्नि रूप प्रकाश होता है। इस प्रकार योगी लोग व्यक्ति के अन्दर रहने वाली कुण्डलिनी को महाकुण्डलिनी में

मिलाने का प्रयत्न करते है ।

उपर्युक्त योग-ज्ञान केवल आध्यात्मिक ही नही, प्रत्युत ज्योतिषविषयक भी है। उक्त योगबल से भारतीयो ने अपने भीतर के रहने वाले सौर-जगत् को पूर्णतया ज्ञात कर और उस की तुलना निरीक्षण-द्वारा आकाशमण्डलीय सौर-जगत् से कर अनेक ज्योतिष सिद्धान्त निकाले, जो बहुत काल तक मौखिक रूप में अवस्थित रहे ।

अनुभव भी बतलाता है कि मानव ने अपनी आवश्यकता की पूर्ति के लिए सब से प्रथम स्थान, दिक् और काल इन तीन के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त की होगी। क्योकि किसी से भी पूछा जाये कि अमुक वस्तु कहाँ स्थित है ? तो वह यही उत्तर देगा कि अमुक दिशा में है। अमुक घटना कब घटी ? तो वह यही कहेगा कि अमुक समय में। अभिप्राय यह है कि अमुक स्थान से इतना पूर्व, अमुक से इतना दक्षिण, इतने बज कर इतने मिनिट पर अमुक कार्य हुआ, इतना बतला देने पर उस कार्य-विषयक स्वाभाविक जिज्ञासा शान्त हो जाती है। ज्योतिप-द्वारा उक्त विपयो का ज्ञान प्राप्त करना ही साध्य माना गया है। इसलिए उदयकाल में जब ज्योतिप के सिद्धान्त लिपिबद्ध किये जा रहे थे, इस की बडी प्रशसा की गयी है। स्थान एव कालबोधक शास्त्र होने के कारण इसे जीवन का अभिन्न अग बतलाया गया है।

यद्यपि अन्धकारयुग का ज्योतिष-विपयक साहित्य उपलब्ध नही है, पर तो भी इतना तो मानना ही पडेगा कि उस काल का मानव दिन, रात, पक्ष, मास, अयन और वर्प आदि कालागो से पूर्ण परिचित था। इस जानकारी के साथ-साथ ही उसे काल को प्रकट करने वाले चन्द्र, सूर्य का बोध भी अवश्य रहा होगा। लिखित प्रमाणो के अभाव में इस युग में आकाशमण्डल मानव की दृष्टि से ओझल रहा हो, यह मानने की बात नही है। इस पृथ्वी पर जन्म लेते ही उस ने अपनी चक्षुओ के द्वारा आकाश का रहस्य अवश्य ज्ञात किया होगा। प्राणिशास्त्र बतलाता है कि आदि मानव

अपने योग और ज्ञान-द्वारा आयुर्वेद एवं ज्योतिषशास्त्र के मौलिक तत्त्वो को ज्ञात कर भौतिक और आध्यात्मिक आवश्यकताओं की पूर्ति करता था।

अन्धकार काल की ज्योतिष-विषयक मान्यताओ का पता उदयकाल और आदिकाल के साहित्य से भी लग जाता है। सर्वप्रथम यहाँ वैदिक मान्यता के आधार पर इस काल का समर्थन किया जायेगा।

वैदिक दर्शन में सृष्टि का सृजन और विनाश माना गया है। इस के अनुसार सृष्टि के बन जाने के अनन्तर ही मनुष्य ग्रह-नक्षत्रो का अध्ययन करना शुरू कर देता है और ज्योतिष के आवश्यक जीवनोपयोगी तत्त्वो को ज्ञात कर अपनी ज्ञानराशि की वृद्धि करता है। भाषा शक्ति भी जगन्नियन्ता-द्वारा उसे प्राप्त हो जाती है तथा भाव और विचारो को अभिव्यक्त करने की क्षमता भी साधारणतया आ जाती है। परन्तु इतनी विशेषता है कि अभिव्यंजना का विकास एकाएक नही होता, बल्कि धीरे-धीरे विकसित हो इसी प्रणाली से साहित्य का जन्म होता है।

जब से मनुष्य ने चिन्ता करना आरम्भ किया तभी से उस की वाक्-शक्ति, कल्पना और बुद्धि उस के रहस्योद्‌घाटन के लिए प्रवृत्त हुई हैं। शास्त्रो में बताया गया है कि परिदृश्यमान विश्व एक समय प्रगाढ अन्धकार से आच्छादित था। उस समय की अवस्था का पता लगाना कठिन है, किसी भी लक्षण-द्वारा उस का अनुमान करना सम्भव नही। उस समय यह तर्क और ज्ञान से अतीत हो कर प्रगाढ निद्रा में अभिभूत था। अनन्तर स्वयम्भू अव्यक्त भगवान् महाभूतादि २४ तत्त्वो मे इस ससार को प्रकट कर तमोभूत अवस्था के विध्वंसक हो प्रकट हुए। सृष्टि की कामना से इस स्वयं शरीरी भगवान् ने अपने शरीर से जल की सृष्टि की और उस में बीज डाल कर सुवर्ण सदृश तेजोमय एक अण्डा निकाला। उस अण्डे में भगवान् ने स्वयं पितामह ब्रह्मा के रूप में जन्म ग्रहण किया। इस के पश्चात् ब्रह्मा ने अपने ध्यानबल से इस ब्रह्माण्ड को दो खण्डो में विभक्त कर दिया। ऊर्ध्व खण्ड में स्वर्गादि लोक, अधोखण्ड में पृथिव्यादि तथा मध्यदेश में

आकाश, अष्टदिक् और समुद्रो की सृष्टि की। इस के अनन्तर मानव आदि प्राणी तथा उन में मन, विषयग्राहक इन्द्रियाँ, अनन्त कार्यक्षमता, अहंकार आदि का सृजन किया। साराश यह कि 'अण्डे' के भीतर से जब भगवान् निकले तब उन के सहस्र सिर, सहस्र नेत्र और सहस्र भुजाएँ थी। ये ही उस मानव सृष्टि के रूप मे प्रकट हुए जो सृष्टि असीम, अनन्त और विराट् थी। इस विश्व को भगवान् का द्वितीय रूप कहा गया है, जिस के दोनो चक्षु चन्द्र और सूर्य बताये गये है।

उपर्युक्त सृष्टि-निर्माण के विश्लेषण से स्पष्ट है कि मानव को जिस समय इन्द्रियाँ और मन प्राप्त हुए उसी समय उसे सृष्टि-रहस्य को व्यक्त करने वाले ज्योतिष-तत्त्व भी ज्ञात हो गये थे। चाहे उपर्युक्त सृष्टि तत्त्व शास्त्र रूप में सहस्रो वर्षों के बाद आया हो, पर सृष्टि-रचना के साथ ही विश्वस्रष्टा ने उन के साथ मानव का सम्बन्ध स्थापित कर दिया था, जिस से आवश्यक ज्योतिष-विषयक सिद्धान्त उसे उसी समय ज्ञात हो चुके थे।

जैन-मान्यता की दृष्टि से विचार करने पर अन्धकारकाल के ज्योतिष-तत्त्व पर बडा सुन्दर प्रकाश पडता है। इस मान्यता के अनुसार यह संसार अनादिकाल से ऐसा ही चला आ रहा है, इस में न कोई नवीन वस्तु उत्पन्न होती है और न किसी का विनाश ही होता है, केवल वस्तुओं की पर्यायें बदला करती है। इस संसार का कोई स्रष्टा नही है, यह स्वयं सिद्ध है। किन्तु भारत और ऐरावत क्षेत्र मे अवसर्पण काल के अन्त में खण्ड प्रलय होता है जिस से कुछ पुण्यात्माओ को, जो विजयार्द्ध की गुफाओ में छिप गये थे, छोड शेष सभी जीव नष्ट हो जाते है। उत्सर्पण के दुःषमा-दुःषमा नामक प्रथम काल में जल, दूध और घी की वृष्टि मे जब पृथ्वी चिकनी रहने योग्य हो जाती है तो वे बचे हुए जीव आ कर बस जाते हैं और फिर ससार चलने लगता है।

जैन मान्यता में बीस कोडाकोडी अद्धा[1] सागर का कल्पकाल बताया

१ यह अरब-खरब की सख्या से कई गुना अधिक होता है।

गया है। इस कल्पकाल के दो भेद हैं—एक अवसर्पण और दूसरा उत्सर्पण। अवसर्पण काल के सुषम-सुषम, सुषम, सुषम-दु षम, दु षम-सुषम, दु षम और दु षम-दु षम ये छह भेद तथा उत्सर्पण के दु षम-दु.षम, दु षम, दु'षम-सुषम, सुषम-दु षम, सुषम और सुषम-सुषम ये छह भेद माने गये है। सुषम-सुषम का प्रमाण ४ कोडाकोडी सागर, सुषम का तीन कोडाकोडी सागर, सुषम-दु षम का २ कोडाकोडी सागर, दु षम-सुषम का ४२ हजार वर्ष कम १ कोडाकोडी सागर, दु षम का २१ हजार वर्ष एवं दु षम दु षम का २१ हजार वर्ष होता हैं। प्रथम और द्वितीय काल में भोगभूमि[1] की रचना, तृतीय काल के आदि में भोगभूमि और अन्त में कर्मभूमि की रचना रहती है। इस तृतीय काल के अन्त में १४ कुलकर उत्पन्न होते हैं जो प्राणियो को विभिन्न प्रकार की शिक्षाएँ देते हैं।

प्रथम कुलकर प्रतिश्रुति के समय में जब मनुष्य को सूर्य और चन्द्रमा दिखलाई पडे तो वे इन से सशंकित हुए और अपनी शंका दूर करने के लिए उन के पास गये। इन्होने सूर्य और चन्द्रमा सम्बन्धी ज्योतिष-विषयक ज्ञान की शिक्षा दी। जिस से इन के समय के मनुष्य इन ग्रहो के ज्ञान से परिचित हो कर अपने कार्यों का सचालन करने लगे। इस के पश्चात् द्वितीय कुलकरने नक्षत्र-विषयक शंकाओ का निराकरण कर अपने युग के व्यक्तियो को आकाश-मण्डल की समस्त बातें बतलायी।[2]

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि जैन मान्यता के अनुसार इस कल्पकाल-

---

१ जहाँ भोजन, वस्त्र आदि समस्त आवश्यकता की चीजें कल्पवृक्षो से प्राप्त होती हैं, वह भोगभूमि कहलाती है। इस काल में बालक ४९ दिन में युवावस्था को प्राप्त हो जाता है और आयु अपरिमित काल की होती है। इस युग में मनुष्य को योगक्षेम के लिए किसी प्रकार का श्रम नहीं करना पडता है।

२ इणससितारावदविभय दडादिसीमच्णिहकर्दि।
तुरगादिवाहण सिसुमुहद सणणिब्भय वेंत्ति॥

—त्रि० सा० मा० ७९९

में आज से अरब-खरब वर्षो पहले ज्योतिष-तत्त्वो की शिक्षाएँ दी गयी थी। उपलब्ध जैन-साहित्य भले ही इतना प्राचीन न हो, पर उस के तत्त्व मौखिक रूप में खरबों वर्ष पहले विद्यमान थे। आज का इतिहास भी जैनधर्म का अस्तित्व प्रागैतिहासिक काल में स्वीकार करता है। इस धर्म के सिद्धान्तो को व्यक्त करने वाली प्राकृत भाषा ही इस बात का ज्वलन्त प्रमाण है कि यह धर्म प्राणियों का नैसर्गिक धर्म है। प्रागैतिहासिक काल के क्षत्रिय इस धर्म के आराधक थे और वे आध्यात्मिक विद्या से पूर्ण परिचित थे। छान्दोग्य उपनिषद् में एक कथा आयी है, जिस में बताया है कि अरुण के पुत्र श्वेतकेतु पाचालो की परिषद् में गये और वहाँ क्षत्रिय राजा प्रवण जैवालिने उन से जीव की उत्क्रान्ति, परलोक गति और जन्मान्तर के सम्बन्ध में ५ प्रश्न किये; किन्तु श्वेतकेतु उन में से किसी प्रश्न का उत्तर नही दे सका। इस के पश्चात् श्वेतकेतु अपने पिता के पास आया और जैवालि-द्वारा पूछे गये प्रश्नो का उत्तर उन से चाहा, पर पिता भी उन प्रश्नो का उत्तर नही दे सके। अतएव दोनो मिल कर जैवालि के पास गये और उन से प्रश्नो का उत्तर पूछा—

स ह कृच्छ्रीबभूव। तं ह चिरं वस इत्याज्ञापयांचकार। तं होवाच यथा मा त्वं गौतमावदो यथेयं न प्राक् त्वत्त. पुरा विद्या ब्राह्मणान् गच्छति।

अर्थात्—गौतम की प्रार्थना सुन कर राजा चिन्तित हुआ और उस ने ऋषि से कुछ समय ठहरने को कहा और प्रश्नो का उत्तर देना आरम्भ किया—हे गौतम! आप मुझ से जो विद्या प्राप्त करना चाहते है, वह आप से पहले किसी ब्राह्मण को प्राप्त नही हुई है।

बृहदारण्यक उपनिषद् के निम्न मन्त्र से भी इस का समर्थन होता है—

इयं विद्या इतः पूर्वं न कस्मिंश्चित् ब्राह्मणे उवास तां त्वहं तुभ्यं वक्ष्यामि।

—बृ० उ० ६।२।८

अतएव स्पष्ट है कि आध्यात्मिक ज्ञान की धारा के समान जैन ज्योतिष की धारा भी अन्धकारकाल में विकसित थी। इस लिए उदयकाल के जैन साहित्य में ग्रह-नक्षत्रो का अत्यन्त सुस्पष्ट कथन मिलता है।

अन्धकारयुग के ज्योतिष-विषयक साहित्य के अभाव में भी इतना तो मानना ही पड़ेगा कि उस काल में ज्योतिष विकसित अवस्था में था। भारतीय ऋषियो ने दिव्य ज्ञानशक्ति-द्वारा आकाश-मण्डल के समस्त तत्त्वों को ज्ञात कर लिया था और जैसे-जैसे आगे जा कर अभिव्यंजना की प्रणाली विकसित होती गयी, ज्योतिष तत्त्व साहित्य-द्वारा प्रकट होने लगे। अत-एव अन्धकारकाल में ज्योतिष के महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त खूब पल्लवित और पुष्पित थे। मेरा तो अनुमान है कि दैनिक कार्यों के सम्पादनार्थ उपयोगी पाक्षिक तिथिपत्र भी उस समय काम में लाये जाते थे। उस युग के प्रत्येक व्यक्ति को ग्रह-नक्षत्रो का इतना ज्ञान था, जिस से वह केवल आकाश को देख कर ही समय और दिशा को ज्ञात कर लेता था। उदयकाल में जिन ज्योतिष सिद्धान्तो को साहित्यिक रूप प्रदान किया गया है, वे अन्धकार काल में मौखिक रूप में वर्तमान थे।

उदयकाल (ई० पू० १००००–ई० पू० ५०० तक)

उदयकाल में समस्त ज्ञानभाण्डार एक रूप में था, इस युग में विषयो की दृष्टि से यह विभिन्न अंगो में विभक्त नही हुआ था। इस लिए उस काल का ज्योतिष साहित्य पृथक् नही मिलता है, बल्कि अन्य विषयों के साथ सन्निविष्ट है। प्राचीन मानव ज्योतिष को भी धर्म मानता था; उस युग में व्यक्ति और समाज के सारे कार्य एक ही नियम पर चलते थे, अत धर्म, दर्शन और ज्योतिष ये भेद साहित्य में प्रस्फुटित नही हुए थे तथा सब विषयों का साहित्य एक साथ ही रहता था।

कुछ लोगो का कहना है कि उदयकाल के पूर्व में आर्य लोग भारत में उत्तरी ध्रुव से आये थे और यहाँ बस जाने के पश्चात् उन्होने वेद, वेदाग

आदि साहित्य की रचना की। लेकिन विचार करने पर अवगत होगा। कि अन्धकारयुग में उत्तरी ध्रुव उस स्थान पर था, जिसे आज विहार और उडीसा कहते है। वह भारत के बाहर नही था। आधुनिक प्राणी-शास्त्र के ज्ञाताओं ने अनुसन्धान कर प्रमाणित किया है कि उत्तरी ध्रुव स्थिर नही है तथा अपने प्राचीन स्थान से पूर्व, पश्चिम और उत्तर की ओर चलते हुए वर्तमान स्थिति को प्राप्त हुआ है। अतएव यह मानने में हमें तनिक भी संकोच नही कि प्राचीन आर्य उत्तरी ध्रुव स्थान में रहते थे और यह प्रदेश भारत के अन्तर्गत ही था। आर्यो ने उदयकाल में अपने गौरवपूर्ण वैदिक साहित्य को जन्म दिया। यद्यपि वेद, आरण्यक, ब्राह्मण, द्वादशांग, प्रकीर्णक और उपनिषद् आदि धार्मिक रचनाएँ मानी जाती है, पर इन में ज्योतिष, आयुर्वेद, शिल्प आदि विषयों की चर्चाएँ पर्याप्त मात्रा मे मौजूद हैं। उदयकाल के साहित्य में मास, ऋतु, अयन, वर्ष, युग, ग्रह, ग्रहण, ग्रहकक्षा, नक्षत्र, विषुव, नक्षत्र-लग्न, दिन-रात का मान और उस की वृद्धिहानि आदि विषयो का विचार ज्योतिष की दृष्टि से किया जाने लगा था। वेदो में प्रतिपादित ज्योतिप चर्चा की अपेक्षा शतपथ ब्राह्मण, बृहदारण्यक, तैत्तिरीय ब्राह्मण, ऐतरेय ब्राह्मण आदि ग्रन्थो में विकसित रूप से उपलब्ध है। इन ग्रन्थो में ज्योतिष के सिद्धान्तो का व्यावहारिक और शास्त्रीय इन दोनों दृष्टिकोणों से प्रतिपादन किया है। ऋग्वेद के समय में दिन को केवल कामचलाऊ समय के रूप में माना जाता था, पर ब्राह्मण और आरण्यको के समय में उस का ज्योतिष की दृष्टि से विवेचन होने लग गया था। दिन की वृद्धि कैसे और कब होती है तथा वह कितना बडा होता है, आदि बातों की शास्त्रीय मीमासा होने लग गयी थी।

इस काल की ज्ञानराशिपर दृष्टिपात करने से ज्ञात होता है कि सूर्य और चन्द्रमा के अतिरिक्त भौमादि ५ ग्रह भी ज्योतिषविषयक साहित्य के विषय बन गये थे। जैन अंग-साहित्य में नवग्रहो का स्पष्ट उल्लेख भी ईसवी सन् से सहस्रो वर्ष पूर्व होने लग गया था। यद्यपि उपलब्ध द्वादशाग

इतना प्राचीन नही है, लेकिन उस की परम्परा अविच्छिन्न रूप से बहुत पहले से चली आ रही थी। भगवान् महावीर स्वामी के निर्वाण के अनन्तर उन के उपदेशानुसार द्वादशांग साहित्य में संशोधन और परिवर्धन किये गये थे तथा अंग-साहित्य का एक नवीन संस्करण तैयार किया गया था।

उदयकाल की ज्योतिष परम्परा में स्वतन्त्र रूप से इस विषय की रचनाएँ नही मिलती हैं। पर अन्य विषयो के साथ जितना इस विषय का साहित्य है, उन का संकलन किया जाये तो खासा साहित्य इस युग का तैयार हो सकता है।

इस युग में ज्योतिष के भेद-प्रभेद भी आविर्भूत नही हुए थे, केवल सामान्य ज्योतिष शब्द से इस शास्त्र के ग्रह-नक्षत्र के गणित और उन के फल गृहीत होते थे।

ईसवी सन् से ५ सौ वर्ष पूर्व में रचे गये प्राचीन जैन आगम में ज्योतिषी के लिए 'जोईसंगविउ' शब्द आया है। भाष्यकारो ने इस शब्द का अर्थ ग्रह, नक्षत्र, प्रकीर्णक और ताराओ के विभिन्न विषयक ज्ञान के साथ राशि और ग्रहो की सम्यक् स्थिति के ज्ञान को प्राप्त करना, किया है। अतएव स्पष्ट है कि उदय काल में राशिचक्र, नक्षत्रचक्र और ग्रहचक्र का प्रचार था।

प्रत्येक काल में ज्योतिष के ऊपर देश की परिस्थिति और राजनीति का प्रभाव पड़ता रहता है। प्रस्तुत उदयकालीन ज्योतिष भी उपर्युक्त परिस्थितियो से अछूता नही है। उस समय की प्रजातन्त्र प्रणाली का प्रभाव ज्योतिष पर गहरा पडा है। फलत फल-प्रतिपादक ग्रह और नक्षत्रो को समान रूप में स्वीकार किया गया है। जब तक भारत में कौटिल्य नीति का प्रचार नही हुआ तब तक मित्रत्व, शत्रुत्व, उच्चत्व और नीचत्व आदि दृष्टियो से फल प्रतिपादन की प्रणाली का प्रचलन इस शास्त्र में नही हुआ है। उदयकाल में केवल ग्रहो की योग्यता की दृष्टि से फल-प्रक्रिया प्रचलित थी। इस प्रक्रिया का समर्थन विषुवकथन की प्रणाली से होता है।

अत. यह निर्विवाद सिद्ध है कि इस युग में ज्योतिष ने साहित्य रूप

में जन्म ही नही लिया था, वल्कि वह अपने शैशव काल के साथ अठ-खेलियाँ करता हुआ अपनी किशोर अवस्था को प्राप्त हो रहा था।

उदयकालीन ज्योतिष-सिद्धान्त

वैदिक साहित्य विविध विषयो का अथाह समुद्र है, इस में धार्मिक सिद्धान्तो के साथ-साथ ज्योतिष के अनेक सिद्धान्त चमत्कारिक ढग से वताये गये है। ऋग्वेद में वर्ष को १२ चान्द्रमासो में विभक्त किया है तथा प्रत्येक तीसरे वर्ष चान्द्र और सौर वर्ष का समन्वय करने के लिए एक अधिक मास—मलमास जोड़ा करते थे। एक स्थान पर ऋग्वेद में वर्ष के १२ माह, ३६० दिन और ७२० रात्रि-दिन—३६० रात्रि + ३६० दिन का वर्णन करते हुए लिखा है—

द्वादश प्रवयश्चक्रमेकं त्रीणि नभ्यानि क उ तश्चिकेत।
तस्मिन्त्साकं त्रिशता न शंकवोऽर्पिताः षष्टिर्न चलाचलास ॥
—ऋक्० स० १, १६४. ४८

मास-विचार

तैत्तिरीय सहिता मे १२ महीनो के नाम मधु, माधव, शुक्र, शुचि, नभस्, नभस्य, इष, ऊर्ज, सहस, सहस्य, तपस् एवं तपस्य आये है। इसी प्रकरण में संसर्प अधिमास का द्योतक और अहंस्पति क्षयमास का द्योतक भी आया है। पद्य निम्न प्रकार है—

मधुश्च माधवश्च शुक्रश्च नमश्च नभस्यश्चेषश्चोर्जश्च सहश्च
सहस्यश्च तपश्च तपस्यश्चोपयामगृहीतोऽसि स ँ सर्वोस्य ँ हस्प-
स्याय त्वा।—तै० सं० १.४.१४

ऋग्वेद मे चान्द्रमास और सौरवर्ष की चर्चा कई स्थानो पर आयी है। इस से स्पष्ट सिद्ध होता है कि चान्द्र और सौर का समन्वय करने के लिए अधिमास की कल्पना ऋग्वेद के समय में प्रचलित थी।

प्रश्नव्याकरणाग मे वारह महीनो की वारह पूर्णमासी और अमा-

वास्याओ के नाम और उन के फल निम्न प्रकार बताये हैं—

ता कहंते पुण्णमासी आहितेति वदेज्जा तत्थ खलु इमातो बारस पुण्णमासीओ बारस अमावसाओ पण्णत्ताओ तं जहा संविट्ठी, पोट्ठवती, असोइ, कत्तिया, मगसिरा, पोसी, माही, फग्गुणी, चेत्ती, विसाही, जेट्ठा-मुला, असाढी ॥ —प्र० व्या० १० ६

अर्थात्—श्रावण मास की श्रविष्ठा, भाद्रपद की पौष्ठवती, आश्विन की असोई, कार्तिक की कृत्तिका, मार्गशीर्ष की मृगशिरा, पौष की पौषी, माघ की माघी, फाल्गुन की फाल्गुनी, चैत्र की चैत्री, वैशाख की विशाखी, ज्येष्ठ की मूली एवं आषाढ़ की आषाढी पूर्णिमा बतायी गयी है। कहीं-कही पूर्णमासियो के नामो के आधार पर मासो के नाम भी आये हैं।

ऋतुविचार

उदयकाल में ऋतु-विचार किया जाता था। ई० पू० ८००० में वसन्त ऋतु ही प्रारम्भिक ऋतु मानी जाती थी, किन्तु ई० पू० ५०० में प्रारम्भिक ऋतु वर्षा ऋतु मानी जाने लगी थी। तैत्तिरीय सहिता में कहा गया है।

मधुश्च माधवश्च वासन्तिकावृतू शुक्रश्च शुचिश्च ग्रैष्मावृतू नभश्च नभस्यश्च वार्षिकावृतू इषश्चोर्जश्च शारदावृतू सहश्च सहस्यश्च हैमन्तिकावृतू तपश्च तपस्यश्च शैशिरावृतू। —तै० सं० ४. ४. ११

अर्थात्—मधु और माधव वसन्त ऋतु, शुक्र और शुचि ग्रीष्म ऋतु, नभस् और नभस्य वर्षा ऋतु, इष और ऊर्ज शरद् ऋतु, सहस और सहस्य हेमन्त ऋतु एवं तपस् और तपस्य शिशिर ऋतु वाले मास हैं।

ऋग्वेद में ऋतु शब्द कई स्थानो पर आया है पर वहाँ इस शब्द का प्रयोग वर्ष के अर्थ मे हुआ है। ऐतरेय ब्राह्मण में पाँच ही ऋतु आयी हैं। उस में हेमन्त और शिशिर इन दोनों को एक ही रूप में माना है—

द्वादशमासा पञ्चर्तवो हेमन्तशिशिरयो. समासेन।

—ऐ० ब्रा० १.१

तैत्तिरीय ब्राह्मण में ऋतुओ का उल्लेख करते हुए बताया गया है—

तस्य ते वसन्त. शिर. । ग्रीष्मो दक्षिणः पक्ष । वर्षा. पुच्छम् । शरदुत्तरः पक्षः । हेमन्तो मध्यम् । —तै० ब्रा० ३.१०.४.१

अर्थात्—वर्ष का सिर वसन्त, दाहिना पंख ग्रीष्म, बायाँ पख शरद्, पूँछ वर्षा और हेमन्त को मध्य भाग कहा गया है। तात्पर्य यह है कि तैत्तिरीय ब्राह्मण काल में वर्ष को पक्षी के रूप में माना गया है और ऋतुओ को उस का विभिन्न अंग बतलाया है।

तैत्तिरीय संहिता में ऋतु का एक पात्र रूप में वर्णन करते हुए बताया गया है कि—

उभयतो मुखमृतुपात्रं भवति को हि तद्वेद यदृतूनां मुखम् ।

—तै० स० ६.५ ३

तात्पर्य यह है कि ऋतु पात्र के दोनो ओर मुख रहते है। लेकिन इन मुखो की दिशा का ज्ञान करना कठिन है। ऋतु की स्थिति सूर्य पर निर्भर है। एक वर्ष मे सौरमास का आरम्भ चान्द्रमास के आरम्भ के साथ ही होता है। प्रथम वर्ष के सौरमास का आरम्भ शुक्लपक्ष की द्वादशी तिथि को और आगे आने वाले तीसरे वर्ष में सौरमास का आरम्भ कृष्णपक्ष की अष्टमी को बताया गया है। साराश यह है कि सर्वदा सौरमास और चान्द्रमास का आरम्भ एक तिथि को न होने के कारण ऋतु आरम्भ की तिथि अनियमित है। पूर्व वैदिक युग में वर्षा ऋतु का आरम्भ निरयन मृगशिर नक्षत्र के आरम्भ के कुछ पूर्व या उत्तर माना जाता था।

शतपथ ब्राह्मण में निम्न आख्यायिका आयी है, जिस से ऋतु के सम्बन्ध में सुन्दर प्रकाश मिलता है।

प्रजापतेर्ह वै प्रजाः ससृजनास्य पर्वाणि विसस्रँ्सु स वै संवत्सर एव प्रजापतिस्तस्यैतानि पर्वाण्यहोरात्रयोः सन्धी पौर्णमासी चामावास्या चतुर्मुखानि ॥३५॥ स विस्रस्तै. पर्वभिः न शशाक सँहातुं तेमेतैर्हविर्यज्ञैर्देवा अभिषज्यन्नग्निहोत्रेणैवाहोरात्रयोः संधी तत्पर्वाभिषज्यंस्तत्समदधु-

पौर्णमासेन चैवामावास्येन च पौणमासी चामावास्यां च तत्पर्वाभिषज्यं-स्तत्समदधुश्चातुर्मास्यैरेवर्तुमुखानि तत्पर्वाभिषज्यंस्तत्समदधु ॥

—शत० ब्रा० १ ६ ३

अर्थात्—प्रजा उत्पन्न करने के बाद प्रजापति के पर्व शिथिल हो गये। इस सूत्र में प्रजापति से संवत्सर अभिप्रेत है और पर्व शब्द से अहोरात्र की दोनों सन्धियाँ—पूर्णमासी, अमावास्या एव ऋतु-आरम्भ-तिथि ग्रहण की गयी हैं तथा चातुर्मास के ज्ञान से ऋतुओं की व्यवस्था की गयी है, तात्पर्य यह है कि शतपथ ब्राह्मण के पूर्व ऋतु व्यवस्था सौर और चान्द्रमास के अनुसार एक तिथि में सिद्ध नही हुई थी अत ऋतु आरम्भ की तिथि का ज्ञान करना असम्भव-सा जँचता था, इस लिए बाद के आचार्यों ने चार महीने की ऋतु मान कर ऋतु सन्धि को ज्ञात किया था तथा अग्नि, सूर्य और चन्द्रमा ये तीन ऋतुएँ मानी गयी थी।

यदि तर्क की कसौटी पर इस ऋतु-व्यवस्था को कसा जाये तो अवगत होगा कि इस युग में पक्षसन्धि और ऋतुसन्धि की वास्तविक व्यवस्था प्राय. अज्ञात थी। हाँ, काम चलाने के लिए ये चीजें प्रचलित थी।

अयनविचार

उदयकाल में अयन के सम्बन्ध में भी शास्त्रीय विवेचन होने लग गया था। ऋग्वेद में कई स्थानो पर अयन शब्द आया है, पर निश्चित रूप से यह नही कहा जा सकता है कि यह अयन शब्द सूर्य के दक्षिणायन या उत्तरायण का द्योतक है। शतपथ ब्राह्मण के निम्न पद्य से अयन के सम्बन्ध में अवगत होता है—

वसन्तो ग्रीष्मो वर्षा । ते देवा ऋतव शरद्धेमन्त. शिशिरस्ते पितरो " स (सूर्य.) यत्रोदगावर्तते । देवेषु तर्हि भवति यत्र दक्षिणा वर्तते पितृषु तर्हि भवति ॥

अर्थात्—शिशिर ऋतु से ग्रीष्म ऋतु पर्यन्त उत्तरायण और वर्षा ऋतु से हेमन्त ऋतु पर्यन्त दक्षिणायन होता था लेकिन उदयकाल की अन्तिम

शताब्दियों में हेमन्त के मध्य में से ग्रीष्म के मध्य तक उत्तरायण माना जाने लगा था। यद्यपि उपर्युक्त मन्त्र में उत्तरायण और दक्षिणायन का स्पष्ट कथन नहीं है, पर प्रकरण के अनुसार अर्थ करने पर उक्त अर्थ सिद्ध हो जाता है।

तैत्तिरीय संहिता के 'तस्मादादित्यः षण्मासो दक्षिणेनैति षडुत्तरेण' मन्त्र से सूर्य का छह महीने का उत्तरायण और छह महीने का दक्षिणायन सिद्ध होता है।

य""उदगयने प्रमीयते देवानामेव महिमानं गत्वादित्यस्य सायुज्यं गच्छत्यथ यो दक्षिणे प्रमीयते पितॄणामेव महिमानं गत्वा चन्द्रमसः सायुज्यं—सलोकतामाप्नोति। —नारा० उ० अनु० ६०

मैत्रायणी उपनिषद् में उदग् अयन, उत्तरायण ये शब्द कई स्थानों पर आये हैं। उदक् अयन के पर्यायवाची शब्द देवयान, देवलोक और दक्षिणायन के पर्यायवाची पितृयाण, पितृलोक बताये गये हैं।

जैन ग्रन्थों में विस्तार से उत्तरायण और दक्षिणायन की व्यवस्था बतलाते हुए लिखा है कि जम्बूद्वीप के मध्य में सुमेरु पर्वत है। सूर्य, चन्द्र आदि समस्त ज्योतिर्मण्डल इस पर्वत की परिक्रमा किया करता है। सूर्य प्रदक्षिणा की गति उत्तरायण और दक्षिणायन इन भागों में विभक्त है और इन की वीथियाँ—गमन मार्ग १८३ हैं, जो सुमेरु की प्रदक्षिणा के रूप में गोल, किन्तु बाहर की ओर फैलते हुए हैं। इन मार्गों की चौडाई $\frac{४८}{६१}$ योजन है तथा एक मार्ग से दूसरे मार्ग का अन्तर दो योजन बताया गया है। इस प्रकार कुल मार्गों की चौड़ाई और अन्तरालों का प्रमाण ५१० योजन है, जो कि ज्योतिष शास्त्र की परिभाषा में चार क्षेत्र कहलाता है। ५१० योजन में से १८० योजन चार क्षेत्र जम्बूद्वीप में और अवशेष ३३० योजन लवण समुद्र में है। सूर्य एक मार्ग को दो दिन में पूरा करता है, जिस से ३६६ दिन या एक वर्ष पूरा करने में लगते हैं।

सूर्य जब जम्बूद्वीप के अन्तिम आभ्यन्तर मार्ग से बाहर की ओर निकलता हुआ लवण समुद्र की ओर जाता है, तब बाह्य लवण-समुद्र के

अन्तिम मार्ग पर चलने तक के काल को दक्षिणायन और जब सूर्य लवण-समुद्र के बाह्य अन्तिम मार्ग से भ्रमण करता हुआ आभ्यन्तर जम्बूद्वीप की ओर आता है उसे उत्तरायण कहते हैं। अतएव स्पष्ट है कि उदयकाल की अन्तिम शताब्दियों में उत्तरायण और दक्षिणायन का ज्योतिषशास्त्र की दृष्टि से सूक्ष्म विचार होने लग गया था। भारतीय आचार्यों ने इस विषय को आगे खूब पल्लवित और पुष्पित किया।

वर्षविचार

ऋग्वेद में वर्ष के वाचक शरद् और हेमन्त शब्द आये है, वहाँ इन शब्दों का अर्थ ऋतु न मान संवत्सर बताया गया है। गोपथ ब्राह्मण में वर्ष के लिए हायन शब्द आया है। वाजसनेयी संहिता में वर्ष के लिए समा शब्द व्यवहृत हुआ है। वर्ष की दिन-संख्या ३५४ अथवा ३६५ मानी गयी है। शतपथ ब्राह्मण में आजकल के अर्थ में वर्ष शब्द का व्यवहार किया गया है। ऋग्वेद के १०वें मण्डल में 'समानां मास आकृतिः' इस मन्त्र में समा शब्द के द्वारा ही वर्ष शब्द का प्रतिपादन किया है। वैदिक काल में सायन वर्ष ग्रहण किया जाता था. यह सायन या सौर वर्ष की प्रणाली ई० पू० ५०० तक पायी जाती है। आदिकाल में निरयन वर्ष का विचार भी लग गया था। वर्ष या संवत्सर की व्युत्पत्ति करते हुए शतपथ ब्राह्मण में लिखा है—

ऋतुभिर्हि संवत्सरः शक्नोति स्थातुम्। —श० ब्रा० ६.७.१.१८

अर्थात् 'संवसन्ति ऋतवः यत्र' की गयी है। तात्पर्य यह कि जिस में ऋतुएँ वास करती हों वह वर्ष या संवत्सर कहलाता है।

वर्ष का आरम्भ कब होता था, इस सम्बन्ध में ऋग्वेद में कोई स्पष्ट उल्लेख नहीं है, परन्तु यजुर्वेद में वसन्तारम्भ में वर्षारम्भ कहा गया है। उदयकाल की अन्तिम शताब्दियों में दक्षिणायन के प्रारम्भिक दिन से भी वर्षारम्भ माना जाने लगा था। यों तो वैदिक काल में वर्ष के चान्द्र और सौर ये दो भेद भी प्रकट हो गये थे। लेकिन नाक्षत्र, बार्हस्पत्य आदि विभिन्न प्रकार के वर्ष नहीं माने जाते थे। इस काल के ऋषि मधु और

माधव आदि मासो को भी सौर मास के रूप में ही मानते थे, क्योंकि वर्षारम्भ सौरमासकालिक था।

वैसे तो मासो की गणना चान्द्र मास के अनुसार भी मिलती है तथा सौर और चान्द्र के समन्वय करने के लिए प्रत्येक तीसरे वर्ष एक अधिक-मास भी जोडा जाता था। उस समय की व्यावहारिक वर्ष-प्रणाली आज-कल की वर्षप्रणाली से भिन्न थी। युग वर्षो के क्रमानुसार प्रत्येक वर्ष का नाम भी पृथक्-पृथक् होता था।

ठाणाग और प्रश्नव्याकरणाग में सायन और वर्ष का कथन मिलता है। समवायाग में चान्द्र वर्ष की दिन-सख्या ३५४ से कुछ अधिक बतलायी गयी है। ६३वें समवाय में चान्द्र वर्ष की उत्पत्ति का कथन भी किया गया है। इस प्रकार उदयकाल में वर्ष के सम्बन्ध में शास्त्रीय दृष्टि से मीमांसा की गयी है।

युगविचार

ऋग्वेद मे काल-मान का द्योतक युग शब्द कई स्थानो में आया है, लेकिन कल्प शब्द का प्रयोग इस अर्थ में कही पर भी दिखलाई नही पडता है। ऋग्वेद में युग के सम्बन्ध में कहा है—

तदूचुषे मानुषेमा युगानि कीर्तेन्यं मघवा नाम बिभ्रत्।
उपप्रमंदस्युहत्याय वज्री युद्ध सूनुः श्रवसे नाम दधे॥

—ऋ० सं० १.१०३-४

इस मन्त्र की व्याख्या करते हुए सायणाचार्य ने लिखा है—

"मनुष्याणां सम्बन्धीनि इमानि दृश्यमानानि युगानि अहोरात्रसघ-निष्पाद्यानि कृतत्रेतादीनि सूर्यात्मना निष्पादयतीति शेष."

अर्थात्—सतयुग, त्रेतादि युग शब्द से ग्रहण किये गये है। इस से स्पष्ट है कि वेदो के निर्माण-काल मे सतयुग, त्रेतादि का प्रचार था। ऋग्वेद के निम्न मन्त्र से युग के सम्बन्ध में एक नया प्रकाश मिलता है—

दीर्घतमा मामेतयो जुजुर्वान् दशमे युगे।
अपामर्थं यतीनां ब्रह्मा भवति सारथि.॥ —ऋ० सं० १.१५८ ६

अर्थात्—इस मन्त्र में एक आख्यायिका आयी है, उस में कहा गया है कि ममता के पुत्र दीर्घतम नाम के महर्षि अश्विन के प्रभाव से अपने दुःखों से छूट कर स्त्री-पुत्रादि कुटुम्बियों के साथ दस युग पर्यन्त सुख से जीवित रहे। यहाँ दस युग शब्द विचारणीय है। यदि पाँच वर्ष का युग माना जाये, जैसा कि आदिकाल में प्रचलित था, तो ऋषि की आयु ५० वर्ष की आती है, जो बहुत थोड़ी प्रतीत होती है और यदि दस वर्ष का युग माना जाये तो १०० वर्ष की आयु आती है। वैदिक काल के अनुसार यह आयु भी सम्भव नहीं जँचती है। दूसरी बात यह है कि दस वर्ष ग्रहण करना उचित नहीं। सायणाचार्य ने युग की इस समस्या को सुलझाने के लिए "दशयुगपर्यन्तं जीवन् उक्तरूपेण पुरुषार्थसाधकोऽभवत् अथवा जीवन् उत्तररूपेण पुरुषार्थसाधकोऽभवत्।" इस प्रकार की व्याख्या की है। इस व्याख्या से युग-प्रमाण की समस्या सरलता से सुलझ जाती है अर्थात् दीर्घतम ने अश्विन के प्रभाव से दुःख से छुटकारा पा कर जीवन के अवशेष दस युग—५० वर्ष सुख से विताये थे। अतएव इस आख्यायिका से स्पष्ट है कि उदयकाल में युग का मान पाँच वर्ष लिया जाता था। ऋग्वेद के अन्य दो मन्त्रों से युग शब्द का अर्थ काल और अहोरात्र भी सिद्ध होता है। पाँचवें मण्डल के ७३वें सूक्त के ३रे मन्त्र में "नहुषा युगा मन्हा रजांसि दीयथः।" पद में युग शब्द का अर्थ—"युगोपलक्षितान् कालान् प्रसरादिसवनान् अहोरात्रादिकालान् वा" किया गया है। इस से स्पष्ट है कि उदयकाल में युग शब्द का अन्य अर्थ अहोरात्र विशिष्ट काल भी लिया जाता था। ऋग्वेद ६ठे मण्डल के ९वें सूक्त के ४थे मन्त्र में "युगे युगे विदथ्यं" पद में युगे-युगे शब्द का अर्थ 'काले-काले' किया गया है। वाजसनेयी संहिता के १२वें अध्याय की १११वीं कण्डिका "दैव्यं मानुषा युगा" ऐसा पद आया है। इस से सिद्ध होता है कि उस काल में देव-युग और मनुष्य-युग ये दो युग प्रचलित थे। तैत्तिरीय संहिता के "या जाता ओ अधयो देवेभ्यस्त्रियुगं पुरा" मन्त्र से देव-युग की सिद्धि होती है।

ठाणाग में पाँच वर्ष का एक युग बताया गया है। इस में ज्योतिष की दृष्टि से युग की अच्छी मीमासा की गयी है। एक स्थान पर बताया गया है कि—

पंच संवच्छरा प० तं० णक्खत्तसंवच्छरे, जुगसंवच्छरे, पमाण-संवच्छरे लक्खणसंवच्छरे सणिचरसंवच्छरे। जुगसंवच्छरे पंचविहे प० तं० चंदेचंदे, अभिवड्ढिए चन्दे अभिवड्ढिए चेव। पमाणसवच्छरे पंचविहे प० तं० णक्खत्ते, चन्दे, उऊ अइच्चे, अभिवड्ढिए।—ठा० ५, उ० ३, सू० १० अर्थात्—पंच सवत्सरात्मक युग के ५ भेद है—नक्षत्र, युग, प्रमाण, लक्षण और शनि। युग के भी पंच भेद बताये गये है—चन्द्र, चन्द्र, अभि-वर्द्धित, चन्द्र और अभिवर्द्धित।

समवायाग में युग के सम्बन्ध में बहुत स्पष्ट और सुन्दर ढंग से बताया गया है—

पंच संवच्छरियस्सणं जुगस्स रिउमासेणं मिज्जमाणस्स एगसट्ठिं उऊमासा प०। —स० ६९, सू० १

अर्थात्—पंचवर्षात्मक एक युग होता है। इस युग के पाँच वर्षों के नाम चन्द्र, चन्द्र, अभिवर्द्धित, चन्द्र और अभिवर्द्धित बताये गये है। पचवर्षात्मक युग में ६१ ऋतुमास होते है।

प्रश्न-व्याकरणाग में भी युग-प्रक्रिया का विवेचन किया गया है। इस में एक युग के दिन और पक्षो का निरूपण किया है।

उपर्युक्त युग-प्रक्रिया के ऊपर आलोचनात्मक दृष्टि से विचार किया जाये तो अवगत होगा कि उदयकाल में युग शब्द विभिन्न अर्थों में प्रयुक्त होता था। जहाँ काल-गणना अभिप्रेत थी वहाँ पाँच वर्ष का ही युग ग्रहण किया जाता था। इस समय आदिकाल के समान पंचवर्षात्मक युग के संवत्सर, परिवत्सर, इदावत्सर, अनुवत्सर एव इद्वत्सर ये पाँच पृथक्-पृथक् वर्ष माने जाते थे। ऋग्वेद के ७वें मण्डलान्तर्गत १०३वें सूक्त के ७वें एवं ८वें मन्त्र में संवत्सर और परिवत्सर वर्षों के नाम आये है तथा इन वर्षो

में विधेय यज्ञों का वर्णन किया गया है। तैत्तिरीय ब्राह्मण के एक मन्त्र से ध्वनित होता है कि उस काल में संवत्सर का स्वामी अग्नि, परिवत्सर का आदित्य, इदावत्सर का चन्द्रमा, इद्वत्सर एवं अनुवत्सर का वायु होता था। वाजसनेयी संहिता और तैत्तिरीय ब्राह्मणों के मन्त्रों से यह भी निष्कर्ष निकलता है कि उदय काल के इन वर्षों में विशेष-विशेष कृत्य निर्धारित थे। तथा वर्तमान वर्ष के स्वामी को सन्तुष्ट करने के लिए विशेष यज्ञ किये जाते थे।

उदयकाल में काल गणना से सम्बद्ध और भी अनेक प्रकार के समय-विभाग प्रचलित थे। अन्वेषण करने से ज्ञात होता है कि सप्ताह का प्रचार इस काल में नहीं था।

जब पक्ष का विचार ऋग्वेद में वर्तमान है, तब सप्ताह का जिक्र भी होना चाहिए था, लेकिन उदयकाल की तो बात ही क्या आदि काल और पूर्व मध्य काल की प्रारम्भिक शताब्दियों में भी सप्ताह का प्रचलन ज्योतिष में नहीं हुआ प्रतीत होता है।

ग्रहकक्षा विचार

उदयकाल में केवल समय-विभाग ज्ञान तक ही ज्योतिष सीमित नहीं था; बल्कि ज्योतिष के मौलिक सिद्धान्त भी ज्ञात थे। ग्रहकक्षा का स्पष्ट उल्लेख तो वैदिक साहित्य में नहीं है, किन्तु तैत्तिरीय ब्राह्मण के कई मन्त्रों से सिद्ध होता है कि पृथ्वी, अन्तरिक्ष, द्यौ, सूर्य और चन्द्र ये क्रमशः ऊपर-ऊपर हैं। तैत्तिरीय संहिता के निम्न मन्त्र से ग्रहकक्षा के ऊपर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है—

यथाग्निः पृथिव्या समनमदेवं मह्यं भद्रा, सन्नतयः सन्नमन्तु वायवे समनमदन्तरिक्षाय समनमद् यथा वायुरन्तरिक्षेण सूर्याय समनमद् दिवा समनमद् यथा सूर्यो दिवा चन्द्रमसे समनमन्नक्षत्रेभ्यः समनमद् यथा चन्द्रमा नक्षत्रैर्वरुणाय समनमत्। —तै० सं० ७.५.२३

अर्थात्—सूर्य आकाश की, चन्द्रमा नक्षत्र-मण्डल की, वायु अन्तरिक्ष की परिक्रमा करते हैं और अग्निदेव पृथ्वी पर निवास करते हैं। सारांश यह है कि सूर्य, चन्द्र और नक्षत्र क्रमशः ऊपर-ऊपर की कक्षा वाले हैं। तैत्तिरीय

ब्राह्मण के निम्न मन्त्र से विश्व-व्यवस्था के सम्बन्ध में अच्छा प्रकाश मिलता है—

लोकोसि स्वर्गोसि। अनन्तस्य पारोसि। अक्षितोस्यक्षय्योसि। तपसः प्रतिष्ठा। त्वयीदमन्तः। विश्वं यक्षं विश्वं भूतं विश्वं सुभूतं। विश्वस्य भर्त्ता विश्वस्य जनयिता। तं त्वोपदधे कामदुघमक्षितं। प्रजापतिस्त्वासादयतु। तया देवतयांगिरस्व ध्रुवासीद्। तपोसि लोके श्रितं। तेजसः प्रतिष्ठा .. तेजोसि तपसि श्रित। समुद्रस्य प्रतिष्ठा । समुद्रोसि तेजसि श्रितः। अपां प्रतिष्ठा। अप.स्थ समुद्रे श्रिताः। पृथिव्याः प्रतिष्ठा युष्मासु। पृथिव्यस्यप्सु श्रिता। अग्ने. प्रतिष्ठा। अग्निरसि पृथिव्यां श्रितः। अन्तरिक्षस्य प्रतिष्ठा। अन्तरिक्षमस्यग्नौ श्रितं। वायो. प्रतिष्ठा। वायुरस्यन्तरिक्षे श्रित। दिवः प्रतिष्ठा। द्यौरसि वायौ श्रिता। आदित्यस्य प्रतिष्ठा। आदित्योसि दिवि श्रित। चन्द्रमसः प्रतिष्ठा। चन्द्रमा अस्यादित्ये श्रित.। नक्षत्राणां प्रतिष्ठा। नक्षत्राणि स्थ चन्द्रमसि श्रितानि। संवत्सरस्य प्रतिष्ठा युष्मासु। संवत्सरोसि नक्षत्रेषु श्रित। ऋतूनां प्रतिष्ठा। ऋतवः स्थ संवत्सरे श्रिता.। मासानां प्रतिष्ठा युष्मासु। मासाः स्थर्तुषु श्रिता। अर्धमासानां प्रतिष्ठा युष्मासु। अर्धमासाः स्थ मासेषु श्रिताः। अहोरात्रयोः प्रतिष्ठा युष्मासु। अहोरात्रे स्थोर्धमासेषु श्रिते। भूतस्य प्रतिष्ठे भव्यस्य प्रतिष्ठे। पौर्णमास्यष्टकामावास्या ॥ ... ॥ —तै० ब्रा० ३ ११ १

अर्थात्—लोग अनन्त और अपार है, इस का कभी विनाश नही होता। पृथ्वी के ऊपर अन्तरिक्ष, अन्तरिक्ष के ऊपर द्यौ है। इस द्यौ लोक में सूर्य भ्रमण करता है। अन्तरिक्ष में केवल वायु गमन करता है। सूर्य के ऊपर चन्द्रमा स्थित है, इस का गमन नक्षत्रो के मध्य में होता है। मेघ, वायु, विद्युत् ये तीनो भी अन्तरिक्ष और द्यौ लोक के मध्य में है। सूर्य, चन्द्र एवं नक्षत्रो का स्थान भी द्यौ लोक है।

ऋग्वेद के प्रथम मण्डलान्तर्गत १६४वें सूक्त में सूर्य और लोक का वर्णन स्पष्ट आया है। मालूम होता है कि उस समय ऊर्ध्वलोक, मध्यलोक और अधोलोक की कल्पना ने ज्योतिष में स्थान प्राप्त कर लिया था।

आलोचनात्मक दृष्टिकोण से विचार करने पर ज्ञात होगा कि वर्तमान ग्रहकक्षा से भिन्न उस समय की ग्रहकक्षा थी। आजकल चन्द्रकक्षा को नीचे और सूर्यकक्षा को ऊपर मानते हैं। पर उदयकाल में चन्द्रमा की कक्षा को सूर्य की कक्षा से ऊपर माना जाता था। इस कक्षाक्रम का समर्थन समवायाग और प्रश्न-व्याकरणाग से भी होता है। इस ग्रन्थो में तारा, सूर्य, चन्द्रमा, नक्षत्र, बुध, शुक्र, मगल, गुरु और शनि की कक्षाओ को क्रमशः ऊपर-ऊपर बताया गया है।

सामान्यतया भारतीय आचार्यों की यह प्रारम्भिक कल्पना स्वाभाविक मालूम पडती है, क्योकि जब सूर्य दिखलाई पडता है उस समय नक्षत्र हमारे दृष्टिगोचर नही होते अतः सूर्य का गमन नक्षत्रकक्षा के अन्दर नही होता है, यह सहज कल्पना दोपयुक्त नहीं कही जा सकती है। लेकिन चन्द्रमा के सम्बन्ध में सूर्य के गमनवाला नियम काम नही करता है, इसलिए चन्द्रमा के गमन के समय उस के पास के नक्षत्र दिखलाई पडते हैं। इस का प्रधान कारण यही ज्ञात होता है कि चन्द्रमा नक्षत्रो के मध्य से गमन करता है। तात्पर्य यह है कि चन्द्रमा ऊँचा होने के कारण नक्षत्र-प्रदेशो से गुजरता है, इसलिए उस के गमनसमय में नक्षत्र दिखाई पडते हैं। सूर्य नक्षत्रो से बहुत नीचे है, इसलिए उस के गमनकाल में नक्षत्र दिखलाई नही पडते हैं। इसी प्रकार बुध, शुक्र आदि की कक्षाएँ भी युक्तियुक्त प्रतीत होती हैं।

उदयकाल के साहित्य में ग्रहकक्षा के सम्बन्ध में विभिन्न प्रकार के विचार मिलते हैं। अगले साहित्य में ये ही सिद्धान्त विकसित हो कर आधुनिक रूप को प्राप्त हुए हैं।

नक्षत्र विचार

उदयकाल में भारतीयो को नक्षत्रो का पूर्ण ज्ञान था। इन्होने अपने पर्यवेक्षण-द्वारा मालूम कर लिया था कि सम्पातबिन्दु भरणी का चतुर्थ चरण है, अतएव कृत्तिका से नक्षत्रगणना की जाती थी। कुछ विद्वानों का मत ह

कि उदयकाल में कृत्तिका का प्रथम चरण ही सम्पातबिन्दु था, अतएव उस काल के ज्योतिर्विद् कृत्तिका से नक्षत्र-गणना करते थे। ऋग्वेद में वर्तमान प्रणाली के अनुसार नक्षत्र-चर्चा मिलती है—

अमी य ऋक्षा निहितास उच्चा नक्तन्दहश्रे कुहचिद्दिवेयुः।
अदब्धानि वरुणस्य व्रतानि विचाकशच्चन्द्रमा नक्तमेति ॥

इस मन्त्र में रात्रि में नक्षत्र-प्रकाश एवं दिन में नक्षत्र प्रकाशाभाव का निरूपण किया गया है।

वाजनावती सूर्यस्य योषा चित्रा मघा राय ईशे वसूनां।

—ऋ० सं० ७ ७ ५

इस मन्त्र में चित्रा और मघा का स्पष्ट उल्लेख किया गया है। यजुर्वेद के एक मन्त्र में २७ नक्षत्रों को गन्धर्व कहा गया है; जिस से ध्वनित होता है कि उस समय २७ नक्षत्रों का प्रचार था; पर यह जानना कठिन है कि नक्षत्रों की गणना किस प्रकार की जाती थी। अथर्ववेद में कृत्तिकादि २८ नक्षत्रों का वर्णन करते हुए लिखा है—

चित्राणि साकं दिवि रोचनानि सरीसृपाणि भुवने जवानि।
अष्टाविंशं सुमतिमिच्छमानो अहानि गीर्भिः सपर्यामि नाकम् ॥
सुहवं मे कृत्तिका रोहिणी चाऽस्तु भद्रं मृगशिरः शमार्द्रा।
पुनर्वसू सूनृता चारु पुष्यो भानुराश्लेषा अयनं मघा मे ॥
पुण्यं पूर्वाफाल्गुन्यौ चात्र हस्तश्चित्रा शिवा स्वातिः सुखो मे।
अनुराधो विशाखे सुहवानुराधा ज्येष्ठा सुनक्षत्रमरिष्टं मूलम् ॥
अन्नं पूर्वा रासन्तां मे आषाढा ऊर्जं देव्युत्तर आ वहन्तु।
अभिजिन्मे रासतां पुण्यमेव श्रवणः श्रविष्ठा कुर्वतां सुपुष्टिम् ॥
आ मे महच्छतभिषग्वरीय आ मे द्वया प्रोष्ठपदा सुशर्म।
आ रेवती चाश्वयुजौ भगं मे रयिं भरण्य आ वहन्तु ॥

—अ० सं० १९.७

इसी प्रकार तैत्तिरीय श्रुति में नक्षत्रों के नाम, उस के देवता, वचन

और लिंग भी बताये गये हैं। इस के अनुसार कृत्तिका का अग्नि देवता, स्त्रीलिंग और बहुवचन, रोहिणी का प्रजापति देवता, स्त्रीलिंग और एकवचन; मृगशिर का सोम देवता, नपुंसक लिंग और एकवचन, आर्द्रा का रुद्र देवता, स्त्रीलिंग और एकवचन, पुनर्वसु का आदित्य देवता, पुल्लिग और द्विवचन; तिष्य या पुष्य का बृहस्पति देवता, पुल्लिग और एकवचन; आश्लेषा का सर्प देवता, स्त्रीलिंग और बहुवचन; मघा का पितृ देवता, स्त्रीलिंग और बहुवचन, पूर्वाफाल्गुनी या फाल्गुनी का भग देवता, स्त्रीलिंग और द्विवचन; हस्त का सविता देवता, पुल्लिग और एकवचन, चित्रा का इन्द्र देवता, स्त्रीलिंग और एकवचन; स्वाति या निष्ट्या का वायु देवता, स्त्रीलिंग और एकवचन, विशाखा का इन्द्राग्नि देवता, स्त्रीलिंग और द्विवचन; अनुराधा का मित्र देवता, स्त्रीलिंग और बहुवचन, ज्येष्ठा का इन्द्र देवता, स्त्रीलिंग और एकवचन, मूल, विचृती या मूलवर्हिणी का निर्ऋति देवता, स्त्रीलिंग और एकवचन, आषाढा या पूर्वाषाढा का अप् देवता, स्त्रीलिंग और बहुवचन; आषाढा या उत्तराषाढा का विश्वेदेव देवता, स्त्रीलिंग और बहुवचन, अभिजित् का ब्रह्म देवता, नपुंसक लिंग और एकवचन, श्रवण या श्रोणा का विष्णु देवता, स्त्रीलिंग और एकवचन, श्रविष्ठा का वसु देवता, स्त्रीलिंग और बहुवचन, शतभिषक् का इन्द्र या वरुण देवता, पुल्लिग और एकवचन; प्रोष्ठपद या पूर्वप्रोष्ठपद का अज-एकपाद देवता, पुल्लिग और बहुवचन; प्रोष्ठपद या उत्तरप्रोष्ठपद का अहिर्बुध्न्य देवता, पुल्लिग और बहुवचन, रेवती का पूषा देवता, स्त्रीलिंग और एकवचन, अश्वयुज् या अश्विनी का अश्विन देवता, स्त्रीलिंग और द्विवचन एवं भरणी का यम देवता, स्त्रीलिंग और बहुवचन बताया है। इसी स्थान पर नक्षत्रो के फलाफलो का सुन्दर विवेचन किया है। शतपथ ब्राह्मण और ऐतरेय संहिता में भी यही क्रम मिलता है। उदयकाल के अन्तिम भाग में नक्षत्रो के फलाफल में पर्याप्त विकास हो गया था। अथर्ववेद में मूल नक्षत्र में उत्पन्न बालक की दोष-शान्ति के लिए अग्नि आदि देवताओं से प्रार्थनाएँ की गयी है—

ज्येष्ठघ्न्यां जातो विचृतोर्यमस्य मूलबर्हणात् परिपालयेनम् ।
अत्येनं नेषद्दुरितानि विश्वा दीर्घायुत्वाय शतशारदाय ॥

इस मन्त्र में एक मूलसंज्ञक नक्षत्रों में जात बालक के दोष को दूर करने एवं उस के कल्याण के लिए अग्निदेव से प्रार्थना की गयी है। उदयकाल में नक्षत्रो का जितना परिज्ञान भारतीयो को था उतना अन्य देशवासियो को नहीं।

वाजसनेयी संहिता में 'प्रज्ञानाय नक्षत्रदर्शं यादसे गणकं' सूक्ति आयी है। इस मे प्रयुक्त नक्षत्रदर्श और गणक ये दो शब्द बहुत उपयोगी हैं, इन से प्रकट होता है कि उदयकाल में ज्योतिष की मीमासा शास्त्रीय दृष्टि से की जाने लगी थी।

प्रश्नव्याकरणाग में नक्षत्रो के फलो का विशेष ढग से निरूपण करने के लिए इन का कुल, उपकुल और कुलोपकुलो में विभाजन कर वर्णन किया गया है—

ता कहते कुला उवकुला कुलावकुला आहितेत्ति वदेज्जा ?

तत्थ खलु इमा बारस कुला बारस उवकुला चत्तारि कुलावकुला पण्णत्ता ॥ बारस कुला तं जहा—धणिट्ठा कुलं उत्तराभद्दवयाकुल, अस्सिणीकुलं, कत्तियाकुलं, मिगसिरकुलं, पुस्सोकुलं, महाकुलं, उत्तराफग्गुणीकुल, चित्ताकुलं, विसाहाकुलं, मूलोकुलं, उत्तरापाढाकुलं ॥ बारस उवकुला पण्णत्ता तं जहा—सवणो उवकुल, पुव्वभद्दवया उवकुल, रेवतिउवकुलं, भरणिउवकुलं, रोहिणीउवकुलं, पुणावसुउवकुल, असलेसाउवकुलं, पुव्वफग्गुणीउवकुल, हत्थे उवकुलं, साति उवकुलं. जेट्ठाउवकुलं, पुव्वासाढा उवकुलं ॥ चत्तारि कुलावकुल पण्णत्ता त जहा—अभिजिति कुल.वकुलं, सतभिसया कुलावकुलं, अद्दाकुलावकुल, अणुराहा कुलावकुलं।

—प्र० व्या० १०.५

अर्थात्—बारह नक्षत्र कुल, बारह उपकुल और चार नक्षत्र कुलोपकुल संज्ञक है। धनिष्ठा, उत्तराभाद्रपद, अश्विनी, कृत्तिका, मृगशिर, पुष्य, मघा, उत्तराफाल्गुनी, चित्रा, विशाखा, मूल एव उत्तराषाढा ये नक्षत्र कुलसंज्ञक,

श्रवण, पूर्वाभाद्रपद, रेवती, भरणी, रोहिणी, पुनर्वसु, आश्लेषा, पूर्वाफाल्गुनी, हस्त, स्वाति, ज्येष्ठा एवं पूर्वाषाढा ये नक्षत्र उपकुलसंज्ञक और अभिजित्, शतभिषा, आर्द्रा एवं अनुराधा कुलोपकुलसंज्ञक हैं। यह कुलोपकुल का विभाजन पूर्णमासी को होने वाले नक्षत्रो के आधार पर किया गया है। साराश यह है कि श्रावण मास के धनिष्ठा, श्रवण और अभिजित्, भाद्रपद मास के उत्तराभाद्रपद, पूर्वाभाद्रपद और शतभिष; क्वार या आश्विन मास के अश्विनी और रेवती, कार्त्तिक मास के कृत्तिका और भरणी, अगहन या मार्गशीर्ष मास के मृगशिर और रोहिणी, पौषमास के पुष्य, पुनर्वसु और आर्द्रा, माघ मास के मघा और आश्लेषा, फाल्गुन मास के उत्तराफाल्गुनी और पूर्वाफाल्गुनी, चैत्र मास के चित्रा और हस्त, वैशाख मास के विशाखा और स्वाति, ज्येष्ठ मास के मूल, ज्येष्ठा और अनुराधा एवं आषाढ मास के उत्तराषाढा और पूर्वाषाढा नक्षत्र बताये गये हैं। प्रत्येक मास की पूर्णमासी को उस मास का प्रथम नक्षत्र कुलसंज्ञक, दूसरा उपकुलसज्ञक और तीसरा कुलोपकुलसज्ञक होता है। अर्थात् श्रावण मास की पूर्णिमा को धनिष्ठा पडे तो कुल, श्रवण हो तो उपकुल और अभिजित् हो तो कुलोपकुलसंज्ञावाला होता है। इसी प्रकार आगे के मास वाले नक्षत्रों की संज्ञा का ज्ञान किया जा सकता है। इस सज्ञा का प्रयोजन उस महीने के फलादेश से बताया गया है। नक्षत्रो के दिशाद्वार का प्रतिपादन करते हुए समवायांग में बताया है कि—

कत्तिआइया सत्तणक्खत्ता पुव्वदारिआ। महाइआ सत्तणक्खत्ता दाहिणदारिया। अणुराहाइआ सत्तणक्खत्ता अवरदारिया। धणिट्ठाइआ सत्तणक्खत्ता उत्तरदारिआ। —स० अ० सं० ७ सू० ५

अर्थ—कृत्तिका, रोहिणी, मृगशिर, आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य और आश्लेषा ये सात नक्षत्र पूर्व द्वार, मघा, पूर्वाफाल्गुनी, उत्तराफाल्गुनी, हस्त, चित्रा, स्वाति और विशाखा दक्षिण द्वार, अनुराधा, ज्येष्ठा, मूल, पूर्वाषाढा, उत्तराषाढा, अभिजित् और श्रवण ये सात नक्षत्र पश्चिम द्वार एव धनिष्ठा,

शतभिषा, पूर्वाभाद्रपद, रेवती, अश्विनी और भरणी ये सात नक्षत्र उत्तर द्वार वाले हैं।

ठाणांग में चन्द्रमा के साथ स्पर्शयोग करने वाले नक्षत्रों का कथन करते हुए बताया गया है कि—

अट्ठ नक्खत्ताणं चंदेणसद्धिं पमद्दं जोगं जोएइ तं० कत्तिया रोहिणी पुणव्वसु महा चित्ता विसाहा अणुराहा जिट्ठा।

—ठा० अं० ठा० ८ सू० १००

अर्थात्—कृत्तिका, रोहिणी, पुनर्वसु, मघा, चित्रा, विशाखा, अनुराधा और ज्येष्ठा ये आठ नक्षत्र स्पर्शयोग करने वाले हैं। इस योग का फल भी तिथि के हिसाब से बताया गया है। इसी प्रकार नक्षत्रों की अन्य संज्ञाएँ तथा उत्तर, पश्चिम, दक्षिण और पूर्व दिशा की ओर से चन्द्रमा के साथ योग करने वाले नक्षत्रों के नाम और उन के फल विस्तारपूर्वक बताये गये हैं।

उदयकाल के समग्र साहित्य पर दृष्टिपात करने से ज्ञात होता है कि इस युग में नक्षत्रज्ञान की इतनी उन्नति हुई थी जिस से नक्षत्रों की ताराएँ और उन के आकार भी विचार के विषय बन गये थे। हस्त नक्षत्र की पाँच ताराएँ हाथ के आकार की है, जिस प्रकार हाथ में पाँच अँगुलियाँ होती हैं उसी प्रकार हस्त की पाँच ताराएँ भी। तैत्तिरीय ब्राह्मण में नक्षत्रों की आकृति प्रजापति के रूप में मानी गयी है—

यो वै नक्षत्रियं प्रजापतिं वेद। उभयोरेनं लोकयोर्विदुः। हस्त एवास्य हस्तः। चित्रा शिरः। निष्ट्या हृदयं। ऊरू विशाखे। प्रतिष्ठानुराधाः। एष वै नक्षत्रियः प्रजापति.। —तै० ब्रा० १.५.२

अर्थात्—नक्षत्ररूपी प्रजापति का चित्रा सिर, हस्त हाथ, निष्ट्या—स्वाति हृदय, विशाखा जंघा एवं अनुराधा पाद हैं। इसी ग्रन्थ में एक स्थान पर आकाश को पुरुषाकार माना गया है। इस पुरुष का स्वाति हृदय बताया गया है। शतपथ ब्राह्मण और तैत्तिरीय ब्राह्मण में नक्षत्रों की आकृति का बड़ा सुन्दर विवेचन है। इन ग्रन्थों से सुस्पष्ट सिद्ध होता है कि प्राचीन

काल में नक्षत्रविद्या का भारत में अधिक विकास था। इस के प्रभाव और गुणों का वर्णन भी अथर्ववेद के कई मन्त्रो में मिलता है। शतपथ ब्राह्मण के एक मन्त्र में बतलाया गया है कि सप्तर्षि नक्षत्रपुंज जाज्वल्यमान नक्षत्र-पुंज है। तैत्तिरीय ब्राह्मण के कुछ मन्त्रो में अग्न्याधान, विशेष यज्ञ एवं अन्य धार्मिक कृत्यो के लिए शुभाशुभ नक्षत्रों का कथन किया गया है। अतएव स्पष्ट है कि उदयकाल में नक्षत्रविद्या उन्नति की चरम सीमा पर थी, इसी लिए इस युग में ज्योतिष का अर्थ नक्षत्रविद्या किया जाता था। वाजसनेयी संहिता और सूयगडाग की ज्योतिषचर्चा से उपर्युक्त कथन की पुष्टि सम्यक् प्रकार हो जाती है।

ग्रहविचार

यों तो वैदिक साहित्य में स्पष्ट रूप से ग्रहो का उल्लेख नही मिलता है। केवल सूर्य और चन्द्रमा का उल्लेख प्राय सर्वत्र पाया जाता है पर ये भी ग्रह रूप में माने गये प्रतीत नही होते हैं। स्थान-स्थान पर देवता के रूप में इन से प्रार्थनाएँ की गयी हैं। ऋग्वेद के निम्न मन्त्र से ग्रहो के सम्बन्ध में पर्याप्त ज्ञान हो जाता है—

अमी ये पञ्चोक्षणो मध्ये तस्थुर्महो दिव'।
देवत्रा नु प्रवाच्यं सध्रीचीनानि वावृतुर्वित्तं मे अस्य रोदसी॥

—ऋ० सं० १ १०५. १०

अर्थात्—ये महाप्रबल पाँच [देव] विस्तीर्ण द्युलोक के मध्य में रहते हैं, मैं उन देवो के सम्बन्ध में स्तोत्र तैयार करना चाहता हूँ। वे सब एक साथ आनेवाले थे, लेकिन आज वे सब निकल गये।

इस मन्त्र में देव शब्द प्रकट रूप से नही आया है। फिर भी पूर्वापर सन्दर्भ से उस का अध्याहार करना ही पडता है। यहाँ जो एक साथ आने वाले इस पद का प्रयोग किया गया है, इस से भौमादि पाँच ग्रह सिद्ध होते हैं। क्योंकि भौमादि पाँच ग्रह आकाश में कभी-कभी एक साथ भी दिखलाई पडते हैं। यदि 'दिड्मध्ये' पद का अर्थ दिनमध्ये किया जायेगा तो दोष

आयेगा, क्योकि दिन में सब ग्रह दिखाई नही देते है, वल्कि अस्तंगत ग्रह को छोड शेप सभी ग्रह रात्रि मे दिखलाई पडते है। वेदमन्त्रो मे देव शब्द का अर्थ सृष्टि-चमत्कार और प्रत्यक्ष तेज ही माना गया है, अतएव उपर्युक्त मन्त्र में देव शब्द का तात्पर्य देव-विशेप नही, प्रत्युत धात्वर्थ की अपेक्षा चमत्कार या प्रकाश है। अतएव सुस्पष्ट है कि प्रकाशयुक्त पाँच ग्रह भौमादि ग्रह ही है। इस का अन्य कारण यह भी है कि वेदो में अश्विनी आदि दो देव अथवा द्वादश देव या तैंतीस देवो का ही उल्लेख मिलता है। पाँच देव कही भी देवरूप में नही आये है। ऋग्वेद के १०वें मण्डल के ५५वें सूक्त में भी पाँच देवो का अर्थ पाँच ग्रह ही लिया गया है। वहाँ उन पाँच देवो का घर नक्षत्रमण्डल में वताया है, इस से सिद्ध है कि पाँच देव भौमादि पाँच ग्रहो के ही द्योतक है।

एक वात यह भी है कि उदयकाल में प्रकाशमान शुक्र और गुरु भारतीयो की दृष्टि से ओझल नही रहे होंगे। उस समय उन दोनो का साधारण ज्ञान ही नही होगा, किन्तु उन के सम्बन्ध में विशेप वात भी जानते होंगे। शुक्र का ज्ञान उस समय विशेप रूप से था। ऋग्वेद के कई मन्त्रो से ध्वनित होता है कि प्रति वीस मास में नौ मास शुक्र प्रात काल में पूर्व दिशा की ओर दिखलाई पड़ता था, जिस से ऋपिगण स्नान, पूजा आदि के समय को ज्ञात कर अपने दैनिक कार्यो को सम्पन्न करते थे। वे उसे प्रकाशमान नक्षत्र नही समझते थे, वल्कि उसे ग्रह के रूप में मानते थे। वैदिक साहित्य से यह भी पता लगता है कि दो-तीन महीने तक वृहस्पति शुक्र के पास ही भ्रमण करता था। इन दो-तीन महीनो मे कुछ दिन तक शुक्र के वहुत नजदीक रहता है, परन्तु शुक्र की गति तेज होने के कारण वृहस्पति पीछे रह जाता है और शुक्र पूर्व की ओर आगे वढ जाता है। इस गमन का फल यह होता है कि शुक्र पूर्व की ओर उदित होता है और उसी काल में वृहस्पति पश्चिम की ओर अस्त को प्राप्त होता है। इस अस्त और उदय की व्यवस्था के पूर्व इतना निश्चित है कि कुछ समय तक दोनो साथ रहते

है। इस परिस्थिति के अध्ययन से वैदिक साहित्य में गुरु को ग्रह माना गया हो, इस में तनिक भी सन्देह नही है। उदयकाल में शुक्र और गुरु ग्रह माने जाते थे, इस कल्पना पर निम्न मन्त्र से सुन्दर प्रकाश पडता है—

ईर्मान्यद्वपुषे वपुश्चक्रं रथस्य येमथु.।
पर्यन्या नाहुषा युगा मह्वा रजांसि दीयथ.॥

—ऋ० सं० ५.७३.३

अर्थ—हे अश्विन्, तुम ने अपने रथ के एक तेजस्वी चक्र को सूर्य को शोभायमान करने के लिए रख दिया है और दूसरे चक्र से तुम लोक के चारो ओर घूमते हो। उपर्युक्त मन्त्र में एक तेजस्वी चक्र को सूर्य के पास रख दिया है, इस से शुक्र का ग्रहण किया गया है और दूसरे चक्र से गुरु का ग्रहण किया गया है। निरुक्त में द्युस्थानीय देवताओं में 'अश्विनौ'की गणना की गयी है और उन की स्तुति का काल अर्धरात्रि के बाद का बताया गया है।

ऋग्वेद में एक स्थान पर 'अश्विनौ' का सम्बन्ध उषा से बतलाया है। निरुक्त और ऋग्वेद की इस चर्चा का ज्योतिर्दृष्टिकोण से विश्लेषण किया जाये तो ज्ञात होगा कि 'अश्विनौ' गुरु और शुक्र ये दो ग्रह है, अन्य कोई देव नही।

ऋग्वेद संहिता ४थे मण्डल के ५०वें सूक्त मे गुरु के सम्बन्ध में स्वतन्त्र कल्पना भी मिलती है। इस कल्पना का तैत्तिरीय ब्राह्मण के निम्न मन्त्र से भी समर्थन होता है—

बृहस्पति. प्रथम जायमान । तिष्यं नक्षत्रमयि संबभूव ॥

—तै० ब्रा० ३.१ १

अर्थात्—बृहस्पति प्रथम तिष्य नक्षत्र से उत्पन्न हुआ था। इस का परम शर १ अश ३० कला था, इस लिए २७ नक्षत्रों में से इस के निकट पुष्य, मघा, विशाखा, अनुराधा, शतभिष और रेवती थे। गुरु और तिष्य—पुष्य नक्षत्र का योग इतना निकट है कि दोनों का भेद निर्वारण करना कठिन है, इसी से पुष्य नक्षत्र से गुरु की उत्पत्ति हुई, यह कल्पना प्रसूत हुई होगी। पुष्य नक्षत्र का स्वामी भी गुरु माना गया है, अतएव सिद्ध होता है कि

उदयकाल में गुरु की गति का ज्ञान था, इस से उस का ग्रहत्व स्वयं सिद्ध है।

उदयकाल के अन्तिम भाग में ग्रहो के सम्बन्ध में ज्योतिषशास्त्र की दृष्टि से विभिन्न पहलुओ-द्वारा विचार होने लग गया था। ठाणाग में अगारक, व्याल, लोहिताक्ष, शनैश्चर, कनक, कनक-कनक, कनकवितान, कनकसंतानक, सोमसहित, आश्वासन, कज्जोवग, कर्वट, अयस्कर, दुन्दुभक, शख, शंखवर्ण, इन्द्राग्नि, धूमकेतु, हरि, पिंगल, बुध, शुक्र, बृहस्पति, राहु, अगस्ति, भानवक्र, काश, स्पर्श, धुर, प्रमुख, विकट, विसन्धि, नियल, पयिल, जटिलक, अरुण, अगिल, काल, महाकाल स्वस्तिक, सौवस्तिक, वर्द्धमान, पुष्यमानक, अंकुश, प्रलम्ब, नित्यलोक, नित्योदयित, स्वयंप्रभ, उसम, श्रेयंकर, क्षेमकर, आभंकर, प्रभकर, अपराजित, अरज, अशोक, विगतशोक, विमल, विमुख, वितत, वित्रस्त, विशाल, शाल सुव्रत, अनिवर्तक, एकजटी, द्विजटी, करकरीक, राजगल, पुष्पकेतु एवं भावकेतु आदि ८८ ग्रहो के नाम बताये हैं।[1]

समवायाग मे भी उपर्युक्त ८८ ग्रहो का समर्थन मिलता है—

एगमेगस्सण चंदिम सूरियस्स अट्ठासीइ अट्ठासीइ महग्गहा परिवारो प०। —स० ८८,१

अर्थात्—एक चन्द्र और सूर्य का परिवार ८८ महाग्रहो का है।

प्रश्नव्याकरणाग में सूर्य, चन्द्र, मंगल, बुध, गुरु, शुक्र, शनि, राहु और केतु या धूमकेतु इन नौ ग्रहो के सम्बन्ध में प्रकाश डाला गया है। अतएव उदयकाल के अन्त में ग्रहो का विचार शास्त्रीय दृष्टि से होने लग गया था।

राशिविचार

यद्यपि ऋग्वेद में राशि विचार स्पष्ट रूप में नही मिलता है, पर उस के निम्न मन्त्र-द्वारा राशियो की कल्पना की जा सकती है—

द्वादशारं नहि तज्जराय ववर्त्ति चक्रं परिद्यामृतस्य।
आपुत्रा अग्ने मिथुनासो अत्र सप्त शतानि विंशतिश्च तस्थु ॥
—ऋ० १, १६४, ११

---

१ देखें, ठा० पृ० ९८-१००।

अर्थात्—इस मन्त्र में 'द्वादशार' शब्द से द्वादश राशियो का ग्रहण किया गया है। वैसे तो ऋग्वेद में और भी दो-एक जगह चक्र शब्द आया है, जो राशिचक्र का बोधक ही प्रतीत होता है।

द्वादश प्रधयश्चक्रमेकं त्रीणि नभ्यानि क उ तच्चिकेत।

—ऋ० १, १६४, ४९

स्पष्ट आगम प्रमाण के अभाव में भी युक्ति-द्वारा इतना तो मानना ही पडेगा कि आकाशमण्डल का राशि एक स्थूल अवयव और नक्षत्र सूक्ष्म अवयव हैं। जब भारतीयो ने सौर-जगत् के सूक्ष्म अवयव नक्षत्रो का इतनी गम्भीरता के साथ ऊहापोह किया था, तब क्या वे स्थूलावयव राशि के बारे मे कुछ भी विचार नही करते होंगे? साधारणत बुद्धि-द्वारा इस प्रश्न का उत्तर यही मिलेगा कि प्राचीन भारतीयो ने जहाँ सूक्ष्म अवयव नक्षत्रो को साहित्यिक मूर्तिमान् रूप प्रदान किया है, वहाँ स्थूल अवयव राशियो को भी अवश्य साहित्य का मूर्त्तिमान् रूप प्रदान किया होगा। एक दूसरी बात यह भी है कि आज हमारा प्राचीन सभी साहित्य उपलब्ध भी नही है। सम्भवत जिस ग्रन्थ में राशियो का विवेचन किया गया हो, वह ग्रन्थ नष्ट हो गया हो या किसी प्राचीन ग्रन्थागार में पडा अन्वेषको की बाट जोह रहा हो।

कोई भी निष्पक्ष ज्योतिष का विद्वान् उदयकाल के अन्य ज्योतिष-सिद्धान्तो के विवरणो को देख कर यह मानने को तैयार नही होगा कि उस काल में राशियो का प्रचार नही था अथवा भारतीय लोग राशिज्ञान से अपरिचित थे। आदिकालीन वेदाग-ज्योतिष और ज्योतिष्करण्डक में लग्न का सुस्पष्ट वर्णन है। कुछ लोग चाहे उसे नक्षत्र-लग्न मानें या चाहे राशिलग्न, पर इतना तो मानने के लिए बाध्य होना पडेगा कि उदयकाल में राशियो का प्रचार था। साहित्य के अभाव में राशियो के ज्ञान के अभाव को नही स्वीकार किया जा सकता है।

ग्रहण विचार

ऋग्वेद संहिता के ५वें मण्डलान्तर्गत ४०वें सूत्र में सूर्यग्रहण और चन्द्रग्रहण का वर्णन मिलता है। इस स्थान पर ग्रहणो की उपद्रव-शान्ति के लिए इन्द्र आदि देवताओ से प्रार्थनाएँ की गयी है। ग्रहण लगने का कारण राहु और केतु को ही माना गया है।

समवायाग के १५वें समवाय के ३रे सूत्र में राहु के दो भेद बतलाये हैं—नित्य राहु और पर्वराहु। नित्यराहु को कृष्णपक्ष और शुक्लपक्ष का कारण तथा पर्वराहु को चन्द्रग्रहण का कारण माना है। केतु, जिस का ध्वजदण्ड सूर्य के ध्वजदण्ड से ऊँचा है, अत भ्रमणवश यही केतु सूर्यग्रहण का कारण होता है। अभिप्राय यह है कि सूर्यग्रहण और चन्द्रग्रहण की मीमासा भी उदयकाल में साहित्य के अन्तर्गत शामिल हो गयी थी।

विषुव और दिनवृद्धि का विचार

वेदो में दिनरात्रि की समानता का द्योतक विषुव कही नही आया है। लेकिन तैत्तिरीय ब्राह्मण और ऐतरेय ब्राह्मण में विषुव का कथन किया गया है—

यथा वै पुरुष एवं विषुवांस्तस्य यथा दक्षिणोऽर्ध एवं पूर्वार्धो विषुवन्तो यथोत्तरोऽर्ध एवमुत्तरोऽर्धो विषुवतस्तस्मादुत्तर इत्याचक्षते प्रबाहुक्सतः शिर एव विषुवान्।

—ऐ० ब्रा० १८, २२

अर्थात्—इस मन्त्र में विषुव को पुरुष की उपमा दी गयी है। जिस प्रकार दक्षिणाग और वामांग होते हैं इसी प्रकार विषुवान् सवत्सर का सिर है पुरुष के और उस से आगे-पीछे आने वाले छह-छह महीने दक्षिण और वामाग है। तैत्तिरीय ब्राह्मण में कहा है—

संतातिर्वा एते ग्रहा.। यत्पर समानः। विषुवान् दिवाकीर्त्यं।
यथा शालायै पक्षसी। एवं संवत्सरस्य पक्षसी॥

—तै० ब्रा० १.२.३

अर्थात् संवत्सर रूपी पक्षी का विषुवान् सिर है और उस से आगे-पीछे आने वाले छह-छह महीने उस के पंख है। जैन आगम ग्रन्थो में भी विषुवान् के सम्बन्ध में संक्षिप्त चर्चा मिलती है।

ऋग्वेद के मन्त्र में प्रार्थना की गयी है कि जिस प्रकार सूर्य दिन की वृद्धि करता है, उसी प्रकार हे अश्विन्, आयु वृद्धि करिए। दिनवृद्धि और दिनमान की चर्चा गोपथ और शतपथ ब्राह्मणों में बीज रूप से मिलती है। उदयकाल के अन्तिम भाग की रचना समवायाग में दिन-रात की व्यवस्था पर अच्छा ऊहापोह है—

वाहिराओ उत्तराओणं कट्ठाओ सूरिए पढमं छम्मासं अयमाणे चोयालीस इमे मंडलगते अट्ठासीति एगसट्ठिभागे मुहुत्तस्स दिवसखेत्तस्स निवुड्ढेत्ता रयणिखेत्तस्स अभिनिवुड्ढेत्ता सूरिए चारं चरइ; दक्खिण कट्ठाओणं सूरिए दोच्चं छम्मासं अयमाणे चोयालीसतिमे मंडलगते अट्ठासीइ एगसट्ठिभागे मुहुत्तस्सं रयणिखेत्तस्स निवुड्ढेत्ता दिवसखेत्तस्स अभिनिवुड्ढित्ताणं सूरिए चारं चरइ।

—स० ८८.४

अर्थात्—सूर्य जब दक्षिणायन में निषध पर्वत के अभ्यन्तर मण्डल से निकलता हुआ ४४वें मण्डल—गमनमार्ग में आता है उस समय $\frac{६१}{८८}$मु० दिन कम हो कर रात बढती है—इस समय २४ घटी का दिन और ३६ घटी की रात होती है। उत्तर दिशा में ४४वें मण्डल—गमनमार्ग पर जब सूर्य आता है तब $\frac{६१}{८८}$मु० दिन बढने लगता है और इस प्रकार जब सूर्य ९३वें मण्डल पर पहुँचता है तो दिन परमाधिक अर्थात् ३६ घटी का होता है। यह स्थिति आषाढी पूर्णिमा को घटती है।

सूर्यगडांग में भी दिन-रात की व्यवस्था के सम्बन्ध में संक्षिप्त उल्लेख मिलता है, जो लगभग उपर्युक्त व्यवस्था से मिलता-जुलता है।

इस प्रकार उदयकाल में ज्योतिष के सिद्धान्त अन्य विषयो के साथ लिपिवद्ध किये गये थे।

आदिकाल (ई० पू० ५००—ई० ५०० तक) का सामान्य परिचय

उदयकाल में जहाँ वेद, ब्राह्मण और आरण्यकों में फुटकर रूप से ज्योतिषचर्चा पायी जाती है, वहाँ आदिकाल में इस विषय के स्वतन्त्र ग्रन्थ-रचना की जाने लगी थी। इस युग में शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, ज्योतिष और छन्द ये छह भेद वेदांग के प्रकट हो गये थे। अभिव्यञ्जना की प्रणाली विकसित हो कर ज्ञानभाण्डार का विभिन्न विषयों में वर्गीकरण करने की क्षमता रखने लग गयी थी। इस युग का मानव अपने भाव और विचारों को केवल अपने तक ही सीमित नहीं रखता था, बल्कि वह उन्हें दूसरे तक पहुँचाने के लिए कटिबद्ध था। उदयकाल में वेद, ब्राह्मणादि ग्रन्थ मात्र सामान्य को ले कर चले थे तथा उन के प्रतिपाद्य विषय का लक्ष्य भी एक था, लेकिन इस युग में ज्ञान-भाण्डार की अभिव्यक्ति का मापदण्ड ऊँचा उठा; फलतः ज्योतिष-साहित्य का विकास भी स्वतन्त्र रूप से हुआ। यज्ञों के तिथि, मुहूर्तादि स्थिर करने में इस विद्या की नितान्त आवश्यकता पड़ती थी, इस लिए इस विषय का अध्ययन आदिकाल में व्यापक रूप से हुआ। ई० पू० १००—ई० सु० २०० के साहित्य से ज्ञात होता है कि आदिकाल में ज्योतिष का साहित्य केवल ग्रहनक्षत्रविद्या तक ही सीमित नहीं था, प्रत्युत धार्मिक, राजनीतिक एवं सामाजिक विषय भी इस शास्त्र के आलोच्य विषय बन गये थे तथा उदयकाल में विशृंखलित रूप से प्रचलित ज्योतिष-मान्यताओं का संकलन वेदांग ज्योतिष के रूप में आरम्भ हो गया था।

वेदांग-ज्योतिष के रचनाकाल के सम्बन्ध में विभिन्न मत हैं। प्रो० मैक्समूलर ने इस का रचनाकाल ई० पू० ३००, प्रो० वेबर ने ई० पू० ५००, कोलब्रुक ने ई० पू० १४१० और प्रो० ह्विटनी ने ई० पू० १३३८ बतलाया है। गणित क्रिया करने से वेदांग-ज्योतिष में प्रतिपादित अयन ई० पू० १४०८ में आता है। क्योंकि ई० पू० ५७२ में रेवती तारा

सम्पाती तारा मानी गयी हैं। इस समय उत्तराषाढा के प्रथम चरण में उत्तरायण माना गया है, लेकिन वेदाग-ज्योतिष के निर्माण काल में धनिष्ठारम्भ में उत्तरायण माना जाता था। अर्थात् १$\frac{3}{4}$ नक्षत्र—२३ अश २० कला का अयनान्तर पडता है। सम्पात की गति प्रतिवर्ष ५० कला है, अत उक्त अन्तर १६८० वर्ष में पडेगा। अतएव १६८० − ५७२ = ११०८। विभागात्मक धनिष्ठारम्भी ३०० वर्ष और जोड देने पर ११०८ + ३०० = १४०८ वर्ष हुए। इस गणना के हिसाब से वेदाग-ज्योतिष का रचनाकाल ई० पू० १४०८ हुआ।

निष्पक्ष दृष्टि से विचार करने पर मानना पडेगा कि वेदाग-ज्योतिष में प्रतिपादित तत्त्व अवश्य प्राचीन हैं, पर भाषा आदि कुछ चीजें ऐसी हैं जिस से इस का सकलन काल ई० पू० ५८० वर्ष से पहले मानना उचित नही जँचता।

वेदाग-ज्योतिष में ऋग्वेद, यजुर्वेद और अथर्ववेद ज्योतिष ये तीन ग्रन्थ माने जाते हैं। प्रथम के सग्रहकर्त्ता लगध नाम के ऋषि हैं, इस में ३६ कारिकाएँ हैं। यजुर्वेद ज्योतिष में ४९ कारिकाएँ है, जिन में ३० कारिकाएँ तो ऋग्वेद ज्योतिष की हैं, और १३ नयी आयी हैं। अथर्व ज्योतिष में १६२ श्लोक हैं। इन तीनो ग्रन्थो में फलित की दृष्टि से अथर्व ज्योतिष महत्त्वपूर्ण है।

आलोचनात्मक दृष्टि से वेदाग-ज्योतिष में प्रतिपादित ज्योतिष मान्यताओ को देखने से ज्ञात होगा कि वे इतनी अविकसित और आदि रूप में हैं जिस से उन की समीक्षा करना दुष्कर है। डॉ० जे० बर्गेस ने 'नोट्स ऑन हिन्दू एस्ट्रोनामी' नामक पुस्तक में वेदाग-ज्योतिष के अयन, नक्षत्र-गणना, लग्न-साधन आदि विषयो की आलोचना करते हुए लिखा है कि ईसवी सन् से कुछ शताब्दी पूर्व प्रचलित उक्त विषयो के सिद्धान्त स्थूल हैं। आकाश-निरीक्षण की प्रणाली का आविष्कार इस समय तक हुआ प्रतीत नही होता है, लेकिन इस कथन के साथ इतना स्मरण और रखना होगा

कि वेदाग-ज्योतिष की रचना यज्ञ-यागादि के समय-विधान के लिए ही हुई थी, ज्योतिष-तत्त्वो के प्रतिपादन के लिए नही।

वेदाग-ज्योतिष के आस-पास में रचे गये जैन ज्योतिष के ग्रन्थ सूर्य-प्रज्ञप्ति, चन्द्रप्रज्ञप्ति, जम्बूद्वीप-प्रज्ञप्ति और ज्योतिषकरण्डक इस विषय के स्वतन्त्र ग्रन्थ हैं, इस के अतिरिक्त कल्पसूत्र, निरुक्त, व्याकरण, स्मृतियाँ, महाभारत और जीवाभिगम सूत्र आदि ईसवी सन् से सैकडो वर्ष पूर्व रचित ग्रन्थों में फुटकर रूप से ज्योतिष की अनेक चर्चाएँ आयी है।

इस काल की वैदिक ज्योतिष मान्यता में दक्षिण और उत्तर ध्रुवो में बँधा हुआ भचक्र प्रवह वायु-द्वारा भ्रमण करता हुआ स्वीकार किया गया है। लेकिन जैन मान्यता में सुमेरु को केन्द्र मान ग्रहों के भ्रमण-मार्ग को बताया है। सूर्यप्रदक्षिणा की गति उत्तरायण और दक्षिणायन इन दो भागो में विभक्त है और इन अयनो की वीथियाँ—गमनमार्ग १८४ हैं, जो सुमेरु की प्रदक्षिणा के रूप में गोल किन्तु बाहर की ओर विस्तृत है। इन मार्गों की चौडाई $\frac{४८}{६१}$ योजन है तथा एक मार्ग से दूसरे मार्ग का अन्तराल लगभग दो योजन बताया गया है। इस प्रकार कुल मार्गों की चौड़ाई और अन्तरालो का प्रमाण ५१० से कुछ अधिक है, जो कि ज्योतिष में योजनात्मक सूर्य का भ्रमण-मार्ग कहा गया है। तात्पर्य यह कि सूर्य उत्तर-दक्षिण ५१० योजन के लगभग ही चलता है। निष्कर्ष यह है कि ई० पू० ५००–४०० में भारतीय ज्योतिष में ग्रहभ्रमण के दो सिद्धान्त प्रचलित थे। पहला स्कूल वह था जो पृथ्वी को केन्द्र मान कर प्रवह वायु के कारण ग्रहो का भ्रमण स्वीकार करता था और दूसरा वह था जो सुमेरु को केन्द्र मान कर स्वाभाविक रूप से ग्रहों का गमन मानता था।

भारतीय ज्योतिष के ईसवी पूर्व ५वी शताब्दी के साहित्य का सूक्ष्म दृष्टि से निरीक्षण करने पर ज्ञात होगा कि इस युग में ज्योतिष ने समस्त वेदागो में श्रेष्ठ स्थान प्राप्त कर लिया था। वेदाग-ज्योतिष के प्रारम्भ में शास्त्र का प्राधान्य दिखलाते हुए कहा है—

यथा शिखा मयूराणां नागानां मणयो यथा ।
तद्वद्वेदाङ्गशास्त्राणां ज्योतिषं मूर्धनि स्थितम् ॥

इस युग में ज्योतिष को ज्ञानरूपी शरीर का नेत्र कहा गया है अर्थात् नेत्रो के अभाव मे जैसे शरीर अपूर्ण और व्यर्थ है उसी प्रकार ज्योतिष-ज्ञान के विना अन्य विषयो का ज्ञान अपूर्ण और अनुपयोगी है। इस युग के ज्योतिष-शास्त्र के ज्ञान को व्यवहारोपयोगी होने के साथ-साथ आत्म-कल्याणकारी भी माना गया है। आचार्य गर्ग ने कहा है—

ज्योतिश्चक्रे तु लोकस्य सर्वस्योक्तं शुभाऽशुभम् ।
ज्योतिर्ज्ञानं तु यो वेद स याति परमां गतिम् ॥

अर्थात्—ज्योतिश्चक्र सम्पूर्ण लोक के शुभाशुभ को व्यक्त करनेवाला है, अतः जो ज्योतिषशास्त्र का ज्ञाता है वह परम कल्याण को प्राप्त होता है।

ई० १००—३०० तक के काल में इस शास्त्र की उन्नति विशेष रूप से हुई। कृत्तिकादि नक्षत्र-गणना में राशियो का क्रम निर्धारण नही किया जा सकता था, इस लिए अश्विनी आदि नक्षत्र-गणना प्रचलित हुई। तथा सम्पात तारा रेवती स्वीकृत हो गयी थी। इस काल में ज्योतिष के प्रवर्त्तक निम्न १८ आचार्य हुए, जिन्होने अपने दिव्यज्ञान-द्वारा ज्योतिष के सिद्धान्त-ग्रन्थो का निर्माण किया।

सूर्यः पितामहो व्यासो वसिष्ठोऽत्रिः पराशर. ।
कश्यपो नारदो गर्गो मरीचिर्मनुरङ्गिरा. ॥
लोमश पौलिशश्चैव च्यवनो यवनो भृगुः ।
शौनकोऽष्टादशाश्चैते ज्योतिःशास्त्रप्रवर्त्तका. ॥

—काश्यप

विश्वसृड्नारदो व्यासो वसिष्ठोऽत्रि. पराशर. ।
लोमशो यवन सूर्यश्च्यवन कश्यपो भृगु ॥
पुलस्त्यो मनुराचार्य. पौलिश. शौनकोऽङ्गिराः ।
गर्गो मरीचिरित्येते ज्ञेया ज्योति.प्रवर्त्तकाः ॥ —पराशर

अर्थात्—सूर्य, पितामह, व्यास, वसिष्ठ, अत्रि, पराशर, काश्यप, नारद, गर्ग, मरीचि, मनु, अंगिरा, लोमश, पुलिश, च्यवन, यवन, भृगु एवं शौनक ये १८ ज्योतिषशास्त्र के प्रवर्त्तक बतलाये गये हैं। पराशर ने इन १८ आचार्यों के साथ पुलस्त्य नाम के एक आचार्य को और माना है, अतः इन के मत से १९ आचार्य ज्योतिषशास्त्र के प्रवर्त्तक हैं। नारद ने सूर्य को छोड शेष १७ को ही इस शास्त्र का प्रवर्तक बतलाया है। इन में से कुछ आचार्य संहिता और सिद्धान्त इन दोनो के रचयिता हैं और कुछ सिर्फ एक विषय के। इन के निश्चित समय का पता लगाना कठिन है। श्री सुधाकर द्विवेदी ने वराहमिहिर विरचित पंचसिद्धान्तिका की प्रकाशिका नामक टीका के प्रारम्भ में सूर्यारुण संवाद के कई श्लोक उद्धृत किये हैं तथा उन के सम्बन्ध में बताया है—

"आदि वेदाग रूप ज्ञान पितामह—ब्रह्मा को प्राप्त हुआ, उन्होंने अपने पुत्र वसिष्ठ को दिया। विष्णु ने उस ज्ञान को सूर्य को दिया, वही सूर्यसिद्धान्त नाम से विख्यात हुआ। उस सिद्धान्त को मैं ने (सूर्य ने) मय को दिया वही वसिष्ठ सिद्धान्त है। पुलिश ने निज निर्मित सिद्धान्त को गर्ग आदि मुनियो को बतलाया। मै ने (सूर्य ने) शापग्रस्त हो कर यवन जाति में जन्म पाकर रोमक को रोमकसिद्धान्त बतलाया। रोमक ने अपने नगर में उस का प्रचार किया।"

श्री रजनीकान्त शास्त्री ने सूर्यसिद्धान्त के प्रारम्भ में आयी हुई मय की कथा को रूपक बतलाया है। उन का कथन है कि मय नामक कोई यूनानी इस देश में ज्योतिष का ज्ञान प्राप्त करने के लिए आया था। जब वह इस शास्त्र का मर्मज्ञ हो कर अपने यहाँ गया तो उसी ने इस का वहाँ प्रचार किया। इस से स्पष्ट है कि ई० पू० २००—ई० १०० तक के काल में ही भारतीय ज्योतिष का प्रचार विदेशो में होने लग गया था।

कौटिल्य के अर्थशास्त्र से पता चलता है कि आदिकाल के ज्योतिषी हर तरह के ज्योतिष के और अन्य गणितो से पूर्ण परिचित होते थे। शरीर के फडकने का क्या अर्थ है, स्वप्न का फल कैसा होता है, विभिन्न प्रकार

के शुभ कर्मों के करने का शुभ मुहूर्त कौन-सा है, युद्ध किस दिन करना चाहिए, सेनापति कौन हो, जिस से युद्ध में सफलता मिले। इस युग का ज्योतिषी केवल शुभाशुभ समय से ही परिचित नही होता था, बल्कि वह प्राकृतिक ज्योतिष के आधार पर हाथी, घोडा एवं खड्ग आदि के इंगितों से भावी शुभाशुभ फल का निर्देश करता था।

ई० पू० १००–ई० ३०० तक के ज्योतिष-विषयक साहित्य का अध्ययन करने से पता चलता है कि इस काल में आलोचनात्मक दृष्टि से ज्योतिष का अध्ययन ही नही होता था, बल्कि इस शास्त्र के वेत्ताओ की भी आलोचनाएँ होने लग गयी थी। यह आलोचना का क्षेत्र सीमित नही हुआ, किन्तु ईसवी सन् की ५वी शताब्दी में होने वाले आर्यभट्ट और लल्ल-जैसे धुरन्धर ज्योतिर्विदो ने सिद्धान्तगणित से हीन ज्योतिषी की खिल्ली उडायी है। माण्डवी की निम्न आलोचना प्रसिद्ध है—

दशदिनकृतपापं हन्ति सिद्धान्तवेत्ता त्रिदिनजनितदोष तन्त्रविज्ञ' स एव।
करण-भगणवेत्ता हन्त्यहोरात्रदोषं जनयति वहुपाप तत्र नक्षत्रसूची॥

अर्थात्—सिद्धान्तगणित को जाननेवाला दस दिन के किये गये पापो को, तन्त्रगणित का वेत्ता तीन दिन के किये गये पापो को एवं करण और भगण का ज्ञाता एक दिन के किये गये पाप को नष्ट करता है। पर केवल नक्षत्रो का ज्ञाता एक ज्योतिष के वास्तविक तत्त्वो की अनभिज्ञता के कारण अनेक प्रकार के पापो को उत्पन्न करता है। अभिप्राय यह है कि ईसवी सन् की ४थी और ५वी सदी में सामान्य ज्योतिषियो को नक्षत्रसूची—मूर्ख तक कह कर निन्दा की जाने लगी थी।

आदिकाल के अन्त में भारतीय ज्योतिष ने अनेक संशोधन देखे। ईसवी सन् की ५वी सदी में होने वाले आर्यभट्ट ने इस शास्त्र में एक नयी क्रान्ति की। उस ने अपनी अप्रतिम प्रतिभा द्वारा अनेक मौलिक सिद्धान्तों के साथ-साथ ग्रहो को स्थिर और पृथ्वी को चल सिद्ध किया तथा इस आधार-स्तम्भ पर ग्रहगणित का निर्माण किया। इधर जैन मान्यता में ऋषिपुत्र,

भद्रबाहु और कालकाचार्य ने ज्योतिष के अनेक महत्त्वपूर्ण सिद्धान्तों को ग्रन्थ रूप में निबद्ध किया। कालकाचार्य के सम्बन्ध में आयी हुई एक कथा से प्रकट होता है कि इन्होंने विदेशों में भ्रमण किया था तथा अन्य देशों के ज्योतिष-वेत्ताओं के साथ रह कर प्रश्नशास्त्र और रमलशास्त्र का परिष्कार कर भारत में प्रचार किया। आदिकाल में ज्योतिष-साहित्य का प्रणयन खूब हुआ है।

आदिकाल (ई० पू० ५०० से ई० ५०० तक)

प्रमुख ग्रन्थ और ग्रन्थकारों का संक्षिप्त परिचय

ऋक् ज्योतिष

इस काल की सब से प्रधान और प्रारम्भिक रचना वेदाग-ज्योतिष है। यद्यपि इस के रचनाकाल के सम्बन्ध में अनेक मत प्रचलित है, पर भाषा, शैली और विषय के परीक्षण-द्वारा ई० पू० ५०० रचनाकाल मालूम पडता है। ऋक् ज्योतिष के प्रारम्भ में प्रतिपाद्य विषयों का जिक्र करते हुए बताया गया है—

> पञ्चसंवत्सरमययुगाध्यक्षं प्रजापतिम्।
> दिनर्त्वयनमासाङ्गं प्रणम्य शिरसा शुचि ॥१॥
> ज्योतिषामयनं पुण्यं प्रवक्ष्याम्यनुपूर्वशः।
> सम्मतं ब्राह्मणेन्द्राणां यज्ञकालार्थसिद्धये ॥२॥
>
> —अ० ज्यो० श्लो० १-२

अर्थात्—एक युगसम्बन्धी दिवस, ऋतु, अयन, मास और युगाध्यक्ष का वर्णन किया जायेगा। तात्पर्य यह है कि पंचवर्षात्मक युग के अयन-नक्षत्र, अयन-मास, अयन-तिथि, ऋतु प्रारम्भ काल, पर्वराशि, उपादेयपर्व, भांश, योग, व्यतिपात और ध्रुवयोग, मुहूर्त प्रमाण, नक्षत्र देवता, उग्र तथा क्रूर नक्षत्र, अधिमास, दिनमान, प्रत्येक नक्षत्र का भोग्यकाल, लग्नानयन, चन्द्रर्तु-सख्या, वेधोपाय एवं कलादि लक्षण का संक्षिप्त निरूपण किया गया है। इस में माघ शुक्ला प्रतिपदा को युगारम्भ और पौष कृष्णा अमावास्या को युग-समाप्ति बतायी गयी है—

स्वराक्रमेते सोमार्कौ यदा साकं सवासवौ ।
स्यात्तदादियुग माघस्तपश्शुक्लोऽयनो ह्युदक् ॥६॥

अर्थात्—जब धनिष्ठा नक्षत्र के साथ सूर्य और चन्द्रमा योग को प्राप्त होते हैं, उस समय युगारम्भ होता है। यह काल माघ शुक्ल प्रतिपत् को पड़ता है। उत्तरायण और दक्षिणायन की चर्चा भी उदयकाल से भिन्न मिलती है। इस युग में आश्लेषार्ध में दक्षिणायन और धनिष्ठादि में उत्तरायण माना गया है। एक युग के नक्षत्र और तिथ्यादि निम्न प्रकार बताये गये है—

प्रथमं सप्तम चाहुरयनाद्यं त्रयोदशम् ।
चतुर्थं दशमं चैव द्वियुग्मं बहुलेऽप्यृतौ ॥९॥
वसुस्त्वष्टा भवोऽजश्च मित्रस्सर्पोऽश्विनौ जलम् ।
अर्यमाकोऽयनाद्यास्स्युरर्धपञ्चमभास्त्वृतु ॥१०॥

अर्थात्—युग का प्रथम अयन माघ शुक्ला प्रतिपदा को धनिष्ठा नक्षत्र में, द्वितीय अयन श्रावण शुक्ला सप्तमी को चित्रा नक्षत्र में, तृतीय अयन माघ शुक्ला त्रयोदशी को आर्द्रा नक्षत्र मे, चतुर्थ अयन श्रावण कृष्णा चतुर्थी को पूर्वाभाद्रपद नक्षत्र में, पाँचवाँ अयन माघ कृष्णा दशमी को अनुराधा नक्षत्र में, छठवाँ अयन श्रावण शुक्ला प्रतिपदा को आश्लेषा नक्षत्र में, सातवाँ माघ शुक्ला सप्तमी को अश्विनी नक्षत्र में, आठवाँ श्रावण शुक्ला त्रयोदशी को पूर्वाषाढा नक्षत्र में, नवाँ माघ कृष्णा चतुर्थी को उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र में और दसवाँ अयन श्रावण कृष्णा दशमी को रोहिणी नक्षत्र में माना गया है।

दिनमान का कथन करते हुए उस की हानि-वृद्धि का प्रमाण बताया है—

घर्मवृद्धिरपां प्रस्थ. क्षपाह्रास उदग्गतौ ।
दक्षिणे तौ विपर्यास षण्मुहूर्त्यंयनेन तु ॥८॥

अर्थात्—उत्तरायण सूर्य में एक प्रस्थ जल निकलने के काल प्रमाण—छह मुहूर्त्त दिन की वृद्धि होती है, और इतने ही मुहूर्त्त रात्रि का क्षय होता है। दक्षिणायन में विपरीत—छह मुहूर्त्त रात्रि की वृद्धि और इतने ही मुहूर्त्त दिन का ह्रास होता है। अर्थात् उत्तरायण में सब से बडा दिन

१८ मुहूर्त—३६ घटी का और रात १२ मुहूर्त—२४ घटी की होती है। दक्षिणायन में सब से बडी रात १८ मुहूर्त और दिन १२ मुहूर्त का होता है। इस ग्रन्थ में एक चान्द्र वर्ष ३५४ दिन $\frac{५०}{६२}$ मुहूर्त का, एक नाक्षत्र वर्ष ३२७$\frac{५०}{६७}$ दिन का, सावन वर्ष ३६० दिन का, सौरवर्ष ३६६ दिन का और अधिक माससहित एक चान्द्र वर्ष ३८३ दिन २१$\frac{१८}{६२}$ मुहूर्त का बताया गया है। एक युग मे ६० सौर मास, ६१ सावन मास और ६७ नाक्षत्र मास बताये हैं। पंचवर्षीय एक युग के दिनादि का मान इस प्रकार कहा है—

एक युग में सौर दिन	= १८००
,, ,, चान्द्र मास	= ६२
,, ,, सावन दिन	= १८३०
,, ,, चान्द्र दिन	= १८६०
,, ,, क्षय दिन	= ३०
,, ,, भगण या नक्षत्रोदय	= १८३५
,, ,, चान्द्र भगण	= ६७
,, ,, चान्द्र सावन दिन	= १७६८
एक सौर वर्ष में नक्षत्रोदय	= ३६७
एक अयन से दूसरे अयन पर्यन्त सौर दिन	= १८०
एक अयन से दूसरे अयन तक सावन दिन	= १८३

ऋक् ज्योतिष में एक चान्द्र मास में २९$\frac{३२}{६२}$ दिन और एक तिथि में २९$\frac{३२}{६२}$ मुहूर्त बताये गये है। इस में नक्षत्र गणना कृत्तिका और धनिष्ठा से मिलती है। नक्षत्रो का नामकरण निम्न प्रकार है—

(१) जौ—अश्विनी, (२) द्रा—आर्द्रा, (३) गः—पूर्वाफाल्गुनी, (४) खे—विशाखा, (५) श्वे—उत्तराषाढा, (६) हि.—पूर्वाभाद्रपद, (७) रो—रोहिणी, (८) षा—आश्लेषा, (९) चित्—चित्रा, (१०) मू—मूल, (११) शक्—शतभिषक्, (१२) ण्ये—भरणी, (१३) सू—पुनर्वसु, (१४) मा—उत्तराफाल्गुनी, (१५)

धा—अनुराधा, (१६) न—श्रवण, (१७) रे—रेवती, (१८) मृ—मृगशिर, (१९) घा—मघा, (२०) स्वा—स्वाति, (२१) पा—पूर्वाषाढा, (२२) अज—पूर्वाभाद्रपद, (२३) कृ—कृत्तिका, (२४) ष्य—पुष्य, (२५) हा—हस्त, (२६) जे—ज्येष्ठा, (२७) ष्ठा—धनिष्ठा। इन नक्षत्रो के देवता भी इन्ही संकेताक्षरो में बतला दिये गये है।

विषुवत् की पक्ष और तिथि-सख्या निकालने का नियम इस प्रकार बताया है—

> विषुवन्तं द्विरभ्यस्य रूपोन षड्गुणीकृतम्।
> पक्षा यद्र्धं पक्षाणां तिथिस्स विषुवान् स्मृत ॥

तात्पर्य यह है कि समान दिन-रात प्रमाणवाला विषुव दिन वर्ष में दो बार आता है। यह अयन के प्रत्येक अर्ध भाग मे पडता है। आजकल के हिसाब से सायन मेषादि और सायन तुलादि में पडता है, पर इस का अर्थ भी वही है जो ऋक् ज्योतिष में अयनार्ध बतलाया है, क्योकि कर्क से ले कर धनु पर्यन्त दक्षिणायन होता है, इस में तुला के सायन सूर्य मे विषुव दिन पडेगा। इसी प्रकार मकर से लेकर मिथुन तक उत्तरायण होता है, इस में भी मेष के सायन सूर्य मे विषुव दिन माना गया है—अर्थात् अयन के अर्ध भाग में ही विषुव दिन पडता है, अतएव माघ शुक्ल के आदि से तीन सौर मास के अन्तराल में पहला विषुव दिन पडेगा। इस की गणित प्रक्रिया के लिए त्रैराशिकी कि—६० सौर मासो मे १२४ चान्द्र पक्ष होते है तो तीन और मास में कितने हुए? इस प्रकार $३ \times \frac{१२४}{६०} = \frac{३१}{५}$ यह शेप रखा। दूसरे विषुवो में छह सौर मास होंगे, इसलिए अन्तर्गत पक्ष $\frac{३१}{५} \times \frac{३}{६} = \frac{६२}{५}$ दो विषुवो में क्षेप एक गुणा, तीन में द्विगुणा तथा चार में तिगुना, इस प्रकार इष्ट विषुव में एक कम गुणा क्षेप मानना पडेगा। अत (वि—१) को पक्षों में गुणा कर देने पर अभीष्ट विषुव सख्या आ जायेगी। अत· अभीष्ट विषुव सख्या = वि–(अन्तर्गत पक्ष)–$\frac{६२}{५}$ (वि०—१) = $\frac{६२}{५}$ वि = $\frac{६२}{५}$ इस में क्षेपक को जोड देने पर युगादि से विषुव संख्या आ जायेगी। आर्य ज्योतिष में भी इसी

अभिप्राय का एक करणसूत्र आया है।

ऋक् ज्योतिष के रचनाकाल तक ग्रह और राशियों का स्पष्ट व्यवहार नहीं होता था। इस ग्रन्थ में नक्षत्रोदय रूप लग्न का उल्लेख अवश्य है, पर उस का फल आजकल के समान नहीं बताया गया है। यदि गणित ज्योतिष की दृष्टि से ऋक् ज्योतिष को परखा जाये तो निराश ही होना पड़ेगा, क्योंकि उस में गणित ज्योतिष की कोई भी महत्त्वपूर्ण बात नहीं है। सिर्फ यही कहा जा सकेगा कि यज्ञ-यागादि के समय ज्ञान के लिए नक्षत्र, पर्व, अयन आदि का विधान बताया गया है।

यजु और अथर्व ज्योतिष

यजुर्वेद ज्योतिष प्रायः ऋक् ज्योतिष से मिलता-जुलता है। विषय प्रतिपादन में कोई मौलिक भेद नहीं है। अथर्व ज्योतिष में फलित ज्योतिष की अनेक महत्त्वपूर्ण बातें हैं। वास्तव में इन तीनों वेदांग-ज्योतिष में ज्योतिष का स्वतन्त्र ग्रन्थ यही कहा जा सकता है। विषय और भाषा की दृष्टि से इस का रचनाकाल उक्त दोनों से अर्वाचीन है। इस में तिथि, नक्षत्र, करण, योग, तारा और चन्द्रमा के बलाबल का सुन्दर निरूपण किया गया है—

तिथिरेकगुणा प्रोक्ता नक्षत्रं च चतुर्गुणम्।
वारश्चाष्टगुणः प्रोक्तः करणं षोडशान्वितम् ॥९०॥
द्वात्रिंशद्गुणो योगस्तारा षष्टिसमन्विता।
चन्द्रः शतगुणः प्रोक्तस्तस्माच्चन्द्रबलाबलम् ॥९१॥
समीक्ष्य चन्द्रस्य बलाबलानि ग्रहाः प्रयच्छन्ति शुभाशुभानि।

अर्थात्—तिथि का एक गुण, नक्षत्र के चार गुण, वार के आठ गुण, करण के सोलह गुण, योग के बत्तीस गुण, तारा के साठ गुण और चन्द्रमा के सौ गुण कहे गये हैं। चन्द्रमा के बलाबलानुसार ही अन्य ग्रह शुभाशुभ फल देते हैं। तात्पर्य यह है कि अथर्व ज्योतिष की रचना के समय ज्योतिषशास्त्र का विचार सूक्ष्म दृष्टि से होने लग गया था। इस समय भारतवर्ष में वारों का भी प्रचार हो गया था तथा वाराधिपति भी प्रचलित हो गये थे—

आदित्यः सोमो भौमश्च तथा बुधबृहस्पती ।
भार्गवः शनैश्चरश्चैव एते सप्त दिनाधिपा. ॥९३॥

इसी प्रकार इस में जातक के जन्म-नक्षत्र को ले कर सुन्दर ढंग से फल बतलाया है—

जन्मसंपद्विपत्क्षेम्य. प्रत्वरः साधकस्तथा ।
नैधनो मित्रवर्गश्च परमो मैत्र एव च ॥१०३॥
दशमं जन्मनक्षत्रात्कर्मनक्षत्रमुच्यते ।
एकोनविंशतिं चैव गर्भाधानकमुच्यते ॥१०४॥
द्वितीयमेकादशं विंशमेष संपत्करो गण. ।
तृतीयमेकविंशं तु द्वादशं तु विपत्करम् ॥१०५॥
क्षेम्यं चतुर्थद्वाविंशं तथा यच्च त्रयोदशम् ।
प्रत्वरं पञ्चमं विद्यात् त्रयोविंशं चतुर्दशम् ॥१०६॥
साधकं तु चतुर्विंशं षष्टं पञ्चदशं च यत् ।
नैधनं पञ्चविंशं तु षोडशं सप्तमं तथा ॥१०७॥
मैत्रे सप्तदशं विद्यात्षड्विंशमिति चाष्टमम् ।
सप्तविंशं परं मैत्रं नवमष्टादशं च यत् ॥१०८॥

अर्थात्—तीन-तीन नक्षत्रों का एक-एक वर्ग स्थापित कर फल बताया है—

वर्गक्रम

१ जन्म नक्षत्र	१० कर्म नक्षत्र	१९ आधान नक्षत्र
२ सम्पत्कर नक्षत्र	११ संपत्कर नक्षत्र	२० संपत्कर नक्षत्र
३ विपत्कर नक्षत्र	१२ विपत्कर नक्षत्र	२१ विपत्कर नक्षत्र
४ क्षेमकर नक्षत्र	१३ क्षेमकर नक्षत्र	२२ क्षेमकर नक्षत्र
५ प्रत्वर नक्षत्र	१४ प्रत्वर नक्षत्र	२३ प्रत्वर नक्षत्र
६ साधक नक्षत्र	१५ साधक नक्षत्र	२४ साधक नक्षत्र
७ निधन नक्षत्र	१६ निधन नक्षत्र	२५ निधन नक्षत्र
८ मित्र नक्षत्र	१७ मित्र नक्षत्र	२६ मित्र नक्षत्र
९ परममित्र नक्षत्र	१८ परममित्र नक्षत्र	२७ परममित्र नक्षत्र

उपर्युक्त नक्षत्रो का वर्गीकरण, जिसे तारा कहा जाता है, आज तक इसी प्रकार का चला आ रहा है। यो तो जातक ग्रन्थो के फलादेश में वहुत संशोधन और परिवर्धन हुए है; पर तारा का फलादेश जैसे का तैसा ही रह गया है। इस छोटे-से ग्रन्थ में ग्रह, उल्का, विद्युत्, भूकम्प, दिग्दाह आदि का फल भी सक्षेप में वताया है, ग्रहो के विशेष फलादेश के कथन में 'न कृष्णपक्षे शशिन. प्रमात्र:' कह कर कृष्णपक्ष में चन्द्रमा को सर्वथा निर्वल वताया है और अन्य ग्रहो के वलावलानुसार कार्यो के करने का विधान है।

सूर्यप्रज्ञप्ति

वेदाग-ज्योतिष के समान प्राचीन ज्योतिष का प्रामाणिक और मौलिक ग्रन्थ सूर्यप्रज्ञप्ति है। इस ग्रन्थ की भाषा प्राकृत है। मलयगिरि सूरि ने संस्कृत टीका लिखी है। इस ग्रन्थ में प्रधान रूप से सूर्य के गमन, आयु, परिवार और सख्या का निरूपण किया गया है। इस में जम्बूद्वीप में दो सूर्य और दो चन्द्रमा वताये हैं, तथा प्रत्येक सूर्य के अट्ठाईस-अट्ठाईस नक्षत्र अलग-अलग कहे गये हैं। इन सूर्यो का भ्रमण एकान्तर रूप से होता है, इस से दर्शकों को एक ही सूर्य दृष्टिगोचर होता है। इस में दिन, मास, पक्ष, अयन आदि का कथन करते हुए दिनमान के सम्बन्ध में वताया है—

तस्से आदिच्चरस्स संवच्छरस्स सइंअट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवति। सइंअट्ठारसमुहुत्ता राती भवति सइंदुवालिसमुहुत्ते दिवसे भववि सइंदुवालसमुहुत्ता राती भवति। पढमे छम्मासे अत्थि अट्ठारसमुहुत्ता राती भवति। दोच्च छम्मासे अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे णत्थि अट्ठारस मुहुत्ता राती अत्थि दुवालसमुहुत्ते दिवसे पढमे छम्मासे दोच्चे छम्मासे णत्थि।

अर्थात्—उत्तरायण में सूर्य लवणसमुद्र के वाहरी मार्ग से जम्बूद्वीप की ओर आता है और इस मार्ग के प्रारम्भ में सूर्य की चाल सिंह गति, भीतर जम्बूद्वीप के आते-आते क्रमश मन्द होती हुई गजगति को प्राप्त हो जाती है। इस कारण उत्तरायण के आरम्भ में वारह मुहूर्त—२४ घटी का दिन होता है, किन्तु उत्तरायण की समाप्ति पर्यन्त गति के मन्द हो जाने से १८

मूहूर्त—३६ घटी का दिन होने लगता है और रात १२ मूहूर्त की—९ घण्टा ३६ मिनिट की होने लगती है। इसी प्रकार दक्षिणायन के प्रारम्भ में सूर्य जम्बूद्वीप के भीतरी मार्ग से बाहर की ओर—लवणसमुद्र की ओर मन्द गति से चलता हुआ शीघ्र गति को प्राप्त होता है जिस से दक्षिणायन के आरम्भ में १८ मूहूर्त—१४ घण्टा २४ मिनिट का दिन और १२ मूहूर्त की रात होती है, परन्तु दक्षिणायन के अन्त में शीघ्र गति होने के कारण सूर्य अपने रास्ते को शीघ्र तय करता है जिस से १२ मूहूर्त का दिन और १८ मुहूर्त्त की रात होती है। मध्य में दिनमान लाने के लिए अनुपात से १८ − १२ = ६ मु० अं० $\frac{६}{१८६} = \frac{१}{३१}$ मु० की प्रतिदिन के दिनमान उत्तरायण में वृद्धि और दक्षिणायन में हानि होती है।

यह दिनमान में सब जगह एक नही होगा, क्योकि हमारा निवासरूपी पृथ्वी, जो कि जम्बूद्वीप का एक भाग है, समतल नही है। यद्यपि जैन मान्यता में जम्बूद्वीप को समतल माना गया है, लेकिन सूर्यप्रज्ञप्ति में बताया है कि पृथ्वी के बीच में हिमवान्, महाहिमवान्, निषध, नील रुक्मि और शिखरिणी इन छह पर्वतों के आ जाने से यह कही ऊँची और कही नीची हो गयी है। अत' ऊँचाई, नीचाई अर्थात् अक्षाश, देशान्तर के कारण दिनमान में अन्तर पड जाता है।

इस ग्रन्थ में पंचवर्षात्मक युग के अयनो के नक्षत्र, तिथि और मास का वर्णन निम्न प्रकार मिलता है—

प्रथमा बहुलपडिवए बिइया बहुलस्स तेरिसीदिवसे।
सुद्धस्स या दसमीए बहुलस्स य सत्तमीए उ॥
सुद्धस्स चउत्थीए पवत्तये पंचमीउ आवुट्टी।
एया आवुट्टीओ सव्वाओ सावणे मासे॥
बहुलस्स सत्तमीए पडमा सुद्धस्स तो चउत्थीए।
बहुलस्स य पडिवए बहुलस्स य तेरसीदिवसे॥
सुद्धस्स य दसमीए पवत्तए पंचमीउ आउट्टी।
एता आउट्टीओ सव्वाओ माह मासमि॥सू० प्र०, पृ० २२९

अर्थात्—युग का पहला दक्षिणायन श्रावण कृष्णा प्रतिपदा को अभिजित्

नक्षत्र में, दूसरा उत्तरायण माघ कृष्णा सप्तमी को हस्त नक्षत्र में, तीसरा दक्षिणायन श्रावण कृष्णा त्रयोदशी को मृगशिर नक्षत्र में, चौथा उत्तरायण माघ शुक्ला चतुर्थी को शतभिषा नक्षत्र मे, पाँचवाँ दक्षिणायन श्रावण शुक्ला दशमी को विशाखा नक्षत्र में, छठा उत्तरायण माघ कृष्णा प्रतिपदा को पुष्य नक्षत्र में, सातवाँ दक्षिणायन श्रावणकृष्णा सप्तमी को रेवती नक्षत्र में, आठवाँ उत्तरायण माघ कृष्णा त्रयोदशी को मूल नक्षत्र में, नौवाँ दक्षिणायन श्रावण शुक्ला नवमी को पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्र में और दसवाँ उत्तरायण माघ कृष्णा त्रयोदशी को कृत्तिका नक्षत्र में होता है।

इस ग्रन्थ में सूर्य-परिवार और भ्रमण-वृत्तो के सम्वन्ध में सुन्दर विवेचन किया गया है।

चन्द्रप्रज्ञप्ति

चन्द्रप्रज्ञप्ति का विषय प्रायः सूर्यप्रज्ञप्ति से मिलता-जुलता है। फिर भी इतना तो मानना पडेगा कि इस का विपय सूर्यप्रज्ञप्ति की अपेक्षा परिष्कृत है। इस में सूर्य की प्रतिदिन की योजनात्मिका गति निकाली है तथा उत्तरायण और दक्षिणायन की वीथियो का अलग-अलग विस्तार निकाल कर सूर्य और चन्द्रमा की गति निश्चित की है। इस के चतुर्थ प्राभृत में चन्द्र और सूर्य का संस्थान तथा तापक्षेत्र का सस्थान विस्तार से वताया है। ग्रन्थकर्त्ता ने समचतुरस्र, विपमचतुरस्र आदि विभिन्न आकारो का खण्डन कर सोलह वीथियो में चन्द्रमा का समचतुरस्र गोल आकार वताया है। इस का कारण यह है कि सुपमासुपमा काल के आदि में श्रावण कृष्णा प्रतिपदा के दिन जम्वूद्वीप का प्रथम सूर्य पूर्व-दक्षिण-अग्निकोण में और द्वितीय सूर्य पश्चिमोत्तर-वायव्यकोण में चला। इसी प्रकार प्रथम चन्द्रमा पूर्वोत्तर-ईशानकोण में और द्वितीय चन्द्रमा पश्चिम-दक्षिण-नैर्ऋत्यकोण में चला। अतएव युगादि में सूर्य और चन्द्रमा का समचतुरस्र सस्थान था, पर उदय होते समय ये ग्रह वर्तुलाकार से निकले, अतः चन्द्र और सूर्य का आकार अर्धकपीठ—अर्ध-समचतुरस्र गोल वताया है।

चन्द्रप्रज्ञप्ति में छाया साधन किया है, तथा छाया प्रमाण पर से दिनमान का भी प्रमाण निकाला है, ज्योतिष की दृष्टि से यह विषय महत्त्वपूर्ण है। २५ वस्तुओं की छाया बतायी गयी है, इस में एक कीलकच्छाया या कील-च्छाया का भी उल्लेख आया है; मालूम पडता है कि यह कीलच्छाया ही आगे जा कर शकुच्छाया के रूप में परिवर्तित हो गयी है। कीली का मध्यम मान द्वादश अंगुल माना है, जो आजकल के शंकुमान के बराबर है। कील-च्छाया का कथन सिर्फ संकेतमात्र है, विस्तृत रूप से इस के सम्बन्ध में कुछ विचार नही किया है। पुरुषच्छाया पर से दिनमान की साधनिका की गयी है—

ता अवड्ढ पोरिसिणं च्छाया दिवसस्स किं गए वा सेसे वा ता ति भागे गए वा ता सेसे वा पोरिसिणं छाया दिवसस्स किं गए वा सेसे वा जाव चउभाग गए वा सेसे वा, ता दिवड्ढ पोरिसिणं छाया दिवसस्स किं गए वा सेसे वा, ता पंचभाग गए वा सेसे वा एवं अवड्ढ पोरिसिणं छाया पुच्छा दिवसस्स मागं छोट्टुवा गरण जाव ता अंगुलट्ठि पोरिसिणं छाया दिवसस्स किं गए वा सेसे वा ता एकूण वीससतं मागे वा सेसे वा सातिरेगअगुणसट्ठि पोरिसिणं छाया दिवसस्स किं गए वा सेसे वा ताणं किं गए किंचि चिगए वा सेसे वा। —चं० प्र० ९.५।

अर्थात्—जब अर्ध पुरुष प्रमाण छाया हो उस समय कितना दिन व्यतीत हुआ और कितना शेष रहा? इस प्रश्न का उत्तर देते हुए कहा है कि ऐसी छाया की स्थिति में दिनमान का तृतीयांश व्यतीत हुआ समझना चाहिए। यहाँ विशेषता इतनी है कि यदि दोपहर के पहले अर्ध पुरुष प्रमाण छाया हो तो दिन का तृतीय भाग गत और दो तिहाई भाग अवशेष तथा दोपहर के बाद अर्ध पुरुष प्रमाण छाया हो तो दो तिहाई भाग प्रमाण दिन गत और एक भाग प्रमाण दिन शेष समझना चाहिए। पुरुष प्रमाण छाया होने पर दिन का चौथाई भाग गत और तीन चौथाई भाग शेष, डेढ पुरुष प्रमाण छाया होने पर दिन का पंचम भाग गत और चार पंचम भाग—$\frac{4}{5}$ भाग अवशेष दिन समझना चाहिए। इसी प्रकार दोपहर के बाद की

छाया में विपरीत दिनमान जानना चाहिए। इस ग्रन्थ में गोल, त्रिकोण, लम्बी, चौकोर वस्तुओ की छाया पर से दिनमान का ज्ञान किया गया है। यह छाया-प्रकरण ग्रहो की गति का ज्ञान करने के लिए महत्त्वपूर्ण है। इस पर से ग्रन्थकर्त्ता ने सूर्य के मण्डलो का ज्ञान करने के नियम भी निर्धारित किये हैं। आगे जा कर इस ग्रन्थ में नक्षत्रो की गति और चन्द्रमा के साथ योग करने वाले नक्षत्रो का विवेचन किया है। चन्द्रमा के साथ तीस मुहूर्त तक योग करने वाले श्रवण, धनिष्ठा, पूर्वाभाद्रपद, रेवती, अश्विनी, कृत्तिका, मृगशिर, पुष्य, मघा, पूर्वाफाल्गुनी, हस्त, चित्रा, अनुराधा, मूल और पूर्वाषाढा ये पन्द्रह नक्षत्र बताये हैं। पैंतालीस मुहूर्त तक चन्द्रमा के साथ योग करने वाले उत्तराभाद्रपद, रोहिणी, पुनर्वसु, उत्तराफाल्गुनी, विशाखा और उत्तराषाढा ये छह नक्षत्र एव पन्द्रह मुहूर्त तक चन्द्रमा के साथ योग करने वाले शतभिषा, भरणी, आर्द्रा, आश्लेषा, स्वाति और ज्येष्ठा ये छह नक्षत्र बताये गये हैं।

चन्द्रप्रज्ञप्ति के १९वें प्राभृत में चन्द्रमा को स्वत प्रकाशमान बतलाया तथा इस के घटने-बढने का कारण भी स्पष्ट किया है। १८वें प्राभृत में चन्द्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र और ताराओ की ऊँचाई का कथन किया है। इस प्रकरण के प्रारम्भ में अन्य मान्यताओ की मीमासा की गयी है और अन्त में जैन मान्यता के अनुसार ७९० योजन से ले कर ९०० योजन की ऊँचाई के बीच में ग्रह-नक्षत्रो की स्थिति बतायी है। २०वें प्राभृत में सूर्य और चन्द्रग्रहणो का वर्णन किया गया है तथा राहु और केतु के पर्यायवाची शब्द भी गिनाये गये हैं, जो आजकल के प्रचलित पर्यायवाची शब्दो से भिन्न हैं।

ज्योतिष्करण्डक

यह प्राचीन ज्योतिष का मौलिक ग्रन्थ है। इस का विषय वेदागज्योतिष के समान अविकसित अवस्था में है। इस में भी नक्षत्र लग्न का प्रतिपादन किया गया है। भाषा एवं रचना-शैली आदि के परीक्षण से पता लगता है कि यह ग्रन्थ ई० पू० ३००-४०० का है। इस में लग्न के

सम्बन्ध में बताया गया है—

लग्गं च दक्खिणायविसुवे सुवि अस्स उत्तरं अयणे।
लग्गं साई विसुवेसु पंचसु वि दक्खिणे अयणे॥

अर्थात्–अस्स यानी अश्विनी और साई—स्वाति ये नक्षत्र विषुव के लग्न बताये गये हैं। यहां विशिष्ट अवस्था की राशि के समान विशिष्ट अवस्था के नक्षत्रों को लग्न माना है।

इस ग्रन्थ में कृत्तिकादि, धनिष्ठादि, भरण्यादि, श्रवणादि एवं अभिजितादि नक्षत्र गणनाओं की समालोचना की गयी है।

कल्प, सूत्र, निरुक्त और व्याकरण में ज्योतिषचर्चा

आश्वलायन सूत्र, पारस्कर सूत्र, हिरण्यकेशी सूत्र, आपस्तम्ब सूत्र आदि सूत्र ग्रन्थों में फुटकल रूप से ज्योतिषचर्चा मिलती है। आश्वलायन सूत्र में "श्रावण्यां पौर्णमास्यां श्रावणकर्म" "सीमन्तोन्नयनं "'यदा पुंसा नक्षत्रेण चन्द्रमा युक्तः स्यात्" इत्यादि अनेक वाक्य विभिन्न कार्यों के विभिन्न मुहूर्तों के लिए आये हैं। पारस्कर सूत्र में विवाह के नक्षत्रों का वर्णन करते हुए लिखा है—"त्रिषु त्रिषु उत्तरादिषु स्वातौ मृगशिरसि रोहिण्यां।" अर्थात् उत्तराफाल्गुनी, हस्त, चित्रा, उत्तराषाढ़ा, श्रवण, धनिष्ठा, उत्तराभाद्रपद, रेवती और अश्विनी विवाह नक्षत्र बताये गये हैं। इन सूत्र ग्रन्थों में विभिन्न कार्यों के विधेय नक्षत्रों का वर्णन मिलता है। बौधायन सूत्र में—"मीनमेषयोर्मेषवृषभयोर्वसन्तः"इस प्रकार लिखा मिलता है। इस से सिद्ध है कि सूत्र ग्रन्थों के समय में राशियों का प्रचार भारत में हो गया था।

निरुक्त में दिन-रात्रि, शुक्ल-कृष्ण पक्ष, उत्तरायण-दक्षिणायन का कई स्थानों पर चामत्कारिक वर्णन आया है। इस में युगपद्धति की पूर्व मध्यकालीन ज्योतिष ग्रन्थों के समान सुन्दर मीमांसा मिलती है।

पाणिनीय व्याकरण में संवत्सर, हायन, चैत्रादि मास, दिवस विभागात्मक मुहूर्त शब्द, पुष्य, श्रवण, विशाखा आदि नक्षत्रों की व्युत्पत्ति की गयी है। "विभाषा ग्रहः" ३। १। १४३ में ग्रह शब्द से नवग्रहों का अनु-

मान करना भी असंगत नही कहा जा सकेगा ।

स्मृति एवं महाभारत की ज्योतिषचर्चा

मनुस्मृति में सैद्धान्तिक ग्रन्थो के समान युग और कल्पना का वर्णन मिलता है । याज्ञवल्क्य स्मृति में नवग्रहो का स्पष्ट कथन है—

सूर्य: सोमो महीपुत्र' सोमपुत्रो वृहस्पतिः ।
शुक्रः शनैश्चरी राहु. केतुश्चैते ग्रहाः स्मृताः ॥

—आचाराध्याय

इस श्लोक पर से सातो वारो का अनुमान भी सहज में किया जा सकता है । याज्ञवल्क्य स्मृति में क्रान्तिवृत्त के १२ भागो का भी कथन है, जिस से मेषादि १२ राशियो की सिद्धि हो जाती है । श्राद्धकाल अध्याय में वृद्धियोग का भी कथन है, इस से ज्योतिष शास्त्र के २७ योगों का समर्थन होता है । वास्तविक योग शब्द के अर्थ में व्यवहृत योग सर्वप्रथम अथर्व ज्योतिष में ही मिलता है ।

याज्ञवल्क्य स्मृति के प्रायश्चित्त अध्याय में "ग्रहसंयोगजैः फलै." इत्यादि वाक्यों-द्वारा ग्रहो के संयोगजन्य फलो का भी कथन किया गया है । इस स्मृति में अमुक नक्षत्र में अमुक कार्य विधेय है इस का कथन बहुत अच्छी तरह से किया है ।

महाभारत में ज्योतिषशास्त्र की अनेक बातो का वर्णन मिलता है । इस में युगपद्धति मनुस्मृति-जैसी ही है । सतयुगादि के नाम, उन में विधेय कृत्य कई जगह आये हैं । कल्पकाल का निरूपण शान्तिपर्व के १८३ वें अध्याय में विस्तार से किया गया है । पंचवर्षात्मक युग का भी कथन उपलब्ध होता है । संवत्सर, परिवत्सर, इदावत्सर, अनुवत्सर एवं इद्वत्सर इन ५ युगसम्बन्धी ५ वर्षों में क्रमशः पाण्डव उत्पन्न हुए थे—

अनुसंवत्सरं जाता अपि ते कुरुसत्तमाः ।
पाण्डुपुत्रा व्यराजन्त पञ्चसंवत्सरा इव ॥

—आ० प०, अ० १२४-२४

पाण्डवो को वनवास जाने के बाद कितना समय हुआ, इस के सम्बन्ध में भीष्म दुर्योधन से कहते हैं—

तेषां कालातिरेकेण ज्योतिषां च व्यतिक्रमात् ।
पञ्चमे पञ्चमे वर्षे द्वौ मासावुपजायतः ॥
एषामभ्यधिका मासा. पञ्च च द्वादश क्षपा ।
त्रयोदशानां वर्षाणामिति मे वर्तते मतिः ॥

—वि० प०, अ० ५२-३-४

पांच वर्ष में दो अधिमास यह वेदाग-ज्योतिष पद्धति है और अधिमास आदि की कल्पना भी वेदाग-ज्योतिष के अनुसार ही महाभारत में है।

महाभारत के अनुशासन पर्व के ६४वें अध्याय में समस्त नक्षत्रो को सूची दे कर बतलाया गया है कि किस नक्षत्र में दान देने से किस प्रकार का पुण्य होता है। महाभारतकाल में प्रत्येक मुहूर्त्त का नामकरण भी व्यवहृत होता था तथा प्रत्येक मुहूर्त्त का सम्बन्ध भिन्न-भिन्न धार्मिक कार्यो से शुभा-शुभ के रूप में माना जाता था। २७ नक्षत्रो के देवताओं के स्वभावानुसार विधेय नक्षत्र से भावी शुभ एवं अशुभ का निर्णय किया गया है। शुभ नक्षत्रों में ही विवाह, युद्ध एव यात्रा करने की पद्धति थी। युधिष्ठिर के जन्म-समय का वर्णन करते हुए बताया गया है कि—

ऐन्द्रे चन्द्रसमारोहे मुहूर्त्तेऽभिजिदष्टमे ।
दिवो मध्यगते सूर्ये तिथौ पूर्णेति पूजिते ॥

अर्थात्—आश्विन सुदी पचमी के दोपहर को अष्टम अभिजित् मुहूर्त्त में सोमवार के दिन ज्येष्ठा नक्षत्र में जन्म हुआ। महाभारत में कुछ ग्रह अधिक अनिष्टकारक बताये गये है, विशेषत शनि और मगल को अधिक दुष्ट माना है। मगल लाल रंग का समस्त प्राणियो को अशान्ति देने वाला और रक्तपात करने वाला समझा जाता था। केवल गुरु शुभ और समस्त प्राणियो को सुख-शान्ति देने वाला बताया गया है। ग्रहो का शुभ नक्षत्रो के साथ योग होना प्राणियों के लिए कल्याणदायक माना जाता था। उद्योग पर्व के

१४३वें अध्याय के अन्त में ग्रह और नक्षत्रो के अशुभ योग का विस्तार से वर्णन किया गया है। श्रीकृष्ण ने जब कर्ण से भेंट की तव कर्ण ने इस प्रकार ग्रह-स्थिति का वर्णन किया है—"शनैश्चर, रोहिणी नक्षत्र में मंगल को पीडा दे रहा है, ज्येष्ठा नक्षत्र में मंगल वक्री हो कर अनुराधा नामक नक्षत्र से योग कर रहा है। महापात संज्ञक ग्रह चित्रा नक्षत्र को पीडा दे रहा है। चन्द्रमा के चिह्न विपरीत दिखलाई पडते हैं और राहु सूर्य को ग्रसित करना चाहता है।" शल्य-वध के समय प्रात काल का वर्णन निम्न प्रकार किया है—

भृगुसूनुधरापुत्रौ शशिजेन समन्वितौ ॥ —श० प०, अ० ११ १८

अर्थात्—शुक्र और मंगल इन दोनो का योग बुध के साथ अत्यन्त अशुभ-कारक बताया गया है। आज भी बुध और शनि का योग अशुभ माना जाता है। महाभारत में १३ दिन का पक्ष अत्यन्त अशुभ बताया गया है—

चतुर्दशीं पञ्चदशी भूतपूर्वां तु षोडशीम् ।
इमां तु नाभिजानेऽहममावास्यां त्रयोदशीम् ॥
चन्द्रसूर्याबुभौ ग्रस्तावेकमासीं त्रयोदशीम् ॥

अर्थात्—व्यासजी अनिष्टकारी ग्रहो की स्थिति का वर्णन करते हुए कहते हैं कि १४, १५ एवं १६ दिनो के पक्ष होते थे, पर १३ दिनों का पक्ष इसी समय आया है तथा सब से अधिक अनिष्टकारी तो एक ही मास में सूर्यग्रहण और चन्द्रग्रहण का होना है और यह ग्रहण योग भी त्रयोदशी के दिन पड रहा है, अत समस्त प्राणियो के लिए भयोत्पादक है। महाभारत से यह भी सिद्ध होता है कि उस समय व्यक्ति के सुख-दुःख, जीवन-मरण आदि सभी ग्रह-नक्षत्रो की गति से सम्बद्ध माने जाते थे।

उपर्युक्त ज्योतिष-चर्चा के अतिरिक्त ई० १०० के लगभग स्वतन्त्र ज्योतिष के ग्रन्थ भी लिखे गये, जो रचयिता के नाम पर उन सिद्धान्तो के नाम से ख्यात हुए। वराहमिहिराचार्य ने अपने पंचसिद्धान्तिका नामक संग्रह ग्रन्थ मे पितामह सिद्धान्त, वसिष्ठ सिद्धान्त, रोमक सिद्धान्त, पौलिश

सिद्धान्त और सूर्य सिद्धान्त इन ५ सिद्धान्तो का सग्रह किया। डॉक्टर थीवो साहब ने पचसिद्धान्तिका की अँगरेज़ी भूमिका मे पितामह सिद्धान्त को सूर्यप्रज्ञप्ति और ऋक्ज्योतिष के समान प्राचीन वताया है, लेकिन परीक्षण करने पर इस की इतनी प्राचीनता मालूम नही पडती है। ब्रह्मगुप्त और भास्कराचार्य ने पितामह सिद्धान्त को ही आधार माना है। पितामह सिद्धान्त में सूर्य और चन्द्रमा के अतिरिक्त अन्य ग्रहो का गणित नहीं आया है।

वसिष्ठ सिद्धान्त—पितामह सिद्धान्त की अपेक्षा यह सशोधित और परिवर्द्धित रूप में है। इस में सिर्फ १२ श्लोक है, सूर्य और चन्द्र के सिवा अन्य ग्रहो का गणित इस में भी नहीं है। ब्रह्मगुप्त के कथन से ज्ञात होता है कि पचसिद्धान्तिका में संग्रहीत वसिष्ठ सिद्धान्त के कर्त्ता कोई विष्णुचन्द्र नाम के व्यक्ति थे। डॉ० थीवो साहव ने वतलाया है कि विष्णुचन्द्र इस के निर्माता नही, वल्कि संशोधक हैं। श्री शंकर वालकृष्ण दीक्षित ने ब्रह्मगुप्त के समय में ही दो प्रकार का वासिष्ठ वतलाया है, एक मूल, दूसरा विष्णुचन्द्र का। वर्तमान में लघुवसिष्ठ सिद्धान्त नामक ग्रन्थ मिलता है जिस में ९४ श्लोक हैं। इस का गणित पंचसिद्धान्तिका के वसिष्ठ सिद्धान्त की अपेक्षा परिमार्जित और विकसित है।

रोमक सिद्धान्त—इस के व्याख्याता लाटदेव है। इस की रचना-शैली से मालूम पडता है कि यह किसी ग्रीक-सिद्धान्त के आधार पर लिखा गया है। कुछ विद्वानो का अनुमान है कि अलकजेण्ड्रिया के प्रसिद्ध ज्योतिषी टालमी के सिद्धान्तो के आधार पर संस्कृत में रोमक सिद्धान्त लिखा गया है, इस का प्रमाण वे यवनपुर के मध्याह्नकालीन सिद्ध किये गये अहर्गण को रखते हैं। ब्रह्मगुप्त, लाट, वसिष्ठ, विजयनन्दी और आर्यभट्ट के ग्रन्थो के आधार पर कुछ अन्य विद्वान् इसे श्रीषेण-द्वारा लिखा गया वतलाते हैं। डॉ० थीवो साहव श्रीषेण को मूल ग्रन्थ का रचयिता नही मानते हैं, वल्कि उस का उसे वह संशोधक वतलाते हैं। इस का गणित पूर्व के दो सिद्धान्तों की अपेक्षा अधिक विकसित है। इस में सैद्धान्तिक विषयो का निम्न वर्णन

गणित-सहित किया है—

महायुगान्त	(४३२०००० वर्षों का),	युगान्त (२८५० वर्षों का) ।
नक्षत्र भ्रम	१५८२१८५६००	१०४३८०३
रवि भ्रम	४३२००००	२८५०
सावन दिवस	१५७७८६५६४०	१०४०९५३
चन्द्र भगण	५७७५१५७८$\frac{१८}{९९}$	३८१००
चन्द्रोच्च भगण	४८८२५८$\frac{१३७०८}{५७५८९}$	३२२$\frac{२२८}{३०३१}$
चन्द्रपात भगण	२३२१६५$\frac{१०६०८५}{१६३१११}$	१५३$\frac{२६८८६}{१६३१११}$
सौर मास	५१८४००००	३४२००
अधिमास	१५९१५७८$\frac{१८}{९९}$	१०५०
चन्द्रमास	५३४३१५७८$\frac{१८}{९९}$	३५२५०
तिथि	१६०२९४७३६८$\frac{८}{९९}$	१०५७५००
तिथिक्षय	२५०८१७६८$\frac{८}{९९}$	१६५४७

ब्रह्मगुप्त ने इस सिद्धान्त को खूब खिल्ली उडायी है। वास्तव में इस का गणित अत्यन्त स्थूल है। कुछ विद्वानो ने इस का रचनाकाल ई० १००-२०० के मध्य में माना है। इस के विषय को देखने से उपर्युक्त रचनाकाल युक्तियुक्त भी जँचता है।

पौलिश सिद्धान्त—इस का ग्रहगणित भी अंको-द्वारा स्थूल रीति से निकाला गया है। एलबेरुनी का मत है कि अलकजेण्ड्रियावासी पौलिश के यूनानी सिद्धान्तों के आधार पर इस की रचना हुई है। डॉ० कर्न साहब ने इस मत का खण्डन किया है। उन का कहना है कि प्राचीन भारतीयो को 'यवनपुर' ज्ञात था, तथा वे वहाँ के अक्षाश, देशान्तर आदि से पूर्ण परिचित थे। वर्तमान मे वराह और भट्टोत्पल का पृथक्-पृथक् संग्रहीत पौलिश सिद्धान्त मिलता है, लेकिन दोनो में कोई समानता नही है। वराहमिहिर-द्वारा सग्रहीत पौलिश सिद्धान्तो मे चर निकालने के लिए निम्न श्लोक आया है—

यवनाच्चरजा नाड्य· ससावन्त्याख्रिभागसंयुक्ता।
वाराणस्यां त्रिकृति· साधनमन्यत्र वक्ष्यामि॥

अर्थात्—उज्जैनी में चर ७ घटी २० पल और बनारस में ९ घटी है, अन्य स्थानो के चर का साधन गणित-द्वारा किया गया है। डॉ० थीबो साहब ने इस सिद्धान्त का विवेचन करते हुए बताया है कि प्राचीन पौलिश सिद्धान्त उपलब्ध नही है। वराह के पौलिश सिद्धान्त से मालूम पडता है कि इस के ग्रहगणित में अति स्थूलता है। आज जो पौलिश के नाम से सिद्धान्त उपलब्ध है, वह अपने मूल रूप में नही है।

सूर्य सिद्धान्त—इस के कर्त्ता कोई सूर्य नाम के ऋषि बतलाये जाते है। इस में आयी हुई कथा के आधार पर इस का रचना काल त्रेता युग का प्रारम्भिक भाग बताया गया है। पर उपलब्ध सूर्य सिद्धान्त इतना प्राचीन नही जँचता है। कुछ लोगो का कथन है कि स्वयं सूर्य भगवान् मय को तपस्या से प्रसन्न हो कर उस असुर को ज्योतिष-ज्ञान दिया था। श्री महावीरप्रसाद श्रीवास्तव ने सूर्य सिद्धान्त की भूमिका में असुर नाम की एक भौतिकवादी जाति बतलायी है, शिल्प और यन्त्र विद्या में यह जाति निपुण होती थी। सूर्य नामक ऋषि ने इसी जाति को ज्योतिषशास्त्र की शिक्षा दी थी। पाश्चात्य विद्वानो ने सूर्य सिद्धान्त की स्थूलता का परीक्षण कर इस का रचनाकाल ई० पू० १८० या ई० १०० बताया है। यह ग्रन्थ ज्योतिषशास्त्र की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। यद्यपि वर्तमान में उपलब्ध सूर्य सिद्धान्त प्राचीन सूर्य सिद्धान्त से भिन्न है, फिर भी इतना तो मानना पडेगा कि सैद्धान्तिक ग्रन्थो में यह सब से प्राचीन है। इस में युगादि से अहर्गण लाकर मध्यम ग्रह सिद्ध किये गये है और आगे संस्कार देकर स्पष्ट ग्रहविधि प्रतिपादित की है। इस के प्रारम्भ में ग्रहो की गति सिद्ध करते हुए लिखा गया है—

पश्चात् व्रजन्तोऽतिजवान्नक्षत्रै· सततं ग्रहा।
जीयमानास्तु लम्बन्ते तुल्यमेव स्वमार्गगा.॥
प्राग्गतित्वमतस्तेषां भगणै· प्रत्यहं गति.।
परिणाहवशाद्भिन्ना तद्वशाद्भानि भुञ्जते॥

अर्थात्—शीघ्रगामी नक्षत्रों के साथ सदैव पश्चिम की ओर चलते हुए ग्रह

अपनी-अपनी कक्षा में समान परिमाण में हार कर पीछे रह जाते हैं, इसी लिए वह पूर्व की ओर चलते हुए दिखलाई पडते हैं और कक्षाओ की परिधि के अनुसार उन की दैनिक परिधि भी भिन्न दिखाई पडती है, इस लिए नक्षत्र चक्र को भी यह भिन्न समय में—शीघ्रगामी ग्रह थोडे समय में और मन्द गति अधिक समय में पूरा करते है। तात्पर्य यह है कि आकाश में जितने तारे दिखलाई पडते है, वे सब ग्रहो के साथ पश्चिम की ओर जाते हुए मालूम पडते हैं, परन्तु नक्षत्रो के बहुत शीघ्र चलने के कारण ग्रह पीछे रह जाते है और पूर्व को चलते हुए दिखलाई पडते है। इन की पूर्व की ओर बढने की चाल तो समान है, पर इन की कक्षाओ का विस्तार भिन्न होने से इन की गति भी भिन्न देख पडती है। इस कथन से ग्रहो की योजनात्मिका और कलात्मिका, दोनो प्रकार की गतियाँ सिद्ध हो जाती हैं।

इस ग्रन्थ में मध्यमाधिकार, स्पष्टाधिकार, त्रिप्रश्नाधिकार, चन्द्रग्रहणाधिकार, सूर्यग्रहणाधिकार, परलेखाधिकार, ग्रहयुत्यधिकार, नक्षत्रग्रहयुत्यधिकार, उदयास्ताधिकार, शृंगोन्नत्यधिकार, पाताधिकार और भूगोलाध्याय नामक प्रकरण है।

उपर्युक्त पंचसिद्धान्तो के अतिरिक्त नारदसंहिता, गर्गसंहिता आदि दो-चार संहिता ग्रन्थ और भी मिलते है, परन्तु इन का रचनाकाल निर्धारित करना कठिन है। गर्गसंहिता के जो फुटकर प्रकरण उपलब्ध हैं, वे बडे उपयोगी है, उन से भारतीय संस्कृति के सम्बन्ध में बहुत-कुछ ज्ञात हो जाता है। युगपुराण नामक अंश से उस युग की राजनीतिक और सामाजिक दशा पर पर्याप्त प्रकाश पडता है। इस ग्रन्थ की भाषा प्राकृत मिश्रित संस्कृत है, भाषा की दृष्टि से यह ग्रन्थ जैन मालूम पडता है। परन्तु निश्चित प्रमाण एक भी नही है। ज्योतिष शास्त्र विज्ञानमूलक होने के कारण इस में समय-समय पर परिवर्तन होते रहते है। अतएव प्राचीन ग्रन्थो में अनेक संशोधन हुए, इसी कारण किसी भी ग्रन्थ का सबल प्रमाणों के अभाव में रचनाकाल ज्ञात करना कठिन ही नही, बल्कि असम्भव है।

कौटिल्य के अर्थशास्त्र में ऐसे कई प्रकरण है जिन से पता चलता है कि उस काल में ज्योतिषी हर प्रकार के ज्योतिष-गणित से पूर्ण परिचित थे। तथा ज्योतिषशास्त्र का पर्यवेक्षण आलोचनात्मक ढग से होने लग गया था। इस के एक-दो स्थल ऐसे भी है, जिन से वसिष्ठ सिद्धान्त और पितामह सिद्धान्त के प्रचार का भी भान होता है। आर्यभट्ट से कुछ पूर्व ऋषिपुत्र नाम के एक ज्योतिर्विद् हुए है। इन की गणितविषयक रचनाएँ तो नही मिलती है, पर सहिताशास्त्र के प्रथम लेखक जचते है।

पराशर—नारद और वसिष्ठ के अनन्तर फलित ज्योतिष के सम्बन्ध में महर्षिपद प्राप्त करने वाले पराशर हुए है। कहा जाता है कि "कलौ पाराशर. स्मृत " अर्थात् कलियुग में पराशर के समान अन्य महर्षि नही हुए। उन के ग्रन्थ ज्योतिष विषय के जिज्ञासुओ के लिए बहुत उपयोगी है बृहत्पाराशरहोराशास्त्र के प्रारम्भ में बताया है—

अथैकदा मुनिश्रेष्ठं त्रिकालज्ञं पराशरम्।
पप्रच्छोपेत्य मैत्रेयः प्रणिपत्य कृताञ्जलि·॥

एक समय मैत्रेयजी ने महर्षि पराशर के समीप उपस्थित हो कर साष्टाग प्रणाम कर के हाथ जोड कर पूछा—

भगवन्! परम पुण्यं गुह्यं वेदाङ्गमुत्तमम्।
त्रिस्कन्ध ज्यौतिषं होरा गणितं संहितेति च॥
एतेष्वपि त्रिपु श्रेष्ठा होरेति श्रूयते मुने।
त्वत्तस्तां श्रोतुमिच्छामि कृपया वद मे प्रभो॥

हे भगवन्! वेदागो में श्रेष्ठ ज्योतिषशास्त्र के होरा, गणित और संहिता इस प्रकार तीन स्कन्ध है। उन में भी सब से होरा शास्त्र ही श्रेष्ठ है, वह मैं आप से सुनना चाहता हूँ। कृपा कर मुझे बतला दिया जाये।

पराशर का समय कौन-सा है तथा इन्होने अपने जन्म से किस स्थान को पवित्र किया था, यह अभी तक अज्ञात है। पर इन की रचना 'बृहत्-पाराशरहोरा' के अध्ययन से इतना स्पष्ट है कि इन का समय वराहमिहिर से

कुछ पूर्व है। वराहमिहिर ने बृहज्जातक मे ग्रहों के उच्च-नीच स्थान, मूल त्रिकोण, नैसर्गिक मित्रता प्रभृति विषय बृहत्पाराशरहोरा से ग्रहण किये प्रतीत होते हैं, भाषा शैली और विषय निरूपण वराहमिहिर से पूर्ववर्त्ती प्रतीत होता है। सृष्टितत्त्व का निरूपण सूर्य सिद्धान्त के समान है। पौराणिक साहित्य में भी सृष्टि का निरूपण इसी प्रकार उपलब्ध होता है। मनुस्मृति और सूर्य सिद्धान्त के सृष्टिक्रम की अपेक्षा भिन्न है। बताया है—

एकोऽव्यक्तात्मको विष्णुरनादिः प्रभुरीश्वर.।
शुद्धसत्त्वो जगत्स्वामी निर्गुणस्त्रिगुणान्वितः॥
संसारकारक श्रीमान्निमित्तात्मा प्रतापवान्।
एकांशेन जगत्सर्वं सृजत्यवति लीलया॥

—सृष्टिक्रम श्लो० १२-१३

स्पष्ट है कि उक्त कथन पौराणिक है अत. बृहत्पाराशरहोरा का समय ७-८वी शती होना चाहिए।

कौटिल्य में पराशर का नाम आता है। पर यह नही कहा जा सकता कि ये पराशर 'बृहत्पाराशरहोराशास्त्र' के रचयिता से भिन्न हैं या वही है। पराशर की एक स्मृति भी उपलब्ध है। गरुडपुराण में पराशर स्मृति के ३९ श्लोको को संक्षिप्त रूप में अपनाया है, इस से इस स्मृति की प्राचीनता सिद्ध है। कौटिल्य ने पराशर और पराशरमतो की छह बार चर्चा की है। पाराशर का नाम प्राचीन काल से ही प्रसिद्ध है। तैत्तिरीयारण्यक एव बृह-दारण्यक में क्रम से व्यास पाराशर्य एवं पाराशर्य नाम आये है। निरुक्त ने 'पाराशर' के मूल पर लिखा है। पाणिनि ने भी भिक्षुसूत्र नामक ग्रन्थ को पारा-शर्य माना है। पराशर स्मृति की भूमिका में आया है कि ऋषि लोगो ने व्यास के पास जा कर उन से प्रार्थना की कि वे कलियुग के मानवो के लिए आचार-सम्बन्धी धर्म की बातें लिखें। व्यासजी उन्हें बदरिकाश्रम मे शक्तिपुत्र अपने पिता पराशर के पास ले गये और पराशर ने उन्हें वर्णधर्म के विषय में बताया। पराशर स्मृति में अन्य १९ स्मृतियो के नाम आये है। पराशर स्मृति में कुछ

नयी और मौलिक बातें भी पायी जाती है। पराशर ने मनु, उशना, बृहस्पति आदि का उल्लेख किया है। इस स्मृति में विनायक स्तुति भी पायी जाती है। पाराशर सहिता का मिताक्षरा, विश्वरूप या अपरार्क ने उद्धरण नही दिया है, किन्तु चतुर्विंशतिमत के भाष्य में भट्टोजिदीक्षित तथा दत्तक-मीमासा में नन्दपण्डित ने इस से उद्धरण लिये हैं। अतएव स्पष्ट है कि बृहत्पाराशरहोरा के रचयिता यदि स्मृतिकार पराशर ही है, तो इन का समय ईसवी पूर्व होना चाहिए। हमारा अनुमान है कि बृहत्पाराशरहोरा के रचयिता पराशर ईसवी सन् की ५-६वी शती के हैं। ग्रन्थ की भाषा और शैली के साथ विषय-विवेचन भी वराहमिहिर से पूर्ववर्त्ती है। अतः ग्रन्थ का रचनाकाल ई० सन् ५वी शती और रचनास्थल पश्चिम भारत है।

बृहत्पाराशरहोरा ९७ अध्यायो में है। उपसंहाराध्याय में समस्त विषयो की सूची दे दी गयी है। इस में ग्रहगुणस्वरूप, राशिस्वरूप, विशेषलग्न, षोडशवर्ग, राशिदृष्टि कथन, अरिष्टाध्याय, अरिष्टभंग, भावविवेचन, द्वादश भावों का पृथक्-पृथक् फलनिर्देश, अप्रकाशग्रहफल, ग्रहस्फुट-दृष्टिकथन, कारक, कारकांशफल, विविधयोग, रवियोग, राजयोग, दारिद्रययोग, आयुर्दाय, मारकयोग, दशाफल, विशेष नक्षत्र दशाफल, कालचक्र, सूर्यादि ग्रहो की अन्तर्दशाओं का फल, अष्टकवर्ग, त्रिकोणशोधन, पिण्डसाधन, रश्मिफल, नष्टजातक, स्त्रीजातक, अंगलक्षणफल, ग्रहशान्ति, अशुभजन्म-निरूपण, अनिष्टयोगशान्ति आदि विषय वर्णित हैं। सहिता और जातक दोनो ही प्रकार के विषय इस ग्रन्थ में आये हैं। यह ग्रन्थ फलित की दृष्टि से बहुत उपयोगी है। ग्रन्थ के अन्त में बताया है—

इत्थ पराशरेणोक्त होराशास्त्रचमत्कृतम् ।
नव नवजनप्रीत्यै विविधाध्यायसंयुतम् ॥
श्रेष्ठ जगद्धितायेद मैत्रेयाय द्विजन्मने ।
तत प्रचरितं पृथ्व्यामादृतं सादरं जनैः ॥

—उपसंहाराध्याय-श्लो० ८-९

इस प्रकार प्राचीन होरा ग्रन्थो से विलक्षण अनेक अध्यायो से युक्त अति श्रेष्ठ इस नवीन होराशास्त्र को संसार के हित के लिए महर्षि पराशर ने मैत्रेय को बतलाया। पश्चात् समस्त जगत् मे इस का प्रचार हुआ और सभी ने इस का आदर किया। उडुदाय प्रदीप (लघुपाराशरी) का प्रणयन पराशर मुनिकृत होरा ग्रन्थ का अवलोकन कर ही किया गया है।

ऋषिपुत्र—यह जैन धर्मानुयायी ज्योतिष के प्रकाण्ड विद्वान् थे। इन के वंशादिका सम्यक् परिचय नही मिलता है, पर Catalogus Catalogorum के अनुसार यह आचार्य गर्ग के पुत्र थे। गर्ग मुनि ज्योतिष के धुरन्धर विद्वान् थे, इस में कोई सन्देह नही। इन के सम्बन्ध में लिखा मिलता है—

जैन आसीज्जगद्वन्द्यो गर्गनामा महामुनि।
तेन स्वयं हि निर्णीतं यं सत्पाशात्रकेवली॥
एतज्ज्ञानं महाज्ञानं जैनर्षिभिरुदाहृतम्।
प्रकाश्य शुद्धशीलाय कुलीनाय महात्मना॥

सम्भवतः इन्ही गर्ग के वंश में ऋषिपुत्र हुए होगे। इन का नाम भी इस बात का साक्षी है कि यह किसी मुनि के पुत्र थे। ऋषिपुत्र का वर्तमान में एक निमित्तशास्त्र उपलब्ध है। इन के द्वारा रची गयी एक संहिता का भी मदनरत्न नामक ग्रन्थ में उल्लेख मिलता है। इन आचार्य के उद्धरण बृहत्संहिता की भट्टोत्पली टीका में भी मिलते हैं।

ऋषिपुत्र का समय वराहमिहिर के पूर्व मे है। इन्होने अपने बृहज्जातक के २६वें अध्याय के ५वें पद्य में कहा है—"मुनिमतान्यवलोक्य सम्यग्घोरां वराहमिहिरो रुचिरां चकार।" इसी परम्परा में ऋषिपुत्र हुए है। ऋषिपुत्र का प्रभाव वराहमिहिर की रचनाओ पर स्पष्ट लक्षित होता है। उदाहरण के लिए एक-दो पद्य दिये जाते है—

ससलोहिवण्णहोवरि सकुण इत्ति होइ णायव्वो।
संगामं पुण घोरं खग्गं सूरो णिवेदेई॥

—ऋषिपुत्र

शशिरुधिरनिभे भानौ नभःस्थले भवन्ति सङ्ग्रामाः ।

—वराहमिहिर

जे दिट्ठभुविरसण्ण जे दिट्ठा कहमेणकत्ताणं ।
सद्दसंकुलेन दिट्ठा वऊसट्ठिय ऐण वाणधिया ॥

—ऋषिपुत्र

भौमं चिरस्थिरभव तच्छान्तिभिराहतं शममुपैति ।
नाभसमुपैति मृदुतां क्षरति न दिव्यं वदन्त्येके ॥

—वराहमिहिर

उपर्युक्त अवतरणो से ज्ञात होता है कि ऋषिपुत्र की रचनाओ का वराहमिहिर के ऊपर प्रभाव पडा है ।

संहिता विषय की प्रारम्भिक रचना होने के कारण ऋषिपुत्र की रचनाओ में विषय को गम्भीरता नही है । किसी एक ही विषय पर विस्तार से नही लिखा है, सूत्ररूप में प्रायः सहिता के प्रतिपाद्य सभी विषयो का निरूपण किया है । शकुनशास्त्र का निर्माण इन्होने किया है, अपने निमित्तशास्त्र में इन्होने पृथ्वी पर दिखाई देने वाले, आकाश में दृष्टिगोचर होने वाले और विभिन्न प्रकार के शब्द-श्रवण-द्वारा प्रकट होने वाले इन तीन प्रकार के निमित्तों-द्वारा फलाफल का अच्छा निरूपण किया है । वर्षोत्पात, देवोत्पात, रजोत्पात, उल्कोत्पात, गन्धर्वोत्पात इत्यादि अनेक उत्पातों-द्वारा शुभाशुभत्व की मीमासा बडे सुन्दर ढंग से इन के निमित्तशास्त्र में मिलती है ।

आर्यभट्ट प्रथम—ज्योतिष का क्रमबद्ध इतिहास आर्यभट्ट के समय से मिलता है । इन का जन्म ई० सन् ४७६ में हुआ था, इन्होने ज्योतिष का प्रसिद्ध ग्रन्थ 'आर्यभटीय' लिखा है । इस में सूर्य और तारो के स्थिर होने तथा पृथ्वी के घूमने के कारण दिन और रात होने का वर्णन है । पृथ्वी की परिधि ४९६७ योजन बतायी गयी है ।

आर्यभट्ट ने सूर्य और चन्द्रग्रहण के वैज्ञानिक कारणो की व्याख्या की है । कालक्रियापाद में युग के समान २ भाग कर के पूर्व भाग का उत्सर्पिणी

और उत्तर भाग का अवसर्पिणी नाम बताया है तथा प्रत्येक के सुषमा-सुषमा, सुषमा आदि छह-छह भेद बताये है—

उत्सर्पिणी युगार्द्धं पश्चादवसर्पिणी युगार्द्धं च ।
मध्ये युगस्य सुषमाऽऽदावन्ते दुःषमाग्न्यंशात् ॥

कालक्रिया पाद में क्षेपक विधि से ग्रहों के स्पष्टीकरण की विधि विस्तार से बतलायी है तथा बुध, शुक्र को विलक्षण संस्कार से संस्कृत कर स्पष्ट किया है। गोलपाद में मेरु की स्थिति का सुन्दर वर्णन किया है तथा अक्ष-क्षेत्रों के अनुपात-द्वारा लम्बज्या, अक्षज्या का साधन सुगमता से किया है।

आर्यभट्ट ने १, २, ३ आदि अंक संख्या के द्योतक क, ख, ग आदि वर्ण कल्पना किये हैं अर्थात् अ, आ इत्यादि स्वर वर्ण और क, ख, ग आदि व्यंजन वर्णों का १-१ संख्या वाचक अर्थ दे कर बड़ी-बड़ी संख्याओं को प्रकाशित किया है। गीतिकापाद में कहा है—

वर्गाक्षराणि वर्गेऽवर्गेऽवर्गाक्षराणि कात् ङ्मौ यः ।
खद्विनवके स्वरा नववर्गेऽवर्गे नवान्त्यवर्गे वा ॥

क=१, ख=२, ग=३, घ=४, ङ=५, च=६, छ=७, ज=८, झ=९, ञ=१०, ट=११, ठ=१२, ड=१३, ढ=१४, ण=१५, त=१६, थ=१७, द=१८, ध=१९, न=२०, प=२१, फ=२२, ब=२३, भ=२४, म=२५, य=३०, र=४०, ल=५०, व=६०, श=७०, ष=८०, स=९०, ह=१०० । क=१, कि=१००, कु=१००००, कृ=१००००००, क्लृ=१००००००००, के=१००००००००००, कै=१००००००००००००, को = १००००००००००००००, कौ=१००००००००००००००००, ख = २, खि=२००; खु = २००००, खृ= २००००००, ख्लृ = २००००००००, खे = २००००००००००, खै = २००००००००००००, खो = २००००००००००००००, खौ=२००००००००००००००००, इसी प्रकार आगे की अंक संख्याएँ दी गयी हैं।

कुछ पाश्चात्य विद्वान् आर्यभट्ट को इस अंक संख्या पर से अनुमान करते हैं कि उन्होने यह संख्याक्रम ग्रीको से लिया है। चाहे जो हो, पर इतना निश्चित है कि आर्यभट्ट ने पटना में, जिस का प्राचीन नाम कुसुमपुर था, अपने अपूर्व ग्रन्थ की रचना की है। इन की गणितविषयक विद्वत्ता का निदर्शन यही है कि उन्होंने गणितपाद में वर्ग, वर्गमूल, घन, घनमूल एवं व्यवहार श्रेणियो के गणित का सुन्दर विवेचन किया है।

अंगविज्जा—अंगविद्या भारतवर्ष में प्राचीनकाल से प्रसिद्ध रही है। प्रस्तुत ग्रन्थ में प्राचीन अंगविद्या के नियम संकलित हैं। अष्ट प्रकार के निमित्तज्ञान में अंगनिमित्त को प्रधान और महत्त्वपूर्ण बताया है। आचार्य ने लिखा है—

जधा णदीओ सव्वाओ ओवरंति महोदधिं।
एवं उंगोदधिं सव्वे णिमित्ता ओतरंतिहि ॥ १ । ६ पृ० १

अर्थात् जिस प्रकार समस्त नदियाँ समुद्र में मिल जाती हैं, उसी प्रकार स्वर, लक्षण, व्यंजन, स्वप्न, छिन्न, भौम और अन्तरिक्षनिमित्त अगनिमित्त रूपी समुद्र में मिल जाते हैं। इस ग्रन्थ के अध्ययन से जय-पराजय, लाभ-हानि, जीवन-मरण आदि की सम्यक् जानकारी प्राप्त की जा सकती है। बताया है—

अणुरत्तो जयं पराजयं वा राजमरणं वा आरोग्गं वा रण्णो आतंकं वा उवद्दव वा मा पुण सहसा वियागरिज्ज णाणी। लाभाऽलाभं सुहदुक्खं जीवितं मरणं वा सुभिक्खं दुब्भिक्खं वा अणावुट्ठिं सुवुट्ठिं वा धणहाणिं अज्झप्पवित्तं वा कालपरिमाणं अंगहियं तत्तत्थणिच्छियमई सहसा उ ण वागरिज्ज णाणी। पृ० ७

यह ग्रन्थ साठ अध्यायो में समाप्त किया गया है। इस की ग्रन्थसंख्या नौ हज़ार श्लोक प्रमाण है। गद्य और पद्य दोनों का प्रयोग किया गया है। यह फलादेश का विशालकाय ग्रन्थ है। इस में हलन-चलन, रहन-सहन, चर्या-चेष्टा प्रभृति मनुष्य की सहज प्रवृत्ति से निरीक्षण-द्वारा फलादेश का निरूपण

किया गया है। यह प्रश्नशास्त्र का ग्रन्थ है और प्रश्नकर्त्ता की विभिन्न प्रवृत्तियो के आधार पर फलादेश का कथन करता है। अतएव गम्भीर अध्ययन के अभाव में वास्तविक फलादेश का निरूपण नही किया जा सकता है। ग्रन्थकर्त्ता ने अंगो के आकार-प्रकार, वर्ण, संख्या, तोल, लिंग, स्वभाव आदि की दृष्टि से उन को २७० विभागो में विभक्त किया है, विविध चेष्टाएँ पर्यस्तिका, आमर्श, अपश्रय-आलम्बन, खड़े रहना, देखना, हँसना, प्रश्न करना, नमस्कार करना, संलाप, आगमन, रुदन, परिवेदन, क्रन्दन, पतन, अभ्युत्थान, निर्गमन, जँभाई लेना, चुम्बन, आलिंगन, प्रभृति नाना चेष्टाओं का निरूपण कर फलादेश का प्रतिपादन किया गया है।

इस ग्रन्थ के नवम अध्याय में २७० विषयों का निरूपण किया है। प्रथम द्वार में शरीरसम्बन्धी ७५ अंगो के नाम और उन का फलादेश वर्णित है। यथा—

एताणि आमसं पुच्छे अत्थलाभं जयं तधा।
पराजयं वा सत्तूणं मित्तसंपत्तिमेव य॥ ९। ८ पृ० ६०
समागमं घरावासं थाणमिस्सरियं जसं।
णिव्वुतिं वा पतिट्ठं वा भोगलाभं सुहाणि य॥ ९। ९ पृ० ६०
दासी-दासं जाण-जुग्गं गो-माहिसमडयाऽविलं।
धण-धण्णं खेत्त-वत्थुं च विज्जा संपत्तिमेव य॥ ९। १० पृ० ६०

मस्तक, सिर, सीमन्तक, ललाट, नेत्र, कान, कपोल, ओष्ठ, दाँत, मुख, मसूढा, कन्धा, बाहु, मणिबन्ध, हाथ, पैर प्रभृति ७५ अंगो का एक बार स्पर्श कर प्रश्नकर्त्ता प्रश्न करे तो अर्थलाभ, जय, शत्रुओ के पराजय, मित्र-सम्पत्ति प्राप्ति, समागम, घर में निवास, स्थानलाभ, यशप्राप्ति, निवृत्ति, प्रतिष्ठा, भोगप्राप्ति, सुख, दासी-दास, यान—सवारी, गाय-भैंस, धन-धान्य, क्षेत्र, वास्तु, विद्या एवं सम्पत्ति आदि की प्राप्ति होती है। उक्त अंगो का एक बार से अधिक स्पर्श करे तो फल विपरीत होता है। वस्त्र और आभूषणो के स्पर्श का फलादेश भी वर्णित है। इस

सन्दर्भ में विभिन्न प्रकार के मनुष्य, देवयोनि, नक्षत्र, चतुष्पद, पक्षी, मत्स्य, वृक्ष, गुल्म, पुष्प, फल, वस्त्र, आभूषण, भोजन, शयनासन, भाण्डोपकरण, धातु, मणि एवं सिक्कों के नामो की सूचियाँ दी गयी हैं। वस्त्रो में पटशाटक, क्षौम, दुकूल, चीनाशुक, चीनपट्ट, प्रावार, शाटक, श्वेतशाट, कौशेय और नाना प्रकार के कम्बलों का उल्लेख आया है। पहनने के वस्त्रो में उत्तरीय, उष्णीष, कंचुक, वारवाण, सन्नाह पट्ट, विताणक, पच्छत–पिछौरी एवं मल्लसाडक—पहलवानों के लगोट का उल्लेख है। आभूषणो की नामावली विशेष रोचक है। किरीट और मुकुट सिर पर पहनने के आभूषण हैं। सिंह-भण्डक वह सुन्दर आभूषण था, जिस में सिंह के मुख की आकृति वनी रहती थी और उस मुख में-से मोतियो के झुग्गे लटकते हुए दिखाये जाते थे। गरुड की आकृतिवाला आभूषण गरुडक और दो मकरमुखों की आकृतियों को मिला कर बनाया गया आभूषण मगरक कहलाता था। इसी प्रकार बैल की आकृतिवाला वृषभक, हाथी की आकृतिवाला हत्थिक और चक्रवाक मिथुन-की आकृति वाला चक्रमिथुनक कहलाता था। इन वस्त्र और आभूषणों के स्पर्श और अवलोकन से विभिन्न प्रकार के फलादेश वर्णित हैं।

५५वें अध्याय में पृथ्वी के भीतर निहित धन को जानने की प्रक्रिया वर्णित है। "तत्थ अत्थि णिधित्तं ति पुव्वमाधारित्ते णिधितमट्ठविधमादिसे। तं जधा–मिण्णमतपमाणं मिण्णसहस्सपमाणं सयसहस्सपमाणं कोडिपमाणं अपरिमियपमाणमिति। कायमंतेसु उम्मट्ठेसु परिमियणिहाणं बूया। तत्थ अपुण्णामेसु अब्भंतारामासे दढामासे णिद्धमासे सुद्धामासे पुण्णामासे य समं बूया। मिण्णे दसक्खे पुव्वाधारित्ते दो वा चत्तारि वा अट्ठ वा बूया। समे पुव्वाधारित्ते दसक्खेवीस वा [चत्तालीसं वा] सट्ठिं वा असीतिं वा बूया।"—पृ० २१३। स्पष्ट है कि पृथ्वी में निहित निधि का आनयन एवं तत्सम्बन्धी विभिन्न जानकारी प्रश्नों के द्वारा की जा सकती है। निधि की प्राप्ति किस देश में होगी, इस का विचार भी किया गया है। नष्ट धन के आनयन का विचार ५७वें अध्याय में किया है। सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र, तारागण

आदि के विचार-द्वारा नष्टकोष का विचार किया गया है। इस ग्रन्थ की प्रश्न-प्रक्रिया एक प्रकार से शकुन और चर्या-चेष्टा पर अवलम्बित है। प्रसंगवश दी गयी विभिन्न सूचियों के आधार से संस्कृति और सभ्यता की अनेक महत्त्वपूर्ण बातें जानी जा सकती हैं। बरतन, भोजन, मद्य पदार्थ, वस्त्राभूषण, सिक्के प्रभृति का विस्तारपूर्वक निर्देश किया है। इस ग्रन्थ के परिशिष्ट के रूप में 'सटीक अंगविद्याशास्त्र' दिया गया है। इस में अंग-प्रत्यंग के स्पर्शनपूर्वक शुभाशुभ फलों का निरूपण किया है। संस्कृत में श्लोक लिखे गये हैं और टीका भी संस्कृत में निबद्ध है। ४४ पद्य हैं और टीका में अनेक महत्त्वपूर्ण बातें लिखी गयी हैं। इस छोटे-से ग्रन्थ का विषय प्राचीन है, पर भाषा-शैली प्राचीन प्रतीत नहीं होती। इस के रचयिता का भी नाम ज्ञात नहीं है, पर इतना स्पष्ट है कि अंगविद्या भारत का पुरातन ज्ञान है। ग्रन्थ के आरम्भ में टीका में बताया है—

"कालोऽन्तरात्मा सर्वदा सर्वदर्शी शुभाशुभैः फलसूचकैः सविशेषेण प्राणिनामपराङ्मुखु स्पर्श-व्यवहारेङ्गितचेष्टादिभिर्निमित्तैः फलमनिदर्शयति।" अर्थात् अंगस्पर्श, व्यवहार और चर्या-चेष्टादि के द्वारा शुभाशुभ फल का निरूपण किया है। इस लघुकाय ग्रन्थ में अंगों की विभिन्न संज्ञाओं के उपरान्त फलादेश निबद्ध किया गया है।

कालकाचार्य—यह निमित्त और ज्योतिष के प्रकाण्ड विद्वान् थे। इन्होंने अपनी प्रतिभा से शककुल के साहि को स्ववश किया था तथा गर्दभिल्ल को दण्ड दिया था, जैन परम्परा में ज्योतिष के प्रवर्तकों में इन का मुख्य स्थान है, यदि यह आचार्य निमित्त और संहिता का निर्माण न करते तो उत्तरवर्ती जैन लेखक ज्योतिष को पापश्रुत समझ कर अछूता ही छोड़ देते।

कालक कथाओं से पता चलता है कि यह मध्य देशान्तर्गत, 'धारावास' नामक नगर के राजा वयरसिंह के पुत्र थे। इन की माता का नाम सुरसुन्दरी और बहन का नाम सरस्वती था। एक बार यह घोड़े पर वन में घूमने गये, वहाँ इन की जैन मुनि गुणाकर से मुलाकात हुई और उन का धर्मोपदेश सुन-

कर संसार से विरक्त हो गये और बहुत समय तक जैन शास्त्रो का अभ्यास करते रहे तथा थोडे समय के पश्चात् आचार्य पद को प्राप्त हुए। पाटन (उत्तर गुजरात) के एक.ताड़पत्रीय पुस्तक भण्डार में ताड़पत्र पर लिखे गये एक प्रकरण में एक प्राकृत गाथा मिली है, जिस में बताया गया है कि— "काल का सूरि ने प्रथमानुयोग में जिन, चक्रवर्ती, वासुदेव आदि के चरित्र और उन के पूर्व भवों का वर्णन किया है। तथा लोकानुयोग में बहुत बडे निमित्त शास्त्र की रचना की है।" भोजसागर गणि नामक विद्वान् ने संस्कृत भाषा में रमल विद्याविषयक एक ग्रन्थ लिखा है, उस में उन्होने कालकाचार्य-द्वारा यवन देश से लायी गयी इस विद्या को बताया है। इस घटना में चाहे तथ्य हो या नही, पर इतना स्पष्ट है कि ईसवी सन् की तीसरी शताब्दी के ज्योतिर्विदो में इन का गौरवपूर्ण स्थान था। वराहमिहिराचार्य ने बृहज्जातक में कालकसंहिता का उल्लेख किया है। इस से स्पष्ट है कि उन्होने एक संहिता ग्रन्थ भी लिखा था, जो आज उपलब्ध नही है, पर निशीथचूर्णि, आवश्यकचूर्णि आदि ग्रन्थो से इन के ज्योतिष-ज्ञान का पता सहज में लगाया जा सकता है। ईसवी सन् की प्रथम और द्वितीय शताब्दी के मध्य में होने वाले आचार्य उमास्वामी भी ज्योतिष के आवश्यक सिद्धान्तो से अभिज्ञ थे।

द्वितीय आर्यभट्ट—इन का सिद्धान्त 'महाआर्यभट्टीय' के नाम से प्रसिद्ध है। इस ग्रन्थ का दूसरा नाम 'महाआर्यसिद्धान्त' भी बताया जाता है। इस में १८ अध्याय एव ६२५ आर्या—उपगीति हैं, पाटीगणित, क्षेत्र-व्यवहार और बीजगणित भी इस में सम्मिलित है। पाराशर सिद्धान्त से इस में ग्रह भगण लिये हैं। इस ने प्रथम आर्यभट्ट के सिद्धान्त में कई तरह से सशोधन किया है। कुछ लोग द्वितीय आर्यभट्ट का काल ब्रह्मगुप्त के बाद बतलाते हैं, पर निश्चित प्रमाण के अभाव में कुछ नही कहा जा सकता है। भास्कराचार्य ने अपने सिद्धान्तशिरोमणि के स्पष्टाधिकार में द्रेष्काणोदय आर्यभट्टीय का दिया है, अतः यह भास्कर के पूर्ववर्ती हैं, इतना निश्चित

है। महाआर्यसिद्धान्त ज्योतिष की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इस की परम्परा पीछे के अनेक ज्योतिर्विदो ने अपनायी है। इन के जीवन-वृत्त के सम्बन्ध में निश्चित रूप से कुछ भी ज्ञात नही, पर इन के पाण्डित्य का अनुमान महाआर्यसिद्धान्त से किया जा सकता है।

लल्लाचार्य—इन के पिता का नाम भट्टत्रिविक्रम और पितामह का नाम शाम्ब था। लल्लाचार्य के गुरु का नाम प्रथम आर्यभट्ट बताया गया है। इन का जन्म श० स० ४२१ में हुआ था। इन्होने अपने 'शिष्यधीवृद्धि' नामक ज्योतिष ग्रन्थ की रचना आर्यभट्ट की परम्परा को ले कर की है—

आचार्याऽऽर्यभटोदितं सुविषमं व्योमौकसां कर्म य-
च्छिष्याणामभिधीयते तदधुना लल्लेन धीवृद्धिदम् ॥
विज्ञाय शास्त्रमलमार्यभटप्रणीतं तन्त्राणि यद्यपि कृतानि तदीयशिष्यैः।
कर्मक्रमो न खलु सम्यगुदीरितस्तैः कर्म ब्रवीम्यहमतः क्रमशस्तु सूक्ष्मम् ॥

लल्लाचार्य गणित, जातक और सहिता इन तीनो स्कन्धो में पूर्ण प्रवीण थे। यद्यपि यह आर्यभट्ट के सिद्धान्तो को ले कर चले है, पर तो भी अनेक विशेष विषय इन के ग्रन्थों में पाये जाते हैं। शिष्यधीवृद्धि में प्रधान रूप से गणिताध्याय और गोलाध्याय, ये दो प्रकरण है। गणिताध्याय में मध्यमाधिकार, स्पष्टाधिकार, त्रिप्रश्नाधिकार, चन्द्रग्रहणाधिकार, सूर्यग्रहणाधिकार, पर्वसम्भवाधिकार, ग्रहयुत्यधिकार, भग्रहयुत्यधिकार, महापाताधिकार और उत्तराधिकार नामक उपप्रकरण हैं। गोलाध्याय में छेदाधिकार, गोलबन्धाधिकार, मध्यगतिवासना, भूगोलाध्याय, ग्रहभ्रमसंस्थाध्याय, भुवनकोश, मिथ्याज्ञानाध्याय, यन्त्राध्याय और प्रश्नाध्याय नामक उपप्रकरण है। इन का 'रत्नकोष' नामक सहिता ग्रन्थ भी मिलता है। भास्कराचार्य ने यद्यपि इन के सिद्धान्तो का खण्डन किया है, पर तो भी इन की विद्वत्ता का लोहा उन्होने मानने से इनकार नही किया है।

त्रिस्कन्धविद्याकुशलैकमल्लो लल्लोऽपि यत्राऽप्रतिमो बभूव।
यातेऽपि किञ्चिद् गणिताधिकारे पाताधिकारे गमनाऽधिकारे ॥

उपर्युक्त श्लोक से स्पष्ट है कि भास्कराचार्य भी लल्ल की विद्वत्ता के क़ायल थे।

यदि सूक्ष्मनिरीक्षण-द्वारा भास्कर की रचनाओ का परीक्षण किया जाये तो स्पष्ट ज्ञात होगा कि लल्लाचार्य की अनेक बातें ज्यो की त्यो अपना ली गयी है। उत्क्रमज्या-द्वारा साधित ग्रहप्रणाली इन की मौलिक विशेषता है।

पूर्वमध्यकाल (ई० ५०१–१००० तक)

सामान्य परिचय

इस युग में ज्योतिषशास्त्र उन्नति की चरम सीमा पर था। वराह-मिहिर जैसे अनेक धुरन्धर ज्योतिर्विद् हुए, जिन्होने इस विज्ञान को क्रमवद्ध किया तथा अपनी अद्वितीय प्रतिभा-द्वारा अनेक नवीन विषयो का समावेश किया। इस युग के प्रारम्भिक आचार्य वराहमिहिर या वराह है, जिन्होने अपने पूर्वकालीन प्रचलित सिद्धान्तों का पचसिद्धान्तिका में सग्रह किया। इस काल में ज्योतिष के सिद्धान्त, संहिता और होरा ये तीन भेद प्रस्फुटित हो गये थे। ग्रहगणित के क्षेत्र में सिद्धान्त, तन्त्र एव करण इन तीन भेदो का प्रचार भी होने लग गया था। सिद्धान्तगणित में कल्पादि से, तन्त्र में युगादि से और करण में शकाब्द पर से अहर्गण बना कर ग्रहादि का आनयन किया जाता है। सिद्धान्त में जीवा और चाप के गणित-द्वारा ग्रहो का फल ला कर आनीत मध्यमग्रह में सस्कार कर देते है तथा भौमादि ग्रहों का मन्द और शीघ्रफल ला कर मन्दस्पष्ट और स्पष्ट मान सिद्ध करते है।

इस काल में उदयास्त, युति, शृगोन्नति आदि का गणित भी प्रचलित हो गया था। ब्रह्मपुत्र और महावीराचार्य ने गणित विषय के अनेक सिद्धान्तो को साहित्य का रूप प्रदान किया। महावीराचार्य की असीमावद्ध सख्याओ के समाधान की क्रिया बडी विलक्षण है। उपर्युक्त दोनों आचार्यों के बीज-गणित-विषयक सिद्धान्तो पर दृष्टिपात करने से ज्ञात होगा कि इस युग में—(१) ऋण राशियो के समीकरण की कल्पना, (२) वर्ग समीकरण को हल

करना, (३) एक वर्ग, अनेक वर्गसमीकरण कल्पना, (४) वर्ग; घन और अनेक घातसमीकरणो को हल करना, (५) अंकपाश, संख्या के एकादि भेद और कुट्टक के नियम, (६) केन्द्रफल को निकालना, (७) असीमावद्ध समीकरण, (८) द्वितीय स्थान की राशियो का असीमावद्ध समीकरण, (९) अर्द्धच्छेद, त्रिकच्छेद आदि लघुरिक्थ सम्बन्धी गणित (१०) अभिन्न राशियो का भिन्न राशियो के रूप मे परिवर्तन करना, आदि सिद्धान्त प्रचलित थे।

पूर्वमध्यकाल मे अकगणित के भी निम्न सिद्धान्त आविष्कृत हो चुके थे—

(१) अभिन्न गुणन, (२) भागहार, (३) वर्ग, (४) वर्गमूल, (५) घन, (६) घनमूल, (७) भिन्न-समच्छेद, (८) भागजाति, (९) प्रभागजाति, (१०) भागानुवन्ध, (११) भागमातृजाति, (१२) त्रैराशिक, (१३) पचराशिक, (१४) सप्तराशिक, (१५) नवराशिक, (१६) भाण्ड-प्रतिभाण्ड, (१७) मिश्रव्यवहार, (१८) सुवर्ण गणित, (१९) प्रक्षेपक गणित, (२०) समक्रय-विक्रय गणित, (२१) श्रेणीव्यवहार, (२२) क्षेत्रव्यवहार, (२३) छायाव्यवहार, (२४) स्वाशानुवन्ध, (२५) स्वाशापवाह, (२६) इष्टकर्म, (२७) द्वीष्टकर्म, (२८) चितिघन, (२९) घनातिघन, (३०) एकपत्रीकरण एव (३१) वर्गप्रकृति आदि सिद्धान्तो का अंकगणित में प्रयोग होने लग गया था।

रेखागणित के भी अनेक सिद्धान्तो का प्रयोग उस काल में व्यापक रूप से होता था। तथा इस विषय का वर्णन इस युग के प्रायः सभी ज्योतिर्विदों ने विस्तार से किया है। सिद्धान्त गणित, जिस के लिए जीवा-चाप के गणित की नितान्त आवश्यकता होती है और जिस का प्रचार आदि-काल से ही चला आ रहा था, इस युग में उस में अनेक संशोधन किये गये। लल्लाचार्य ने उत्क्रमज्या-द्वारा ही ग्रहगणित का साधन किया था, पर इस काल के आचार्यो ने यूनान और ग्रीस के सम्पर्क से क्रमज्या, कोटिज्या, कोट्युत्क्रमज्या आदि-द्वारा ग्रहगणित का साधन किया। पूर्वमध्यकाल के ज्योतिष-साहित्य में रेखागणित के निम्न सिद्धान्तो का उल्लेख मिलता है—

१. समकोण त्रिभुज में कर्ण का वर्ग दोनो भुजाओ के जोड के बराबर होता है।

२. दिये हुए दो वर्गो का योग अथवा अन्तर के समान वर्ग बनाना।

३. आयत को वर्ग या वर्ग को आयत में बदलना।

४. करणी-द्वारा राशियो का वास्तविक वर्गमूल निकालना।

५. वृत्त को वर्ग और वर्ग को वृत्तो में बदलना।

६ शंकु और वर्तुल के घनफल निकालना।

७. विषमकोण चतुर्भुज के कर्णानयन की विधि और उस के दोनो कर्णो के ज्ञान से भुज-साधन करना।

८. त्रिभुज, विषमकोण, चतुर्भुज और वृत्त का क्षेत्रफल निकालना।

९ सूचीव्यास, वऋयन्यास और वृत्तान्तर्गत वृत्त का व्यास निकालना।

१०. वृत्त परिधि, वृत्त सूची और उस के घनफल को निकालना।

रेखागणित और भूमिति गणित के साथ-साथ कोणमिति के ज्योतिष-विषयक गणितो का प्रचार भी ई० सन् ७००-८०० के मध्य मे हुआ था तथा ब्रह्मगुप्त ने इस सम्बन्ध में अनेक सिद्धान्त निर्धारित कर त्रिकोणमिति गणित को ग्रहसाधन के लिए व्यवहृत किया था।

वृहत्सहिता में दैवज्ञ की विद्वत्ता की समालोचना करते हुए लिखा है—

तत्र ग्रहगणिते पौलिशरोमकवासिष्ठसौरपैतामहेषु पञ्चस्वेतेषु सिद्धान्तेषु युगवर्षायनर्तुमासपक्षाहोरात्रयाममुहूर्त्तनाडीविनाडीप्राणत्रुटित्रुट्यवयवाद्यस्य कालस्य क्षेत्रस्य च वेत्ता।

चतुर्णां च मासाना सौरसावननाक्षत्रचान्द्राणामधिमासकावमसम्भवस्य च कारणाभिज्ञः।

षष्ट्यब्दयुगवर्षमासदिनहोराधिपतीनां प्रतिपत्तिविच्छेदवित्।

सौरादीनाञ्च मानाना सदृशासदृशयोग्यायोग्यत्वप्रतिपादनपटु॥

सिद्धान्तभेदेऽप्ययननिवृत्तौ प्रत्यक्षं सममण्डलरेखासम्प्रयोगाभ्युदितांशकानाञ्च छायाजलयन्त्रदृग्गणितसाम्येन प्रतिपादनकुशल। सूर्या-

दीनाञ्च ग्रहाणां शीघ्रमन्दयाम्योत्तरनोचोच्चगतिकारणामिज्ञः।
अर्थात्—पौलिश, रोमक, वासिष्ठ, सौर, पितामह इन पाँचो सिद्धान्त-सम्बन्धी युग, वर्ष, अयन, ऋतु, मास, पक्ष, अहोरात्र, प्रहर, मुहूर्त, घटी, पल, प्राण, त्रुटि और त्रुटि के सूक्ष्म अवयव काल विभाग, कला, विकला, अंश और राशि रूप सूक्ष्म क्षेत्रविभाग, सौर, सावन, नाक्षत्र और चान्द्र मास, अधिमास तथा क्षयमास का सोपपत्तिक विवरण; सौर एव चान्द्र दिनो का यथार्थ मान और प्रचलित मान्यताओ के परीक्षण का विवेक; सम-मण्डलीय छायागणित, जलयन्त्र-द्वारा दृग्गणित, सूर्यादि ग्रहो की शीघ्र-गति, मन्दगति, दक्षिणगति, उत्तरगति, नीच और उच्च गति तथा उन की वासनाएँ, सूर्य और चन्द्रमा के ग्रहण में स्पर्श और मोक्षकाल, स्पर्श और मोक्ष की दिशा, ग्रहण की स्थिति, विमर्द, वर्ण और देश, ग्रहयुति, ग्रह-स्थिति, ग्रहो की योजनात्मक कक्षाएँ; पृथ्वी, नक्षत्र आदि का भ्रमण; अक्षांश, लम्बांश, द्युज्या, चरखण्डकाल, राशियो के उदयमान एवं छाया-गणित आदि विभिन्न विषयो में पारगत ज्योतिषी को होना आवश्यक बताया गया है।

उपर्युक्त वाराही सहिता के विवेचन से स्पष्ट है कि पूर्वमध्यकाल के प्रारम्भ में ही ग्रहगणित उन्नति की चरम सीमा पर था। ई० सन् ६०० में इस शास्त्र के साहित्य का निर्माण स्वतन्त्र आकाश-निरीक्षण के आधार पर होने लग गया था। आदिकालीन ज्योतिष के सिद्धान्तो को परिष्कृत किया जाने लगा था।

फलित ज्योतिष—पूर्वमध्यकाल मे फलित ज्योतिष के संहिता और जातक अगो का साहित्य अधिक रूप से लिखा गया है। राशि, होरा, द्रेष्काण, नवांश, द्वादशांश, त्रिंशांश, परिग्रह स्थान, कालबल, चेष्टाबल, ग्रहो के रंग, स्वभाव, धातु, द्रव्य, जाति, चेष्टा, आयुर्दाय, दशा, अन्तर्दशा, अष्टकवर्ग, राजयोग, द्विग्रहादियोग, मुहूर्त्तविज्ञान, अगविज्ञान, स्वप्नविज्ञान, शकुन एव प्रश्नविज्ञान आदि फलित के अंगो का समावेश होरा

शास्त्र में होता था। सहिता मे सूर्यादि ग्रहो की चाल, उन का स्वभाव, विकार, प्रमाण, वर्ण, किरण, ज्योति, सस्थान, उदय, अस्त, मार्ग, पृथक् मार्ग, वक्र, अनवक्र, नक्षत्रविभाग और कूर्म का सब देशो में फल, अगस्त्य की चाल, सप्तर्षियो की चाल, नक्षत्रव्यूह, ग्रहशृगाटक, ग्रहयुद्ध, ग्रहसमागम, परिवेष, परिघ, वायु, उल्का, दिग्दाह, भूकम्प, गन्धर्वनगर, इन्द्रधनुष, वास्तुविद्या, अगविद्या, वायसविद्या, अन्तरचक्र, मृगचक्र, अश्वचक्र, प्रासाद-लक्षण, प्रतिमालक्षण, प्रतिमाप्रतिष्ठा, घृतलक्षण, खड्गलक्षण, पट्टलक्षण, कुक्कुटलक्षण, कूर्मलक्षण, गोलक्षण अजालक्षण, अश्वलक्षण, स्त्री-पुरुष-लक्षण एव साधारण-असाधारण सभी प्रकार के शुभाशुभो का विवेचन अन्तर्भूत होता था। कही-कही पर तो कुछ विषय होरा के—स्वप्न और शकुन सहिता में गर्भित किये गये है। इस युग का फलित ज्योतिष केवल पचाग ज्ञान तक ही सीमित नही था, किन्तु समस्त मानव जीवन के विषयो की आलोचना और निरूपण करना भी इसी में शामिल था।

ईसवी सन् ५०० के लगभग ही भारतीय ज्योतिष का सम्पर्क ग्रीस, अरब और फारस आदि देशों के ज्योतिष के साथ हुआ था। वराहमिहिर ने यवनो के सम्बन्ध में लिखा है कि—

> म्लेच्छा हि यवनास्तेषु सम्यक् शास्त्रमिद स्थितम्।
> ऋषिवत्तेऽपि पूज्यन्ते किं पुनर्दैवविद् द्विज ॥

अर्थात्—म्लेच्छ—कदाचारी यवनों के मध्य में ज्योतिषशास्त्र का अच्छी तरह प्रचार है, इस कारण वे भी ऋषि-तुल्य पूजनीय हैं; इस शास्त्र का जानने वाला द्विज हो तो वात ही क्या?

इस से स्पष्ट है कि वराहमिहिर के पूर्व यवनो का सम्पर्क ज्योतिष-क्षेत्र में पर्याप्त मात्रा में विद्यमान था। ईसवी सन् ७७१ में भारत का एक जत्था बगदाद गया था और उन्ही में-से एक विद्वान् ने 'ब्रह्मस्फुटसिद्धान्त' का व्याख्यान किया था। अरब मे इस ग्रन्थ का अनुवाद 'अस सिन्द हिन्द' नाम से हुआ है। इब्राहीम इब्नहबीब अलफजारी ने इस ग्रन्थ के आधार पर

मुसलिम चान्द्रवर्ष के स्पष्टीकरण के लिए एक सारणी बनायी थी। अरब में और भी कई विद्वान् ज्योतिष के प्रचार के लिए गये थे, जिस से वहाँ भारत के युगमान के अनुकरण पर हज़ारो और लाखो वर्षो की युगप्रणाली की कल्पना कर ग्रन्थ लिखे गये।

भारत का ग्रीस के साथ ईसवी सन् १०० के लगभग ही सम्पर्क हो गया था, जिस से ज्योतिष शास्त्र में परस्पर में बहुत आदान-प्रदान हुआ। भारतीय ज्योतिष में अक्षाश, देशान्तर, चरसंस्कार और उदयास्त की सूक्ष्म विवेचना मुसलिम और ग्रीक सभ्यता के सम्पर्क से इस युग में विशेष रूप से हुई। पर सिद्धान्त और संहिता इन दो अंगो को साहित्यिक रूप प्रदान करने का सौभाग्य भारत को ही है। यद्यपि जातक अंग को जन्म इस देश ने दिया था, पर लालन-पालन में विदेशीय सभ्यता का रंग चढने से भारत माँ की गोद में पलने पर भी कुछ संस्कार पूर्वमध्य काल में ग्रीक लोगो के पड़ गये, जो आज तक अक्षुण्ण रूप से चले आ रहे है।

आज के कुछ विद्वान् ईसवी सन् ६००–७०० के लगभग भारत में प्रश्न अंग का ग्रीक और अरबो के सम्पर्क से विकास हुआ बतलाते है तथा इस अंग का मूलाधार भी उक्त देशो के ज्योतिष को मानते है, पर यह गलत मालूम पडता है। क्योकि जैन ज्योतिष जिस का महत्त्वपूर्ण अंग प्रश्नशास्त्र है, ईसवी सन् की चौथी और पाँचवी शताब्दी में पूर्ण विकसित था। इस मान्यता में भद्रबाहुविरचित अर्हच्चूडामणिसार प्रश्नग्रन्थ प्राचीन और मौलिक माना गया है। आगे के प्रश्न ग्रन्थो का विकास इसी ग्रन्थ की मूल भित्ति पर हुआ प्रतीत होता है।

जैन मान्यता में प्रचलित प्रश्न-शास्त्र का विश्लेषण करने से प्रतीत होता है कि इस का बहुत-कुछ अंश मनोविज्ञान के अन्तर्गत हो आता है। ग्रीकों से जिस प्रश्न-शास्त्र को भारत ने ग्रहण किया है, वह उपर्युक्त प्रश्नशास्त्र से विलक्षण है।

ईसवी सन् की ७वी और ८वो सदी के मध्य में 'चन्द्रोन्मीलन' नामक

प्रश्न-ग्रन्थ बहुत प्रसिद्ध था, जिस के आधार पर 'केरलप्रश्न' का आविष्कार भारत मे हुआ है। अतएव यह मानना पडेगा कि प्रश्न अंग का जन्म भारत में हुआ और उस की पुष्टि ईसवी सन् ७००–९०० तक के समय में विशेष रूप से हुई।

उद्योतन सूरि की कृति कुवलयमाला में ज्योतिष और सामुद्रिकविषयक पर्याप्त निर्देश पाया जाता है। इस ग्रन्थ का रचनाकाल शक सवत् ७०० में एक दिन न्यून है अर्थात् शक सवत् ६९९ चैत्र कृष्णा चतुर्दशी को समाप्त किया गया है। उद्योतन ने द्वादश राशियो में उत्पन्न नर-नारियों के भविष्य का निरूपण करते हुए लिखा है—

णिच्चं जो रोगभागी णरवइ-सयणे पूइओ चक्खुलोलो,
धम्मत्थे उज्जमंतो सहियण-वलिओ ऊरुजघो कयण्णू।
सूरो जो चंडकम्मे पुणरवि मउओ वल्लहो कामिणीणं,
जेट्ठो सो भाउयाणं जल-णिचय-सहा-भीरुओ मेस-जाओ"

—कुवलयमाला, पृ० १९

अर्थात्—मेष राशि में उत्पन्न हुआ व्यक्ति रोगी, राजा और स्वजनों से पूजित, चचल नेत्र, धर्म और अर्थ की प्राप्ति के लिए उद्योगशील, मित्रो से विमुख, स्थूल जाँघवाला, कृतज्ञ, शूरवीर, प्रचण्ड कर्म करने वाला, अल्पधनी, स्त्रियो का प्रिय, भाइयों में बडा एव जलसमूह—नदी, समुद्र आदि से भीत रहनेवाला होता है।

अट्ठारस-अणुवीसो चुक्को सो कह त्रि मरइ सय-वरिसो।
अंगार-चोद्दसीए कित्तिय तह अड्ढ-रत्तम्मि॥ —वही, पृ० १९

मेष राशि में जन्मे व्यक्ति को १८ और २५ वर्ष की अवस्था में अल्पमृत्यु का योग आता है। यदि ये दोनो अकाल मरण निकल जाते हैं तो सौ वर्ष की आयु में मरण काल आता है और कार्तिक मास की शुक्ला चतुर्दशी की मध्यरात्रि में मरण होता है।

वृष राशि में जन्म लिये हुए व्यक्तियो का फलादेश बतलाते हुए

लिखा है—

भोगी अत्थस्स दाया पिहुल-गल-महा-गंडवासो सुमित्तो
दक्खो सच्चो सुई जो सललिय-गमणो दुट्ठ-पुत्तो कलत्तो।
तेयंसी भिच्च-जुत्तो पर-जुवइ-महाराग-रत्तो गुरूणं
गंडे खंधे व्व चिण्ह कुजण-जण-पिओ कंठ-रोगी विसम्मि॥
चुक्को चउप्पयाओ पणुवीसो मरइ सो सयं पत्तो।
मग्गसिर-पहर सेसे-बुह-रोहिणि पुण्ण-खेत्तम्मि॥—वही, पृ० १९

वृष राशि में उत्पन्न हुआ व्यक्ति भोगी, धन देने वाला, स्थूल गले वाला, बड़े-बड़े गाल वाला—कपोल वाला, अच्छे मित्र वाला, दक्ष, सत्यवादी, शुचि, लीलापूर्वक गमन करने वाला, दुष्ट, पुत्र-स्त्रीवाला, तेजस्वी, भृत्य-युक्त, परस्त्रियों का अनुरागी, कन्धे और गले पर तिल या मस्से के चिह्न से युक्त तथा लोगों के लिए प्रिय होता है। इस का चतुष्पद—पशु आदि के कारण पच्चीस वर्ष की अवस्था में अकालमरण सम्भव होता है। यदि इस अकाल मरण से बच गया तो मार्गशीर्ष शुक्ल पक्ष में बुधवार रोहिणी नक्षत्र में सौ वर्ष की आयु में किसी पुण्य क्षेत्र में इस का मरण होता है।

इसी प्रकार अन्य राशियों में जन्म ग्रहण किये हुए व्यक्तियों का फलादेश भी इस ग्रन्थ में वर्णित है। इस फलादेश की सत्यतासत्यता के सम्बन्ध में बताया है—"जइ रासी बलिओ रासी-सामी-गहो तहेव, सव्व सच्च। अह एए ण बलिया कूरग्गह-णिरिक्खिया य होंति ता किंचि सच्चं किंचि मिच्छ' ति। अर्थात् राशि और राशीश के बलवान् होने पर पूर्वोक्त सभी फल सत्य होता है। यदि राशि और राशीश बलवान् न हो और क्रूरग्रह की राशि हो या राशीश भी क्रूर हो अथवा पाप ग्रह से वह राशि और राशीश दृष्ट हो तो फलादेश कुछ सत्य और कुछ मिथ्या होता है।

सामुद्रिक शास्त्र के सम्बन्ध में बताया है—

पुव्व-कय-कम्म-रइयं सुहं च दुक्खं च जायए देहे।
तत्थ वि य लक्खणाइं तेणेमाइ णिसामेह॥

अगाइँ उवंगाइ अगोवगाइँ तिण्णि देहम्मि ।
ताणं सुहमसुहं वा लक्खणमिणमो णिसामेहि ॥
लक्खिज्जइ जेण सुहं दुक्ख च णराण दिट्ठि-मेत्ताणं ।
त लक्खणं ति भणिय सव्वेसु वि होइ जीवेसु ॥
रत्तं सिणिद्ध-मउयं पाय-तल जस्स होइ पुरिसस्स ।
णं य सेयणं स वक सो राया होइ पुहईए ॥
ससि-सूर वज्ज-चक्कंकुसे य संख च होज्ज छत्तं वा ।
अह वुड्ढ-सिणिद्धाओ रेहाओ होंति णरवइणो ॥
भिण्णा सपुण्णा वा सखाइं देंति पच्छिमा भोगा ।
अह खर-वराह-जबुय-लक्खका दुक्खिया होंति ॥
वट्टे पायगुट्ठे अणुकूला होइ मारिया तस्स ।
अगुलि-पमाण-मेत्ते अगुट्ठे मारिया दुइया ॥
जइ मज्झिमाएँ सरिसो कुलवुड्ढी अह अणामिया सरिसो ।
सो होइ जमल-ज० ओ पिउणो मरणं कणिट्ठीए ॥
पिहुलगुट्ठे पहिओ विणयग्गेणं च पावए विरहं ।
मग्गेण णिच्च-दुहिओ जह भणिय लक्खणण्णूहिं ॥

—कुवलयमाला, पृ०१२९, प्रघट्टक २१६

पूर्वोपार्जित कर्मो के कारण जीवधारियो को सुख-दु ख की प्राप्ति होती है। इस सुख-दु खादि को लक्षणो के द्वारा जाना जा सकता है। शरीर में अंग, उपाग और अगोपांग ये तीन होते है, इन तीनो के लक्षण कहे जाते है। जिस के द्वारा मनुष्यो के सुख-दु ख अवलोकन मात्र से जाने जायें, उसे लक्षण कहते है। जिस मनुष्य के पैर का तलवा लाल, स्निग्ध और मृदुल हो तथा स्वेद और वक्रता से रहित हो तो वह इस पृथ्वी का राजा होता है। पैर में चन्द्रमा, सूर्य, वज्र, चक्र, अकुश, शख और छत्र के चिह्न होने पर व्यक्ति राजा होता है। स्निग्ध और गहरी रेखाएँ भी नृपति के पैर के तलवे में होती हैं। शखादि चिह्न भिन्न अपूर्ण या स्पष्ट अथवा पूर्ण-स्पष्ट हो तो

उत्तरार्द्ध अवस्था मे सुख-भोगो की प्राप्ति होती है। खर-गर्दभ, वराह-शूकर, जंबुक-शृगाल की आकृति के चिह्न हो तो व्यक्ति को कष्ट होता है। समान पदांगुष्ठो के होने पर मनोनुकूल पत्नी की प्राप्ति होती है। अँगुली में समान अँगूठे के होने पर दो पत्नियो की प्राप्ति होती है। यदि मध्यमा अँगुली के समान अँगूठा हो तो कुलवृद्धि होती है। अनामिका के समान अँगूठा के होने पर यमल सन्तान की प्राप्ति एवं कनिष्ठा के समान होने पर पिता की मृत्यु होती है। स्थूल अँगूठा होने पर पथिक—यात्रा करने वाला होता है। आगे की ओर अँगूठा के झुका रहने पर विरह वेदना का कष्ट होता है। भग्न अँगूठा के होने पर नित्य दुःख की प्राप्ति होती है।

जिस व्यक्ति की तर्जनी अँगुली दीर्घ होती है, वह व्यक्ति महिलाओं-द्वारा सर्वदा तिरस्कृत किया जाता है। वह नाटा होता है, कलहप्रिय होता है और पिता-पुत्र से रहित होता है। जिस की मध्यमा अँगुली दीर्घ होती है, उस के धन का विनाश होता है और घर से स्त्री का भी विनाश या निर्वास होता है। अनामिका के दीर्घ होने से व्यक्ति विद्वान् होता है तथा कनिष्ठा के दीर्घ होने से नाटा होता है। हाथ की अँगुलियो की परीक्षा का विषय इस ग्रन्थ में अत्यन्त विस्तारपूर्वक दिया है। सामुद्रिक शास्त्र का ग्रन्थ न होने पर भी सामुद्रिक शास्त्र की अनेक महत्त्वपूर्ण बातें आयी है।

कुवलयमाला में अँगुली और अँगूठे के विचार के अनन्तर हाथ की हथेली का विचार किया है। हथेली के स्पर्श, रूप, गन्ध एवं लम्बाई-चौडाई का विस्तारपूर्वक विचार किया गया है। वृषण और लिंग के ह्रस्व, दीर्घ एव विभिन्न आकृतियो का पर्याप्त विचार किया है। वक्षस्थल, जिह्वा, दाँत, ओष्ठ, कान, नाक आदि के रूप-रंग, आकृति, स्पर्श आदि के द्वारा शुभाशुभ फल वर्णित है। अंगज्ञान के सम्बन्ध में लेखक ने इस कथाग्रन्थ में पर्याप्त सामग्री संकलित कर दी है। दीर्घायु का विचार करते हुए लिखा गया है—

> कण्ठं पिट्ठी लिंगं जंघे य हवंति हस्सया एए।
> पिहुला हत्थ पाया दीहाऊ सुत्थिओ होइ ॥

चक्खु-सिणेहे सुहओ दंतसिणेहे य भोयणं मिट्ठं ।
तय-णेहेण उ सोक्ख णह-णेहे होइ परम-धणं ॥
—कुवलयमाला, पृ० १३१, अनु० २१६

कण्ठ, पीठ, लिंग और जांघ का ह्रस्व—लघु होना शुभ है। हाथ और पैर का दीर्घ होना भी शुभ फल का सूचक है। आंखो के चिकने होने से व्यक्ति सुखी, दांतों के चिकने होने से मिष्ठान्नप्रिय, त्वचा के चिकना होने से सुख एवं नाखूनों के चिकने होने से अत्यधिक धन की प्राप्ति होती है।

इस प्रकार नेत्र, नाखून, दांत, जांघ, पैर, हाथ आदि के रूप-रग, स्पर्श, सन्तुलित प्रमाण—वजन एवं आकार-प्रकार के द्वारा फलादेश का निरूपण किया गया है।

प्रमुख ज्योतिर्विद् और उन के ग्रन्थों का परिचय

वराहमिहिर—यह इस युग के प्रथम धुरन्धर ज्योतिर्विद् हुए, इन्होंने इस विज्ञान को क्रमबद्ध किया तथा अपनी अप्रतिम प्रतिभा-द्वारा अनेक नवीन विशेषताओ का समावेश किया। इन का जन्म ईसवी सन् ५०५ में हुआ था। बृहज्जातक में इन्होंने अपने सम्बन्ध में कहा है—

आदित्यदासतनयस्तदवाप्तबोधः काम्पिल्लके सवितृलब्धवरप्रसादः ।
आवन्तिको मुनिमतान्यवलोक्य सम्यग्घोरां वराहमिहिरो रुचिरां चकार ॥

अर्थात्—काम्पिल्ल (कालपी) नगर में सूर्य से वर प्राप्त कर अपने पिता आदित्यदास से ज्योतिषशास्त्र की शिक्षा प्राप्त की, अनन्तर उज्जैनी में जा कर रहने लगे और वहीं पर बृहज्जातक की रचना की। इन की गणना विक्रमादित्य की सभा के नवरत्नो में की गयी है। यह त्रिस्कन्ध ज्योतिष-शास्त्र के रहस्यवेत्ता, नैसर्गिक कविता-लता के प्रेमाश्रय कहे गये हैं। इन्होंने ज्योतिष शास्त्र को जो कुछ दिया है, वह युग-युगों तक इन की कीर्ति-कौमुदी को भासित करता रहेगा।

इन्होंने अपने पूर्वकालीन प्रचलित सिद्धान्तो का पंचसिद्धान्तिका में

संग्रह किया है। इस के अतिरिक्त बृहत्सहिता, बृहज्जातक, लघुजातक, विवाह-पटल, योगयात्रा और समाससहिता, नामक ग्रन्थो की रचना की है।

वराहमिहिर के जातक ग्रन्थो का विपय सर्वसामान्य, गम्भीर और मत-मतान्तरो के विचारो से परिपूर्ण है। बृहज्जातक में मेषादि राशियों की यवन संज्ञा, अनेक पारिभाषिक शब्द एव यवनाचार्यो का भी उल्लेख किया है। मय, शक्ति, जीवशर्मा, मणित्थ, विष्णुगुप्त, देवस्वामी, सिद्धसेन और सत्याचार्य आदि के नाम आये है। इन की संहिता भी अद्वितीय है, ज्योतिष-शास्त्र में यो अनेक संहिताएँ है; पर इन की सहिता-जैसी एक भी पुस्तक नही। डॉक्टर कर्न ने बृहत्सहिता की वडी प्रशंसा की है। वास्तविक वात तो यह है कि फलित ज्योतिष का इन के समान कोई अद्वितीय ज्ञाता नही हुआ है। यह निष्पक्ष ज्योतिषी और भारतीय ज्योतिष साहित्य के निर्माता माने जाते है। पाश्चात्य विद्वानो का कथन है कि वराहमिहिराचार्य ने भारत के ज्योतिष को केवल ग्रह-नक्षत्र ज्ञान तक ही मर्यादित न रखा, वरन् मानव जीवन के साथ उस की विभिन्न पहलुओ-द्वारा व्यापकता वतलायी तथा जीवन के सभी आलोच्य विषयो की व्याख्याएँ की। सचमुच वराहमिहिराचार्य ने एक खासा साहित्य इस पर तैयार किया है।

कल्याणवर्मा—इन का समय ईसवी सन् ५७८ माना जाता है। इन्होने यवनो के होराशास्त्र का सार संकलित कर सारावली नामक जातक ग्रन्थ की रचना की है। यह सारावली वराहमिहिरके बृहज्जातकसे भी वडी है, जातकशास्त्र की दृष्टि से यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। भट्टोत्पल ने बृहज्जातक की टीका में सारावली के कई श्लोक उदधृत किये है। कल्याण वर्मा ने स्वयं अपने सम्वन्ध में लिखा है—

देचग्रामपयःप्रपोपगवलाद् ब्रह्माण्डसत्पञ्जरं
कीर्तिः सिहविलासिनीव सहसा यस्येह भित्त्वा गता।
होरां व्याघ्रभटेश्वरो रचयति स्पर्धां तु सारावलीं
श्रीमान् शास्त्रविचारनिर्मलमना. कल्याणवर्मा कृती॥

इस से स्पष्ट है कि वराहमिहिर के होराशास्त्र को संक्षिप्त देख यवन-होराशास्त्रो का सार लेकर इन्होने सारावली की रचना की है। इस ग्रन्थ की श्लोक-सख्या ढाई हजार से अधिक बतायी जाती है।

ब्रह्मगुप्त—यह वेधविद्या में निपुण, प्रतिष्ठित और असाधारण विद्वान् थे। इन का जन्म पंजाब के अन्तर्गत 'भिलनालका' नामक स्थान में ईसवी सन् ५९८ में हुआ था। ३० वर्ष की अवस्था में इन्होने 'ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त' नामक ग्रन्थ की रचना की। इस के अतिरिक्त ६७ वर्ष की अवस्था में 'खण्ड खाद्यक' नामक एक करण ग्रन्थ भी इन्होने बनाया था। कहते हैं कि इस ग्रन्थ का यह नाम अर्थात् ईख के रस से बना हुआ मधुर, रखने का कारण यह बताया जाता है कि उस समय में इस देश में बौद्ध और सनातनियो में धार्मिक झगडा बराबर चला करता था, इस से इन दोनो में शास्त्रार्थ भी खूब होता था। सनातनियो के खण्डन के लिए बौद्ध और जैन ग्रन्थ लिखा करते थे और इन दोनो के खण्डन के लिए सनातनी। ज्योतिष में भी यह खण्डन-मण्डन की प्रथा प्रचलित थी। किसी बौद्ध पण्डित ने 'लवणमुष्टि' अर्थात् एक मुष्टि नमक नामक ग्रन्थ लिखा था, जिस का तात्पर्य यही था कि सनातनियों पर छिडकने के लिए एक मुट्ठी-भर नमक। इसी के उत्तर में ब्रह्मगुप्त ने 'खण्ड-खाद्यक' रचा अर्थात् मुट्ठी-भर नमक के बदले इन्होने लोगो को मधुरता दी।

ब्रह्मगुप्त ज्योतिष के प्रौढ विद्वान् थे। इन्होंने बीजगणित के कई नवीन नियमों का आविष्कार किया, इसी से यह इस गणित के प्रवर्त्तक कहे गये हैं। अरब वालों ने बीजगणित ब्रह्मगुप्त से ही लिया है। इन के गणित ग्रन्थों का अनुवाद अरबी भाषा में भी हुआ सुना जाता है। ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त का 'असिन्द हिन्द' और 'खण्ड-खाद्यक' का 'अलर्कन्द' नाम अरब वालो ने रखा हैं।

इन्होने पृथ्वी को स्थिर माना है, इस लिए आर्यभट्ट के पृथ्वी-चलन सिद्धान्त की जी-भर निन्दा की है। ब्रह्मगुप्त ने अपने पूर्व के ज्योतिषियो की गलती का समाधान विद्वत्ता के साथ किया है। वैसे तो यह आर्यभट्ट

के निन्दक थे, पर अपना करण ग्रन्थ खण्ड-खाद्यक उसी के अनुकरण पर लिखा है। इस ग्रन्थ के आरम्भ के आठ अध्याय तो केवल आर्यभट्ट के अनुकरण मात्र हैं, उत्तर भाग के तीन अध्यायों में आर्यभट्ट की आलोचना है। अलबरूनी ने ब्रह्मगुप्त के ज्योतिष ज्ञान की बहुत प्रशंसा की है।

मुंजाल—इन का बनाया हुआ 'लघुमानस' नामक करण ग्रन्थ है, जिस में ५८४ शकाब्द का अहर्गण सिद्ध किया गया है। इस ग्रन्थ में मध्यमाधिकार, स्पष्टाधिकार, तिथ्यधिकार, त्रिप्रश्नाधिकार, ग्रहयुत्यधिकार, सूर्यग्रहणाधिकार, चन्द्रग्रहणाधिकार और शृंगोन्नत्यधिकार ये आठ प्रकरण हैं। गणित ज्योतिष की दृष्टि से ग्रन्थ अच्छा मालूम पडता है। विषय प्रतिपादन की शैली सरल और हृदयग्राह्य है। पाठक पढते-पढते गणित-जैसे शुष्क विषय को भी रुचि और धैर्य के साथ अन्त तक पढता जाता है और अन्त तक जी नही ऊबता है। ग्रन्थकार की यह शैली प्रशंसा योग्य है।

महावीराचार्य—ब्रह्मगुप्त के पश्चात् जैन सम्प्रदाय में महावीराचार्य नाम के एक धुरन्धर गणितज्ञ हुए। यह राष्ट्रकूट वंश के अमोघवर्ष नृपतुंग के समय में हुए थे, इस लिए इन का समय ईसवी सन् ८५० माना जाता है। इन्होने ज्योतिषपटल और गणितसारसंग्रह नाम के ज्योतिष ग्रन्थो की रचना की है। ये दोनों ही ग्रन्थ गणित ज्योतिष के है, इन ग्रन्थों से इन की विद्वत्ता का ज्ञान सहज में ही लगाया जा सकता है। गणितसार के प्रारम्भ में गणित विषय की प्रशंसा करते हुए लिखा है—

> कामतन्त्रेऽर्थशास्त्रे च गान्धर्वे नाटकेऽपि वा।
> सूपशास्त्रे तथा वैद्ये वास्तुविद्यादिवस्तुषु॥
> छन्दोऽलङ्कारकाव्येषु तर्कव्याकरणादिषु।
> कलागुणेषु सर्वेषु प्रस्तुतं गणितं परम्॥
> सूर्यादिग्रहचारेषु ग्रहणे ग्रहसंयुतौ।
> त्रिप्रश्ने चन्द्रवृत्तौ च सर्वत्राङ्गीकृतं हि तत्॥

इस ग्रन्थ में संज्ञाधिकार, परिकर्मव्यवहार, कलासवर्ण व्यवहार, प्रकीर्ण-

व्यवहार, त्रैराशिकव्यवहार, मिश्रक व्यवहार, क्षेत्र गणितव्यवहार, खात-व्यवहार एवं छायाव्यवहार नाम के प्रकरण हैं। मिश्रक व्यवहार में सम-कुट्टीकरण, विषमकुट्टीकरण और मिश्रकुट्टीकरण आदि अनेक प्रकार के गणित हैं। पाटीगणित और रेखागणित की दृष्टि से इस में अनेक विशेषताएँ हैं। इन के क्षेत्रव्यवहार प्रकरण में आयत को वर्ग और वर्ग को आयत के रूप में बदलने की प्रक्रिया बतायी है। एक स्थान पर वृत्तो को वर्ग और वर्गों को वृत्तो में परिणत किया गया है। समत्रिभुज, विषमत्रिभुज, समकोण चतुर्भुज, विषमकोण चतुर्भुज, वृत्तक्षेत्र, सूचीव्यास, पंचभुजक्षेत्र एवं बहुभुजक्षेत्रो का क्षेत्रफल, घनफल निकाला है। ज्योतिषपटल में ग्रह, नक्षत्र और ताराओं के स्थान, गति, स्थिति और संख्या आदि का प्रतिपादन किया है। यद्यपि ज्योतिषपटल सम्पूर्ण उपलब्ध नही है, पर जितना अश उपलब्ध है उस से ज्ञात होता है कि गणितसार का उपयोग इस ग्रन्थ के ग्रहगणित में किया गया है।

भट्टोत्पल—यह प्रसिद्ध टीकाकार हुए हैं। जिस प्रकार कालिदास के लिए मल्लिनाथ सिद्धहस्त टीकाकार माने जाते हैं, उसी प्रकार वराह-मिहिर के लिए भट्टोत्पल एक अद्वितीय प्रतिभाशाली टीकाकार हैं। यदि सच कहा जाये तो मानना पडेगा कि इन की टीका ने ही वराहमिहिर को इतनी ख्याति प्रदान की है। वराहमिहिर के ग्रन्थों के अतिरिक्त वराह-मिहिर के पुत्र पृथुयशाकृत पट्पंचाशिका और ब्रह्मगुप्त के खण्डखाद्य नामक ग्रन्थो पर इन्होंने विद्वत्तापूर्ण समन्वयात्मक टीकाएँ लिखी हैं। टीकाओ के अतिरिक्त प्रश्न-ज्ञान नामक स्वतन्त्र ग्रन्थ भी इन का रचा बताया जाता है। इस ग्रन्थ के अन्त में लिखा है—

भट्टोत्पलेन शिष्यानुकम्पयावलोक्य सर्वशास्त्राणि।
आर्यासप्तशत्यैवं प्रश्नज्ञानं समासतो रचितम्॥

इस से स्पष्ट है कि सात-सौ आर्या श्लोको में प्रश्नज्ञान नामक ग्रन्थ की रचना की है। भट्टोत्पल ने अपनी टीका में अपने से पहले के सभी आचार्यो के वचनो को उद्धृत कर एक अच्छा तद्विषयक समन्वयात्मक संकलन किया

है। इस के आधार पर से प्राचीन ज्योतिषशास्त्र का महत्त्वपूर्ण इतिहास तैयार किया जा सकता है। इन का समय श० ८८८ है।

चन्द्रसेन—इन का रचा गया केवलज्ञानहोरा नामक महत्त्वपूर्ण विशालकाय ग्रन्थ है। यह ग्रन्थ कल्याणवर्मा के पीछे का रचा गया प्रतीत होता है, इस के प्रकरण सारावली से मिलते-जुलते हैं, पर दक्षिण में रचना होने के कारण कर्णाटक प्रदेश के ज्योतिष का पूर्ण प्रभाव है। इन्होंने ग्रन्थ के विषय को स्पष्ट करने के लिए बीच-बीच में कन्नड भाषा का भी आश्रय लिया है। यह ग्रन्थ अनुमानत तीन-चार हजार श्लोको में पूर्ण हुआ है। ग्रन्थ के आरम्भ में कहा गया है—

होरा नाम महाविद्या वक्तव्यञ्च भवद्धितम्।
ज्योतिर्ज्ञानैकसारं भूषणं बुधपोषणम्॥

इन्होंने अपनी प्रशंसा भी प्रचुर परिमाण मे की है—

आगमैः सदृशो जैन. चन्द्रसेनसमो मुनि।
केवलीसदृशी विद्या दुर्लभा सचराचरे॥

इस ग्रन्थ में हेमप्रकरण, दाम्यप्रकरण, शिलाप्रकरण, मृत्तिकाप्रकरण, वृक्षप्रकरण, कार्पास-गुल्म-वल्कल-तृण-रोम-चर्म पट-प्रकरण, संख्याप्रकरण, नष्टद्रव्यप्रकरण, निर्वाहप्रकरण, अपत्यप्रकरण, लाभालाभप्रकरण, स्वप्रकरण, स्वप्नप्रकरण, वास्तुविद्याप्रकरण, भोजनप्रकरण, देहलोहदीक्षाप्रकरण, अंजन-विद्याप्रकरण एवं विषविद्याप्रकरण आदि हैं। ग्रन्थ को आद्योपान्त देखने से ज्ञात होता है, कि यह संहिता-विषयक रचना है, होरा-सम्बन्धी नही। होरा जैसा कि इस का नाम है, उस के सम्बन्ध में कुछ भी नही कहा गया है।

श्रीपति—यह अपने समय के अद्वितीय ज्योतिर्विद् थे। इन के पाटी गणित, बीजगणित और सिद्धान्तशेखर नाम के गणित ज्योतिष के ग्रन्थ तथा श्रीपति-पद्धति, रत्नावली, रत्नसार, रत्नमाला ये फलित ज्योतिष के ग्रन्थ हैं। इन के पाटीगणित के ऊपर सिंहतिलक नामक जैनाचार्य की एक

'तिलक' नामक टीका है। इन की विशेषता यह है कि इन्होने ज्या खण्डो के बिना ही चाप मान से ज्या का आनयन किया है—

दो कोटिभागरहिताभिहता खनागचन्द्रास्तदीयचरणोनशरार्कदिग्भि.।
ते व्यासखण्डगुणिता विहृता. फलं तु ज्याभिर्विनापि भवतो भुजकोटिजीवा:॥

इन की रचना शैली अत्यन्त सरल और उच्चकोटि की है। इन्हें केवल गणित का ही ज्ञान नही था, प्रत्युत ग्रहवेध क्रिया से भी यह पूर्ण परिचित थे। इन्होने वेध-क्रिया-द्वारा ग्रह-गणित की वास्तविकता अवगत कर उस का अलग संकलन किया था, जो सिद्धान्तशेखर के नाम से प्रसिद्ध है। ग्रह-गणित के साथ-साथ जातक और मुहूर्त्त विषयो के भी यह प्रकाण्ड पण्डित थे। इन का जन्म समय ईसवी सन् ९९९ बताया जाता है।

श्रीधर—यह ज्योतिषशास्त्र के मर्मज्ञ विद्वान् थे। इन का समय दसवी सदी का अन्तिम भाग माना जाता है। इन्होने गणितसार और ज्योतिर्ज्ञान विधि संस्कृत भाषा में तथा जातक तिलक कन्नड भाषा में लिखे है। इन के गणितसार पर एक जैनाचार्य की टीका भी उपलब्ध है।

गणितसार में अभिन्न गुणक, भागहार, वर्ग, वर्गमूल, घन, घनमूल, भिन्न, समच्छेद, भागजाति, प्रभागजाति-भागानुबन्ध, भागमातृजाति, त्रैराशिक, सप्तराशिक, नवराशिक, भाण्ड-प्रतिभाण्ड, मिश्रकव्यवहार, भाव्यकव्यवहार-सूत्र, एकपत्रीकरणसूत्र, सुवर्णगणित, प्रक्षेपकगणित, समक्रयविक्रयसूत्र, श्रेणीव्यवहार, क्षेत्रव्यवहार, खातव्यवहार, चितिव्यवहार, काष्ठव्यवहार, राशिव्यवहार, छायाव्यवहार आदि गणितोका निरूपण किया गया है। इस में "व्यासवर्गाद्दशगुणात्पदं परिधि" वाला परिधि आनयनका नियम बताया है। वृत्त क्षेत्र का क्षेत्रफल परिधि और व्यास के घात का चतुर्थांश बताया गया है, लेकिन पृष्ठ फल के सम्बन्ध में कही भी उल्लेख नही है।

ज्योतिर्ज्ञानविधि प्रारम्भिक ज्योतिष का ग्रन्थ है। इस में व्यवहारोप-योगी मुहूर्त्त भी दिये गये है। आरम्भ में संवत्सरो के नाम, नक्षत्रनाम, योग-नाम, करणनाम, तथा उन के शुभाशुभत्व दिये गये है। इस में मासशेष, मासा-

धिपतिशेष, दिनशेष, दिनाधिपतिशेष आदि अर्थगणित की अद्भुत और विलक्षण क्रियाएँ भी दी गयी है। यों तो मासशेष आदि का वर्णन अन्यत्र भी है, इस ग्रन्थ के विषय एक नये तरीके से लिखे गये है, तिथियों के स्वामी नन्दा, भद्रा आदि का स्वरूप तथा उन का शुभाशुभत्व विस्तारसहित बताया गया है।

जातकतिलक की भाषा कन्नड है, यह ग्रन्थ भी जातक शास्त्र की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण सुनने में आया है। दक्षिण भारत में इन के ग्रन्थ अधिक प्रामाणिक माने जाते है तथा सभी व्यावहारिक कार्य इन्ही के ग्रन्थो के आधार पर वहाँ सम्पन्न किये जाते है।

श्रीधराचार्य कर्णाटक प्रान्त के निवासी थे। इन की माता का नाम अव्वोका और पिता का नाम बलदेव शर्मा था। इन्होने बचपन में अपने पिता से ही संस्कृत और कन्नड साहित्य का अध्ययन किया था। प्रारम्भ में यह शैव थे, किन्तु बाद में जैनधर्मानुयायी हो गये थे। अपने समय के ज्योतिर्विदो में इन की अच्छी ख्याति थी।

भट्टवोसरि—इन के गुरु का नाम दामनन्दि आचार्य था। इन्होने आयज्ञानतिलक नामक एक विस्तृत ग्रन्थ की रचना प्राकृत भाषा में की है। मूल गाथाओ की विवृति संक्षिप्त रूप से संस्कृत में स्वय ग्रन्थकार ने लिखी है। ग्रन्थ के पुष्पिका वाक्य मे "इति दिगम्बराचार्यपण्डितदामनन्दिशिष्य-भट्टवोसरिविरचिते सायश्रीटीकायज्ञानतिलके कालप्रकरणम्" कहा है। इस ग्रन्थ का रचना काल विषय और भाषा की दृष्टि से ईसवी सन् १०वी शताब्दी मालूम पडता है। जिस प्रकार मल्लिषेण ने ग्रन्थ के प्रारम्भ में सुग्रीवादि मुनीन्द्रो-द्वारा प्रतिपादित आयज्ञान को कहा है, इसी प्रकार इन्होने आय की अधिष्ठात्री देवी पुलिन्दिनी की स्तुति में—सुग्रीवपूर्वमुनिसूचितमन्त्र-बीजैः तेषां वचांसि न कदापि मुधा भवन्ति"—कहा है। इस से स्पष्ट है कि मल्लिषेण के समय के पूर्व में ही इस ग्रन्थ की रचना हुई होगी। प्रश्न-शास्त्र की दृष्टि से यह ग्रन्थ अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इस में ध्वज, धूम, सिंह गज, खर, श्वान, वृष और ध्वाक्ष इन आठ आयो-द्वारा प्रश्नों के फल का

सुन्दर वर्णन किया है।

इन प्रधान ज्योतिर्विदो के अतिरिक्त भोजराज, ब्रह्मदेव आदि और भी दो-चार ज्योतिषी हुए हैं, जिन्होंने इस युग में ज्योतिष साहित्य की श्रीवृद्धि करने में पर्याप्त सहयोग प्रदान किया है। इस काल में ऐसे भी अनेक ज्योतिष के ग्रन्थ लिखे गये हैं जिन के रचयिताओं के सम्बन्ध में कुछ भी ज्ञात नही है।

उत्तर मध्यकाल (ई० १००१– १६००) : सामान्य परिचय

इस युग में ज्योतिष शास्त्र के साहित्य का बहुत विकास हुआ है। मौलिक ग्रन्थो के अतिरिक्त आलोचनात्मक ज्योतिष के अनेक ग्रन्थ लिखे गये हैं। भास्कराचार्य ने अपने पूर्ववर्त्ती आर्यभट्ट, ब्रह्मगुप्त, लल्ल आदि के सिद्धान्तो की आलोचना की और आकाशनिरीक्षण-द्वारा ग्रहमान की स्थूलता ज्ञात कर उसे दूर करने के लिए बीजसंस्कार की व्यवस्था बतलायी। ईसवी सन् की १२वी सदी में गोलविषय के गणित का प्रचार बहुत हुआ था, इस समय गोलविषय के गणित से अनभिज्ञ ज्योतिषी मूर्ख माना जाता था। भास्कराचार्य ने समीक्षा करते हुए बताया है—

> वादो व्याकरणं विनैव विदुषां धृष्ट. प्रविष्ट. सभां
> जल्पन्नल्पमति स्मयात्पटुवटुभ्रूभङ्ग वक्रोक्तिभि ।
> ह्रीणः सन्नुपहासमेति गणको गोलानभिज्ञस्तथा
> ज्योतिर्वित्सदसि प्रगल्भगणकप्रश्नप्रपञ्चोक्तिभि ॥

अर्थात्—जिस प्रकार तार्किक व्याकरण ज्ञान के विना पण्डितो की सभा में लज्जा और अपमान को प्राप्त होता है, उसी प्रकार गोलविपयक गणित के ज्ञान के अभाव में ज्योतिषी ज्योतिर्विदो की सभा में गोलगणित के प्रश्नो का सम्यक् उत्तर न दे सकने के कारण लज्जा और अपमान को प्राप्त करता है।

उत्तरमध्यकाल में पृथ्वी को स्थिर और सूर्य को गतिशील स्वीकार किया गया है। भास्कर ने बताया है कि जिस प्रकार अग्नि में उष्णता, जल में शीतलता, चन्द्र में मृदुता स्वाभाविक है उसी प्रकार पृथ्वी में स्वभावत. स्थिरता है। पृथ्वी की आकर्षण-शक्ति की चर्चा भी इस समय के ज्योतिष-शास्त्र में होने लग गयी थी। इस युग के ज्योतिष-साहित्य में आकर्षण-शक्ति को क्रिया को साधारणत: पतन कहा गया है, और बताया है कि पृथ्वी में आकर्षण-शक्ति है, इस लिए अन्य द्रव्य गिराये जाने से पृथ्वी पर आ कर गिरते है। केन्द्राभिकर्षिणी और केन्द्रापसारिणी ये दो शक्तियाँ प्रत्येक वस्तु में मानी हुई हैं तथा यह भी स्वीकार किया गया है कि प्रत्येक पदार्थ में आकर्षण शक्ति होने से ही उपर्युक्त दोनो प्रकार की क्रियात्मक शक्तियाँ अपने कार्य को सुचारु रूप से करती है।

भास्कर ने पृथ्वी का आकार कदम्ब की तरह गोल बताया है, कदम्ब के ऊपर के भाग में केशर की तरह ग्रामादि स्थित है। इन का कथन है कि यदि पृथ्वी को गोल न माना जाये तो शृंगोन्नति, ग्रहयुती, ग्रहण, उदयास्त एवं छाया आदि के गणित-द्वारा साधित ग्रह दृक्तुल्य सिद्ध नही हो सकेंगे। उदयान्तर, चरान्तर और भुजान्तर संस्कारो की व्यवस्था कर ग्रहगणित मे सूक्ष्मता का प्रचार भी इन्ही के द्वारा हुआ है।

उत्तरमध्यकाल की प्रमुख विशेषता ग्रहगणित के सभी अगो के संशोधन की है। लम्बन, नति, आयनवलन, आक्षवलन, आयनदृक्कर्म, आक्षदृक्कर्म, भूमाबिम्ब साधन, ग्रहो के स्पष्टीकरण के विभिन्न गणित और तिथ्यादि के साधन में विभिन्न प्रकार के सस्कार किये गये, जिस से गणित-द्वारा साधित ग्रहो का मिलान आकाश-निरीक्षण-द्वारा प्राप्त ग्रहो से हो सके।

इस युग की एक अन्य विशेषता यन्त्र-निर्माण की भी है। भास्कराचार्य और महेन्द्रसूरि ने अनेक यन्त्रो के निर्माण की विधि और यन्त्रो-द्वारा ग्रहवेध की प्रणाली का निरूपण सुन्दर ढग से किया है। यद्यपि इस काल के प्रारम्भ मे ग्रहगणित का बहुत विकास हुआ, अनेक करण ग्रन्थ तथा सारणियाँ

लिखी गयी, पर ई० सन् की १५वी शताब्दी से ही ग्रहवेध की परिपाटी का ह्रास होने लग गया है। यो तो प्राचीन ग्रन्थो को स्पष्ट करने और उन के रहस्यो को समझाने के लिए इस युग मे अनेक टीकाएँ और भाष्य लिखे गये, पर आकाश-निरीक्षण की प्रथा उठ जाने से मौलिक साहित्य का निर्माण न हो सका। ग्रहलाघव, करणकुतूहल और मकरन्द-जैसे सुन्दर करण ग्रन्थो का निर्मित होना भी इस युग के लिए कम गौरव की वात नही है।

फलित ज्योतिष में जातक, मुहूर्त्त, सामुद्रिक, रमल और प्रश्न इन अगो के साहित्य का निर्माण भी उत्तरमध्यकाल में कम नही हुआ है। मुसलिम सस्कृति के अति निकट सम्पर्क के कारण रमल और ताजिक इन दो अंगो का तो नया जन्म माना जायेगा। ताजिक शब्द का अर्थ ही अरव देश से प्राप्त शास्त्र है। इस युग में इस विषय पर लगभग दो दर्जन ग्रन्थ लिखे गये है। इस शास्त्र में किसी व्यक्ति के नवीन वर्ष और मास में प्रवेश करने की ग्रह-स्थिति पर-से उस के समस्त वर्ष और मास का फल वताया जाता है। वलभद्रकृत ताजिक ग्रन्थ मे कहा है—

यवनाचार्येण पारसीकभाषायां प्रणीतं ज्योतिःशास्त्रैकदेशरूपं वार्षिकादिनानाविधफलादेशफलकशास्त्रं ताजिकफलवाच्यं तदनन्तरभूतैः समरसिंहादिभिः ब्राह्मणैः तदेव शास्त्र सस्कृतशब्दोपनिवद्धं ताजिकशब्दवाच्यम्। अत एव तैस्ता एव इक्कवालादयो यावत्यः सज्ञा उपनिवद्धाः।

अर्थात्—यवनाचार्य ने फारसी भाषा में ज्योतिष शास्त्र के अगभूत वर्ष, मास के फल को नाना प्रकार से व्यक्त करने वाले ताजिक शास्त्र की रचना की थी। इस के पश्चात् समरसिंह आदि विद्वानो ने संस्कृत भाषा में इस शास्त्र की रचना की और इक्कवाल, इन्दुवार, इशराफ आदि यवनाचार्य-द्वारा प्रतिपादित योगो की सज्ञाएँ ज्यो-की-त्यों रखी।

कुछ विद्वानों का मत है कि ईसवी सन् १३०० में तेजसिंह नाम के एक प्रकाण्ड ज्योतिषी भारत में हुए थे, उन्होने वर्ष-प्रवेश-कालीन लग्न-कुण्डली-द्वारा ग्रहों का फल निकालने की एक प्रणाली निकाली थी। कुछ

काल के पश्चात् इस प्रणाली का नाम आविष्कर्त्ता के नाम पर ताजिक पड गया। ग्रन्थान्तरो में यह भी लिखा मिलता है कि—

गर्गाद्यैर्यवनैश्च रोमकमुखैः सत्यादिभिः कीर्तितम्।

शास्त्रं ताजिकसंज्ञक··· ····॥

अर्थात्—गर्गाचार्य, यवनाचार्य, सत्याचार्य और रोमकने जिस फलादेश-सम्बन्धी शास्त्र का निरूपण किया था, वह ताजिक शास्त्र था। अतएव यह स्पष्ट है कि ताजिक शास्त्र का विकास स्वतन्त्र रूप से भारतीय ज्योतिषतत्त्वो के आधार पर हुआ है। हाँ, यवनो के सम्पर्कसे उस में संशोधन और परिवर्द्धन अवश्य किये गये है, पर तो भी उस की भारतीयता अक्षुण्ण बनी हुई है।

प्रश्न-अंग के साहित्य का निर्माण भी इस युग मे अधिक रूप से हुआ। आचार्य दुर्गदेव ने सं० १०८९ मे रिष्टसमुच्चय नामक ग्रन्थ में अंगुलिप्रश्न, अलक्तप्रश्न, गोरोचनप्रश्न, प्रश्नाक्षरप्रश्न, शकुनप्रश्न, अक्षरप्रश्न, होरा-प्रश्न और लग्नप्रश्न इन आठ प्रकार के प्रश्नो का अच्छा प्रतिपादन किया है। इस के अतिरिक्त पद्मप्रभ सूरि ने वि० सं० १२९४ में भुवनदीपक नामक एक छोटा-सा ग्रन्थ १७० श्लोको का बनाया है, जो प्रश्न-शास्त्र का उत्कृष्ट ग्रन्थ है। ज्ञानप्रदीपिका नाम का एक प्रश्न-ग्रन्थ भी निराला है, इस में अनेक गूढ और मानसिक प्रश्नो के उत्तर देने की प्रक्रिया का वर्णन किया गया है। लग्न को आधार मान कर भी कई प्रश्न-ग्रन्थ लिखे गये है, जिन का फल प्राय. जातक-ग्रन्थो के मूलाधार पर स्थित है। ईसवी सन् की १५वी और १६वी शताब्दी में भी कुछ प्रश्न-ग्रन्थो का निर्माण हुआ है।

रमल—यह पहले ही लिखा जा चुका है कि रमल का प्रचार विदेशियो के संसर्ग से भारत में हुआ है। ईसवी सन् ११वी और १२वी शताब्दी की कुछ फारसी भाषा में रची गयी रमल की मौलिक पुस्तकें खुदाबख्शखाँ लाइब्रेरी पटना में मौजूद है। इन पुस्तको में कर्त्ताओ के नाम नही है। संस्कृत भाषा में रमल की पाँच-सात पुस्तकें प्रधान रूप से मिलती है। रमलनवरत्नम् नामक ग्रन्थ में पाशा बनाने की विधि का कथन करते हुए बताया है कि—

वेदतत्त्वोपरिकृतं रम्लशास्त्रं च सूरिभि ।
तेषां भेदा षोडशैव न्यूनाधिक्यं न जायते ॥

अर्थात्—अग्नि, वायु, जल और पृथ्वी इन चार तत्त्वों पर विद्वानो ने रमल-शास्त्र बनाया है तथा इन चार तत्त्वो के सोलह भेद कहे हैं, अत रमल के पाशे में सोलह शकल बतायी गयी है।

ई० १२४६ मे सिंहासनारूढ होने वाले नासिरुद्दीन के दरबार में एक रमलशास्त्र के अच्छे विद्वान् थे। जब नासिरुद्दीन की मृत्यु के बाद बलवन शासक बन बैठा था, उस समय तक वह विद्वान् उन के दरबार में रहा था। इमने फारसी में रमल साहित्य का सृजन भी किया था। सन् १३१४ में सीताराम नाम के एक विद्वान् ने रमलसार नाम का एक ग्रन्थ संस्कृत में रचा है, यद्यपि इन का यह ग्रन्थ अभी तक मुद्रित हुआ मिलता नहीं है पर इस का उल्लेख मद्रास यूनिवर्सिटी के पुस्तकालय के सूचीपत्र में है।

किंवदन्ती ऐसी भी है कि बहलोल लोदी के साथ भी एक अच्छा रमलशास्त्र का वेत्ता रहता था, यह मूक प्रश्नो का उत्तर देने में सिद्ध-हस्त बताया गया है। रमल-नवरत्न के मगलाचरण में पूर्व के रमल-शास्त्रियो को नमस्कार किया गया है—

नत्वा श्रीरमलाचार्यान् परमाद्यसुखाभिधैः ।
उद्धृतं रमलाम्भोधेर्नवरत्नं सुशोभनम् ॥

अर्थात्—प्राचीन रमलाचार्यों को नमस्कार कर के परमसुख नामक ग्रन्थकर्त्ता ने रमलशास्त्ररूपी समुद्र मे से सुन्दर नवरत्न को निकाला है।

इस ग्रन्थ का रचनाकाल १७वी शताब्दी है। अत. यह स्वयसिद्ध है कि उत्तरमध्यकाल में रमलशास्त्र के अनेक ग्रन्थो का निर्माण हुआ है।

मुहूर्त्त—यों तो उदयकाल में ही मुहूर्त्त-सम्बन्धी साहित्य का निर्माण होने लग गया था तथा आदिकाल और पूर्वमध्यकाल में सहिताशास्त्र के अन्तर्गत ही इस विषय की रचनाएँ हुई थी, पर उत्तर मध्यकाल में इस

अग पर स्वतन्त्र रचनाएँ दर्जनो की संख्या में हुई है। शक संवत् १४२० में नन्दिग्रामवासी केशवाचार्य कृत मुहूर्त्ततत्त्व, शक सवत् १४१३ में नारायण कृत मूहूर्त्त-मार्त्तण्ड, शक संवत् १५२२ में रामभट्ट कृत मुहूर्त्तचिन्तामणि, शक संवत् १५४९ मे विट्ठल दीक्षित कृत मूहूर्त्त कल्पद्रुम आदि मुहूर्त्त-सम्बन्धी रचनाएँ हुई है। इस युग मे मानव के सभी आवश्यक कार्यों के लिए शुभाशुभ समय का विचार किया गया है।

शकुनशास्त्र—इस का विकास भी स्वतन्त्र रूप से इस युग में अधिक हुआ है। वि० स० १२३२ में अह्लिलपट्टण के नरपति नामक कवि ने नरपति जयचर्या नामक एक शुभाशुभ फल का बोध कराने वाला अपूर्व ग्रन्थ रचा है। इस ग्रन्थ में प्रधानरूप से स्वर-विज्ञान-द्वारा शुभाशुभ फल का निरूपण किया गया है। वसन्तराज नामक कवि ने अपने नाम पर वसन्तराज शकुन नाम का एक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ रचा है। इस ग्रन्थ में प्रत्येक कार्य के पूर्व में होने वाले शुभाशुभ शकुनो का प्रतिपादन आकर्षक ढंग से किया गया है। इन ग्रन्थो के अतिरिक्त मिथिला के महाराज लक्ष्मणसेन के पुत्र वल्लालसेन ने श० सं १०९२ में अद्‌भुतसागर नाम का एक सग्रह ग्रन्थ रचा है, जिस में अपने समय के पूर्ववर्त्ती ज्योतिर्विदो की सहिता-सम्बन्धी रचनाओ का संग्रह किया है। कई जैन मुनियो ने शकुन के ऊपर वृहद् परिमाण मे रचनाएं लिखी है। यद्यपि शकुनशास्त्र के मूलतत्त्व आदिकाल के ही थे, पर इस युग में उन्ही तत्त्वो की विस्तृत विवेचनाएँ लिखी गयी है।

उत्तरमध्यकाल में भारतीय ज्योतिष ने अनेक उत्थानों और पतनो को देखा है। विदेशियो के सम्पर्क से होने वाले संशोधनों को अपने में पचाया है और प्राचीन भारतीय ज्योतिष की गणित-विषयक स्थूलताओ को दूर कर सूक्ष्मता का प्रचार किया है।

यदि संक्षेप में उत्तरमध्यकाल के ज्योतिष-साहित्य पर दृष्टिपात किया जाये तो यही कहा जा सकता है कि इस काल में गणित-ज्योतिष की अपेक्षा फलित-ज्योतिष का साहित्य अधिक फला-फूला है। गणित-ज्योतिष में

भास्कर के समान अन्य दूसरा विद्वान् नही हुआ, जिस से विपुल परिमाण में इस विषय की सुन्दर रचनाएँ नही हो सकी।

उत्तरमध्यकाल के ग्रन्थ और ग्रन्थकारों का परिचय

सिद्धान्त ज्योतिष का विकास इस काल में विशेष रूप से हुआ है। यद्यपि देश की राजनैतिक परिस्थिति साहित्य के सृजन के लिए पूर्वमध्यकाल के समान अनुकूल नही थी, फिर भी भास्कर आदि ने गणित साहित्य के निर्माण में अपूर्व कौशल दिखलाया है। यहाँ इस युग के प्रमुख ज्योतिर्विदो का परिचय दिया जाता है—

भास्कराचार्य—वराहमिहिर और ब्रह्मगुप्त के वाद इन के समान प्रतिभाशाली, सर्वगुणसम्पन्न दूसरा ज्योतिर्विद् नही हुआ। इन का जन्म ईसवी सन् १११४ में विज्जडविड नामक ग्राम में हुआ था। इन के पिता का नाम महेश्वर उपाध्याय था। इन्होने एक स्थान पर लिखा है—

आसीन्महेश्वर इति प्रथित. पृथिव्यामाचार्यवर्यपदवीं विदुषा प्रपन्न।
लब्धावबोधकलिकां तत एव चक्रे तज्जेन बीजगणित लघुभास्करेण॥

इस से स्पष्ट है कि महेश्वर इन के पिता और गुरु दोनो ही थे। इन के द्वारा रचित लीलावती, बीजगणित, सिद्धान्तशिरोमणि, करणकुतूहल और सर्वतोभद्र ग्रन्थ है।

ब्रह्मगुप्त के ब्रह्मस्फुटसिद्धान्त और पृथूदक स्वामी के भाष्य को मूल मान कर इन्होने अपना सिद्धान्तशिरोमणि बनाया है, तथा आर्यभट्ट, लल्ल, ब्रह्मगुप्त आदि के मतो की समालोचना की है। शिरोमणि में अनेक नये विषय भी आये हैं, प्राचीन आचार्यों के गणितो मे सशोधन कर बीज सस्कार निर्धारित किये। इन्होने सिद्धान्तशिरोमणि पर वासना भाष्य भी लिखा है, जिस से इन के सरल और सरस गद्य का भी परिचय मिल जाता है। ज्योतिषी होने के साथ-साथ भास्कराचार्य ऊँचे दर्जे के कवि भी थे। इन की कविताशैली अनुप्रासयुक्त है, ऋतु वर्णन में यमक और श्लेष की सुन्दर

वहार दिखलाई पड़ती है। गणित में वृत्त, पृष्ठ घनफल, गुणोत्तरश्रेणी, अंकपाश, करणीवर्ग, वर्गप्रकृति, योगान्तर भावना-द्वारा कनिष्ठ-ज्येष्ठानयन एवं सरल कल्पना-द्वारा एक और अनेक वर्ण मानायन आदि विषय इन की विशेषता के द्योतक है। सिद्धान्त में भगणोपपत्ति लघुज्याप्रकार से ज्यानयन, चन्द्रकलाकर्ण-साधन, भूमानयन, सूर्यग्रहण का गणित, स्पष्ट शर-द्वारा स्पष्ट क्रान्ति का साधन आदि बातें इन की पूर्वाचार्यो की अपेक्षा नवीन है। इन्होने फलित का कोई ग्रन्थ लिखा था, पर आज वह उपलब्ध नही है, कुछ उद्धरण इन के नाम से मुहूर्त्तचिन्तामणि की पीयूषधारा टीका में मिलते है।

दुर्गदेव—ये दिगम्बर जैन धर्मानुयायी थे। इन का समय ईसवी सन् १०३२ माना जाता है। ये ज्योतिष-शास्त्र के मर्मज्ञ विद्वान् थे। इन्होने अर्घकाड और रिट्ठसमुच्चय नामक दो ग्रन्थ लिखे है। रिट्ठसमुच्चय के अन्त में लिखा है—

रइयं बहुसत्थत्थं उवजीवित्ता हु दुग्गएवेण।
रिट्ठं समुच्चयसत्थं वयणेण सजमदेवस्स॥

अर्थात्—इस शास्त्र की रचना दुर्गदेव ने अपने गुरु संयमदेव के वचनानुसार की है। ग्रन्थ में एक स्थान पर सयमदेव के गुरु संयमसेन और उन के गुरु माधवचन्द्र बताये गये है। दुर्गदेव ने रिट्ठसमुच्चय जैन शौरसेनी प्राकृत में २६१ गाथाओ का शकुन और शुभाशुभ निमित्तो के संकलन रूप में रचा है। इस ग्रन्थ की रचना कुम्भनगर अनंगा में की गयी है। लेखक ने रिष्टो-रिष्टो के पिण्डस्थ, पदस्थ और रूपस्थ नामक तीन भेद किये है। प्रथम श्रेणी में अंगुलियों का टूटना, नेत्रज्योति की हीनता, रसज्ञान की न्यूनता, नेत्रो से लगातार जलप्रवाह एवं अपनी जिह्वा को न देख सकना आदि को परिगणित किया है। द्वितीय श्रेणी में सूर्य और चन्द्रमा का अनेक रूपो में दर्शन, प्रज्वलित दीपक को शीतल अनुभव करना, चन्द्रमा को त्रिभंगी रूप में देखना, चन्द्रलाछन का दर्शन न होना इत्यादि को लिया है। तृतीय में

निजच्छाया, परच्छाया तथा छायापुरुष का वर्णन है और आगे जा कर छाया का अंगविहीन दर्शन आदि विषयो पर तथा छाया का सछिद्र और टूटे-फूटे रूप में दर्शन आदि पर अनेको मत दिये है। अनन्तर ग्रन्थकर्त्ता ने स्वप्नो का कथन किया है जिन्हें उस ने देवेन्द्र कथित तथा सहज इन दो रूपो में विभाजित किया है। अरिष्टों की स्वाभाविक अभिव्यक्ति करते हुए प्रश्नारिष्ट के आठ भेद—अगुलिप्रश्न, अलक्तप्रश्न, गोरोचनाप्रश्न, प्रश्नाक्षरप्रश्न—आलिंगित, दग्ध, ज्वलित और शान्त, एवं शकुनप्रश्न बताये हैं। प्रश्नाक्षरारिष्ट का अर्थ बतलाते हुए लिखा है कि मन्त्रोच्चारण के अनन्तर पृच्छक से प्रश्न करा के प्रश्नवाक्य के अक्षरो का दूना और मात्राओ को चौगुना कर योगफल में सात से भाग देना चाहिए। यदि शेप कुछ न रहे तो रोगी की मृत्यु और शेष रहने से रोगी का चंगा होना फल जानना चाहिए। सक्षेप में यह कहा जा सकता है कि इस ग्रन्थ में आचार्य ने वाह्य और आन्तरिक शकुनों के द्वारा आने वाली मृत्यु का निश्चय किया है। ग्रन्थ का विपय रुचिकर है।

उदयप्रभदेव—इन के गुरु का नाम विजयसेन सूरि था। इन का समय ईसवी सन् १२२० वताया जाता है। इन्होने ज्योतिष-विषयक आरम्भ-सिद्धि अपर नाम व्यवहारचर्या नामक ग्रन्थ की रचना की है। इस ग्रन्थ पर वि० सं० १५१४ में रत्नेश्वर सूरि के शिष्य हेमहंस गणि ने एक विस्तृत टीका लिखी है। इस टीका में इन्होने मुहूर्त्त-सम्बन्धी साहित्य का अच्छा सकलन किया है। लेखक ने ग्रन्थ के प्रारम्भ में ग्रन्थोक्त अध्यायो का सक्षिप्त नामकरण निम्न प्रकार दिया है—

दैवज्ञदीपकलिकां व्यवहारचर्यामारम्भसिद्धमुदयप्रभदेव एनाम्।
शास्तिक्रमेण तिथिवारभयोगराशिगोचर्यकार्यगमवास्तुविलग्नमेभिः॥

हेमहंस गणि ने व्यवहारचर्या नाम की सार्थकता दिखलाते हुए लिखा है—

व्यवहार. शिष्टजनसमाचारः शुभतिथिवारमादिपु शुभकार्यकरणादि-रूपस्तस्य चर्या।

अर्थात्—इस ग्रन्थ में प्रत्येक कार्य के शुभाशुभ मुहूर्त्तो का वर्णन है। मुहूर्त्त

अंग की दृष्टि से ग्रन्थ मुहूर्तचिन्तामणि के समान उपयोगी और महत्त्वपूर्ण है। उपर्युक्त ११ अध्यायो में सभी प्रकार के मुहूर्त्तों का वर्णन किया है। ग्रन्थ को आद्योपान्त देखने पर लेखक की ग्रहगणित-विषयक योग्यता भी ज्ञात हो जाती है। हेमहंस गणि ने टीका के मध्य में प्राकृत की यह गणित-विषयक गाथाएँ उद्धृत की है, जिन से पता लगता है कि इन के समक्ष कोई प्राकृत का ग्रहगणित-सम्बन्धी ग्रन्थ था। इस ग्रन्थ में अनेक विशेषताएँ हैं।

मल्लिषेण—यह संस्कृत और प्राकृत दोनो भाषाओ के प्रकाण्ड विद्वान् थे। इन के पिता का नाम जिनसेन सूरि था, यह दक्षिण भारत के धारवाड जिले के अन्तर्गत गदग तालुका नामक स्थान के रहने वाले थे। इन का समय ईसवी सन् १०४३ माना गया है। इन का ज्योतिष का ग्रन्थ 'आयसद्भाव' नामक है। ग्रन्थ के आदि में लिखा है—

सुग्रीवादिमुनीन्द्रै. रचितं शास्त्रं यदायसद्भावम्।
तत्सम्प्रत्यार्याभिर्विरच्यते मल्लिषेणेन ॥
ध्वजधूमसिंहमण्डलवृषखरगजवायसा भवन्त्याया.।
ज्ञायन्ते ते विद्भिरिहैकोत्तरगणनया चाष्टौ ॥

इन उद्धरणो से स्पष्ट है कि इन के पूर्व में भी सुग्रीव आदि जैन मुनियो के द्वारा इस विषय की और रचनाएँ भी हुई थी, उन्ही के साराश को ले कर इन्होने 'आयसद्भाव' की रचना की है। इस ग्रन्थ के प्रारम्भ में आय की अधिष्ठात्री देवी पुलिन्दिनी को माना है और उस का स्मरण भी किया है। इस ग्रन्थ में कुल १९५ आर्याएँ तथा अन्त में एक गाथा, इस तरह १९६ पद्य है। ग्रन्थ के अन्त में ग्रन्थकर्त्ता ने कहा है कि इस ग्रन्थ के द्वारा भूत, भविष्यत् और वर्तमान इन तीनो कालो का ज्ञान हो सकता है। तथा अन्य को इस विद्या को न देने के लिए जोर दिया है—

अन्यस्य न दातव्यं मिथ्यादृष्टेस्तु विशेषतोऽवधेयम्।
शपथं च कारयित्वा जिनवरदेव्या. पुर. सम्यक् ॥

ग्रन्थकर्त्ता ने इस में ध्वज, धूम, सिंह, मण्डल, वृष, खर, गज और

वायस इन आठों आयो का स्वरूप तथा उन के फलाफल का सुन्दर विवेचन दिया है।

राजादित्य—इन के पिता का नाम श्रीपति और माता का नाम वसन्ता था। इन का जन्म कोण्डिमण्डल के 'यूविनवाग' नामक स्थान में हुआ था। इन के नामान्तर राजवर्म, भास्कर और वाचिराज वताये जाते है। यह विष्णुवर्धन राजा की सभा के प्रधान पण्डित थे, अत. इन का समय ईसवी सन् ११२० के लगभग है। यह कवि होने के साथ-साथ गणित ज्योतिप के माने हुए विद्वान् थे। कर्णाटक कविचरित के लेखक का कथन है कि कन्नड साहित्य में गणित का ग्रन्थ लिखने वाला यह सब से पहला विद्वान् था। इन के द्वारा रचित व्यवहारगणित, क्षेत्रगणित, व्यवहाररत्न और जैनगणितसूत्रटीकोदाहरण, चित्रहसुगे और लीलावती ये गणित ग्रन्थ प्राप्य है। इन के ये समस्त ग्रन्थ कन्नड भाषा में है। इन के ग्रन्थो में अकगणित के सभी विपय के अतिरिक्त बीजगणित और रेखागणित के भी अनेक विपय आये हैं। इन सब गणितो का ग्रहगणित में अत्यधिक उपयोग होता है। इन के गुरु का नाम शुभचन्द्रदेव वताया जाता है।

वल्लालसेन—मिथिला के महाराज लक्ष्मणसेन के पुत्र थे। इन्हें ज्योतिप-शास्त्र से वहुत प्रेम था। राज्याभिपेक के आठ वर्ष वाद ईसवी सन् ११६८ में संहितारूप अद्भुत-सागर नामक ग्रन्थ की रचना की है। इस ग्रन्थ में गर्ग, वृद्धगर्ग, वराह, पराशर, देवल, वसन्तराज, कश्यप, यवनेश्वर, मयूर-चित्र, ऋषिपुत्र, राजपुत्र, ब्रह्मगुप्त, महावलभद्र, पुलिश, सूर्यसिद्धान्त, विष्णु-चन्द्र और प्रभाकर आदि के वचनो का संग्रह है। ग्रन्थ वहुत वडा है। लगभग ७-८ हजार श्लोक प्रमाण में पूरा किया गया है। सूर्य, चन्द्र, मगल, वुध, गुरु, भृगु, शनि, केतु, राहु, ध्रुव, ग्रहयुद्ध, संवत्सर, ऋक्ष, परिवेप, इन्द्रधनुप, गन्धर्वनगर, निर्घात, दिग्दाह, छाया, तमोधूमनीहार, उल्का, विद्युत्, वायु, मेघ, प्रवर्पण, अतिवृष्टि, कवन्ध, भूकम्प, जलाशय, देव-प्रतिमा, वृक्ष, गृह, वस्त्रोपानहासनाद्य, गज, अश्व, विडाल आदि अनेक

अद्भुत वार्त्ताओं का निरूपण इस विस्तार से किया गया है। वास्तव में यह ग्रन्थ अपना यथार्थ नाम सिद्ध कर रहा है। इस ग्रन्थ की सब से बड़ी विशेषता यह है कि ज्योतिष विद्या के ज्ञान के अतिरिक्त इस से अनेक इतिहास की बातें भी ज्ञात की जा सकती हैं। ज्योतिष का इतिहास लिखने में इस से बहुत बड़ी सहायता मिलती है। इस ग्रन्थ में पद्यों के अतिरिक्त बीच-बीच में गद्य भी दिया गया है।

पद्मप्रभसूरि—नागौर की तापगच्छीय पट्टावली से पता चलता है कि यह वादिदेव सूरि के शिष्य थे। इन्होंने भुवन-दीपक या ग्रहभावप्रकाश नामक ज्योतिष का ग्रन्थ लिखा है। इस ग्रन्थ पर सिंहतिलकसूरि ने, जो सफल टीकाकार और ज्योतिष के मर्मज्ञ थे, वि० सं० १३२६ में एक 'विवृत्ति' नामक टीका लिखी है। इन की तिलक नाम की टीका श्रीपति के पाटी गणित पर बहुत महत्त्वपूर्ण है। 'जैन साहित्यनो इतिहास' नामक ग्रन्थ इन के गुरु का नाम विबुधप्रभ सूरि बताया है। इन के द्वारा रचित मुनिसुव्रत चरित, कुन्थुचरित और पार्श्वनाथस्तवन भी कहे जाते हैं। भुवन-दीपक का रचनाकाल वि० सं० १२९४ है। यह ग्रन्थ छोटा होते हुए भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इस में ३६ द्वार-प्रकरण है। राशिस्वामी, उच्च-नीचत्व, मित्र-शत्रु, राहुका गृह, केतुस्थान, ग्रहों के स्वरूप, द्वादश भावों से विचारणीय बातें, इष्टकालज्ञान, लग्न-सम्बन्धी विचार, विनष्टग्रह, राजयोगों का कथन, लाभालाभ विचार, लग्नेश की स्थिति का फल, प्रश्न-द्वारा प्रसव ज्ञान, यमलविचार, मृत्युयोग, चौर्यज्ञान, द्रेष्काणादि से फलों का विचार विस्तार से किया है। इस ग्रन्थ में कुल १७० श्लोक है। इस की भाषा संस्कृत है, ज्योतिष की ज्ञातव्य सभी बातें इस ग्रन्थ के द्वारा जानी जा सकती है।

नरचन्द्र उपाध्याय—यह कासद्रुहगच्छ के सिंहसूरि के शिष्य थे। इन्होंने ज्योतिषशास्त्र के अनेक ग्रन्थों की रचना की है। वर्त्तमान में इन के बेडाजातकवृत्ति, प्रश्नशतक, प्रश्नचतुर्विंशतिका, जन्मसमुद्र

सटीक, लग्न विचार, ज्योतिप्रकाश उपलब्ध है। इन के सम्बन्ध में एक स्थान पर कहा गया है—

देवानन्दमुनीश्वरपदपङ्कजसेवकै. षट्चरण. ।
ज्योतिःशास्त्रमकार्षीन् नरचन्द्राख्यो मुनिप्रवर. ॥

इस श्लोक-द्वारा देवानन्द नामक मुनि इन के गुरु मालूम पडते है। दिगम्बर समुदाय में 'नारचन्द्र' नामक ज्योतिष ग्रन्थ जो उपर्युक्त ग्रन्थो से भिन्न है, नरचन्द्र-द्वारा रचित माना जाता है। इन के सम्बन्ध में एक स्थान पर यह भी उल्लेख मिलता है—

श्रीकाशह्रदगणेशोद्योतन-सूरीष्टसिंहसूरिभृतः ।
नरचन्द्रोपाध्यायः शास्त्रं चन्द्रेऽर्थबहुलमिदम् ॥

नरचन्द्र ने सं० १३२४ में माघ सुदी ८ रविवार को वेडाजातक वृत्ति की रचना १०५० श्लोक प्रमाण में की है। इन की ज्ञानदीपिका नामक एक अन्य रचना भी ज्योतिष की बतायी जाती है। वेडाजातक वृत्ति में लग्न और चन्द्रमा से ही समस्त फलो का विचार किया गया है। यह जातक ग्रन्थ अत्यन्त उपयोगी है। प्रश्नचतुर्विंशतिका के प्रारम्भ में ज्योतिष का महत्त्वपूर्ण गणित लिखा है। ग्रन्थ अत्यन्त गूढ और रहस्यपूर्ण है।

पञ्चवेदयामगुण्ये रविभुक्तदिनान्विते ।
त्रिंशदभुक्ते स्थित यत्तत् लग्न सूर्योदयर्क्षत ॥

उपर्युक्त श्लोक में अत्यन्त कौशल के साथ दिनमान सिद्ध किया है। ज्योतिष-प्रकाश फलित ज्योतिष का मुहूर्त्त और संहिता-विषयक सुन्दर ग्रन्थ है। इस के दूसरे भाग में जन्मकुण्डली के फल का बडी सरलता से विचार किया है। फलित ज्योतिष का आवश्यक ज्ञान केवलज्योतिषप्रकाश-द्वारा प्राप्त किया जा सकता है।

अट्ठकवि या अर्हद्दास—यह जैन ब्राह्मण थे। इन का समय ईसवी सन् १३०० के लगभग माना जाता है। अर्हद्दास के पिता नागकुमार थे। यह कन्नड भाषा के प्रकाण्ड विद्वान् थे, इन्होने कन्नड में अट्ठम नामक

ज्योतिष का एक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ लिखा है। शक संवत् की चौदहवीं शताब्दी में भास्कर नाम के आन्ध्र कवि ने इस ग्रन्थ का तेलुगु भाषा में अनुवाद किया है। अद्दमत में वर्षा के चिह्न, आकस्मिक लक्षण, शकुन, वायु, चन्द्र, गोप्रवेश, भूकम्प, भूजातफल, उत्पातलक्ष्य, परिवेषलक्षण, इन्द्र-धनुर्लक्षण, प्रथमगर्भलक्षण, द्रोणसंख्या, विद्युल्लक्षण, प्रतिसूर्यलक्षण, संवत्सर-फल, ग्रहद्वेष, मेघो के नाम, कुल-वर्ण, ध्वनिविचार, देशवृष्टि, मासफल, राहु-चक्र, नक्षत्रफल, संक्रान्तिफल आदि विषयो का प्रतिपादन किया गया है।

महेन्द्रसूरि—यह भृगुफर निवासी मदनसूरि के शिष्य फीरोजशाह तुगलक के प्रधान सभापण्डित थे। इन्होंने नाडीवृत्त के धरातल में गोल-पृष्ठस्थ सभी वृत्तो का परिणमन कर के यन्त्रराज नाम ग्रह-गणित का उप-योगी ग्रन्थ बनाया है। इन के शिष्य मलयेन्दुसूरि ने सोदाहरण टीका लिखी है। इस ग्रन्थ की प्रशंसा करते हुए स्वयं ग्रन्थकार ने लिखा है—

यथा भटः प्रौढरणोत्कटोऽपि शस्त्रैर्विमुक्तः परिभूतिमेति।
तद्वन्महाज्योतिषनिस्तुषोऽपि यन्त्रेण हीनो गणकस्तथैव॥

इस ग्रन्थ में अनेक विशेषताएँ हैं, परमाक्रान्ति २३ अंश ३५ कला मानी गयी है। इस ग्रन्थ की रचना शक सं० ११९२ में हुई है। इस में गणिताध्याय, यन्त्रघटनाध्याय, यन्त्ररचनाध्याय, यन्त्रशोधनाध्याय और यन्त्रविचारणाध्याय ये पाँच अध्याय हैं। क्रमोत्क्रमज्यानयन, भुजकोटिज्या का चापसाधन, क्रान्ति-साधन, द्युज्याखण्डसाधन, द्युज्याफलानयन, सौम्य यन्त्र के विभिन्न गणितो का साधन, अक्षांश से उन्नतांश साधन, ग्रन्थ के नक्षत्र ध्रुवादि से अभीष्ट वर्ष के ध्रुवादि का साधन, नक्षत्रो के दृक्कर्म-साधन, द्वादश राशियो के विभिन्न वृत-सम्बन्धी गणितों का साधन इष्टशंकु से छायाकरण साधन, यन्त्रशोधन, प्रकार और उस के अनुसार विभिन्न राशि नक्षत्रो के गणित का साधन, द्वादश भाव और नवग्रहों के स्पष्टीकरण का गणित एवं विभिन्न यन्त्रो-द्वारा सभी ग्रहो के साधन का गणित बहुत सुन्दर ढंग से इस ग्रन्थ में बताया गया है। इस पर से पंचांग बहुत सरलता से

बनाया जा सकता है।

मकरन्द—इन्होने सूर्यसिद्धान्त के अनुसार तिथ्यादि साधनरूप सारणी अपने नाम से (मकरन्द) बनारस में शक सं० १४०० में तैयार की है। ग्रन्थ के आदि में लिखा है—

श्रीसूर्यसिद्धान्तमतेन सम्यक् विश्वोपकाराय गुरूपदेशात्।
तिथ्यादिपत्रं वितनोति काश्यां आनन्दकन्दो`मकरन्दनामा ॥

मकरन्द के ऊपर दिवाकर ज्योतिषी-द्वारा लिखा गया विवरण है। इन की इस सारणी-द्वारा अनेक ज्योतिषी पचाग बनाते है। इस समय ग्रहलाघव सारणी और मकरन्द सारणी का खूब प्रचार है। मकरन्द सारणी का जॉन वेण्टली साहब ने अँगरेजी में भी अनुवाद किया है। यह ग्रन्थ ज्योतिषियो के लिए बडा उपयोगी है।

केशव--इन के पिता का नाम कमलाकर और गुरु का नाम वैद्यनाथ था। इन का जन्म पश्चिमी समुद्र के किनारे नन्दिग्राम में ईसवी सन् १४५६ में हुआ था। यह ज्योतिष शास्त्र के वडे भारी विद्वान् थे। इन्होंने ग्रहकौतुक, वर्षग्रहसिद्धि, तिथिसिद्धि, जातकपद्धति, जातकपद्धतिविवृति, ताजिकपद्धति, सिद्धान्तवासना पाठ, मुहूर्त्ततत्त्व, कायस्थादि धर्मपद्धति, कुण्डाष्टकलक्षण एवं गणितदीपिका इत्यादि अनेक ग्रन्थ बनाये हैं। इन के पुत्र गणेशदैवज्ञ ने इन की प्रशंसा करते हुए लिखा है—

सोमाय ग्रहकौतुकं खगकृतिं तच्चालनाख्य तिथे.
सिद्धिं जातकपद्धतिं सविवृतिं तत्ताजिके पद्धतिम्।
सिद्धान्तेऽप्युपपत्तिपाठनिचयं मौहूर्त्ततत्त्वाभिधं
कायस्थादिजधर्मपद्धतिमुखं श्रीकेशवार्योऽकरोत् ॥

इस से सिद्ध होता है कि केशव ज्योतिष शास्त्र के पूर्ण पण्डित थे। ग्रहगणित और फलित इन दोनों विषयो का इन्हें अच्छा ज्ञान था।

गणेश—इन के पिता का नाम केशव और माता का नाम लक्ष्मी था। इन का जन्म ईसवी सन् १५१७ माना जाता है। यह अपूर्व प्रतिभासम्पन्न

ज्योतिषी थे, इन्होंने १३ वर्ष की उम्र में ग्रहलाघव-जैसे अपूर्व करण ग्रन्थ की रचना की थी। इन के द्वारा रचित अन्य ग्रन्थों में लघुतिथि चिन्तामणि, बृहत्तिथिचिन्तामणि, सिद्धान्तशिरोमणि टीका, लीलावती टीका, विवाह-वृन्दावन टीका, मुहूर्त्ततत्त्वटीका, श्राद्धादिनिर्णय, छन्दार्णवटीका, सुधीरंजनी-तर्जनीयन्त्र, कृष्णजन्माष्टमी निर्णय, होलिका निर्णय आदि बताये जाते हैं।

ग्रहलाघव में ज्या-चाप के बिना अंको-द्वारा ही सारा ग्रहगणित किया गया है। इस में कल्पादि से अहर्गण के तीन खण्ड कर ध्रुवक्षेप-द्वारा ग्रह सिद्ध किये गये हैं। वर्त्तमान में जितने करण ग्रन्थ उपलब्ध हैं, उन में सब से सरल और प्रामाणिक ग्रहलाघव ही माना जाता है। यद्यपि इस के ग्रह-गणित में कुछ स्थूलता है, पर काम चलाने लायक यह अवश्य है।

ढुण्ढिराज—यह पार्थपुरा के रहने वाले नृसिंह दैवज्ञ के पुत्र और ज्ञान-राज के शिष्य थे। इन का समय ईसवी सन् १५४१ है। इन्होंने जातका-भरण नाम का फलित ज्योतिष का एक सुन्दर ग्रन्थ बनाया है। यह ग्रन्थ फलित ज्योतिष में अपने ढग का निराला है, जन्मपत्री का फलादेश इस में बहुत सुन्दर ढंग से बताया गया है। जातकाभरण की श्लोक-सख्या दो हजार है, केवल इस ग्रन्थ के सम्यक् अध्ययन से फलित-ज्योतिष का अच्छा ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है।

नीलकण्ठ—इन के पिता का नाम अनन्तदैवज्ञ और माता का नाम पद्मा था। इन का जन्म-समय ईसवी सन् १५५६ बताया जाता है। इन्होंने अरबी और फारसी के ज्योतिष-ग्रन्थों के आधार पर ताजिकनीलकण्ठी नामक एक फलित-ज्योतिष का महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ बनाया है। विदेशी भाषा के साहित्य से केवल शरीर-भर ग्रहण किया है, आत्मा भारतीय ज्योतिष की है। नीलकण्ठी में तीन तन्त्र—संज्ञातन्त्र, वर्षतन्त्र और प्रश्नतन्त्र हैं। इस में इक्कबाल, इन्दुवार, इत्थशाल, ईशराफ, नक्त, यमया, मणऊ, कबूल, गैरिकबूल, खल्लासर, रद्द, दुफालिकुत्थ, दुत्थोत्थदिवीर, तम्बीर, कुत्थ और दुरफ ये सोलह योग अरबी ज्योतिष से लिये गये प्रतीत होते हैं। इन योगो-

द्वारा वर्षकुण्डली में प्राणियो के शुभाशुभ का निर्णय किया जाता है।

रामदैवज्ञ—यह अनन्तदैवज्ञ के पुत्र और नीलकण्ठ के भाई थे। इन का जन्म-समय ईसवी सन् १५६५ माना जाता है। इन्होने शक संवत् १५२२ में मुहूर्त्तचिन्तामणि नामक एक महत्त्वपूर्ण मुहूर्त्त ग्रन्थ बनाया है। इस समय सर्वत्र इसी के आधार पर विवाह, द्विरागमन, यात्रा, यज्ञोपवीत आदि संस्कारो के मुहूर्त्त निकाले जाते हैं। यह ग्रन्थ श्रीपति-द्वारा रचित रत्नमाला का एक सस्कृत रूप है। इन्होंने अकबर की आज्ञा से शक सं० १५१२ में एक रामविनोद नाम का करण ग्रन्थ भी बनाया है। रामदैवज्ञ ने टोडरमल को प्रसन्न करने के लिए टोडरानन्द नामक एक सहिता-विषयक ज्योतिष का ग्रन्थ बनाया है, लेकिन आज यह ग्रन्थ उपलब्ध नही है।

मल्लारि—इन के पिता का नाम दिवाकरनन्दन और वडे भाइयो का नाम कृष्णचन्द्र और विष्णुचन्द्र था। इन्हो ने अपने पिता से ही ज्योतिषशास्त्र का अध्ययन किया था। इन की ग्रहलाघव के ऊपर उपपत्तिसहित एक सुन्दर टीका है। इस टीका-द्वारा इन की गोल और गणित-सम्बन्धी विद्वत्ता का पता सहज में लग जाता है। वक्र केन्द्राश निकालने के लिए की गयी समीकरण की कल्पना इन की अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। वापूदेव शास्त्री ने सिद्धान्तशिरोमणि के स्पष्टाधिकार की टिप्पणी में वक्र केन्द्राश निकालने के लिए मल्लारिकी कल्पना का प्रयोग किया है।

नारायण—यह टापर ग्रामनिवासी अनन्तनन्दन के पुत्र थे। इन का समय ईसवी सन् १५७१ माना गया है। इन्हों ने शक संवत् १४९३ में विवाहादि अनेक मुहूर्त्तों से युक्त मुहूर्त्तमार्तण्ड नामक मुहूर्त ग्रन्थ बनाया था। ग्रन्थ के देखने से इन की ज्योतिष-सम्बन्धी निपुणता का पता सहज में लग जाता है। इस ग्रन्थ में अनेक विशेषताएँ है, इस की रचना शार्दूलविक्रीडित छन्दो में हुई है।

इस नाम के एक दूसरे विद्वान् ईसवी सन् १५८८ में हो गये है। इन्हो ने केशवपद्धति के ऊपर टीका लिखी है तथा एक बीजगणित भी बनाया है। इस में अवर्गरूप प्रकृति का रूप क्षेपीय कनिष्ठ, ज्येष्ठ-द्वारा आसन्न मूल

निकाला गया है, जिस से ग्रन्थकर्त्ता की गणित-विषयक योग्यता का अनुमान लगाया जा सकता है। कारण सूत्र इस प्रकार है—

मूलं ग्राह्यं यस्य च तद्र्पक्षेपजे पदे तत्र।
ज्येष्ठं ह्रस्वपदेनोद्धरेद्भवेन्मूलमासन्नम्॥

रंगनाथ—इन का जन्म काशी में ईसवी सन् १५७५ में हुआ था। इन के पिता का नाम वल्लाल और माता का गोजि था। इन्होने सूर्य-सिद्धान्त की गूढार्थ-प्रकाशिका नामक टीका लिखी है। इस टीका से इन की ज्योतिषविषयक विद्वत्ता का पता लग जाता है। इन्होने उक्त टीका में अनेक नवीन बातें लिखी हैं।

इन प्रधान ज्योतिर्विदो के अतिरिक्त इस युग में शतानन्द, केशवार्क, कालिदास, महादेव, गंगाधर, भक्तिलाभ, हेमतिलक, लक्ष्मीदास, ज्ञानराज, अनन्तदैवज्ञ, दुर्लभराज, हरिभद्रसूरि, विष्णुदैवज्ञ, सूर्यदैवज्ञ, जगदेव, कृष्ण-दैवज्ञ, रघुनाथशर्मा, गोविन्ददैवज्ञ, विश्वनाथ, नृसिंह, विट्ठलदीक्षित, शिव-दैवज्ञ, समन्तभद्र, बलभद्रमिश्र और सोमदैवज्ञ भी हुए हैं। इन्होने स्वतन्त्र मौलिक ग्रन्थ लिख कर तथा पूर्वाचार्यो के ग्रन्थो की टीकाएँ लिख कर ज्योतिष शास्त्र को समृद्धिशाली बनाया है। गोविन्ददैवज्ञ ने मुहूर्त्तचिन्तामणि को पीयूषधारा टीका लिख कर इस ग्रन्थ को सदा के लिए अमर बना दिया है। यह केवल टीका ही नही है बल्कि मुहूर्तसम्बन्धी साहित्य का एक संग्रह है। इसी प्रकार नृसिंहदैवज्ञ ने सूर्यसिद्धान्त और सिद्धान्तशिरोमणि की सौरभाष्य और वासनावार्तिक नाम की टीकाएँ रची। इन टीकाओ से तद्विपयक एक नया साहित्य ही खडा हो गया। उत्तरमध्यकाल के अन्तिम के ज्योतिपियो में ग्रहवेध की प्रणाली उठती हुई-सी नजर आती है। नवीन ग्रह-गणित संशोधक भी इस काल में भास्कर के बाद इने-गिने ही हुए है। जातक और मुहूर्त्तविपयक साहित्य इस काल में खूब पल्लवित हुआ है। मूहूर्त अग पर स्वतन्त्र रूप से पूर्वमध्यकाल के ज्योतिर्विदो ने नाम मात्र को लिखा था किन्तु इस काल में यह अंग खूब पुष्ट हुआ है।

अर्वाचीन काल (ई० १६०१ से १९५१) :
सामान्य परिचय

अर्वाचीन काल के आरम्भ में मुसलिम संस्कृति के साथ-साथ पाश्चात्य सभ्यता का प्रचार भी भारत मे हुआ। यो तो उत्तरमध्यकाल में ही ज्योतिषियो ने आकाशावलोकन त्याग कर पुस्तकों का पल्ला पकड लिया था और पुस्तकीय ज्ञान ज्योतिष माना जाने लगा था। सच बात तो यह है कि भास्कराचार्य के बाद मुसलिम राज्यो के कारण हिन्दूधर्म, सम्पत्ति, साहित्य और ज्योतिष आदि विषयो की उन्नति पर आपत्ति के पहाड गिरे जिस से उक्त विषयो का विकास रुक गया। कुछ धर्मान्ध साम्प्रदायिक पक्षपाती मुसलिम बादशाहो ने सम्प्रदाय की तेज शराब के नशे से चूर हो कर भारतीय ज्ञान-विज्ञान को हिन्दू समाज की बपौती समझ कर नष्ट-भ्रष्ट करने में ज़रा भी संकोच नही किया। विद्वानो को राजाश्रय न मिलने से ज्योतिष के प्रसार और विकास में कुछ कम बाधाएँ नही आयी। नवीन संशोधन और परिवर्द्धन तो दरकिनार रहा, पुरातन ज्योतिष ज्ञान-भण्डार का संरक्षण भी कठिन हो गया। यद्यपि कुछ हिन्दू, मुसलिम विद्वानो ने इस युग में फलित ग्रन्थो की रचनाएँ की, लेकिन आकाश-निरीक्षण की प्रथा उठ जाने से वास्तविक ज्योतिप तत्त्वो का विकास नही हो सका।

शकुन, प्रश्न, मुहूर्त्त, जन्मपत्र एवं वर्षपत्र के साहित्य की अवश्य वृद्धि हुई है। कमलाकर भट्ट ने सूर्यसिद्धान्त का प्रचार करने के लिए 'सिद्धान्ततत्त्वविवेक' नामक गणित-ज्योतिप का महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ रचा है। इस अर्वाचीन काल के प्रारम्भ में प्राचीन ग्रन्थो पर टीका-टिप्पण बहुत लिखे गये।

ई० सन् १७८० में आमेराधिपति महाराज जयसिंह का ध्यान ज्योतिप की ओर विशेष आकृष्ट हुआ और उन्होने काशी, जयपुर एवं दिल्ली में वेधशालाएँ बनवायी, जिन में पत्थरो की ऊँची और विशाल दीवालो के रूप में बडे-बडे यन्त्र बनवाये। स्वयं महाराज जयसिंह इस विद्या के प्रेमी

थे, इन्होने युरॅप की प्रचलित तारासूचियो में कई भूलें निकाली तथा भारतीय ज्योतिष के आधार पर नवीन सारणियाँ तैयार करायी।

सामन्त चन्द्रशेखर ने अपने अद्वितीय बुद्धिकौशल-द्वारा ग्रहवेध कर प्राचीन गणित-ज्योतिष के ग्रन्थो में संशोधन किया तथा अपने सिद्धान्तो-द्वारा ग्रहो की गतियो के विभिन्न प्रकार बतलाये।

इधर अँगरेजी सभ्यता के सम्पर्क से भारत में अँगरेजी भाषा का प्रचार हो गया। इस भाषा के प्रचार के साथ-साथ अँगरेजी आधुनिक भूगोल और गणितविषयक विभिन्न ग्रन्थों के पठन-पाठन की प्रथा भी प्रचलित हुई। सन् १८५७ के पश्चात् तो आधुनिक नवीन आविष्कृत विज्ञानो का प्रभाव भारत के ऊपर विशेष रूप से पड़ा है। फलत अँगरेजी भाषा के जानकार संस्कृत के विद्वानो ने इस भाषा के नवीन गणित ग्रन्थो का अनुवाद संस्कृत में कर ज्योतिष की श्रीवृद्धि की है। बापूदेव शास्त्री और पं० सुधाकर द्विवेदी ने इस ओर विशेष प्रयत्न किया है। आप महानुभावो के प्रयास के फलस्वरूप ही रेखागणित, बीजगणित और त्रिकोणमिति के ग्रन्थो से आज का ज्योतिष धनी कहा जा सकेगा। केतक नामक विद्वान् ने केतकी ग्रह-गणित की रचना अँगरेजी ग्रह-गणित और भारतीय गणित-सिद्धान्तो के समन्वय के आधार पर की है। दीर्घवृत्त, परिवलय, अतिपरवलय इत्यादि के गणित का विकास इस नवीन सभ्यता के सम्पर्क की मुख्य देन माना जायेगा।

पृथ्वी, चन्द्रमा, सूर्य, सौर-चक्र, बुध, शुक्र, मगल, अवान्तर ग्रह, बृहस्पति, यूरेनस, नेपच्यून, नभस्तूप, आकाशगगा और उल्का आदि का वैज्ञानिक विवेचन पश्चिमीय ज्योतिष के सम्पर्क से इधर तीस-चालीस वर्षों के बीच में विशेष रूप से हुआ है। डॉ० गोरखप्रसाद ने आधुनिक वैज्ञानिक अन्वेषणो के आधार पर इस विषय की एक विशालकाय सौरपरिवार नाम की पुस्तक लिखी है, जिस से सौर-जगत् के सम्बन्ध में अनेक नवीन बातो का पता लगता है। श्री० बा० सम्पूर्णानन्द जी ने ज्योतिर्विनोद नामक पुस्तक में कापर्निकस, जिओर्डनो, गैलेलिओ और केप्लर आदि पाश्चात्य ज्योतिषियो

के अनुसार ग्रह, उपग्रह और अवान्तर ग्रहो का स्वरूप बतलाया है। श्री महावीरप्रसाद श्रीवास्तव ने सूर्य-सिद्धान्त का आधुनिक सिद्धान्तो के आधार पर विज्ञानभाष्य लिखा है, जिस से सस्कृतज्ञ ज्योतिष के विद्वानों का बहुत उपकार हुआ है। अभिप्राय यह है कि आधुनिक युग में पाश्चात्त्य ज्योतिष के सम्पर्क से गणित ज्योतिष के सिद्धान्तो का वैज्ञानिक विवेचन प्रारम्भ हुआ है। यदि भारतीय ज्योतिषी आकाश-निरीक्षण को अपनाकर नवीन ज्योतिष के साथ तुलना करे तो पूर्वमध्यकाल से चली आयी ग्रह-गणित की सारणियो की स्थूलता दूर हो जाये और भारतीय ज्योतिष की महत्ता देशवासियो के समक्ष प्रकट हो जाये।

आधुनिककाल या अर्वाचीन : प्रमुख ज्योतिर्विदों का परिचय

मुनीश्वर—यह रगनाथ के पुत्र थे। इन का समय ईसवी सन् १६०३ माना जाता है। इन्होने शक सवत् १५६८ भाद्रपद शुक्ला पचमी सोमवार के भगणादि को सिद्ध कर सिद्धान्तसार्वभौम नामक एक ज्योतिष ग्रन्थ बनाया है। इन्होंने भास्कराचार्य के सिद्धान्तशिरोमणि और लीलावती नामक ग्रन्थो पर विस्तृत टीकाएँ लिखी है। यह काव्य, व्याकरण, कोश और ज्योतिष आदि अनेक विषयो के प्रकाण्ड विद्वान् थे।

दिवाकर—इन के पिता का नाम नृसिंह था। इन का जन्म ईसवी सन् १६०६ में हुआ था। इन्होने अपने चाचा शिवदैवज्ञ से ज्योतिषशास्त्र का अध्ययन किया था। यह अत्यन्त प्रसिद्ध ज्योतिष, काव्य, व्याकरण, न्याय आदि शास्त्रो में प्रवीण और अनेक ग्रन्थो के रचयिता थे। १९ वर्ष की अवस्था में इन्होने फलित-विषयक जातकपद्धति नामक एक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ लिखा है। मकरन्दविवरण, केशवीय पद्धति की प्रौढ मनोरमा नाम की महत्त्वपूर्ण टीका और अपने-द्वारा रचित पद्धतिप्रकाश के ऊपर सोदाहरण टीका भी इन्होने रची है।

कमलाकर भट्ट—यह दिवाकर के भाई थे। इन्होने अपने भाई दिवा-

कर से ही ज्योतिषशास्त्र का अध्ययन किया था। यह गोल और गणित दोनों ही विषयों के प्रकाण्ड विद्वान् थे। इन्होंने प्रचलित सूर्यसिद्धान्त के मतानुसार 'सिद्धान्ततत्त्वविवेक' नामक ग्रन्थ शक सं० १५८० में काशी में बनाया है। सौरपक्ष की श्रेष्ठता परम्परागत मान कर अन्य ब्रह्मपक्ष आदि को इन्होंने नहीं माना, इसी कारण भास्कराचार्य का स्थान-स्थान पर खूब खण्डन किया है। इन्होंने तत्त्वविवेक के आदि में लिखा है—

प्रत्यक्षागमयुक्तिशालि तदिदं शास्त्रं विहायान्यथा।
यत्कुर्वन्ति नराधमास्तु तदसत् वेदोक्तिशून्या भृशम्॥

कमलाकर ने ज्योतिष के अनेक सिद्धान्तों को तत्त्वविवेक में बड़ी कुशलता के साथ रखा है। यदि यह निष्पक्ष हो कर इन सिद्धान्तों की समीक्षा करते तो वास्तव में 'सिद्धान्ततत्त्वविवेक' एक अद्वितीय ग्रन्थ होता।

नित्यानन्द—यह इन्द्रप्रस्थपुर के निवासी गौड़ ब्राह्मण थे। इन के पिता का नाम देवदत्त था। सन् १६३९ में इन्होंने सायन गणना के अनुसार 'सिद्धान्तराज' नामक महत्त्वपूर्ण ज्योतिष का ग्रन्थ बनाया। इन्होंने चन्द्रमा को स्पष्ट करने की सुन्दर रीति बतायी है। 'सिद्धान्तराज' में मीमांसाध्याय, मध्यमाधिकार, स्पष्टाधिकार, त्रिप्रश्नाधिकार, चन्द्रग्रहणाधिकार, सूर्यग्रहणाधिकार, शृंगोन्नत्यधिकार, भ-ग्रहयुत्यधिकार, भ-ग्रहों के उन्नतांश-साधनाधिकार, भुवनकोश, गोलबन्धाधिकार एवं यात्राधिकार हैं। ग्रह-गणित की दृष्टि से यह महत्त्वपूर्ण है।

महिमोदय—इन के गुरु का नाम लब्धिविजय सूरि था और इन का समय वि० सं० १७२२ बताया गया है। यह गणित और फलित दोनों प्रकार के ज्योतिष के मर्मज्ञ विद्वान् थे। इन के द्वारा रचित ज्योतिषरत्नाकर, गणित साठ सौ, पंचांगानयनविधि ग्रन्थ कहे जाते हैं। ज्योतिषरत्नाकर ग्रन्थ फलित का है और अवशेष दोनों ग्रन्थ गणित के हैं। ज्योतिषरत्नाकर में संहिता, मुहूर्त और जातक इन तीनों ही अंगों पर प्रकाश डाला गया है। छोटा होते हुए भी ग्रन्थ उपयोगी है।

पंचागानयनविधि के नाम से उस का विषय प्रकट हो जाता है। इस ग्रन्थ में अनेक सारणियाँ हैं, जिन से पचाग के गणित में पर्याप्त सहायता मिलती है। यदि सूक्ष्मता की तह में प्रवेश किया जाये तो इस गणित में संस्कार की आवश्यकता प्रतीत होगी। इस के गणित-द्वारा आगत ग्रहों में दृग्गणितैक्य नही होगा। गणित साठ सौ गणित का ग्रन्थ है।

मेघविजयगणि—यह ज्योतिषशास्त्र के प्रकाण्ड विद्वान् थे। इन का समय वि० स० १७३७ के आसपास माना जाता है। इन के द्वारा रचित मेघ-महोदय या वर्षप्रबोध, उदयदीपिका, रमलशास्त्र और हस्तसंजीवन आदि मुख्य हैं। वर्षप्रबोध में १३ अधिकार और ३५ प्रकरण है। इस मे उत्पात प्रकरण, कर्पूरचक्र, पद्मिनीचक्र, मण्डलप्रकरण, सूर्य और चन्द्रग्रहण का फल, प्रत्येक महीने का वायु-विचार, संवत्सर का फल, ग्रहों के राशियो पर उदयास्त और वक्री होने का फल, अयन-मास-पक्ष-विचार, सक्रान्तिफल, वर्ष के राजा, मन्त्री, धान्येश, रसेश आदि का निरूपण, आय-व्यय विचार, सर्वतोभद्रचक्र, शकुन आदि विषयो का सुन्दर वर्णन है। हस्तसजीवन में तीन अधिकार हैं। प्रथम अधिकार दर्शनाधिकार है, जिस में हाथ कैसे देखना, हाथ ही पर से मास, दिन, घटी, पल आदि का शुभाशुभ फल, रेखा और लग्नचक्र बना कर कहना; द्वितीय अधिकार स्पर्शनाधिकार है, जिस में हाथ को स्पर्श करने से ही समस्त शुभाशुभ फलो का निरूपण, जैसे इस वर्ष में कितनी वर्षा होगी, बिना किसी मन्त्रादिक के इस समय कितना दिन या रात गत हैं; इस का ज्ञान कर लेना, तृतीय विमर्शनाधिकार में रेखाओ पर से ही आयु, सन्तान, स्त्री, भाग्योदय, जीवन की प्रमुख घटनाएँ, सासारिक सुख आदि बातो का ज्ञान गवेषणापूर्ण रीति से बताया गया है। इन के फलित ग्रन्थो को देखने से सहिता और सामुद्रिक शास्त्र-सम्बन्धी प्रकाण्ड विद्वत्ता का पता सहज में लग जाता है।

उभयकुशल—इन का समय वि० सं० १७३७ के लगभग माना जाता है। यह फलित ज्योतिष के अच्छे ज्ञाता थे, इन्हो ने विवाह-पटल और

चमत्कार-चिन्तामणि नामक दो ज्योतिष ग्रन्थो की रचना की है। यह मुहूर्त और जातक दोनो अंगो के ज्ञाता थे।

लब्धिचन्द्रगणि—यह खरतरगच्छीय कल्याणनिधान के शिष्य थे। इन्होंने वि० सं० १७५१ के कार्त्तिक मास में ज्योतिष का जन्मपत्रीपद्धति नामक एक व्यवहारोपयोगी ग्रन्थ बनाया है। इस ग्रन्थ में इष्टकाल, भयात, भभोग, लग्न एव नवग्रहो का स्पष्टीकरण आदि गणित के विषय भी है। जन्मपत्री के सामान्य फल का वर्णन भी इस ग्रन्थ में किया है।

बाघजी मुनि—यह पार्श्वचन्द्रगच्छीय शाखा के मुनि थे। इन का समय वि० स० १७८३ माना जाता है। इन्हो ने तिथिसारणी नामक ज्योतिष का एक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ लिखा है। इस के अतिरिक्त इन के दो-तीन फलित ज्योतिष के भी मुहूर्त्त-सम्बन्धी ग्रन्थो का पता लगता है। तिथिसारणी में पंचाग बनाने की प्रक्रिया है। यह मकरन्द-सारणी के समान उपयोगी है।

यशस्वतसागर—इन का दूसरा नाम जसवन्तसागर भी बताया जाता है। यह ज्योतिष, न्याय, व्याकरण और दर्शनशास्त्र के धुरन्धर विद्वान् थे। इन्हो ने ग्रहलाघव के ऊपर वार्त्तिक नाम की टीका लिखी है। वि० सं० १७६२ में जन्मकुण्डली विषय को ले कर 'यशोराजपद्धति' नामक एक व्यवहारोपयोगी ग्रन्थ लिखा है। यह ग्रन्थ जन्मकुण्डली की रचना के नियमो के सम्बन्ध में विशेष प्रकाश डालता है, उत्तरार्द्ध में जातकपद्धति के अनुसार संक्षिप्त फल बतलाया है।

जगन्नाथ सम्राट्—यह तैलंग ब्राह्मण, जयपुरनरेश जयसिंह महाराज के सभापण्डित थे। इन्हो ने महाराज जयसिंह की आज्ञा से अरबी भाषा में लिखित 'इजास्ती' नामक ज्योतिष ग्रन्थ का सस्कृत में अनुवाद किया है। इस के अतिरिक्त युक्लेद के रेखागणित का भी अरबी से सस्कृत मे अनुवाद किया है। इस रेखागणित में १५ अध्याय है। रेखागणित के अनुवाद का समय शक सं० १६४० है। कुछ लोगो का कहना है कि रेखागणित के मूल रचयिता युक्लेद नही थे, किन्तु मिलिटस नगर निवासी

थेलस हैं। रेखागणित के पहले अध्याय में ४८, दूसरे में १४, तीसरे में ३७, चौथे में १६, पाँचवें में २५, छठे में ३३, सातवें में ३९, आठवें मे २५, नौवें में ३८, दसवें में १०९, ग्यारहवें में ४१, बारहवें में १५, तेरहवें में २१, चौदहवें में १० और पन्द्रहवें में ६ क्षेत्र हैं। इस में प्रतिज्ञा या साध्य शब्द के स्थान पर क्षेत्र शब्द का प्रयोग किया गया है।

बापूदेव शास्त्री—इन का जन्म ईसवी सन् १८२१ में पूना नगर में हुआ था। इन के पिता का नाम सीताराम था। भारतीय ज्योतिष और युरॅपियन गणित इन दोनो के यह अद्वितीय विद्वान् थे। वर्तमान में नवीन गणित की जागृति के मूल कारण शास्त्री जी है। इन के त्रिकोणमिति, बीजगणित और अव्यक्त गणित के तीन ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं। शास्त्रीजी ने अनेक वर्षों तक गवर्नमेण्ट संस्कृत कॉलेज में अध्यापकी की और सैंकडों देश-देशान्तर के शिष्यो को विद्या-दान दे कर अपनी कीर्त्तिरूपी चन्द्रिका का विस्तार किया। सिद्धान्तशिरोमणि के सशोधन के बाद शास्त्रीजी का नाम 'सशोधक' प्रसिद्ध हो गया। वास्तव में यह थे भी सच्चे संशोधक। गणितविषयक युरॅप के उच्च सिद्धान्तो का भारतीय सिद्धान्तों के साथ इन्होने बहुत कुछ सामजस्य किया है। ईसवी सन् १८९० में इन का स्वर्गवास हो गया।

नीलाम्बर झा—ईसवी सन् १८२३ में प्रतिष्ठित और विद्वान् मैथिल ब्राह्मण-कुल में आप का जन्म हुआ था। यह पटना के निवासी और अलवर के राजा श्री शिवदास सिंह के आश्रित थे। इन्होने क्षेत्रमिति और त्रिकोणमिति के आधार पर 'गोल प्रकाश' नामक ग्रन्थ बनाया है। इस ग्रन्थ में प्राचीन सिद्धान्तो के अनेक प्रकार, उपपत्ति और बहुत से प्रश्नो के उत्तर बडी उत्तमता और नवीन रीति से दिखलाये हैं। वास्तव में इस ग्रन्थ से इन की ज्योतिष-विषयक प्रगाढ विद्वत्ता प्रकट होती है।

सामन्त चन्द्रशेखर—इन का जन्म उडीसा के अन्तर्गत कटक से २५ कोस खण्डद्वारा राज्य में सन् १८३५ में हुआ था। यह व्याकरण, स्मृति, पुराण, न्याय, काव्य और ज्योतिष के मर्मज्ञ विद्वान् थे। पन्द्रह वर्ष की

अवस्था में इन को ज्योतिष गणना करने की योग्यता प्राप्त हो गयी थी। लेकिन थोडे ही दिनो में इन्हें ज्ञात हुआ कि जिस ग्रह या नक्षत्र को गणनानुसार जिस स्थान पर होना चाहिए, वह उस स्थान पर नही है अतएव इन्होने नियमित रूप से आकाश का अवलोकन करना आरम्भ किया। इस कार्य के लिए यन्त्रो की आवश्यकता थी, पर यन्त्र मिलना असम्भव था। इस लिए इन्होने प्राचीन ग्रन्थो के आधार पर कुछ यन्त्र बनाये। यद्यपि ये यन्त्र अनगढ और स्थूल थे, किन्तु यह अपनी प्रतिभा के बल पर इन से सूक्ष्म काम कर लेते थे। वेध-द्वारा ग्रहो को निश्चित कर इन्होने 'सिद्धान्त दर्पण' नामक ज्योतिष का महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ बनाया है। इस ग्रन्थ को देख कर इन के ज्योतिष ज्ञान की जितनी प्रशसा की जाये, थोडी है।

सुधाकर द्विवेदी—इन का जन्म काशी में ईसवी सन् १८६० में हुआ था। यह ज्योतिष ज्ञान के सिवा अन्य विषयो के भी अद्वितीय विद्वान् थे। फ्रेंच, अँगरेजी, मराठी, हिन्दी आदि विभिन्न भाषाओ के साहित्य के ज्ञाता थे। वर्तमान ज्योतिषशास्त्र के ये उद्धारक है। इन्होने प्राचीन जटिल गणित ज्योतिष-विषयक ग्रन्थो को भाष्य, उपपत्ति, टोका आदि लिख कर प्रकाशित किया। चलनकलन, दीर्घवृत्त, गणकतरंगिणी, प्रतिभाबोधक, पंचसिद्धान्तिका की टीका, सूर्यसिद्धान्त की सुधावर्षिणी टीका, ग्रहलाघव की उपपत्ति, ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त का तिलक इत्यादि अनेक रचनाएँ इन की मिलती हैं। वृहत्संहिता का संशोधन कर प्रामाणिक संस्करण इन्होने प्रकाशित कराया था। इस काल में प्राचीन ज्योतिषशास्त्र का उद्धार करने वाला सुधाकरजी जैसा अन्य नही हुआ है। इन की प्रतिभा सर्वतोमुखी थी।

इन उपर्युक्त प्रसिद्ध ज्योतिर्विदो के अतिरिक्त इस युग में, रंगनाथ, शंकरदैवज्ञ, शिवलाल पाठक, परमानन्द पाठक, लक्ष्मीपति, बबुआज्योतिषी, मथुरानाथ शुक्ल, परमसुखोपाध्याय, बालकृष्ण ज्योतिषी, कृष्णदेव, शिवदैवज्ञ, दुर्गाशंकर पाठक, गोविन्दाचारी, जयराम ज्योतिषी, सेवाराम शर्मा, लज्जाशंकर शर्मा, नन्दलाल शर्मा, देवकृष्ण शर्मा, गोविन्ददेव शास्त्री,

केतक, दुर्गाप्रसाद द्विवेदी, रामयत्न ओझा, मानसागर, विनयकुशल, हीरकलश, मेघराज, सूरचन्द्र, जयविजय, जयरत्न, जिनपाल, जिनदत्त-सूरि, श्यामाचरण ओझा, हृषीकेश उपाध्याय आदि अन्य लब्धप्रतिष्ठ हुए हैं। इन्होंने भी अनेक प्रकार से ज्योतिषशास्त्र की अभिवृद्धि में सहायता प्रदान की है। वर्तमान ज्योतिषियों में श्रीरामव्यास पाण्डेय, सूर्य-नारायण व्यास, श्रीनिवास पाठक, विन्ध्येश्वरीप्रसाद आदि उल्लेखनीय हैं। मिथिला में अनेक अच्छे ज्योतिर्विद् हुए हैं। पद्मभूषण पं० विष्णुकान्त झा ज्योतिष के अच्छे विद्वान् हैं। संस्कृत भाषा में कविता भी करते हैं। देशरत्न डॉ० राजेन्द्रप्रसाद का जीवनवृत्त संस्कृत पद्यों में लिखा है। वर्तमान में पटना में आप का ज्योतिष-कार्यालय भी है।

समीक्षा

यदि समग्र भारतीय ज्योतिष शास्त्र के इतिहास पर दृष्टिपात किया जाये तो अवगत होगा कि प्राचीन काल में भारत सभ्यता और संस्कृति में कितना आगे बढ़ा हुआ था। प्राचीन ऋषियों ने अपने दिव्यज्ञान और योगजन्य शक्ति से ग्रह और नक्षत्रों के सम्बन्ध में सब कुछ जान लिया था। वे आँखों से राशि, नक्षत्र, ताराव्यूह, चन्द्र, सूर्य और मंगलादि ग्रहों की गति, स्थिति और संचार आदि को देख कर योग के बल से अपने शरीर-स्थित सौरमण्डल से तुलना कर आन्तरिक ग्रहों की गति, स्थिति तथा उस के द्वारा होने वाले फलाफल का निरूपण करते रहे। ज्योतिष का पूर्णज्ञान उन्हें वैदिक काल में ही था, पर उस की अभिव्यक्ति साहित्य के रूप में क्रमशः हुई है। पृथ्वी की आकर्षण-शक्ति के विषय में भारतीयों ने न्यूटन और गैलेलिओ से सैकड़ों वर्ष पहले ज्ञात कर लिया था। भास्कराचार्य ने 'सिद्धान्तशिरोमणि' के गोलाध्याय में कहा है—

आकृष्टशक्तिश्च महीतया यत्
स्वस्थं गुरुं स्वाभिमुखं स्वशक्त्या।

आकृष्यते यत्पततीति भाति
समे समन्तात् क्व पतत्त्वियं खे ॥

अर्थात् पृथ्वी में आकर्षण शक्ति है; इस से वह अपने आसपास के पदार्थों को खीचा करती है। पृथ्वी के समीप में आकर्षण-शक्ति अधिक होती है और जिस प्रकार दूरी बढती जाती है, वैसे ही वह घटती जाती है। भास्कराचार्य ने इस के कारण का विवेचन करते हुए लिखा है कि किसी स्थान पर भारी और हलकी वस्तु पृथ्वी पर छोडी जाये तो दोनो समान काल में पृथ्वी पर गिरेंगी; यह न होगा कि भारी वस्तु पहले गिरे और हलकी बाद को। अतएव ग्रह और पृथ्वी आकर्षण-शक्ति के प्रभाव से भ्रमण करते हैं।

पृथ्वी की गोलाई का कथन करते हुए प्राचीन आचार्यों ने लिखा है कि "गोले की परिधि का १००वाँ भाग समतल दिखाई पडता है, पृथ्वी एक बहुत बडा गोला है तथा मनुष्य बहुत ही छोटा है, अत. उस की पीठ पर स्थिति उसे वह सम—चपटी जान पडती है। यह एक आश्चर्य की बात है कि भारतीय ऋषि-महर्षि दूरवीन के विना केवल अपनी आँखों से देख कर ही आकाश.की सारी स्थिति को जान गये थे। फलित-ज्योतिष का अनुभव उन्होने अपने दिव्य ज्ञान से किया। यद्यपि बेबिलोनिया और यूनान के सम्पर्क से फलित और गणित दोनो ही प्रकार के भारतीय ज्योतिष में अनेक नयी बातो का समावेश हुआ, परन्तु मूलतत्त्व ज्यो-के-त्यो अविकृत रहे। ताजिकपद्धति का श्रीगणेश यवनो के कारण ही हुआ है।

अर्वाचीन ज्योतिष में जो शिथिलता आयी है, उस का कारण दिव्य ज्ञान वाले ऋषियो की कमी है। आज हमारे देश में न तो बडी-बडी वेधशालाएँ है और न योग-क्रिया के जानकार ऋषि-महर्षि ही। इस लिए नवीन विवृत्तियाँ ज्योतिष में नही हो रही हैं।

द्वितीयाध्याय

भारतीय ज्योतिष के सिद्धान्त

यह पहले ही लिखा जा चुका है कि भारतीय ज्योतिष का मुख्य प्रयोजन आत्म कल्याण के साथ लोक-व्यवहार का सम्पन्न करना है। लोक-व्यवहार के लिए ज्योतिष के क्रियात्मक दो सिद्धान्त हैं—गणित और फलित। गणित ज्योतिष के शुद्ध गणित के अतिरिक्त करण, तन्त्र और सिद्धान्त ये तीन भेद एवं फलित के जातक, ताजिक, मुहूर्त्त, प्रश्न एव शकुन ये पांच भेद किये गये हैं। यो तो भारतीय ज्योतिष के सिद्धान्तो का वर्गीकरण और भी अनेक भेद-प्रभेदों में किया जा सकता है, परन्तु मूल विभागो का उक्त वर्गीकरण ही अधिक उपयुक्त है। प्रस्तुत ग्रन्थ को अधिक लोकोपयोगी बनाने की दृष्टि से इस में गणित-ज्योतिष के सिद्धान्तो पर कुछ न लिख कर फलित ज्योतिष के प्रत्येक अग पर प्रकाश डालने का प्रयत्न किया जायेगा। यद्यपि भारतीय ज्योतिष के रहस्य को हृदयंगम करने के लिए गणित-ज्योतिष का ज्ञान अनिवार्य है, पर साधारण जनता के लिए आवश्यक नही। क्योंकि प्रामाणिक ज्योतिर्विदों-द्वारा निर्मित तिथिपत्रो—पंचागो पर-से कतिपय फलित से सम्बद्ध गणित के सिद्धान्तों-द्वारा अपने शुभाशुभ का ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। अतएव यहाँ पर प्रयोजनीभूत आवश्यक ज्योतिष तत्त्वो का निरूपण किया जा रहा है। हर एक व्यक्ति के लिए यह जरूरी नही कि वह ज्योतिषी हो, किन्तु मानव-मात्र को अपने जीवन को व्यवस्थित करने के नियमों को जानना वाजिब ही नही, अनिवार्य है।

फलित-ज्योतिष के ज्ञान के लिए तिथि, नक्षत्र, योग, करण और वार के सम्बन्ध में आवश्यक जानकारी प्राप्त कर लेनी चाहिए। अतएव जातक अग पर लिखने के पूर्व उपर्युक्त पाँचो के संक्षिप्त परिचय के साथ आव-

श्यक परिभाषाएँ दी जाती है—

तिथि—चन्द्रमा की एक कला को तिथि माना गया है। इस का चन्द्र और सूर्य के अन्तराशो पर से मान निकाला जाता है। प्रतिदिन १२ अशो का अन्तर सूर्य और चन्द्रमा के भ्रमण में होता है, यही अन्तराश का मध्यम मान है। अमावस्या के बाद प्रतिपदा से लेकर पूर्णिमा तक की तिथियाँ शुक्ल-पक्ष की और पूर्णिमा के बाद प्रतिपदा से लेकर अमावस्या तक की तिथियाँ कृष्ण पक्ष की होती हैं। ज्योतिषशास्त्र में तिथियो की गणना शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा से आरम्भ होती है।

तिथियों के स्वामी—प्रतिपदा का स्वामी अग्नि, द्वितीया का ब्रह्मा, तृतीया की गौरी, चतुर्थी का गणेश, पंचमी का शेषनाग, षष्ठी का कार्तिकेय, सप्तमी का सूर्य, अष्टमी का शिव, नवमी की दुर्गा, दशमी का काल, एकादशी के विश्वेदेवा, द्वादशी का विष्णु, त्रयोदशी का काम, चतुर्दशी का शिव, पौर्णमासी का चन्द्रमा और अमावस्या के पितर है। तिथियो के शुभाशुभत्व के अवसर पर स्वामियो का विचार किया जाता है।

अमावास्या के तीन भेद—सिनीवाली, दर्श और कुहू। प्रात.काल से लेकर रात्रि तक रहने वाली अमावास्या को सिनीवाली, चतुर्दशी से विद्ध को दर्श एवं प्रतिपदा से युक्त अमावास्या को कुहू कहते हैं।

तिथियों की संज्ञाएँ—१।६।११ नन्दा, २।७।१२ भद्रा, ३।८।१३ जया, ४।९।१४ रिक्ता और ५।१०।१५ पूर्णा संज्ञक हैं।

पक्षरन्ध्र—४।६।८।९।१२।१४ तिथियाँ पक्षरन्ध्र संज्ञक है।

मासशून्य तिथियाँ—चैत्र में दोनो पक्षो की अष्टमी और नवमी, वैशाख में दोनो पक्षो की द्वादशी, ज्येष्ठ में कृष्णपक्ष की चतुर्दशी और शुक्लपक्ष की त्रयोदशी, आषाढ में कृष्णपक्ष की षष्ठी और शुक्लपक्ष की सप्तमी, श्रावण में दोनो पक्षो की द्वितीया और तृतीया, भाद्रपद में दोनो पक्षो की प्रतिपदा और द्वितीया, आश्विन में दोनो पक्षो की दशमी और एकादशी, कार्तिक में कृष्णपक्ष की पंचमी और शुक्लपक्ष की चतुर्दशी, मार्गशीर्ष में दोनो

पक्षो की सप्तमी और अष्टमी, पौष में दोनो पक्षो की चतुर्थी और पचमी, माघ में कृष्णपक्ष की पंचमी और शुक्लपक्ष की षष्ठी एवं फाल्गुन में कृष्ण-पक्ष की चतुर्थी और शुक्लपक्ष की तृतीया मासशून्य सज्ञक हैं। मास शून्य तिथियो में कार्य करने से सफलता प्राप्त नही होती।

सिद्धा तिथियाँ—मंगलवार को ३।८।१३, बुधवार को २।७।१२, बृहस्पतिवार को ५।१०।१५, शुक्रवार को १।६।११ एव शनिवार को ४।९।१४ तिथियाँ सिद्धि देने वाली सिद्धासंज्ञक है। इन तिथियो में किया गया कार्य सिद्धिप्रदायक होता है।

दग्ध, विष और हुताशन संज्ञक तिथियाँ—रविवार को द्वादशी, सोमवार को एकादशी, मगलवार को पंचमी, बुधवार को तृतीया, बृहस्पति-वार को षष्ठी, शुक्र को अष्टमी और शनिवार को नवमी दग्धा संज्ञक; रविवार को चतुर्थी, सोमवार को षष्ठी, मंगलवार को सप्तमी, बुधवार को द्वितीया, बृहस्पतिवार को अष्टमी, शुक्रवार को नवमी और शनिवार को सप्तमी विष सज्ञक एवं रविवार को द्वादशी, सोमवार को षष्ठी, मगलवार को सप्तमी, बुधवार को अष्टमी, बृहस्पतिवार को नवमी, शुक्रवार को दशमी और शनिवार को एकादशी हुताशन संज्ञक हैं। नामानुसार इन तिथियों में कार्य करने से विघ्न-बाधाओ का सामना करना पड़ता है।

दग्ध-विष-हुताशनयोगसज्ञाबोधकचक्र

रविवार	सोमवार	मंगलवार	बुधवार	गुरुवार	शुक्रवार	शनिवार	वार
१२	११	५	३	६	८	९	दग्ध
४	६	७	२	८	९	७	विष
१२	६	७	८	९	१०	११	हुताशन

नक्षत्र—कई ताराओ के समुदाय को नक्षत्र कहते हैं। आकाश-मण्डल मे जो असख्यात तारिकाओ से कही अश्व, शकट, सर्प, हाथ आदि के आकार बन जाते है, वे ही नक्षत्र कहलाते है। जिस प्रकार लोक-व्यवहार में एक स्थान से दूसरे स्थान की दूरी मीलो या कोशो में नापी जाती है, उसी प्रकार आकाश-मण्डल की दूरी नक्षत्रो से ज्ञात की जाती है। तात्पर्य यह है कि जैसे कोई पूछे कि अमुक घटना सडक पर कहाँ घटी, तो यही उत्तर दिया जायेगा कि अमुक स्थान से इतने कोस या मील चलने पर, उसी प्रकार अमुक ग्रह आकाश में कहाँ है, तो इस प्रश्न का भी वही उत्तर दिया जायेगा कि अमुक नक्षत्र में। समस्त आकाश-मण्डल को ज्योतिषशास्त्र ने २७ भागो में विभक्त कर प्रत्येक भाग का नाम एक-एक नक्षत्र रखा है। सूक्ष्मता से समझाने के लिए प्रत्येक नक्षत्र के भी चार भाग किये गये है, जो चरण कहलाते है। २७ नक्षत्रो के नाम निम्न हैं[1]—(१) अश्विनी (२) भरणी (३) कृत्तिका (४) रोहिणी (५) मृगशिरा (६) आर्द्रा (७) पुनर्वसु (८) पुष्य (९) आश्लेषा (१०) मघा (११) पूर्वाफाल्गुनी (१२) उत्तराफाल्गुनी (१३) हस्त (१४) चित्रा (१५) स्वाति (१६) विशाखा (१७) अनुराधा (१८) ज्येष्ठा (१९) मूल (२०) पूर्वाषाढा (२१) उत्तराषाढा (२२) श्रवण (२३) धनिष्ठा (२४) शतभिषा (२५) पूर्वाभाद्रपद (२६) उत्तराभाद्रपद (२७) रेवती।

---

[1] अश्विनी भरणी चैव कृत्तिका रोहिणी मृग।
आर्द्रा पुनर्वसू पुष्यस्तथाश्लेषा मघा तत॥
पूर्वाफाल्गुनिका चैव उत्तराफाल्गुनी तत।
हस्तश्चित्रा तथा स्वाती विशाखा तदनन्तरम्॥
अनुराधा ततो ज्येष्ठा ततो मूल निगद्यते।
पूर्वाषाढोत्तराषाढा त्वभिजिच्छ्रवणा तत॥
धनिष्ठा सततारारव्य पूर्वाभाद्रपदा तत।
उत्तराभाद्रपदा चैव रेवत्येतानि भानि च॥

ध्रुवसज्ञक नक्षत्र और उन में विधेय कार्य—
उत्तरात्रयरोहिण्यो भास्करश्च ध्रुव स्थिरम्।

अभिजित् को भी २८वाँ नक्षत्र माना गया है। ज्योतिर्विदो का अभिमत है कि उत्तराषाढा की आखिरी १५ घटियाँ और श्रवण के प्रारम्भ की चार घटियाँ, इस प्रकार १९ घटियो के मान वाला अभिजित् नक्षत्र होता है। यह समस्त कार्यों में शुभ माना गया है।

नक्षत्रो के स्वामी—अश्विनी का अश्विनीकुमार, भरणी का काल, कृत्तिका का अग्नि, रोहिणी का ब्रह्मा, मृगशिर का चन्द्रमा, आर्द्रा का रुद्र, पुनर्वसु का अदिति, पुष्य का बृहस्पति, आश्लेषा का सर्प, मघा का पितर,

---

तत्र स्थिरं बीजगेहशान्त्यारामादिसिद्धये ॥

—मुहूर्त्तचिन्तामणि, नक्षत्रप्रकरण श्लो० २

चरसज्ञक नक्षत्र और उन में विधेय कार्य—

स्वात्यादित्ये श्रुतेस्त्रीणि चन्द्रश्चापि चर चलम्।
तस्मिन् गजादिकारोहो वाटिकागमनादिकम् ॥ वही, पद्य ३

क्रूर और उग्रसज्ञक नक्षत्र और उन में विधेय कार्य—

पूर्वात्रय याम्यमघे उग्र क्रूर कुजस्तथा।
तस्मिन् घाताग्निशाठ्यानि विषशस्त्रादि सिद्धयति ॥ —वही, ४ श्लो०

मिश्रसंज्ञक नक्षत्र और उन में विधेय कार्य—

विशाखाग्नेयभे सौम्यो मिश्रं साधारण स्मृतम्।
तत्राग्निकार्यं मिश्र च वृषोत्सर्गादि सिद्धयति ॥ —वही, ५ श्लो०

क्षिप्र और लघु सज्ञक नक्षत्र और उन में विधेय कार्य—

हस्ताश्विपुष्याभिजित क्षिप्र लघुगुरुस्तथा।
तस्मिन्पण्यरतिज्ञानभूषाशिल्पकलादिकम् ॥ वही, श्लो० ६

मृदु और मैत्री सज्ञक नक्षत्र और उन में विधेय कार्य—

मृगान्त्यचित्रामित्रर्भं मृदुमैत्र भृगुस्तथा।
तत्र गीताम्बरक्रीडामित्रकार्यविभूषणम् ॥ —वही, श्लो० ७

तीक्ष्ण और दारुणसज्ञक नक्षत्र और उन में विधेय कार्य—

मूलेन्द्रार्द्राहिभं सौरिस्तीक्ष्णं दारुणसञ्ज्ञकम्।
तत्राभिचारघातोग्रभेदा पशुदमादिकम् ॥ वही, श्लो० ८

अधोमुखादि सज्ञाएँ—

मूलाहिमिश्रोग्रमधोमुख भवेदूर्ध्वास्यमार्द्रेज्यहरित्रय ध्रुवम्।
तिर्यङ्मुख मैत्रकरानिलादितिज्येष्ठाश्विभानीदृशकृत्यभेषु सत ॥ वही, श्लो० ९

पूर्वाफाल्गुनी का भग, उत्तराफाल्गुनी का अर्यमा, हस्त का सूर्य, चित्रा का विश्वकर्मा, स्वाति का पवन, विशाखा का शुक्राग्नि, अनुराधा का मित्र, ज्येष्ठा का इन्द्र, मूल का निर्ऋति, पूर्वाषाढ़ा का जल, उत्तराषाढ़ा का विश्वेदेव, अभिजित् का ब्रह्मा, श्रवण का विष्णु, धनिष्ठा का वसु, शतभिषा का वरुण, पूर्वाभाद्रपद का अजैकपाद, उत्तराभाद्रपद का अहिर्बुध्न्य एवं रेवती का पूषा स्वामी हैं। नक्षत्रों का फलादेश भी स्वामियो के स्वभाव-गुण के अनुसार जानना चाहिए।

पंचक संज्ञक नक्षत्र—धनिष्ठा, शतभिषा, पूर्वाभाद्रपद, उत्तराभाद्रपद, और रेवती इन नक्षत्रों में पचक दोष माना जाता है।

मूलसंज्ञक नक्षत्र—ज्येष्ठा, आश्लेषा, रेवती, मूल, मघा और अश्विनी ये नक्षत्र मूलसंज्ञक हैं। इन में यदि बालक उत्पन्न होता है तो २७ दिन के पश्चात् जब वही नक्षत्र आ जाता है तब शान्ति कराया जाती है। इन नक्षत्रो में ज्येष्ठा और मूलगण्डान्त मूलसंज्ञक तथा आश्लेषा सर्पमूलसंज्ञक है।

ध्रुव-चर-उग्र-मिश्र-लघु-मृदु-तीक्ष्णसंज्ञक नक्षत्र—उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपद और रोहिणी ध्रुवसंज्ञक; स्वाति, पुनर्वसु, श्रवण, धनिष्ठा और शतभिषा चर या चलसंज्ञक; विशाखा और कृतिका मिश्र-संज्ञक; हस्त, अश्विनी, पुष्य और अभिजित् क्षिप्र या लघुसंज्ञक, मृगशिरा, रेवती, चित्रा और अनुराधा मृदु या मैत्रसंज्ञक एवं मूल, ज्येष्ठा, आर्द्रा और आश्लेषा तीक्ष्ण या दारुणसंज्ञक हैं। कार्य की सिद्धि में नक्षत्रो की संज्ञाओ का फल प्राप्त होता है।

अधोमुखसंज्ञक—मूल, आश्लेषा, विशाखा, कृत्तिका, पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढा, पूर्वाभाद्रपद, भरणी और मघा अधोमुखसंज्ञक हैं। इन में कुआँ या नीव खोदना शुभ माना जाता है।

ऊर्ध्वमुखसंज्ञक—आर्द्रा, पुष्य, श्रवण, धनिष्ठा और शतभिषा ऊर्ध्व-मुखसंज्ञक है।

तिर्यङ्मुखसंज्ञक—अनुराधा, हस्त, स्वाति, पुनर्वसु, ज्येष्ठा और अश्विनी तिर्यङ्मुख संज्ञक हैं।

दग्धसंज्ञक नक्षत्र—रविवार को भरणी, सोमवार को चित्रा, मंगलवार को उत्तराषाढा, बुधवार को धनिष्ठा, बृहस्पतिवार को उत्तराफाल्गुनी, शुक्रवार को ज्येष्ठा एवं शनिवार को रेवती दग्धसज्ञक हैं। इन नक्षत्रों में शुभ कार्य करना वर्जित है।

मासशून्य नक्षत्र—चैत्र में रोहिणी और अश्विनी; वैशाख में चित्रा और स्वाति; ज्येष्ठ में उत्तराषाढा और पुष्य, आषाढ में पूर्वाफाल्गुनी और धनिष्ठा, श्रावण में उत्तराषाढा और श्रवण, भाद्रपद में शतभिषा और रेवती आश्विन में पूर्वाभाद्रपद, कार्त्तिक में कृत्तिका और मघा; मार्गशीर्ष में चित्रा और विशाखा; पौष में आर्द्रा, अश्विनी और हस्त, माघ में श्रवण और मूल एवं फाल्गुन में भरणी और ज्येष्ठा शून्य नक्षत्र हैं।

योग—सूर्य और चन्द्रमा के स्पष्ट स्थानों को जोड़ कर तथा कलाएँ बना कर ८०० का भाग देने पर गत योगों की संख्या निकल आती है। शेष से यह अवगत किया जाता है कि वर्त्तमान योग की कितनी कलाएँ बीत गयी हैं। शेष को ८०० में-से घटाने पर वर्तमान योग की गम्य कलाएँ आती हैं। इन गत या गम्य कलाओं को ६० से गुणा कर सूर्य और चन्द्रमा की स्पष्ट दैनिक गति के योग से भाग देने पर वर्तमान योग की गत और गम्य घटिकाएँ आती हैं। अभिप्राय यह है कि जब अश्विनी नक्षत्र के आरम्भ से सूर्य और चन्द्रमा दोनों मिल कर ८०० कलाएँ आगे चल चुकते हैं तब एक योग बीतता है, जब १६०० कलाएँ आगे चलते है तब दो; इसी प्रकार जब दोनों १२ राशियाँ—२१६०० कलाएँ अश्विनी से आगे चल चुकते हैं तब १७ योग बीतते हैं।

२७ योगों के नाम ये [1]हैं—(१) विष्कम्भ (२) प्रीति (३) आयुष्मान्

---

१. विष्कम्भ प्रीतिरायुष्मान् सौभाग्य शोभनस्तथा।
अतिगण्ड सुकर्मा च धृति शूलस्तथैव च॥

(४) सौभाग्य (५) शोभन (६) अतिगण्ड (७) सुकर्मा (८) धृति (९) शूल (१०) गण्ड (११) वृद्धि (१२) ध्रुव (१३) व्याघात (१४) हर्षण (१५) वज्र (१६) सिद्धि (१७) व्यतीपात (१८) वरीयान् (१९) परिघ (२०) शिव (२१) सिद्ध (२२) साध्य (२३) शुभ (२४) शुक्ल (२५) ब्रह्म (२६) ऐन्द्र (२७) वैधृति।

योगों के स्वामी—विष्कम्भ का स्वामी यम, प्रीतिका विष्णु, आयुष्मान् का चन्द्रमा, सौभाग्य का ब्रह्मा, शोभन का वृहस्पति, अतिगण्ड का चन्द्रमा, सुकर्मा का इन्द्र, धृति का जल, शूल का सर्प, गण्ड का अग्नि, वृद्धि का सूर्य, ध्रुव का भूमि, व्याघात का वायु, हर्षण का भग, वज्र का वरुण, सिद्धि का गणेश, व्यतीपात का रुद्र, वरीयान् का कुबेर, परिघ का विश्वकर्मा, शिव का मित्र, सिद्ध का कार्तिकेय, साध्य की सावित्री, शुभ

गण्डो वृद्धिर्ध्रुवश्चैव व्याघातो हर्षणस्तथा।
वज्रसिद्धिर्व्यतीपातो वरीयान् परिघ शिव ॥
साध्य. सिद्ध शुभ शुक्लो ब्रह्मैन्द्रो वैधृतिस्तथा॥

योगों का त्याज्य काल—

परिघस्य त्यजेदर्द्धं शुभकर्म तत परम्।
त्यजादौ पञ्च विष्कम्भे सप्त शूले च नाडिका ॥
गण्डव्याघातयो षट्क नव हर्षणवज्रयो।
वैधृतिं च व्यतीपात समस्त परिवर्जयेत्॥
विष्कम्भे घटिकास्तिस्र शूले पञ्च तथैव च।
गण्डाऽतिगण्डयो सप्त नव व्याघातवज्रयो ॥

परिघ योग का आधा भाग त्याज्य है, उत्तरार्ध शुभ है। विष्कम्भयोग की प्रथम पाँच घटिकाएँ, शूलयोग की प्रथम सात घटिकाएँ, गण्ड और व्याघात योग की प्रथम छह घटिकाएँ, हर्षण और वज्र योग की नौ घटिकाएँ एव वैधृति और व्यतिपात यो समस्त परित्याज्य हैं। मतान्तर से विष्कम्भ के तीन, शूल के पाँच दण्ड, गण्ड और अतिगण्ड के सात दण्ड एवं व्याघात और वज्रयोग के नौ दण्ड शुभकार्य करने में त्याज्य हैं।

कृत्यचिन्तामणि के अनुसार शुभ कार्यों में साध्य योग का एक दण्ड, व्याघात योग के दो दण्ड, शूलयोग के सात दण्ड, वज्रयोग के छह दण्ड एवं गण्ड और अतिगण्ड के नौ दण्ड त्याज्य हैं।

की लक्ष्मी, शुक्ल की पार्वती, ब्रह्म का अश्विनीकुमार, ऐन्द्र का पितर एवं वैधृति की दिति हैं।

करण[1]—तिथि के आधे भाग को करण कहते हैं, अर्थात् एक तिथि में दो करण होते हैं। ११ करणों के नाम निम्न हैं—(१) बव (२) बालव (३) कौलव (४) तैतिल (५) गर (६) वणिज (७) विष्टि (८) शकुनि (९) चतुष्पद (१०) नाग (११) किंस्तुघ्न। इन करणों में पहले के ७ करण चरसंज्ञक और अन्तिम ४ करण स्थिरसंज्ञक हैं।

---

१ ववबालवकौलवतैतिलगरवणिजविष्टय सप्त।
शकुनिचतुष्पदनागकिंस्तुघ्नानि ध्रुवाणि करणानि॥

करणों के स्वामी—

बवबालवकौलवतैतिलगरवणिजविष्टिसञ्ज्ञानाम्।
पतय' स्युरिन्द्रकमलजमित्रार्यमभूश्रिय सयमा॥

बव, बालव, कौलव, तैतिल, गर, वणिज और विष्टि इन सात करणों के क्रमश इन्द्र, ब्रह्मा, मित्र, अर्यमा, पृथ्वी, लक्ष्मी और यम स्वामी हैं।

कृष्णचतुर्दश्यन्तार्द्धादिध्रुवाणि शकुनिचतुष्पदनागा'।
किंस्तुघ्नमथ च तेषा कलिवृषफणिमारुत पतय॥

तिथ्यर्द्ध भोग क्रम से कृष्णा चतुर्दशी के शेषार्द्ध से आरम्भ हो कर शुक्लप्रतिपदा के पूर्वार्द्ध पर्यन्त शकुनि, चतुष्पद, नाग और किंस्तुघ्न ये चार करण होते हैं। इन्हें ध्रुव कहते हैं। इनके कलि, वृष, फणी और मारुत स्वामी है।

तृतीयादशमीशेषे तत्पञ्चम्योस्तु पूर्वत।
कृष्णे विष्टि सिते तद्वत्तासा परतिथिष्वपि॥

कृष्णपक्ष में विष्टि-भद्रा तृतोया और दशमीतिथि के उत्तरार्द्ध में होता है। कृष्ण पक्ष की पञ्चमी, सप्तमी और चतुर्दशी तिथि के पूर्वार्द्ध में विष्टि (भद्रा) करण होता है। शुक्ल पक्ष में चतुर्थी और एकादशी के परार्द्ध में तथा अष्टमी और पौर्णमासी के पूर्वार्द्ध में विष्टि (भद्रा) करण होता है। भद्रा का समय समस्त शुभ कार्यों में त्याज्य है।

मेषोक्षकौर्पमिथुने घटसिंहमीनकर्केषु चापमृगतौलिसुताम्रु सूर्ये।
स्वर्मर्त्यनागनगरी क्रमश प्रयाति विष्टि फलान्यपि ददाति हि तत्र देशे॥

सौर वैशाख, ज्येष्ठ, मार्गशीर्ष और आषाढ में भद्रा का निवास स्वर्गलोक में, फाल्गुन, भाद्रपद, चैत्र और श्रावण में मृत्युलोक में एव पौष, माघ, कार्तिक और आश्विन मास में भद्रा का निवास नागलोक में होता है।

करणों के स्वामी—बव का इन्द्र, बालव का ब्रह्मा, कौलव का सूर्य, तैतिल का सूर्य, गर का पृथ्वी, वणिज का लक्ष्मी, विष्टि का यम, शकुनि का कलियुग, चतुष्पाद का रुद्र, नाग का सर्प एवं किंस्तुघ्न का वायु है।

विष्टि करण का नाम भद्रा है, प्रत्येक पंचाग में भद्रा के आरम्भ और अन्त का समय दिया रहता है। भद्रा में प्रत्येक शुभकर्म करना वर्जित है।

वार—जिस दिन को प्रथम होरा का जो ग्रह स्वामी होता है, उस दिन उसी ग्रह के नाम का वार रहता है। अभिप्राय यह है कि ज्योतिष-शास्त्र में शनि, बृहस्पति, मंगल, रवि, शुक्र, बुध और चन्द्रमा ये ग्रह एक दूसरे से नीचे-नीचे माने गये है। अर्थात् सब से ऊपर शनि, उस से नीचे बृहस्पति, उस से नीचे मगल, मगल के नीचे रवि इत्यादि क्रम से ग्रहो की कक्षाएँ है। एक दिन में २४ होराएँ होती हैं—एक-एक घण्टे की एक-एक होरा होती है। दूसरे शब्दो में यह कहा जा सकता है कि घण्टे का दूसरा नाम होरा है। प्रत्येक होरा का स्वामी अध.कक्षाक्रम से एक-एक ग्रह होता है। सृष्टि-आरम्भ में सब से पहले सूर्य दिखलाई पडता है, इस लिए १ली होरा का स्वामी माना जाता है। अतएव १ले वार का नाम आदित्य वार या रविवार है। इस के अनन्तर उस दिन की २री होरा का स्वामी उस के पास वाला शुक्र, ३री का बुध, ४थी का चन्द्रमा, ५वी का शनि, ६ठी का बृहस्पति, ७वी का मंगल, ८वी का रवि, ९वी का शुक्र, १०वी का बुध, ११वी का चन्द्रमा, १२वी का शनि, १३वी का बृहस्पति, १४वी का मंगल, १५वी का रवि, १६वी का शुक्र, १७वी का बुध, १८वी का चन्द्रमा, १९वी का शनि, २०वी का

स्वर्गे भद्रा शुभ कुर्यात्पाताले च धनागमम्।
मर्त्यलोके यदा भद्रा सर्वकार्यविनाशिनी॥
स्वर्ग में भद्रा के निवास करने से शुभफल की प्राप्ति; पाताल लोक में निवास करने से धन-संचय और मृत्युलोक में निवास करने से समस्त कार्यों का विनाश होता है।

बृहस्पति, २१वी का मंगल, २२वी का रवि, २३वी का शुक्र और २४वी का बुध स्वामी होता है। पश्चात् २रे दिन की १ली होरा का स्वामी चन्द्रमा पडता है, अत. दूसरा वार सोमवार या चन्द्रवार माना जाता है। इसी प्रकार ३रे दिन की १ली होरा का स्वामी मंगल, ४थे दिन की १ली होरा का स्वामी बुध, ५वें दिन की १ली होरा का स्वामी बृहस्पति, छठे दिन की १ली होरा का स्वामी शुक्र एवं ७वें दिन की १ली होरा का स्वामी शनि होता है। इसी लिए क्रमश मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र और शनि ये वार माने जाते है।

वार-संज्ञाएँ—बृहस्पति, चन्द्र, बुध और शुक्र ये वार सौम्यसंज्ञक एवं मंगल, रवि और शनि ये वार क्रूर-सज्ञक माने गये है। सौम्यसंज्ञक वारो में शुभ कार्य करना अच्छा माना जाता है।

रविवार स्थिर, सोमवार चर, मंगलवार उग्र, बुधवार सम, गुरुवार लघु, शुक्रवार मृदु एवं शनिवार तीक्ष्णसंज्ञक है। शल्यक्रिया के लिए शनिवार उत्तम माना गया है। विद्यारम्भ के लिए गुरुवार और वाणिज्य आरम्भ करने के लिए बुधवार प्रशस्त माना गया है।

नक्षत्रो के चरणाक्षर

चू चे चो ला = अश्विनी, ली लू ले लो = भरणी, आ ई उ ए = कृत्तिका, ओ वा वी वू = रोहिणी, वे वो का की = मृगशिर, कू घ ङ छ = आर्द्रा, के को हा ही = पुनर्वसु, हू हे हो डा = पुष्य, डी डू डे डो = आश्लेषा, मा मी मू मे = मघा, मो टा टी टू = पूर्वाफाल्गुनी, टे टो पा पी = उत्तराफाल्गुनी, पू ष ण ठ = हस्त, पे पो रा री = चित्रा, रू रे रो ता = स्वाति, ती तू ते तो = विशाखा, ना नी नू ने = अनुराधा, नो या यी यू = ज्येष्ठा, ये यो भा भी = मूल, भू धा फा ढा = पूर्वाषाढा, भे भो जा जी = उत्तराषाढा, खी खू खे खो = श्रवण, गा गी गू गे = धनिष्ठा, गो सा सी सू =

शतभिषा, से सो दा दी = पूर्वाभाद्रपद, दू थ झ ञ = उत्तराभाद्रपद, दे दो चा ची = रेवती।

अक्षरानुसार राशिज्ञान

१	मेष	= चू चे चो ला ली लू ले लो आ	आ ला
२	वृष	= ई उ ए ओ वा वी वू वे वो	उ वा
३	मिथुन	= का की कू घ ङ छ के को हा	का छा
४	कर्क	= ही हू हे हो डा डी डू डे डो	डा हा
५	सिंह	= मा मी मू मे मो टा टी टू टे	मा टा
६	कन्या	= टो पा पी पू ष ण ठ पे पो	पा ठा
७	तुला	= रा री रू रे रो ता ती तू ते	रा ता
८	वृश्चिक	= तो ना नी नू ने नो या यी यू	नो या
९	धनु	= ये यो भा भी भू धा फा ढा भे	भू धा फा ढा
१०	मकर	= भो जा जी खी खू खे खो गा गी	खा जा
११	कुम्भ	= गू गे गो सा सी सू से सो दा	गो सा
१२	मीन	= दी दू थ झ ञ दे दो चा ची	दा चा

{ संक्षिप्त करने को संक्षिप्त अक्षर लिखे गए हैं }

राशियों का परिचय

आकाश में स्थित भचक्र के ३६० अंश अथवा १०८ भाग होते हैं। समस्त भचक्र १२ राशियों में विभक्त है, अतः ३० अंश अथवा ९ भाग की एक राशि होती है।

मेष—पुरुष जाति, चरसंज्ञक, अग्नितत्त्व, पूर्व दिशा की मालिक, मस्तक का बोध कराने वाली, पृष्ठोदय, उग्र प्रकृति, लाल-पीले वर्ण वाली, कान्तिहीन, क्षत्रियवर्ण, सभी समान अंगवाली और अल्प सन्तति है। यह पित्तप्रकृतिकारक है, इस का प्राकृतिक स्वभाव साहसी, अभिमानी और मित्रों पर कृपा रखनेवाला है।

वृष—स्त्री राशि, स्थिरसंज्ञक, भूमितत्त्व, शीतल स्वभाव, कान्ति-रहित, दक्षिण दिशा की स्वामिनी, वातप्रकृति, रात्रिबली, चार चरण-वाली, श्वेत वर्ण, महाशब्दकारी, विषमोदयी, मध्यम सन्तति, शुभकारक, वैश्यवर्ण और शिथिल शरीर है। यह अर्द्धजल राशि कहलाती है। इस का प्राकृतिक स्वभाव स्वार्थी, समझ-बूझ कर काम करने वाली और सासारिक कार्यों में दक्ष होती है। इस से मुख और कपोलो का विचार किया जाता है।

मिथुन—पश्चिम दिशा की स्वामिनी. वायुतत्त्व, तोते के समान हरित-वर्णवाली, पुरुष राशि, द्विस्वभाव, विषमोदयी, उष्ण, शूद्रवर्ण, महाशब्द-कारी, चिकनी, दिनवली, मध्यम सन्तति और शिथिल शरीर है। इस का प्राकृतिक स्वभाव विद्याध्ययनी और शिल्पी है। इस से शरीर के कन्धो और बाहुओ का विचार किया जाता है।

कर्क—चर, स्त्री जाति, सौम्य और कफ प्रकृति, जलचारी, समोदयी, रात्रिवली, उत्तर दिशा की स्वामिनी, रक्त-धवल मिश्रितवर्ण, बहुचरण एवं सन्तानवाली है। इस का प्राकृतिक स्वभाव, सासारिक उन्नति में प्रयत्न-शीलता, लज्जा, कार्यस्थैर्य और समयानुयायिता का सूचक है। इस से वक्ष.स्थल और गुर्दे का विचार किया जाता है।

सिंह—पुरुष जाति, स्थिरसंज्ञक, अग्नितत्त्व, दिनवली, पित्त प्रकृति, पीत वर्ण, उष्ण स्वभाव, पूर्व दिशा की स्वामिनी, पुष्ट शरीर, क्षत्रिय वर्ण, अल्पसन्तति, भ्रमणप्रिय और निर्जल राशि है। इस का प्राकृतिक-स्वरूप मेषराशि-जैसा है, पर तो भी इस में स्वातन्त्र्य प्रेम और उदारता विशेष रूप से वर्तमान है। इस से हृदय का विचार किया जाता है।

कन्या—पिंगल वर्ण, स्त्री जाति, द्विस्वभाव, दक्षिण दिशा की स्वामिनी, रात्रिबली, वायु और शीत प्रकृति, पृथ्वीतत्त्व और अल्प सन्तान-वाली है। इस का प्राकृतिक स्वभाव मिथुन-जैसा है, पर विशेषता इतनी है कि अपनी उन्नति और मान पर पूर्ण ध्यान रखने की यह कोशिश करती है। इस से पेट का विचार किया जाता है।

तुला—पुरुष जाति, चरसंज्ञक, वायुतत्त्व, पश्चिम दिशा की स्वामिनी, अल्पसन्तानवाली, श्यामवर्ण, शीर्षोदयी, शूद्रसंज्ञक, दिनवली, क्रूर स्वभाव और पाद जल राशि है। इस का प्राकृतिक स्वभाव विचारशील, ज्ञानप्रिय, कार्य-सम्पादक और राजनीतिज्ञ है। इस से नाभि के नीचे के अंगो का विचार किया जाता है।

वृश्चिक—स्थिरसंज्ञक, शुभ्रवर्ण, स्त्री जाति, जलतत्त्व, उत्तर दिशा की स्वामिनी, रात्रिवली, कफ प्रकृति, वहु सन्तति, ब्राह्मण वर्ण और अर्द्ध जल राशि है। इस का प्राकृतिक स्वभाव दम्भी, हठी, दृढप्रतिज्ञ, स्पष्टवादी और निर्मल है। इस से जननेन्द्रिय का विचार किया जाता है।

धनु—पुरुष जाति, कांचन वर्ण, द्विस्वभाव, क्रूरसंज्ञक, पित्त प्रकृति, दिनवली, पूर्व दिशा की स्वामिनी, दृढ शरीर, अग्नितत्त्व, क्षत्रिय वर्ण, अल्प सन्तति एव अर्द्ध जल राशि है। इस का प्राकृतिक स्वभाव अधिकार-प्रिय, करुणामय और मर्यादा का इच्छुक है। इस से पैरों की सन्धि तथा जंघाओ का विचार किया जाता है।

मकर—चरसंज्ञक, स्त्री जाति, पृथ्वीतत्त्व, वात प्रकृति, पिंगल वर्ण, रात्रिवली, वैश्यवर्ण, शिथिल शरीर और दक्षिण दिशा की स्वामिनी है। इस का प्राकृतिक स्वभाव उच्च दशाभिलाषी है। इस से घुटनो का विचार किया जाता है।

कुम्भ—पुरुष जाति, स्थिरसंज्ञक, वायुतत्त्व, विचित्र वर्ण, शीर्षोदय, अर्द्धजल, त्रिदोष प्रकृति, दिनवली, पश्चिम दिशा की स्वामिनी, उष्ण स्वभाव, शूद्र वर्ण, क्रूर एवं मध्यम सन्तानवाली है। इस का प्राकृतिक स्वभाव विचारशील, शान्तचित्त, धर्मवीर और नवीन वातो का आविष्कारक है। इस से पेट के भीतरी भागो का विचार किया जाता है।

मीन—द्विस्वभाव, स्त्री जाति, कफ प्रकृति, जलतत्त्व, रात्रिवली, विप्रवर्ण, उत्तर दिशा की स्वामिनी और पिंगल रंग है। इस का प्राकृतिक

स्वभाव उत्तम, दयालु और दानशील है। यह सम्पूर्ण जलराशि है। इस से पैरो का विचार किया जाता है।

राशि स्वरूप का प्रयोजन

उपर्युक्त बारह राशियों का जैसा स्वरूप बतलाया है, इन राशियो में उत्पन्न पुरुष और स्त्रियो का स्वभाव भी प्राय. वैसा ही होता है। जन्म-कुण्डली में राशि और ग्रहो के स्वरूप के समन्वय पर से ही फलाफल का विचार किया जाता है। दो व्यक्तियो की या वर-कन्या की शत्रुता और मित्रता अथवा पारस्परिक स्वभाव मेल के लिए भी राशि स्वरूप उपयोगी है।

शत्रुता और मित्रता की विधि

पृथ्वीतत्त्व और जलतत्त्व वाली राशियो के व्यक्तियों में तथा अग्नितत्त्व और वायुतत्त्ववाली राशियो के व्यक्तियो में परस्पर मित्रता रहती है। पृथ्वी और अग्नितत्त्व; जल और अग्नितत्त्व एवं जल और वायुतत्त्व वाली राशियो के व्यक्तियों में परस्पर शत्रुता रहती है।

राशियों के स्वामी

मेष और वृश्चिक का मंगल, वृष और तुला का शुक्र, कन्या और मिथुन का बुध, कर्क का चन्द्रमा, सिंह का सूर्य, मीन और धनु का वृहस्पति, मकर और कुम्भ का शनि, कन्या का राहु एवं मिथुन का केतु है।

शून्यसंज्ञक राशियाँ—चैत्र में कुम्भ, वैशाख में मीन, ज्येष्ठ में वृष, आषाढ में मिथुन, श्रावण में मेष, भाद्रपद में कन्या, आश्विन में वृश्चिक, कार्त्तिक में तुला, मार्गशोर्ष में धनु, पौष में कर्क, माघ में मकर एवं फाल्गुन में सिंह शून्यसज्ञक है।

राशियो का अंग-विभाग

द्वादश राशियाँ काल-पुरुष का अंग मानो गयो है। मेष को सिर में, वृष को मुख में, मिथुन को स्तन मध्य में, कर्क को हृदय में, सिंह को उदर में, कन्या को कमर में, तुला को पेडू में, वृश्चिक को लिंग में, धनु को जंघा में, कमर को दोनो घुटनों में, कुम्भ को दोनो जांघो में एवं मीन को दोनो पैरो में माना है।

चर सारणी—मिनिट, सेकेण्ड रूप फल

क्रान्त्यंश

अक्षांश	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४
१	० ४	० ८	० १३	० १७	० २१	० २५	० ३०	० ३४	० ३८	० ४२	० ४०	० ५१	० ५५	१ ०	१ ४	१ ९	१ १३	१ १८	१ २२	१ २७	१ ३२	१ ३७	१ ४२	१ ४७
२	० ८	० १७	० २५	० ३४	० ४२	० ५०	० ५९	१ ८	१ १६	१ २४	१ ३३	१ ४२	१ ५१	२ ०	२ ८	२ १७	२ २६	२ ३६	२ ४५	२ ५५	३ ४	३ १४	३ २४	३ ३४
३	० १३	० २५	० ३८	० ५०	१ ३	१ १६	१ २८	१ ४१	१ ५४	२ ७	२ २०	२ ३३	२ ४६	३ ०	३ १३	३ २६	३ ४०	३ ५४	४ ८	४ २२	४ ३७	४ ५१	५ ६	५ २०
४	० १७	० ३४	० ५०	१ ७	१ २४	१ ४१	१ ५८	२ १५	२ ३२	२ ५०	३ ७	३ २४	३ ४२	४ ०	४ १८	४ ३६	४ ५४	५ १२	५ ३१	५ ५०	६ ९	६ २८	६ ४८	७ ८
५	० २१	० ४२	१ ३	१ २४	१ ४५	२ ६	२ २८	२ ४९	३ १०	३ ३२	३ ५४	४ १६	४ ३८	५ ०	५ २२	५ ४४	६ ७	६ ३०	६ ५४	७ १८	७ ४२	८ ६	८ ३६	८ ५६
६	० २५	० ५०	१ १६	१ ४१	२ ६	२ ३२	२ ५८	३ २३	३ ४९	४ १४	४ ४१	५ ७	५ ३४	६ ०	६ २७	६ ५४	७ २२	७ ४९	८ १८	८ ४६	९ १५	९ ४४	१० १४	१० ४४
७	० २९	० ५८	० २८	१ ५८	२ २८	२ ५८	३ २७	३ ५७	४ २७	४ ५८	५ २८	५ ५९	६ ३०	७ १	७ ३२	८ ४	८ ३७	९ ९	९ ४२	१० १५	१० ४८	११ २१	११ ५३	१२ २६

८	० ३४	१ ८	१ ४१	२ १५	२ ४९	३ २३	३ ५७	४ ३२	५ ६	५ ४१	६ १६	६ ५१	७ २६	८ २	८ ३८	९ १४	९ ५१	१० २८	११ ६	११ ४४	१२ २२	१३ १	१३ ४१	१४ २१
९	० ३८	१ १६	१ ५४	२ ३२	३ १०	३ ४९	४ २७	५ ६	५ ४५	६ २४	७ ३	७ ४३	८ २३	९ ३	९ ४४	१० २४	११ ६	११ ४८	१२ ३०	१३ १३	१३ १६	१४ ४०	१५ २५	१६ १०
१०	० ४२	१ २४	२ ७	२ ५०	३ ३१	४ १४	४ ५८	५ ४१	६ २४	७ ८	८ १	८ ३६	९ २०	१० ५	१० ५०	११ ३६	१२ २२	१३ ८	१३ ५५	१४ ४३	१५ ३२	१६ २०	१७ १०	१८ ०
११	० ४६	१ ३३	२ २०	३ ७	३ ५४	४ ४१	५ २८	६ १६	७ ३	७ ५१	८ ४०	९ २८	१० १७	११ ७	११ ५६	१२ ४७	१३ ३८	१४ २९	१५ २१	१६ १४	१७ ७	१८ १	१८ ५६	१९ ५२
१२	० ५१	१ ४२	२ ३३	३ २४	४ १६	५ ७	५ ५९	६ ५१	७ ४३	८ ३६	९ २८	१० २१	११ १५	१२ ९	१३ ४	१३ ५८	१४ ५४	१५ ५०	१६ ४४	१७ ४५	१८ ४३	१९ ४२	२० ४२	२१ ४३
१३	० ५५	१ ५१	२ ४६	३ ४२	४ ३८	५ ३४	६ ३०	७ २७	८ २३	९ २०	१० १७	११ १५	१२ १३	१३ १२	१४ ११	१५ ११	१६ १२	१७ १४	१८ १७	१९ २०	२० २४	२१ ३०	२२ ३७	२३ ४६
१४	१ ०	२ ०	३ ०	४ ०	५ ०	६ ०	७ १	८ २	९ ३	१० ५	११ ७	१२ ९	१३ १२	१४ १५	१५ १९	१६ २३	१७ २९	१८ ३५	१९ ४१	२० ४८	२१ ५७	२३ ८	२४ १८	२५ ३०
१५	१ ४	२ ८	३ १३	४ १८	५ २२	६ २७	७ ३२	८ ३८	९ ४४	१० ५०	११ ५६	१३ ४	१४ ११	१५ १९	१६ २८	१७ ३८	१८ ४७	१९ ५८	२१ १०	२२ २२	२३ ३६	२४ ५०	२६ ७	२७ २४
१६	१ ९	२ १८	३ २६	४ ३६	५ ४५	६ ५४	८ ४	९ १४	१० २५	११ ३६	१२ ४७	१३ ५९	१५ ११	१६ २४	१७ ३८	१८ ५२	२० ७	२१ २३	२२ ४०	२३ ५८	२५ १६	२६ ३७	२७ ५८	२९ २०
१७	१ १३	[illegible] २७	३ ४०	४ ५४	६ ८	७ २२	८ ३६	९ ५१	११ ६	१२ २२	१३ ३८	१४ ५४	१६ १२	१७ २९	१८ ४८	२० ७	२१ २७	२२ ४८	२४ ११	२५ ३४	२६ ५७	२८ २३	२९ ५०	३१ १९

	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४
१८	१ १८	२ ३६	३ ५४	५ १२	६ ३१	७ ५०	९ ९	१० २८	११ ४८	१३ ८	१४ ३०	१५ ५०	१७ १२	१८ ३५	१९ ५९	२१ २३	२२ ४८	२४ १४	२५ ४२	२७ ८	२८ ३७	३० १०	३१ ४२	३३ २०
१९	१ २३	२ ४५	४ ८	५ ३१	६ ५४	८ १८	९ ४२	११ ६	१२ ३०	१३ ५५	१५ २१	१६ ४६	१८ १४	१९ ४७	२१ १०	२२ ३९	२४ ९	२५ ४१	२७ १४	२८ ४८	३० २४	३१ ५९	३३ ३७	३५ १६
२०	१ २७	२ ५२	४ २२	५ ५०	७ १८	८ ४६	१० १५	११ ४४	१३ १३	१४ ४३	१६ १४	१७ ४५	१९ १८	२० ५०	२२ २३	२३ ५५	२५ ३०	२७ ८	२८ ४७	३० २७	३२ ८	३३ ५०	३५ ३३	३७ १८
२१	१ २३	३ ४	४ ३७	६ ९	७ ४२	९ १५	१० ८	१२ २२	१३ ५६	१५ ३२	१७ ७	१८ ४३	२० २०	२१ ५८	२३ ३६	२५ १६	२६ ५६	२८ ३७	३० १९	३२ २	३३ ५०	३५ ४१	३७ ३०	३९ २२
२२	१ ३७	३ १४	४ ५१	६ २८	८ ६	९ ४४	११ २३	१३ १	१४ ४०	१६ २०	१८ १	१९ ४२	२१ २४	२३ ८	२४ ५२	२६ ३७	२८ २३	३० १०	३१ ५८	३३ २०	३५ ४१	३७ ३५	३९ ३०	४१ २७
२३	१ ४२	३ २४	५ ६	६ ४८	८ ३१	१० १४	११ ५७	१३ ४१	१५ २५	१७ १०	१८ ५६	२० ४२	२२ ३०	२४ १८	२६ ७	२७ ५८	२९ ४९	३१ ४२	३३ ३७	३५ ३३	३७ ३०	३९ २७	४१ ३५	४३ ३५
२४	१ ४७	३ ३४	५ २१	७ ८	८ ५६	१० ४४	१२ ३२	१४ २१	१६ १०	१८ ०	१९ ५२	२१ ४३	२३ ३६	२५ ३०	२७ २४	२९ २०	३१ १९	३३ २०	३५ २१	३७ २३	३९ २५	४१ २९	४३ ३४	४५ ४०
२५	१ ५२	३ ४४	५ ३६	७ २८	९ २१	११ १४	१३ ८	१५ २	१६ ५६	१८ ५२	२० १४	२२ ४५	२४ ४३	२६ ४२	२८ ४३	३० ४४	३२ ४७	३४ ४१	३६ ५८	३९ ५	४१ १५	४३ २६	४५ ४०	४७ ५३
२६	१ ५७	३ ५४	५ ५२	७ ४९	८ ३७	११ ४५	१३ ४३	१५ ४३	१७ ४७	१९ ४४	२१ ४६	२३ ४८	२५ ५२	२७ ५६	३० २	३२ ९	३४ १८	३६ २८	३८ ४०	४० ५४	४३ १०	४५ २८	४७ ४८	५० १०

२७	२ २	४ ५	६ ७	८ १०	१० १३	१२ १७	१४ २१	१६ २६	१८ ३१	२० ३६	२२ ४४	२४ ५२	२७ १	२९ १२	३१ २३	३३ ३६	३५ ५०	३८ ७	४० २५	४२ ४५	४५ ७	४७ ३२	४९ ५८	५२ २७
२८	२ ७	४ १५	६ २३	८ ३१	१० ४०	१२ ४९	१४ ५८	१७ ८	१९ १९	२१ ३१	२३ ४४	२५ ५७	२८ १२	३० २८	३२ ४६	३५ ४	३७ २५	३९ ४९	४२ १२	४४ ३६	४७ २	४९ ३०	५२ ४	५४ ३८
२९	२ १३	४ २६	६ ४०	८ ५३	११ ७	१३ २२	१५ ३६	१७ ५२	२० ९	२२ २६	२४ ४४	२७ ४	२९ २[illegible]	३१ ४६	३४ १०	३६ ३५	३९ १	४१ ३०	४४ ०	४६ ३२	४९ ८	५१ ४६	५४ २६	५७ ९
३०	२ १८	४ ३७	६ ५६	९ १५	११ ३५	१३ ५५	१६ १६	१८ ३	२० ५९	२३ २२	२५ ४६	२८ १२	३० ३८	३३ ५	३५ ३४	३८ ७	४० ४४	४३ १५	४५ ४२	४८ ३१	५१ १३	५३ ५८	५६ ४६	५९ ३५
३१	२ २४	४ ४८	७ १३	९ ३८	१२ ३	१४ २९	१६ ५६	१९ २	२१ ५०	२४ २०	२६ ५०	२९ २१	३१ ५४	३४ २८	३७ ४	३९ ४१	४२ २१	४५ २	४७ ४६	५० ३२	५३ २०	५६ १२	५९ ६	६२ २
३२	२ ३०	५ ०	७ ३०	१० १	१२ ३२	१५ ४	१७ ३६	२० ९	२२ ४३	२५ १८	२७ ५४	३० ३२	३३ १८	३५ ५२	२८ ३३	४१ १७	४४ ३	४६ ५२	४९ ४२	५३ ३६	५५ ३१	५८ ३०	६१ ३३	६४ ३७
३३	२ ३६	५ १२	७ ४८	१० २४	१३ १	१५ ३९	१८ १८	२० ५९	२३ ३८	२६ १८	२९ ०	३१ ४४	३४ ३०	३७ १६	४० ५	४२ ५६	४५ ४९	४८ ४४	५१ ४१	५४ ४१	५७ ४४	६० ४८	६३ ५४	६७ ४
३४	२ ४२	५ २४	८ ६	१० ४९	१३ ३२	१६ १२	१९ ०	२१ ४६	२४ ३४	२७ १९	३० ८	३२ ५८	३५ ५०	३८ ४४	४१ ३९	४४ ३६	४७ ३६	५० ३८	५३ ४३	५६ ५१	६० १	६३ १५	६६ ३३	६९ ५४
३५	२ ४८	५ ३६	८ २५	११ १४	१४ ३	१६ ५३	१९ ४४	२२ ३५	२५ १८	२८ २२	३१ १७	३४ १३	३७ १[illegible]	४० १३	४३ १५	४६ २०	४९ २७	५२ ३६	५५ ४७	५९ ०	६२ २२	६५ ४४	६९ १०	७२ ४०
३६	२ ५४	५ ४९	८ ४४	११ ३९	१४ ३४	१७ ३१	२० २८	२३ २६	२६ २६	२९ २७	३२ २८	३५ ३२	३८ ३८	४१ ४४	४४ ५४	४८ ६	५१ २०	५४ ३७	५७ ५७	६१ २०	६४ ४६	६८ १७	७१ ५१	७५ ३०

आवश्यक परिभाषाएँ

६० प्रतिपल	=	१ विपल	६० प्रतिविकला	=	१ विकल
६० विपल	=	१ पल	६० विकला	=	१ कला
६० पल	=	१ घटी या दण्ड	६० कला	=	१ अंश
२४ मिनिट	=	१ घटी	३० अंश	=	१ राशि
२½ पल	=	१ मिनिट	१२ राशि	=	१ भगण
२⅖ विपल	=	१ सेकेण्ड	८ यव	=	१ अंगुल
२½ घटी	=	१ घण्टा	२४ अंगुल	=	१ हाथ
६० घटी	=	एक अहोरात्र	४ हाथ	=	१ दण्ड या बाँस
			२००० बाँस	=	१ कोश

जातक

जातक अंग में प्रधान रूप से जन्मपत्री के निर्माण-द्वारा व्यक्ति की उत्पत्ति के समय के ग्रह-नक्षत्रों की स्थिति परसे जीवन का फलाफल निकाला गया है।

जन्मकुण्डली का गणित प्रधान रूप से इष्टकाल पर आश्रित है। इष्टकाल जितना सूक्ष्म और शुद्ध होगा, जन्मपत्री का फलादेश भी उतना ही प्रामाणिक निकलेगा। इष्टकाल—सूर्योदय से ले कर जन्म समय या अभीष्ट समय तक के काल को इष्टकाल कहते है।

जहाँ का इष्टकाल बनाना हो उस स्थान का सूर्योदय बना कर प्रचलित स्टैण्डर्ड टाइम को इष्ट स्थानीय (लोकल) सूर्य घड़ी का टाइम बना लें।

स्थानीय सूर्योदय निकालने की विधि—पंचांग में प्रति दिन की सूर्य-क्रान्ति लिखी रहती है। जिस दिन का सूर्योदय बनाना हो उस दिन की क्रान्ति और इष्ट स्थानीय अक्षांश का फल आने वाली चरसारणी में देख कर निकाल लेना चाहिए, और जो मिनिट, सेकेण्ड रूप फल आवे उसे उत्तरा क्रान्ति होने पर ६ घण्टे में जोड़ देने और दक्षिणा क्रान्ति में ६ घण्टे में से घटा देने पर सूर्यास्त का समय निकलता है। इसे १२ घण्टे में से घटाने पर सूर्योदय होता है; सूर्यास्तकाल को ५ से गुणा कर देने पर घट्यादि दिनमान होता है।

उदाहरण—वि० सं० २००१ वैशाख शुक्ला द्वितीया के दिन विश्व-पंचाग में सूर्य की उत्तरा क्रान्ति १२ अंश ५४ कला है। आरा में इस दिन का सूर्योदय निकालना है। आगे दी गयी अक्षाश-देशान्तर बोधक सारणी में आरा का अक्षाश २५°|३०′ दिया गया है। इन दोनो पर से चर सारणी के अनुसार मिनिट, सेकेण्ड रूप फल निकालना है।

सारिणी में २५ अंश अक्षाश का १३ अश के क्रान्ति वाले कोठे में २२ मिनिट ४५ सेकेण्ड फल दिया है, यहाँ अभीष्ट अक्षाश २५°|३०′ हैं अत. २५ और २६ अंश अक्षाश वाले १२ अंश के क्रान्ति के कोठो का अन्तर किया—

२३।४८—२६ अंश अक्षाश का फल
२२।४५—२५ अश अक्षाश का फल

१।३ इस मिनिटादि अन्तर के सेकेण्ड बनाये

१ × ६० = ६० + ३ = ६३ सेकेण्ड। यहाँ अनुपात लिया ६० कला का फल ६३ सेकेण्ड है तो ३० कला का कितना ?

$$\therefore \frac{६३ \times ३०}{६०} = \frac{६३}{२} = ३१\frac{१}{२}$$

२२।४५
३१½ से० इसे २५ अश अक्षाश के फल में जोडा तो—०।३१
२३।१६

यहाँ २३।१६ फल १२ अश क्रान्ति का आया है;
किन्तु १२।५४ का निकालने के लिए क्रिया की—

२४।४३—१३ अश क्रान्ति के कोठे का फल
२२।४५—१२ अंश क्रान्ति के कोठे का फल

१।५८ मिनिटादि फल एक अश का

१ × ६० = ६० + ५८ = ११८ सेकेण्ड

अनुपात किया कि ६० कला का फल ११८ सेकेण्ड है तो ५४ कला का कितना ?

$\therefore \frac{११८ \times ५४}{६०} = \frac{५३१}{५} = १०६\frac{१}{५}$ सेकेण्ड

१०६ से० = १ मिनिट ४६ सेकेण्ड, पहले वाले फल में जोड़ा तो

२३।४६
१।४६

२५।२; = २५ मिनिट २ सेकेण्ड फल की उत्तरा क्रान्ति होने के कारण ६ घण्टे में जोड़ा तो—६ । ० । ०

२५ । २

६ । २५ । २ सूर्यास्त का समय अर्थात्

६ बज कर २५ मिनिट २ सेकेण्ड पर आरा में सूर्यास्त होगा। इसे १२ घण्टे में से घटाया—१२ । ० । ०

६ । २५ । २

५ । ३४ । ५८ सूर्यास्तकाल ६ । २५ । २ सूर्यास्त × ५ = ३२ घटी ५ पल १० विपल दिनमान आरा नगर का हुआ।

(६०।०।०—३२।५।१०)—२७।५४।५० रात्रिमान आरा का।

स्टैंडर्ड टाइम को लोकल टाइम बनाने की विधि—स्टैण्डर्ड टाइम (Standard time) प्रायः समस्त भारत में एक ही होता है। क्योंकि ये प्रचलित घड़ियाँ एक ही साथ मिलायी जाती हैं, इन में हर जगह एक ही साथ १२ बजते हैं और एक ही साथ दो। लेकिन धूपघड़ी का समय प्रत्येक स्थान का भिन्न-भिन्न होता है। आरा में धूपघडी के अनुसार जिस समय १२ बजते हैं उस समय आगरे में ११ बज कर ३५ मिनिट ही समय होता है। इस अन्तर को दूर करने के लिए ज्योतिष में दो संस्कारो की व्यवस्था की गयी है। एक वेलान्तर और दूसरा देशान्तर।

जब स्थानीय धूपघडी में १२ बजते हैं तब मध्याह्न काल में सूर्य ठीक सिर के ऊपर नहीं रहेगा, कुछ पूर्व या पश्चिम की ओर रहेगा। वर्ष में केवल चार बार ही सूर्यघड़ी में १२ बजने पर सूर्य ठीक सिर के ऊपर

आवेगा, अवशेष दिनो में मध्यम मध्याह्न और स्पष्ट मध्याह्न का अन्तर जानने के लिए वेलान्तर संस्कार किया जाता है।

स्टैण्डर्ड टाइम से लोकल टाइम (स्थानीय समय) ज्ञात करने के लिए देशान्तर सस्कार करना पडता है। स्टैण्डर्ड टाइम भारतवर्ष में ८२°।३०′ रेखाश (तूलाश) का है। इस से अधिक (Longitude) में एक अंश अन्तर में ४ मिनिट के हिसाव से स्टैण्डर्ड टाइम में घन अथवा ऋण—स्टैण्डर्ड टाइम के रेखाश से इष्ट स्थान का रेखाश अधिक हो तो धन और कम हो तो ऋण कर देने से इष्ट स्थानीय समय आ जाता है। लेकिन यहाँ वेलान्तर सस्कार करना भी आवश्यक है।

नवम्वर मास में मध्यम मध्याह्न और स्पष्ट मध्याह्न का अन्तर १६ मिनिट के लगभग हो जाता है। यदि ज्योतिषी इष्टकाल में इन दोनो संस्कारो को न करे तो वड़ी भारी भूल रह जायेगी। आगे दी गयी वेला-न्तर सारणी में जहाँ धन लिखा हो वहाँ उन महीनो की उन तारीखो में जोडना और जहाँ ऋण हो, वहाँ घटाना चाहिए।

वि० स० २००१ वैशाख शुक्ला द्वितीया सोमवार को दिन के २ वज कर २५ मिनिट पर आरा में किसी वालक का जन्म हुआ है। इस स्टैण्डर्ड टाइम का आरा की धूपघडी के अनुसार समय निकालना है।

आरा का रेखाश (Longitude) आगे वाली अक्षाश-देशान्तर वोधक सारणी में ८४°|४०′ दिया है और स्टैण्डर्ड टाइम का रेखाश ८२°|३०′ है, दोनों का अन्तर किया—(८४°|४०′—८२°|३०′) = २°|१०′ अन्तर हुआ। इसे ४ मिनिट प्रति अंश के हिसाव से गुणा किया तो ८ मिनिट ४० सेकेण्ड हुआ।

स्टैण्डर्ड टाइम के रेखाश से आरा का रेखाश अधिक है, अतएव स्टैण्डर्ड टाइम में इस आगत फल को जोडना चाहिए। २|२५| ०

८|१०

२|३३|१० हुआ। वेलान्तर

संस्कार करने के लिए आगे दी गयी वेलान्तर सारणी में जन्मदिन—२४ अप्रैल का फल देखा तो २ मिनिट धन फल मिला, इस फल को भी इस संस्कृत समय में जोड दिया तो—२|३३|१०

०| २| ०

२|३५|१० अर्थात् २ बजकर ३५ मि० १० से०

बालक का आरा का जन्म-समय हुआ। इष्ट काल बनाने के लिए इसी समय को वास्तविक जन्म-समय मानेंगे।

अक्षांश और देशान्तर-बोधक सारणी

क्रम सं०	नाम नगर	प्रान्त	अक्षांश	रेखांश
१	अकलेश्वर	गुजरात	२१ ३८	७३ ३०
२	अक्कालकोट	बम्बई	१७ ३१	७६ १५
३	अकोला	बरार	२०.४२	७६ ५९
४	अगरतल्ला	त्रिपुरा	२३.५०	९१.१५
५	अछनेरा	यू० पी०	२७.१२	७२ ४५
६	अजन्ता	हैदराबाद	२०.३३	७५ ४८
७	अजमेर	अजमेर	२६.७२	७४.३९
८	अजयगढ	म० प्र०	२४.५३	८० १३
९	अटक	पंजाब	३३.५३	७२.१७
१०	अण्डमन	अण्डमन	१२ ०	९२.४०
११	अनन्तापुर	मैसूर	१४.५	७५ १७
१२	अनूपगढ	पजाब	२९ १०	७३ ५
१३	अमरावती	बरार	२०.५६	७७ ४७
१४	अम्बर	राजस्थान	२६.५९	७५ ५३
१५	अम्बाला	पंजाब	३० २१	७६.५०
१६	अम्बिकापुर	म० प्र०	२३.१०	८२ ५

१७ अमरोहा	यू० पी०	२८ ५४	७८ २५
१८ अमृतसर :	पंजाब	३१ ३७	७४.४८
१९ अयोध्या	यू० पी०	२६.४७	८२.१९
२० अरान्तक	मद्रास	१० १०	७९ २
२१ अरावली	राजस्थान	२५.०	७३.१०
२२ अलमोडा	यू० पी०	२९.३५	७९.४१
२३ अलवर	राजस्थान	२७ ३४	७६ ४०
२४ अलीगढ	यू० पी०	२७.५५	७८ २५
२५ अलीपुर	बगाल	२२ ३२	८४ २४
२६ अलीबाग	बम्बई	१८ ३९	७२.५५
२७ अलीराजपुर	म० प्र०	२२ ११	७४ २४
२८ अल्लूर	आन्ध्र	१६.४३	८१ ९
२९ अवध	यू० पी०	२६.४५	८२ ०
३० अवर	राजपूताना	२६.३६	७२ ४५
३१ अवोर	आसाम	२८ २०	९५.०
३२ असय्य	हैदराबाद	२०.१५	७५ ५८
३३ अहमदनगर	बम्बई	१९.५	७४.४०
३४ अहमदाबाद	बम्बई	२३.०	७३.३०
३५ अहमादपुर	पंजाब	२९ ६	७१.१६
३६ आगरा	यू० पी०	२७.०	७८ १३
३७ आजमगढ	यू० पी०	२६.१५	८३.१६
३८ आन्ध्र प्रदेश		१७ ०	८१ ०
३९ आरकट	मद्रास	१२ ५०	७९ २६
४० आरनी	मद्रास	१२.४०	९९.१९
४१ आरा	बिहार	२५ ३०	८४ ०
४२ आसनसोल	बगाल	२३ ४२	८७ १

४३	आसाम	आसाम	२५ २०	९३ ३०
४४	इटारसी	म० प्र०	२०.३०	७७.५५
४५	इन्द्रवती	मद्रास	१९.३	८१.०
४६	इन्दौर	म० प्र०	२२.४४	७५.५०
४७	इम्फाल	असम	२२.४४	९३.५८
४८	इलाहाबाद	यू० पी०	२५.१८	८१.५०
४९	उडीसा	उडीसा	२१.१०	८५.०
५०	उज्जैन	मध्य प्रदेश	२३.९	७५.४३
५१	उटकमण्ड	मद्रास	११.२४	७६.४४
५२	उदयपुर	राजस्थान	२४.३५	७३.४३
५३	उन्नाव	यू० पी०	२६.४८	८०.४३
५४	उरई	यू० पी०	२५.५९	७९.३०
५५	एटा	यू० पी०	२७.३५	७८.४०
५६	एलौरा	आन्ध्र प्रदेश	१६.४२	८१.१०
५७	ओस्मानाबाद	महाराष्ट्र	१८ ८	७६.६
५८	औरंगाबाद	हैदराबाद	१९.५५	७५.६०
५९	कच्छ	गुजरात	२२.३५	६९ ४०
६०	कटक	उडीसा	२०.५८	८५.५४
६१	कटनी	म० प्र०	२३ ४७	८०.२७
६२	कटिहार	बिहार	२५ ३०	८७.४०
६३	काठियावाड़	गुजरात	२२.०	७१ ०
६४	कन्नौज	यू० पी०	२७.३	७९.५८
६५	करनाल	पंजाब	२९.४२	७७ २०
६६	कर्नूल	आन्ध्र प्रदेश	१५.५०	७८.५०
६७	कर्नाटक	दक्षिण भारत	१३.०	७८.०
६८	करांची	सिन्ध	२४.५१	६७.४

६९ करीमनगर	हैदराबाद	१८.२८	७९ ६
७० करूर	मद्रास	१० ५८	७८.७
७१ करौली	राजस्थान	२६.३०	७७ ४
७२ कल्याण	महाराष्ट्र	१९.१४	७३.१०
७३ कलकत्ता	बंगाल	२२ ३८	८८.२१
७४ कलिंगपट्टम्	मद्रास	१८ २०	८४.१०
७५ कसौली	पंजाब	१८ २०	८४.१०
७६ कागरा	पंजाब	३०.५३	७७ १
७७ कांजीवरम्	मद्रास	१२.५०	७९.४५
७८ कायर	विहार	२५ ३०	८७.४०
७९ कादिरी	मद्रास	१४.७	७८.१२
८० कांधला	यू० पी०	२३.०	७० १०
८१ कानपुर	यू० पी०	२४ २८	८० २४
८२ कामवेलपुर	पजाब	३३.४७	७२.२३
८३ काम्बे	बम्बई	२२.१९	७२ ३८
८४ कारकल	मद्रास	१०.३४	७९.४०
८५ कालका	पंजाब	३०.५०	७६.५९
८६ कालाबाघ	पजाब	३२ ५८	७१.३६
८७ काश्मीर	काश्मीर	३४.०	७७.०
८८ कावली	मद्रास	१४ ५५	८०.३
८९ कालीकट	मद्रास	११.१५	७५.५९
९० कालेमियर	मद्रास	१०.१८	७९.५२
९१ किसनगज	विहार	२६ १०	८७ २
९२ किसनगढ	राजस्थान	२७.५३	७०.४७
९३ किसनगढ	राजस्थान	२६.३४	७४.५५
९४ कुन्दापुर	मद्रास	१३.३८	७४.४४

९५	कुड्प्पा	मद्रास	१४.३०	७८ ४५
९६	कुड्डालोर	मद्रास	११.३०	७९,४६
९७	कुन्नूर	मद्रास	११.२०	७६ ५०
९८	कुमता	बम्बई	१४.२६	७४.२७
९९	कुमारी अन्तरीप	मद्रास	८.४०	७७.३६
१००	कुमिल्ला	बंगाल	२३.२५	९१.१३
१०१	कुरनूल	मद्रास	१५.५०	७८.५
१०२	कुर्ग	दक्षिण भारत	१२.२०	७६.१०
१०३	कृष्णराजधाम	मैसूर	१२.२०	७६.३२
१०४	केनेनर	मद्रास	११.५२	७५.२५
१०५	केरल	दक्षिण भारत	१० ०	७६ २५
१०६	कोकोनाड़ा	मद्रास	१६.५७	८२.१५
१०७	कोचीन	केरल	९ ५८	७६.१७
१०८	कोटाराज्य	राजस्थान	२५.१०	७५.५२
१०९	कोटद्वार	यू० पी०	२९.४३	७८ ३३
११०	कोडिकनाल	मद्रास	१०.१३	७६.३२
१११	कोलार	मैसूर	१३.९	७८.११
११२	कोलूर	मद्रास	१३.५३	७४.५३
११३	कोल्हापुर	महाराष्ट्र	१६ ४२	७४.१६
११४	कोहिमा	आसाम	२५ ३८	९४.१०
११५	क्वामटोर	मद्रास	११ ०	७७ ०
११६	खण्डवा	म० प्र०	२१.५०	७६ २३
११७	खदरी	बम्बई	२६.९	६८ ४७
११८	खनियाधाना	म० प्र०	२५.१	७८.७
११९	खुरजा	यू० पी०	२८.१५	७७ ५०
१२०	खुलना	बंगाल	२२.४९	८९ ३७

१२१ खेरकी	बम्बई	११.३३	७३ ५४
१२२ खेरलू	बरौदा	२३.५४	७२.४०
१२३ खैरपुर	बम्बई	२७ २८	६८ ४४
१२४ गढवाल	यू० पी०	३० १५	७९.३०
१२५ गया	बिहार	२४.४५	८५.०
१२६ ग्वालियर	म० प्र०	२६ १४	७८.१०
१२७ गाजियाबाद	यू० पी०	२८.४०	७७ २८
१२८ गाजीपुर	यू० पी०	२५ ३४	८३ ३५
१२९ गारो	असम	२५ ३०	९०.३०
१३० गुजराज	गुजरात	२३ ०	७२.३०
१३१ गुजरान वाला	पंजाब	३२.१०	७४ १४
१३२ गुटकुल	आन्ध्र	१५.११	७७.२५
१३३ गुडगाँव	पजाब	२८ ३७	७७ ४०
१३४ गुना	म० प्र०	२४ ४०	७७ २०
१३५ गुन्तूर	आन्ध्र प्र०	१६ १८	८० २९
१३६ गुरदासपुर	पंजाब	३२ ३०	७५ २७
१३७ गोआ	भारत	१५ ३०	७३.५७
१३८ गोंडा	यू० पी०	२६ २८	८२.१०
१३९ गोरखपुर	यू० पी०	२६.४५	८३.२४
१४० गोलका	बंगाल	२३.५०	८९ ४६
१४१ गोलपारा	असम	२६ ११	९० ४१
१४२ गोलकुण्डा	हैदराबाद	१७ २३	७८.२७
१४३ गोहाटी	आसाम	२६.११	९१ ४७
१४४ गगानगर	राजस्थान	२९.४९	७३.५०
१४५ गंजाम	उडीसा	१९.२०	८५.६
१४६ चकराता	यू० पी०	३० ४३	७७.५४

१४७	चटगाँव	बंगाल	२२.२१	९२.५३
१४८	चण्डीगढ	पंजाब	३०.४२	७६.५४
१४९	चतरापुर	मद्रास	१९.२१	८५.३
१५०	चन्दौसी	उ० प्र०	२८ २७	७८ ४९
१५१	चन्द्रनगर	बंगाल	२२.५२	८८.२५
१५२	चाईंबासी	विहार	२२.३३	८५.५१
१५३	चाँदपुर	बंगाल	२३.१२	९०.४०
१५४	चाँदवाड़ी	विहार	२२.४६	८६.४८
१५५	चाँदा	म० प्र०	१९.५७	७९ २१
१५६	चाँदोद	बम्बई	२० २०	७४ १९
१५७	चिकमागालूर	मैसूर	१३.१८	७५.४९
१५८	चिकाकोल	मद्रास	१८.१७	८३.५७
१५९	चित्तरंजन	विहार	२३.५२	८६.३९
१६०	चित्तूर	केरल	१०.४३	७६.४७
१६१	चित्तौर	राजपूताना	२४.५४	७४ ५२
१६२	चित्र	मैसूर	१४.१४	७६.२६
१६३	चिदम्बरम्	मद्रास	११.२४	७९.४४
१६४	चिलारु	काश्मीर	३५.२६	७४.१५
१६५	चुनार	यू० पी०	२५ ८	८२.५६
१६६	चेरापुंजी	असम	२५.१७	९१.४७
१६७	छपरा	विहार	२५.४६	८४ ४९
१६८	छतरपुर	म० प्र०	२४.५४	७९.३८
१६९	छिंदवाडा	म० प्र०	२२ २३	७८ ५९
१७०	छोटानागपुर	विहार	२३.०	८५ ०
१७१	जगन्नाथगंज	बंगाल	२४.३९	८९ ५०
१७२	जगदलपुर	म० प्र०	१८.०	८२.७

१७३ जनकपुर	म० प्र०	२३ ४३	८१.५०
१७४ जब्बलपुर	म० प्र०	२३ १०	८०.०
१७५ जमशेदपुर	विहार	२२ ५०	८६.१०
१७६ जमालपुर	विहार	२५ १९	८६ ३२
१७७ जलगांव	महाराष्ट्र	२१ ५०	७५ ४०
१७८ जयनगर	विहार	२६ ४३	८६ ९
१७९ जागरौन	पंजाव	३० ४०	७५.४०
१८० जामपुर (जम्बू)	पंजाब	२९ ३९	७० ३८
१८१ जामनगर	गुजरात	२२.३२	७०.५
१८२ जम्बू	काश्मीर	३२ ४४	७५.५४
१८३ जालन	हैदरावाद	१९ ५१	७५ ५६
१८४ जालन्धर	पंजाव	३१.१९	७५ १८
१८५ जालपागोड़ी	वंगाल	२६ ३२	८८ ४६
१८६ जालियानवाला	पंजाव	३२ ४०	७३.३९
१८७ जालौन	यू० पी०	२६.८	७९ २३
१८८ जूनागढ	काठियावाड	२१.३१	७० ३६
१८९ जैकोवावाद	वम्वई	२८ १७	६८ ३९
१९० जैपुर राज्य	राजस्थान	२६.५५	७५ ५२
१९१ जैसलमेर राज्य	राजस्थान	२६ ५५	७०.५७
१९२ जैसूर	वगाल	२३ १०	८९.१०
१९३ जोधपुर राज्य	राजस्थान	२६,१८	७३.४
१९४ जौनपुर	यू० पी०	२५.४२	८२.५५
१९५ जौरा	म० प्र०	२३ ४२	७५ ५
१९६ झालरापाटन	राजस्थान	२४.३२	७६.१२
१९७ झालावार	राजस्थान	२४.३५	७६.१०
१९८ झांसी	यू० पी०	२५.४०	७८.४९

१९९	टाटानगर	विहार	२२.५०	८६.१०
२००	टीकमगढ	म० प्र०	२४.४५	७८.५३
२०१	टोंक राज्य	राजस्थान	२६.११	७५.५०
२०२	ट्रावंकोर	ट्रावंकोर स्टेट	९.०	७७.०
२०३	डलहौजी	पंजाव	३२.३२	७६ ०
२०४	डालटेनगंज	विहार	२४.२	८४.१०
२०५	डिवरूगढ	आसाम	२७ ३८	९४.५५
२०६	डीमापुर	आसाम	२५ ५१	९३.४८
२०७	डेराइसमाईलखाँ	पंजाव	३१.४९	७०.५२
२०८	डेरागाजीखाँ	पंजाव	३०.५	७०.५२
२०९	ढाका	पू० वं० पाकि०	२३ ४३	९०.२६
२१०	तिरुपती	मद्रास	१३ ४०	७९.३०
२११	त्रिचनापल्ली	मद्रास	१० ५०	७८.४६
२१२	त्रिपुरा	वंगाल	२६.४५	९१ ३०
२१३	तंजोर	मद्रास	१०.४७	७९ १०
२१४	दतिया	म० प्र०	२५.३९	७८.२१
२१५	दरभंगा	विहार	२६.१०	८५ ५७
२१६	दानापुर	विहार	२५ ५८	८५.५
२१७	दार्जिलिंग	वंगाल	२७.३०	८८.१८
२१८	दिनाजपुर	वंगाल	२५.३७	८८.४०
२१९	दिल्ली	दिल्ली	२८ ३८	७७ १२
२२०	दुमका	विहार	२४.३०	८७.२०
२२१	दुमदुम	वंगाल	२७.३५	९४ ४०
२२२	द्रुग	म० प्र०	२१.१५	८१.१७
२२३	देमन	वम्बई	२२.२५	७२.९३
२२४	देवघर	विहार	२४ ३०	८६ ४५

२२४ देहरादून	उ० प्र०	३० २०	७८ ५
२२५ दोहद	म० प्र०	२२ ५७	७४ २०
२२६ दौलताबाद	हैदराबाद	१९ ५७	७५ १५
२२७ धनबाद	विहार	२३ ४७	८६ ३०
२२८ धर्मपुरी	मद्रास	१२ १०	७८ ५
२२९ धार	म० प्र०	२२ ४०	७५ ५
२३० धारनपुर	बम्बई	२०.३२	७३ १३
२३१ धारवाड	मैसूर	१५ ३९	७५ ५९
२३२ धूलिया	वम्बई	२१ ०	७४ ५६
२३३ धूवडी	आसाम	२६ २	९० ०
२३४ धेनकानल	उडीसा	२० ३५	८५ ३०
२३५ धौलपुर	राजस्थान	२६ ४५	७७ ५८
२३६ नागपुर	महाराष्ट्र	२१ ५	७९ ५
२३७ नरसिंहपुर	म० प्र०	२२ ५७	७९ १५
२३८ नारायणगंज	बंगाल	२३ २७	९० ३२
२३९ नासिक	वम्बई	२० २	७३ ५०
२४० नीमच	म० प्र०	२४ ३७	७४ ५२
२४१ नेरौल	मद्रास	१४ २७	८२ २
२४२ नैनीताल	उ० प्र०	२९ २३	७९ ३०
२४३ पचमढी	म० प्र०	२२ ३०	७८ २२
२४४ पटना	विहार	२५ ३५	८५.१०
२४५ पटियाला	पजाब	३० २०	७६ २५
२४६ पलामू	विहार	२३ ५२	८४ १७
२४७ पाटन	बडौदा	२३ ५२	७२ १०
२४८ पालघाट	मद्रास	१० ४६	७६ ४२
२४९ पाण्डुचेरी	मद्रास	११ ५६	७९ ५३

२५०	पानीपत	पंजाब	२९.२३	७७.१
२५१	पारसनाथ	विहार	२४ ०	८६.११
२५२	पालामऊ	विहार	२३.५२	८४.१७
२५३	पीलीभीत	उ० प्र०	२८.३८	७९ ५१
२५४	पुर्लिया	विहार	२३.२०	८५.२५
२५५	पुरी	उ० प्र०	३० ९	७८ ४९
२५६	पुरी	विहार	१९.४८	८५.५२
२५७	पुड्डकोट्टे	मद्रास	१०.२३	७८.५२
२५८	पूर्णिया	विहार	२५.४९	८७ ३१
२५९	पूना	वम्बई	१९.०	७२.५५
२६०	पेशावर	सीमाप्रान्त	३४.१५	७६.२५
२६१	प्रतापगढ	राजस्थान	२४ २	७४ ४०
२६२	फतेहगढ	उ० प्र०	२७.२३	७९ ४०
२६३	फतेहपुर	राजस्थान	२८.०	७५.२
२६४	फतेहपुर सीकरी	उ० प्र०	२७.६	७७.४२
२६५	फरीदकोट	पंजाब	३०.४०	७४.५७
२६६	फरीदपुर	वंगाल	२३.३६	८९ ५३
२६७	फर्रुखावाद	उ० प्र०	२७.२४	७९ ३७
२६८	फलटन	वम्बई	१८.०	७४.२९
२६९	फिरोजपुर	पंजाब	३०.५५	७४.४०
२७०	फैजावाद	उ० प्र०	२६.४७	८२ १२
२७१	वक्सर	विहार	२५.३४	८४.१
२७२	वखसार	राजस्थान	२४.४३	७१ ९
२७३	वघेलखण्ड	म० प्र०	२४.१०	८२.०
२७४	वडौच	वम्बई	२१.४५	७३.०
२७५	वडौदा	वम्बई	२२.०	७३.३०

२७६ बद्रीनाथ	उ० प्र०	३० ४५	७९.२५
२७७ बनारस	उ० प्र०	२५ १५	८३.०
२७८ बम्बई	बम्बई	१८.५५	७२.५४
२७९ बर्द्धमान	बगाल	२३.१६	८७ ५४
२८० बर्धा	म० प्र०	२४ ४५	७८ ३९
२८१ बरहमपुर	बंगाल	२४.५	८८ १०
२८२ बरहमपुर	मद्रास	१९ १८	८४ ४८
२८३ बरार	म० प्र०	२०.१५	७७ ३०
२८४ बरौदा	म० प्र०	२२ २२	७३ १७
२८५ बरेली	उ० प्र०	२८.१५	७९ ३०
२८६ बलिया	उ० प्र०	२४.४४	८४.११
२८७ बलैरी	मद्रास	१५.४५	७४ ३०
२८८ बस्तर	म० प्र०	१९.३०	८१.३०
२८९ बस्तो	उ० प्र०	२६ ४५	८२ ५८
२९० बहराइच	उ० प्र०	२७.३४	८१.३८
२९१ बाकरगज	बगाल	२२.२९	९० १८
२९२ बारकपुर	बंगाल	२२.४६	८८ २४
२९३ बारमेर	राजस्थान	२५ ४९	७१.३२
२९४ बारन	राजस्थान	२५ ३	७६ ३०
२९५ बारपेट	आसाम	२६.२०	९१.३
२९६ बारमूला	काश्मीर	३४.१५	७४.२५
२९७ बारसी	बम्बई	१८.१३	७५ ४४
२९८ बारौनी	म० प्र०	२२.३	७४ २७
२९९ बालासोर	बिहार	२१ ३०	८६.५४
३०० बालाघाट	म० प्र०	१८ ५८	७६ ०
३०१ बालंगिर	उडीसा	२० ५०	८३.२५

३०२	वालोचा	राजस्थान	२५.४९	७२.२१
३०३	वासवा	मद्रास	१८ ५३	८४ ३८
३०४	वासिईम	वरार	२०.३	७७ ०
३०५	विमलीपट्टम्	मद्रास	१७.५३	८३ ३०
३०६	विलासपुर	म० प्र०	२२ ५	८२ १३
३०७	विलोचिस्तान	सीमाप्रान्त	२८ ०	६५ ०
३०८	वीकानेर	राजस्थान	२१ ४३	७३ २
३०९	वीजापुर	वम्वई	१६ ५०	७५ ४७
३१०	वुकुर	वम्वई	२७.४०	६८.५६
३११	वुन्देलखण्ड	उ० प्र०	२४.४०	८० ०
३१२	वुरहानपुर	म० प्र०	२१ १७	७६ १६
३१३	वुलसार	वम्वई	२० ३६	७२ ५९
३१४	वूंदो	राजस्थान	२५ २७	७५ ४१
३१५	वेतिहा	विहार	२६ ५९	८४ ३८
३१६	वेरहमपुर	वगाल	२४ १०	८८ २०
३१७	वेल्लरे	मद्रास	१५ १२	७७ ५
३ ८	वेलगांव	वम्वई	१५ ४२	७४ ४०
३१९	वेंगलोर	मैसूर	१२.५८	७७ ३०
३२०	वोगरा	वंगाल	२४.५१	८८ २६
३२१	वेलोनिया	त्रिपुरा	२३.१५	९१ २५
३२२	वोनीगढ	विहार	२१.४५	८५.०
३२३	वोव्वली	मद्रास	१८.३४	८३.४५
३२४	ब्रह्मनी राज्य		२०.५२	८५ ४०
३२५	भटिण्डा	पजाव	३०.११	७५.०
३२६	भण्डारा	म० प्र०	२१ ८	७९.४०
३२७	भदौरा	म० प्र०	२४.४८	७०.२६

३२८	भद्रक	उडीसा	२१ ०	८५ ३३
३२९	भरतपुर राज्य	राजस्थान	२७ १९	७७ ५०
३३०	भमरगढ	,,	१९ ३०	८० ३०
३३१	भागलपुर	बिहार	२५ १२	८६ ५२
३३२	भावनगर	बम्बई	२१ ५९	७२ १९
३३३	भीमा	मैसूर	१७ ७५	७६ ०
३३४	भुज	कच्छ	२३ १०	६९ ४५
३३५	भुवनेश्वर	उडीसा	२० १०	८५ ५०
३३६	भुसावल	बम्बई	२१ १०	७५ ५८
३३७	भेलसा	म० प्र०	२३ ३२	७७ ५१
३३८	भोपाल	म० प्र०	२३ १५	७७ ३०
३३९	मंसूरी	उ० प्र०	३० २३	७८ १०
३४०	मऊ	उ० प्र०	२५ १५	७९ ११
३४१	मन्दसौर	म० प्र०	२४ ५	७५ ०
३४२	मछलीपट्टम्	मद्रास	१६ २	८१ १२
३४३	मथुरा	उ० प्र०	२७ ३९	७७ ४८
३४४	मण्डला	म० प्र०	२२ ४५	८० २६
३४५	मदारीपुर	बंगाल	२३ १४	९० १५
३४६	मद्रास	मद्रास	१३ ४	८८ १७
३४७	मदुरा	मद्रास	९ ५०	७८ ५०
३४८	मधुपुर	बिहार	२४ १८	८६ ३७
३४९	मधुबनी	बिहार	२६ २१	८६ ७
३५०	मनीपुर	आसाम	२४ ४४	९ ४०
३५१	मलाबार	बम्बई	१२ ०	७५ २५
३५२	महाबलेश्वर	बम्बई	१७ ५८	७३ ४३
३५३	महोबा	उ० प्र०	२५ १८	७९ ५५

३५४	महबूबनगर	मैसूर	१६.४५	७७.५५
३५५	मानिकपुर	उ० प्र०	२५ ४	८१.८
३५६	मालिकपुर	बरार	२०.५३	७६ १७
३५७	मालवा	म० प्र०	२३.४०	७५ ३०
३५८	मालखाना	मैसूर	१६.०	७३ ५०
३५९	मिर्ज़ापुर	उ० प्र०	२५.७	८२ २
३६०	मुकामा	विहार	२५ २४	८५ ५५
३६१	मुगलपुरा	पंजाब	३१.३१	७४.२४
३६२	मुंगेर	विहार	२५ २३	८६.३०
३६३	मुज़फ्फरगढ	पंजाब	३० ५	७१.१४
३६४	मुज़फ्फरनगर	उ० प्र०	२९.२७	७७.४०
३६५	मुज़फ़्फरपुर	विहार	२६.५	८५.२९
३६६	मुर्शिदाबाद	बंगाल	२४.११	८८.१९
३६७	मुरादाबाद	उ० प्र०	२८.५१	७८.४९
३६८	मुरार	म० प्र०	२६.१३	७८ ११
३६९	मुलतान	पंजाब	३०.१२	७१.३१
३७०	मुसलीपट्टम	आन्ध्र	१६.१२	८१.१२
३७१	मेदनीपुर	बंगाल	२२.२५	८७ २१
३७२	मेरठ	उ० प्र०	२९.१	७७.४५
३७३	मेवाड़	राजस्थान	२५.४०	७३.३०
३७४	मेंगलूर	मद्रास	१२.५८	७५.०
३७५	मैनपुरी	उ० प्र०	२७.१४	७९.३
३७६	मैसूर	मैसूर	१२ १८	७६.३७
३७७	मोतिहारी	विहार	२६.४०	८४.१७
३७८	रतलाम	म० प्र०	२३.२१	७५.७
३७९	राजकोट	बम्बई	२२.१८	७०.५६

३८०	राजनादगांव	म० प्र०	२१ ५	८१.५
३८१	रानीगज	बंगाल	२३ ३६	८७ ९
३८२	रामगट	राजस्थान	२७.२५	७० २०
३८३	रामगढ	विहार	२३.२३	८५.३०
३८४	रामटेक	महाराष्ट्र	२१.२०	७९.१५
३८५	रामपुर	उ० प्र०	२८४८	७९ ५
३८६	रायगट	म० प्र०	२१.५४	८३ २६
३८७	रायपुर	म० प्र०	२१-१५	८१.४१
३८८	रायवरेली	उ० प्र०	२६.१४	८१ १६
३८९	रावलपिण्डी	पंजाव	३३ ३७	७३ ६
३९०	रांची	विहार	२३ २३	८५ २३
३९१	रुडकी	उ० प्र०	२९.५२	७७ ५३
३९२	रुहेलखण्ड	उ० प्र०	२८ ३०	७९ ०
३९३	लखनऊ	उ० प्र०	२६ ५५	८० ५९
३९४	ललितपुर	उ० प्र०	२४ २२	७८ २८
३९५	लश्कर	म० प्र०	२६.१०	७८ १०
३९६	लारकन	वम्वई	२७ ३३	६८ १५
३९७	लाहौर	पजाव	३१ २७	७४ २६
३९८	लुधियाना	पजाव	३० ५५	७५ ५४
३९९	लोदराना	पंजाव	२९ ३२	७१ ४७
४००	विजगापट्टम्	मद्रास	१७ ४२	८३ २०
४०१	विजयनगरम्	मद्रास	१५ २०	७६ ३०
४०२	व्यावर	राजस्थान	२६.६	७४ २१
४०३	शाहजहांपुर	उ० प्र०	७० ५४	७९ २७
४०४	शिमला	पंजाव	३१ ६	७७ १३
४०५	शिवपुरी	म० प्र०	२५.४०	७७ ४४
४०६	शोलापुर	महाराष्ट्र	१७ ४०	७५ ५६
४०७	श्रीनगर	काश्मीर	३४ ६	७४ ५१
४०८	सतारा	वम्वई	१७ ४१	७४ १

४०९	ससराम	विहार	२४.५७	८४ ३
४१०	सहारनपुर	उ० प्र०	२९.५८	७७ २३
४११	सागर	म० प्र०	२३.५०	७८ ५०
४१२	साँगली	वम्बई	१६.५२	७४ ३६
४१३	स्यालकोट	पंजाब	३२.३१	७४ ३६
४१४	सिरोही	राजस्थान	२४.५३	७२ ५४
४१५	सिलहट	आसाम	२४ ५३	९१ ५४
४१६	सिलीगुडो	वंगाल	२६ ४२	८८ २५
४१७	सिवान	विहार	२६ २	८४ ७
४१८	सिवनी	म० प्र०	२२ ६	७९ ३५
४१९	सीतापुर	उ० प्र०	२७ ३२	८० ४३
४२०	सीतामढी	विहार	२६ ३५	८५ ३२
४२१	सुन्दरवन	वंगाल	२२ ०	८९ ०
४२२	सुलतानपुर	उ० प्र०	२६ १६	८२ ७
४२३	सूरत	वम्बई	२१ १२	७२ ५२
४२४	सोमनाथ	वम्बई	२१.४	७०.२६
४२५	शोलापुर	वम्बई	१७ ४०	७५.५६
४२६	हरदोई	उ० प्र०	२७.३०	८०.५
४२७	हरद्वार	उ० प्र०	३०.०	७८ ०९
४२८	हापुड	उ० प्र०	२८.४५	७७ ४०
४२९	हासी	पजाब	२९.५	७५ ५५
४३०	हिम्मतनगर	गुजरात	२३.३७	७२ ५७
४३१	हिमाचल प्रदेश		३१.३०	७७.०
४३२	हुब्बली	वम्बई	१५.२०	७२.१२
४३३	हैदराबाद	दक्षिण भारत	१७.२०	७८.३०
४३४	होशगाबाद	म० प्र०	२२.४६	७०.४५

नोट—यहाँ २२.६ का अर्थ २२ अंश ६ कला तथा ७९.२५ का अर्थ ७९ अंश २५ कला है। अर्थात् जो नगरो के अक्षांश और रेखाशो के अंक दिये गये हैं, वे अंश और कला है।

वेलान्तर सारणी

	जनवरी	फरवरी	मार्च	अप्रैल	मई	जून	जुलाई	अगस्त	सितम्बर	अक्तूबर	नवम्बर	दिसम्बर
	मि०	मि०	मि०	मि०	मि०	मि०	मि०	मि०	मि०	मि०	मि०	मि०
१	—४	—१४	—१२	—४	+ ३	+ २	—४	—६	+ ०	+ १०	+ १६	+ ११
२	—४	—१४	—१२	—४	+ ३	+ २	—४	—६	+ ०	+ ११	+ १६	+ १०
३	—५	—१४	—१२	—३	+ ३	+ २	—४	—६	+ १	+ ११	+ १६	+ १०
४	—५	—१४	—१२	—३	+ ३	+ २	—४	—६	+ १	+ ११	+ १६	+ १०
५	—६	—१४	—१२	—३	+ ४	+ २	—४	—६	+ १	+ १२	+ १६	+ ९
६	—६	—१४	—११	—२	+ ४	+ २	—४	—६	+ २	+ १२	+ १६	+ ९
७	—७	—१४	—११	—२	+ ४	+ १	—५	—६	+ २	+ १२	+ १६	+ ८
८	—७	—१४	—११	—२	+ ४	+ १	—५	—५	+ २	+ १२	+ १६	+ ८
९	—७	—१४	—११	—२	+ ४	+ १	—५	—५	+ ३	+ १३	+ १६	+ ७
१०	—८	—१४	—१०	—१	+ ४	+ १	—५	—५	+ ३	+ १३	+ १६	+ ७
११	—८	—१४	—१०	—१	+ ४	+ १	—५	—५	+ ३	+ १३	+ १६	+ ६
१२	—९	—१४	—१०	—१	+ ४	+ ०	—५	—५	+ ४	+ १४	+ १६	+ ६
१३	—९	—१४	—१०	—०	+ ४	+ ०	—५	—५	+ ४	+ १४	+ १६	+ ६
१४	—९	—१४	—९	—०	+ ४	—०	—६	—४	+ ५	+ १४	+ १५	+ ५
१५	—१०	—१४	—९	+ ०	+ ४	—०	—६	—४	+ ५	+ १४	+ १५	+ ५
१६	—१०	—१४	—९	+ ०	+ ४	—०	—६	—४	+ ५	+ १४	+ १५	+ ४

	जनवरी	फरवरी	मार्च	अप्रैल	मई	जून	जुलाई	अगस्त	सितम्बर	अक्टूबर	नवम्बर	दिसम्बर
१७	—१०	—१४	—८	+१	+४	—१	—६	—४	+६	+१५	+१५	+४
१८	—११	—१४	—८	+१	+४	—१	—६	—४	+६	+१५	+१५	+३
१९	—११	—१४	—८	+१	+४	—१	—६	—३	+६	+१५	+१४	+३
२०	—११	—१४	—८	+१	+४	—१	—६	—३	+७	+१५	+१४	+२
२१	—१२	—१४	—७	+१	+४	—२	—६	—३	+७	+१५	+१४	+२
२२	—१२	—१४	—७	+२	+४	—२	—६	—३	+७	+१५	+१४	+१
२३	—१२	—१४	—७	+२	+३	—२	—६	—२	+८	+१६	+१३	+१
२४	—१२	—१३	—६	+२	+३	—२	—६	—२	+८	+१६	+१३	+०
२५	—१३	—१३	—६	+२	+३	—२	—६	—२	+८	+१६	+१३	+०
२६	—१३	—१३	—६	+२	+३	—३	—६	—२	+९	+१६	+१२	—१
२७	—१३	—१३	—५	+२	+३	—३	—६	—१	+९	+१६	+१२	—१
२८	—१३	—१३	—५	+३	+३	—३	—६	—१	+९	+१६	+१२	—२
२९	—१३	—१२	—५	+३	+३	—३	—६	—१	+१०	+१६	+११	—२
३०	—१४	×	—४	+३	+३	—३	—६	—०	+१०	+१६	+११	—३
३१	—१४	×	—४	×	+३	×	—६	—०	×	+१६	×	—३

इष्टकाल बनाने के नियम—स्थानीय सूर्योदय, सूर्यास्त और दिनमान बनाने के पश्चात् जन्मसमय को स्थानीय धूपघडी के अनुसार बना लेना चाहिए। अनन्तर निम्न चार नियमो से जहाँ जिस का उपयोग हो, उस के अनुसार घट्यादिरूप इष्टकाल निकाल लेना चाहिए।

१—सूर्योदय से ले कर १२ बजे दिन के भीतर का जन्म हो तो जन्म-समय और सूर्योदय काल का अन्तर कर शेष को ढाई गुना (२½) करने से घट्यादि इष्टकाल होता है जैसे मान लिया कि आरा नगर में वि० सं २००१ वैशाख शुक्ला द्वितीया सोमवार को प्रात:काल ८ वज कर १५ मिनिट पर किसी का जन्म हुआ है। पहले इस स्टैण्डर्ड टाइम को स्थानीय समय बनाना है। अत: आरा के रेखांश और स्टैण्डर्ड टाइम से रेखांश का अन्तर कर लिया तो—(८४।४०)—(८२।३०) = (२।१०) इसे ४ मिनिट से गुणा किया तो—८ मिनिट ४० सेकेण्ड आया। स्टैण्डर्ड टाइम के रेखांश से आरा का रेखांश अधिक है, इस लिए इस फल को स्टैण्डर्ड टाइम में जोडा—

८।१५।०
  ८।४०

८।२३।४० देशान्तर संस्कृत समय

२४ अप्रैल को वेलान्तर सारणी में दो मिनिट धन संस्कार लिखा है, अत. उसे जोडा तो—(८।२३।४०) + (०।२।०) = ८।२५।४० आरा का समय हुआ; यही बालक का जन्मसमय माना जायेगा। उपर्युक्त नियम के अनुसार इष्टकाल बनाने के लिए आरा का सूर्योदय इस जन्मदिन का निकलना है; पहले उदाहरण में इस दिन का सूर्योदय ५।३४।४८ वजे आया है। अतएव—

८।२५।४० जन्मसमय में-से
५।३४।४८ सूर्योदय को घटाया

२।५०।५५—इसे ढाई गुना किया—(२।५०।५२) × ५/२ = ७।७।१० घट्यादि इष्टकाल हुआ।

२—यदि १२ बजे दिन से सूर्यास्त के अन्दर का जन्म हो तो जन्मसमय और सूर्यास्तकाल का अन्तर कर शेष को ढाई गुना कर दिनमान में-से घटाने पर इष्टकाल होता है। उदाहरण—वि सं० २००१ वैशाख शुक्ला द्वितीया सोमवार को २ बज कर २५ मिनिट पर आरा में जन्म हुआ है। समय शुद्ध करने के लिए देशान्तर और वेलान्तर दोनों संस्कार किये—(२।२५) + (०।८।४० देशान्तर) + (०।२।० वेलान्तर) = २।३५।४० आरा का जन्मसमय। सूर्यास्त पहले उदाहरण में ६।२५।१२ और दिनमान ३२ घटी ६ पल निकाला गया है अत ६।२५।१२ सूर्यास्त में-से

२।३५।४० जन्मसमय को घटाया

३।४९।३२ इसे ढाई गुना किया

(३।४९।३२) × ५/२ = ९।३३।५० फल आया, इसे दिनमान में-से घटाया—

३२।६ दिनमान में-से

९।३३।५० को घटाया

२२।३२।१०

३—सूर्यास्त से १२ बजे रात्रि के भीतर का जन्म हो तो जन्मसमय और सूर्यास्तकाल का अन्तर कर शेष को ढाई (२½) गुना कर दिनमान में जोड देने से इष्टकाल होता है। उदाहरण—वि० सं० २००१ वैशाख शुक्ला द्वितीया सोमवार को रात के १० बज कर ४५ मिनिट पर आरा नगर में किसी बच्चे का जन्म हुआ है। पूर्ववत् यहाँ पर भी देशान्तर और वेलान्तर सस्कार किये—(१०।४५) + (०।८।४०) + (०।२।०) = १०।५५।४० जन्मसमय—१०।५५।४० जन्मसमय में-से

६।२५।१२ सूर्यास्तकाल को घटाया

४।३०।२८ इसे ढाई गुना किया (४।३०।२८) × ५/२

११।१६।१० फल आया; इसे दिनमान में जोड़ा—३२।६।० दिनमान

११।१६।१० फल

इष्टकाल घटचादि हुआ। ४३।२२।१०

४—यदि रात के १२ बजे के पश्चात् और सूर्योदय के पहले का जन्म हो तो सूर्योदयकाल और जन्मसमय का अन्तर कर शेष को ढाई (२½) गुना कर ६० घटी मे-से घटाने पर इष्टकाल होता है। उदाहरण—वि० स० २००१ वैशाख शुक्ला द्वितीया सोमवार को रात के ४ बज कर १२ मिनिट पर जन्म हुआ है। अतएव (४।१५।०) + (०।८।४० देशान्तर) + (०।२।० वेलान्तर) = ४।२५।४० सस्कृत जन्मसमय हुआ।

५।३४।४८ सूर्योदय में-से
४।२५।४० जन्मसमय को घटाया

१। ९।८ (१।९।८) × ५/२=२।५२।५० फल,
६०। ०। ० में-से घटाया
२।५२।५०

५७। ७।१० इष्टकाल हुआ।

५—सूर्योदय से ले कर जन्मसमय तक जितने घण्टा, मिनिट और सेकेण्ड हो, उन्हें ढाई गुना कर देने से घट्यादि इष्टकाल होता है। उदाहरण—वैशाख शुक्ला द्वितीया सोमवार को दिन के ४ बज कर १५ मिनिट पर आरा में जन्म हुआ है। अतएव—
(४।१५।०) + (०।८।४० देशान्तर) + (०।२।० वेलान्तर)=४।२५।४० जन्मसमय। सूर्योदय ५।३४।४८ पर होता है, इस लिए गणना करने पर सूर्योदय से ले कर जन्मसमय तक १० घण्टे ५० मिनिट ५२ सेकेण्ड हुए। इन को ढाई गुना किया—(१०।५०।५२) × ५/२=२७।७।१० घट्यादि इष्टकाल हुआ।

भयात[1] और भभोग साधन

यदि पचाग अपने यहाँ का नही हो तो पंचाग के तिथि, नक्षत्र,

---

[1] गतर्क्षघट्यो गगनाङ्गशुद्धा दिष्टा क्रमादिष्टघटीप्रयुक्ता।
इष्टर्क्षनाडीसहिताश्च कार्या भयातभोगौ भवत क्रमेण॥
—दशामञ्जरी, नि० ब० १९२२ ई०, श्लो० २।

योग और करण के घटी, फलो में देशान्तर संस्कार कर के अपने स्थान—जहाँ की जन्मपत्री बनानी हो, वहाँ के नक्षत्र का मान निकाल लेना चाहिए।

यदि इष्टकाल से जन्मनक्षत्र के घटी, पल कम हो तो जन्मनक्षत्र गत और आगामी नक्षत्र जन्मनक्षत्र कहलाता है तथा जन्मनक्षत्र के घटी, पल इष्टकाल के घटी, पलो से अधिक हो तो जन्मनक्ष त्र से पहले का नक्षत्र गत और वर्तमान नक्षत्र जन्मनक्षत्र कहलाता है। गत नक्षत्र के घटी, पलो को ६० में-से घटाने पर जो शेष आवे उसे दो जगह रखना चाहिए, एक स्थान पर इष्टकाल को जोड देने से भयात और दूसरे स्थान पर जन्मनक्षत्र जोड़ देने पर भभोग होता है।

उदाहरण—वि० सं० २००१ वैशाख शुक्ला द्वितीया को आरा में दिन के २ बज कर २५ मिनिट पर किसी बच्चे का जन्म हुआ है। इस समय का पूर्व नियम के अनुसार इष्टकाल २२।३२।१० है। इस दिन भरणी नक्षत्र का मान बनारस के विश्वपंचाग में ६।२७ लिखा है। पहले इस नक्षत्रमान को आरा का बना लेना है।

८४।४० आरा रेखाश में-से
८३। ० बनारस का रेखाश घटाया
१।४०

१।४० को ४ मिनिट से गुणा किया अर्थात् अंशो को गुणा करने पर मिनिट और कलाओ को गुणा करने पर सेकेण्ड होते हैं। (१।४०) $\times$ ४=६।४० यह मिनिटादि है, इसे घट्यादि बनाने की विधि यह है कि मिनिटो को २½ से गुणा करने पर पल और सेकेण्डो को २½ से गुणा करने पर विपल होते है। अतएव—(६।४०) $\times$ ५/२=१६।४० पलादिमान। यह बनारस से आरा का देशान्तर संस्कार धनात्मक हुआ। क्योकि बनारस से के रेखाश आरा रेखाश अधिक है। इस संस्कार-द्वारा तिथि, नक्षत्र, योग आदि का मान आरा मे निकाला जायेगा—

६।२७।० बनारस में भरणी का प्रमाण
१६।४० देशान्तर संस्कार
६।४३।४० भरणी नक्षत्र आरा में हुआ।

प्रस्तुत उदाहरण में इष्टकाल २२।३२।१० है, इसके घटी, पल जन्म-नक्षत्र भरणी के घटी, पलों से अधिक है, अतएव भरणी गत नक्षत्र और कृत्ति का जन्मनक्षत्र माना जायेगा।

६०। ०। ० में-से
६।४३।४० भरणी के मान को घटाया।
५३।१६।२०—इसे दो स्थानों में रखा।

५।११।० बनारस में कृत्तिका का मान
१६।४० देशान्तर
५।२७।५० आरा में कृत्तिका नक्षत्र का मान

५३।१६।२० में	५३।१६।२० में
२२।३२।१० इष्टकाल जोडा	५।२७।४० जन्मनक्षत्र कृत्तिका जोडा
१५।४८।३० भयात	५८।४४। ० भभोग[1]

लग्न निकालने की प्रक्रिया

जन्म समय में क्रान्तिवृत्त का जो प्रदेश—स्थान क्षितिजवृत्त में लगता है, वही लग्न कहलाता है। दूसरे शब्दों में यह भी कहा जा सकता है कि दिन का उतना अंश जितने में किसी एक राशि का उदय होता है, लग्न कहलाता है। अहोरात्र में बारह राशियों का उदय होता है, इसीलिए एक दिन-रात में बारह लग्नों की कल्पना की गयी हैं। 'फलदीपिका' में 'राशीनामुदयो लग्न' अर्थात् एक राशि के उदयकाल को लग्न बतलाया है। लग्न-साधन के लिए अपने स्थान का उदयमान जानना आवश्यक है। अतः चरखण्डों का साधन निम्न प्रकार करना चाहिए।

---

१ भभोग का मान ६७ घटी तक हो सकता है। ६७ घटी से अधिक होने पर ही इसमें ६० का भाग देना चाहिए। भयात सदा भभोग से कम आता है।

सायन मेष संक्रान्ति या सायन तुला संक्रान्ति के दिन मध्याह्नकाल में १२ अंगुल शंकु की छाया जितनी हो, उतना ही अपने स्थान की पलभा का प्रमाण समझना चाहिए। इस पलभा को तीन स्थानो में रखकर प्रथम स्थान में १० से, दूसरे में ८ से और तीसरे स्थान में $\frac{१०}{३}$ से गुणा करने पर तीन राशियो के चरखण्ड होते है। इनको मेषादि तीन राशियो मे ऋण, कर्कादि तीन राशियो में धन, तुलादि तीन राशियो में धन एव मकरादि तीन राशियों में ऋण करने से उदयमान आता है।

आरा की पलभा ५ अंगुल ४३ प्रत्यंगुल है। इसे तीन स्थानों में रखकर क्रिया की तो—

(५।४३) × १० = ५७।१०

(५।४३) × ८ = ४५।४४

(५।४३) × $\frac{१०}{३}$ = १९।३

इन चरखण्डो का वेधोपलब्ध पलात्मक राशि-मान में संस्कार किया तो आरा का उदयमान आया—

मेष[1]	२७८—५७।१०	=	२२०।५०	=	मीन
वृष	२९९—४५।४४	=	२५३।१६	=	कुम्भ
मिथुन	३२३—१९।३	=	३०३।५७	=	मकर
कर्क	३२३ + १९।३	=	३४२।३	=	धनु
सिंह	२९९ + ४५।४४	=	३४४।४४	=	वृश्चिक
कन्या	२७८ + ५७।१०	=	३३५।१०	=	तुला

प्रत्येक नगर की पलभा अपने स्थान के अक्षाशो पर से आगे दी गयी सारणी पर से ज्ञात की जा सकती है।

---

१. लङ्कोदयादिघटिका गजभानि २७८ गोंङ्क—
दस्रा २९९ स्त्रिपक्षदहना ३२३ क्रमगोत्क्रमस्था ॥
होनान्विताश्चरदलै' क्रमगोत्क्रमस्थै—
मेषादितो घटत उत्क्रमगास्त्विमे स्यु. ॥—ग्रहलाघव० त्रि० प्र० श्लो० १।

पलभा ज्ञान सारणी

अक्षांश	पलभा (अंगुलात्मक)	अक्षांश	पलभा (अंगुलात्मक)
५	१। ३। ०	२२	४।५०।५२
६	१।१५।४४	२३	५। ५।३८
७	१।२८।२३	२४	५।२०।३१
८	१।४१।१०	२५	५।३५।४२
९	१।५४।०	२६	५।५१। ७
१०	२। ६।५४	२७	६। ६।५०
११	२।१९।५५	२८	६।२२।४८
१२	२।३३।०	२९	६।३९। ४
१३	२।४६।१२	३०	६।५५।४१
१४	२।५९।२८	३१	७।१२।३६
१५	३।१२।५४	३२	७।२९।५३
१६	३।२६।२४	३३	७।४७।३१
१७	३।४०। ५	३४	८। ५।३८
१८	३।५३।५६	३५	८।२४। ७
१९	४। ७।५५	३६	८।४३। ५
२०	४।२२। १	३७	९। २।३५
२१	४।३६।२२	३८	९।२२।३०

उदाहरण—आरा का अक्षाश २५।३० है, पलभा सारणी में २५ अक्षाश की पलभा ५।३५।४२ लिखी है। ३० कला की पलभा निकालने के लिए २५ अंश और २६ अंश के पलभा कोष्ठकों का अन्तर कर अनुपात द्वारा ३० कला की पलभा निकाल कर २५ अक्षाश की पलभा में जोड देने से आरा की पलभा आ जायेगी।

५।५१।७—२६ अंश की पलाभा में-से

५।३५।४२—२५ अंश की पलभा को घटाया

१५।२५—एक अंश अर्थात् ६० कला की पलभा हुई, इसे ३० से गुणा कर ६० का भाग देने पर ३० कला की पलभा आ जायेगी।

१५।२५ × ३० = ४५०।७५० ÷ ६०=७।४२

५।३५।४२—२५ अंश की पलभा में,
७।४२—३० कला की पलभा जोड़ी

५।४३।२४। आरा को पलभा हुई

अब जिम समय का लग्न बनाना हो उस समय के स्पष्ट सूर्य में तात्कालिक स्पष्ट अयनांश जोड देने से तात्कालिक सायन सूर्य होता है। इस तात्कालिक सायन सूर्य के भुक्त या भोग्य अंशादि को स्वदेशीय उदयमान से गुणा कर के ३० का भाग देने पर लब्ध पलादि भुक्त या भोग्यकाल होता है—भुक्तांश को स्वोदय से गुणाकर ३० का भाग देने पर भुक्तकाल और भोग्यांश को स्वोदय से गुणा कर ३० का भाग देने पर भोग्यकाल आता है। इस भुक्त या भोग्यकाल को इष्ट घट-पलो में घटाने से जो शेष रहे उस में भुक्त या भोग्य राशियो के उदयमानो को जहाँ तक घटा सकें, घटाना चाहिए। शेष को ३० से गुणा कर अशुद्धोदयमान (जो राशि घटी नहीं है उस के उदयमान) से भाग देने पर जो अंशादि लब्ध आयें, उन को क्रम से अशुद्ध[1] राशि में घटाने और शुद्ध राशि में जोडने से सायन स्पष्ट लग्न होता है। इस में से अयनांश घटाने पर स्पष्ट लग्न आता है।

सूर्य स्पष्ट प्राय पंचागो में प्रतिदिन का दिया रहता है। यद्यपि यह सूर्य-स्पष्ट जन्म समय के इष्टकाल का नहीं होता है, लेकिन लग्न बनाने का काम साधारणतया इस से चलाया जा सकता है। यहाँ सिर्फ विचार इतना ही करना है कि यदि दिन का जन्म हो तो पहले दिन का सूर्य-स्पष्ट और रात का जन्म हो तो उसी दिन का सूर्य-स्पष्ट काम में लाना चाहिए। इस सूर्य-स्पष्ट में अयनांश जोड कर सायन सूर्य बना लेना चाहिए, तब पूर्वोक्त नियमानुसार क्रिया करनी चाहिए।

उदाहरण—वि० सं० २००१ वैशाख शुक्ला द्वितीया सोमवार को आरा में २३ घटी २२ पल इष्टकाल पर किसी बालक का जन्म हुआ है। इस

१ जो राशि घट न सके उसे अशुद्ध और जिस राशि तक के उदयमान इष्टकाल के पलों में घट जायें वह शुद्ध राशि कहलाती है।

इस इष्टकाल का लग्न निकालने के लिए इस दिन का सूर्य-स्पष्ट ०।१०। २८।५७ लिया। इस में अयनाश अर्थात्—

२३ अश ४६ कला घोडा तो—

०।१०।२८।५७ सूर्य-स्पष्ट

२३।४६। ० अयनाश

१।४।१४।५७ सायन सूर्य

यहाँ वृषराशि के सूर्य का भुक्ताश ४।१४।५७ है और भोग्याश—

= १।०।०।०—एक राशि में-से

०।४।१४।५७—भुक्ताश घटाया

२५।४५। ३ भोग्याश

वृष राशि का भोग्याश होने से, आरा के वृष राशि से उदयमान से गुणा किया—

२५।४५।३ × २५४ = ६५४०।०।४२।४२ इस संख्या की प्रथम अक राशि में ३० से भाग दिया तो २१८।०।४२।४२ यहाँ पहली अंक राशि पल है, आगे वाली राशियाँ विपलादि है। गणित क्रिया में केवल पलो का उपयोग होता है, इस लिए और राशियों का त्याग कर दिया तो—२१८ ही राशि रह गयी।

इष्टकाल २३।२२ के पल वनाये— × ६०

१३८०

२२

१४०२ पल हुए, इन में-से

२१८ भोग्य पल घटाये

११८४

३०३ मिथुन

८८१

३४१ कर्क

५४०

{ यहाँ वृषराशि के उदयमान से गुणा कर निकाला गया था, अतः उस में आगे-वाली राशियों के उदयमान घटाये है।

५४० ३४४ सिंह १९६	यहाँ सिंह तक राशियों के उदयमान इष्टकाल के पलों में-से घट गये हैं, अत. सिंह शुद्ध और कन्या अशुद्ध कहलायेगी।

१९६ × ३० = ५८८०, इस में अशुद्ध राशि के उदयमान से भाग दिया

३३६) ५८८० (१९ अंश
 ३३६
 २५२०
 २३५२
 १६८ × ६० =
३३६) १००८० (३० कला
 १००८
 ×

५।१७।३०।० सायन लग्न में-से २३।४६।० अयनांश घटाया ४।२३।४४।० यह स्पष्ट लग्न है।	सिंह राशि घट गयी थी, अतएव लग्न के राशि स्थान में ५ माना जायगा।

अयनांश निकालने की विधि

अयनांश निकालने की कई विधियाँ प्रचलित हैं। वर्तमान में साधारणतया ज्योतिर्विद् ग्रहलाघव, मकरन्द और सूर्यसिद्धान्त इन तीन ग्रन्थों के आधार पर से निकालते हैं। किन्तु मुझे ग्रहलाघव-द्वारा निकाला गया अयनांश ठीक जँचता है। वेध क्रिया द्वारा भी लगभग इतना ही अयनांश आता है। ग्रहलाघव की विधि निम्न प्रकार है—

इष्ट शक वर्ष, जो पंचाग मे लिखा रहता है, उस में-से ४४४ घटा कर शेष मे ६० का भाग देने से अयनांश होता है।[1]

उदाहरण—शक सं० १८६६ − ४४४ = १४२२ ÷ ६० = २३।४६।

मकरन्द-विधि—इष्ट शक वर्ष में-से ४२१ घटाकर शेष को दो स्थानों में रखे, एक स्थान में १० से भाग देकर लब्धि को द्वितीय स्थान में-से घटावे।

१ शके वेदाब्धिवेदोन ४४४ षष्टिभक्तोऽयनांशका। अथवा वेदाब्ध्यब्ध्यून' खरसहृत' शकोऽयनांशा। —ग्रहलाघव रविचन्द्र० श्लोक० ७।

जो शेष आवे उस में ६० का भाग देने से अयनांश आता है।

उदाहरण—शक सं० १८६६ − ४२१ = १४४५,

१४४५ ÷ १० = १४४।३०

१४४५। ० में-से

१४४।३० को घटाया

१३००। ३० शेष रहा,

१३००।३० ÷ ६० = २१।४० अयनांश हुआ।

लग्नशुद्धि का विचार

जन्मकुण्डली का सारा फल लग्न के ऊपर आश्रित है, यदि लग्न ठीक न बना हो तो उस कुण्डली का फल सत्य नही हो सकता है। यद्यपि शहरो में घडियाँ रहती हैं, परन्तु उन घडियो के समय का कुछ ठीक नही; कोई घडी तेज रहती है तो कोई सुस्त। इस के अतिरिक्त जब लग्न एक राशि के अन्त और दूसरी राशि के आदि में आता है, उस समय उस में सन्देह हो जाता है। प्राचीन आचार्यों ने लग्न के शुद्धाशुद्ध विचार के लिए निम्न नियम बतलाये हैं, इन नियमो के अनुसार लग्न की जांच कर लेना अत्यावश्यक है।

१—प्राणपद एवं गुलिक के साधन-द्वारा इष्टकाल के शुद्धाशुद्ध का निर्णय कर गणितागत लग्न के साथ तुलना करनी चाहिए।

२—इष्टकाल, सूर्य स्थित नक्षत्र, जन्मकालीन चन्द्रमा, मान्दि एवं स्त्री-पुरुष-जन्म योग-द्वारा लग्न का विचार करना चाहिए।

३—प्रसूतिका-गृह, प्रसूतिका-वस्त्र एवं उपसूतिका-संख्या आदि उत्पत्ति कालीन वातावरण के निर्णय-द्वारा लग्न का निर्णय करना चाहिए।

४—जातक के शारीरिक चिह्न, गठन, रूप-रंग इत्यादि शरीर की बनावट-द्वारा लग्न का निर्णय करना। जिन्हें ज्योतिष शास्त्र की लग्न-प्रणाली का अनुभव होता है, वे जातक के शरीर के दर्शन मात्र से लग्न का निर्णय कर लेते है।

लग्न

	०	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३
मे. ०	२ ५० ९	२ ५७ ४७	३ ५ २५	३ १३ ५	३ २० ४८	३ २८ ३५	३ ३६ १८	३ ४८ ६	३ ५२ ०	३ ५९ ४८	४ ७ ४२	४ १५ ३९	४ २३ ४७	४ ३१ ३९
वृ. १	६ ५४ ५९	७ ३ ५२	७ १२ ४९	७ २१ ४७	७ ३० ५२	७ ३९ ५९	७ ४९ ११	७ ५८ २४	८ ७ ४०	८ १७ १	८ २६ २५	८ ३५ ४३	८ ४५ २४	८ ५४ ५९
मि. २	११ ४६ ४१	११ ५७ १६	१२ ७ ५५	१२ १८ ३७	१२ २९ ४२	१२ ४० ९	१२ ५१ १९	१३ १ ५१	१३ १२ ४७	१३ २३ ४५	१३ ३४ ४५	१३ ४५ ४८	१३ ५६ ५२	१४ ८ ०
क. ३	१७ २१ १३	१७ ३२ ४४	१७ ४४ १६	१७ ५५ ४९	१८ ७ २२	१८ १८ ५६	१८ ३० २९	१८ ४२ ३	१८ ५३ ३८	१९ ५ ११	१९ १६ ४४	१९ २८ २०	१९ ३९ ५२	१९ ५१ २५
सिं. ४	२३ ६ ३४	२३ १७ ५७	२३ २९ २७	२३ ४० ३९	२३ ५१ ५९	२४ ३ १९	२४ १४ ३९	२४ २५ ५५	२४ ३७ १२	२४ ४८ २८	२४ ५९ ४४	२५ १० ५८	२५ २२ १२	२५ ३३ २५
क. ५	२८ ४२ ३६	२८ ५३ ४०	२९ ४ ४६	२९ १५ ४७	२९ २६ ५०	२९ ३७ ५९	२९ ४८ ५७	३० ० २०	३० ११ ५३	३० २२ २१	३० ३३ ८	३० ४४ १३	३० ५५ ४	३१ ६ २०

सारणी

१४	१५	१६	१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४	२५	२६	२७	२८	२९	
४ ३९ ४१	४ ४७ ४९	५ ५५ ५७	५ ४ ९	५ १२ २३	५ २० ३९	५ २९ १	५ ३७ २	५ ४५ ५८	५ ५४ ३५	६ २ ४६	६ ११ २०	६ १९ ५८	६ २८ ३८	६ ३७ २२	६ ४६ ९	मे० ०
९ ४ ३७	९ १४ १९	९ २४ ४	९ ३३ ५३	९ ४३ ४६	९ ५३ ४२	१० ३ ४३	१० १३ ४५	१० २३ ५१	१० ३४ ०	१० ४४ १४	१० ५४ ३०	११ ४ ४९	११ १५ १३	११ २५ ३९	११ ३६ ९	वृ० १
१४ १९ ९	१४ ३० २०	१४ ४१ ३२	१४ ५२ ४९	१५ ४ ५	१५ १५ २४	१५ २६ ४४	१५ ८ ६	१५ ४९ २९	१६ ० ५३	१६ १२ १७	१६ २३ ४५	१६ ३५ १४	१६ ४६ ४२	१६ ५८ ११	१७ ९ ४२	मि० २
२० २ ५८	२० १४ ३०	२० २६ ३	२० ३७ ३७	२ ४९ ६	२१ ० ३७	२१ १२ ८	२१ २३ ३७	२१ ३५ १७	२१ ४६ ३५	२१ ५८ ४	२२ ९ ३०	२२ २० ५६	२२ ३२ २२	२२ ४३ ३७	२२ ५५ ११	क० ३
२५ ४४ ३८	२५ ५५ ४९	२६ ७ ०	२६ १८ १०	२६ २९ २५	२६ ४० ३६	२६ ५१ ४९	२७ २ ५१	२७ १३ ५३	२७ २४ ५९	२७ ३६ ६	२७ ४७ १२	२७ ५८ १७	२८ ९ २२	२८ २० २७	२८ ३१ ३२	सिं० ४
३१ १७ २४	३१ २८ २८	३१ ३९ ३३	३१ ५० ३७	३२ १ ४३	३२ १२ ४८	३२ २३ ५४	३२ ३५ ०	३२ ४६ ७	३२ ५७ १९	३३ ९ १०	३३ १९ २६	३३ ३० ३५	३३ ४१ ४९	३३ ५२ २९	३४ ४ ११	क० ५

लग्न

	०	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३
तु० ६	३४ १५ २२	३४ २६ ३४	३४ ३७ ४८	३४ ४९ २	३५ ० १६	३५ ११ ३१	३५ २२ ४६	३५ ३४ ५	३५ ४५ २१	३५ ५६ ४१	३६ ८ ६	३६ १९ २०	३६ ३० ३३	३६ ४२ ३
वृ० ७	३९ ५७ २	४० ८ ३५	४० २० ८	४० ३१ ४०	४० ४३ १६	४० ५४ ४९	४१ ६ ५२	४१ १७ ५६	४१ २९ ३१	४१ ४१ ४	४१ ५२ ३८	४२ ४ ११	४२ १५ ४३	४२ २७ १६
ध० ८	४५ ४० ५१	४५ ५२ ०	४६ ३ ७	४६ २४ १२	४६ २५ १५	४६ ३६ १५	४६ ४७ १३	४६ ५८ ८	४७ ८ ४१	४७ १९ ५१	४७ ३० १८	४७ ४१ २३	४७ ५२ ४	४८ २ ४४
म० ९	५० ५५ २२	५१ ५ १	५१ १४ ३६	५१ २४ १७	५१ ३३ ३५	५१ ४२ ४९	५१ ५२ १९	५२ १ ३६	५२ १० ४९	५२ २० १	५२ २९ ८	५२ ३८ १३	५२ ४७ ११	५२ ५६ ८
कुं० १०	५५ २० १७	५५ २८ २१	५५ ३६ १३	५५ ४४ २१	५५ ५२ १८	५५ ० १२	५६ ७ ५३	५६ १५ ५४	५६ २३ ४२	५६ ३१ २८	५६ ३९ १२	५६ ४६ ५४	५६ ५४ ३४	५७ २ १३
मी० ११	५९ ८ ५२	५९ १६ ११	५९ २३ १७	५९ ३० ४८	५९ ३८ ६	५९ ४५ १९	५९ ५२ ४२	० ० ०	० ७ १८	० १४ ४०	० २१ ५४	० २९ १२	० ३६ ४३	० ४३ ४९

सारणी

१४	१५	१६	१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४	२५	२६	२७	२८	२९	
३६ ५३ २५	३७ ४ ४९	३७ १६ १३	३७ २७ ३८	३७ ३९ ३	३७ ५० ३०	३८ १ ५६	३८ १३ २५	३८ २४ ४३	३८ ३६ २३	३८ ४७ ५२	३८ ५९ २३	३९ १० ५४	३९ २२ २५	३९ ३३ ५७	३९ ४५ २९	तु० ६
४२ ३८ ४७	४२ ५० १८	४३ १ ४९	४३ १३ १८	४३ २४ ४७	४३ ३६ १५	४३ ४७ ४३	४३ ५९ ७	४४ १० ३१	४४ २१ ५४	४४ ४३ ३६	४४ ४४ ३६	४४ ५५ ५४	४५ ७ १३	४५ १८ ३६	४५ २९ ३१	वृ० ७
४८ १३ १९	४८ २३ ५१	४८ ३४ २१	४८ ४४ ४७	४८ ५५ १०	४९ ५ २९	४९ १५ ४६	४९ २५ ५९	४९ ३६ ९	४९ ४६ १५	४९ ५६ १७	५० ६ १८	५० १६ १४	५० २६ ६	५० ३५ ५५	५० ४५ ४१	घ० ८
५३ ५ १	५३ १३ ५१	५३ २२ ३८	५३ ३१ २२	५३ ४० २	५३ ४८ ३९	५३ ५७ १४	५४ ५ ४७	५४ १४ २	५४ २२ ३८	५४ ३० ५९	५४ ३९ २०	५४ ४७ ३७	५४ ५५ ५१	५५ ४ ३	५५ १२ ५१	म० ९
५७ ९ ५०	५७ १७ १७	५७ २४ ५९	५७ ३२ ३२	५७ ३९ ५८	२७ ४८ २८	५७ ५५ ४९	५८ २ ३३	५८ ९ ५४	५८ १७ १९	५८ २४ ४४	५८ ३२ ७	५८ ३९ २४	५८ ४६ ५१	५८ ५४ २	५९ १ ३२	कुं १०
० ५१ ८	० ५८ २८	१ ५ ५८	१ १३ ९	१ २० ३१	१ २७ ५३	१ ३५ १६	१ ४२ ४०	१ ५० ५	१ ५७ २७	२ ४ ११	२ ११ ३२	२ २० २०	२ २७ २८	२ ३५ ०	२ ४२ ३४	मी ११

लग्न निकालने की सुगम विधि—सारणी-द्वारा जिस दिन का लग्न बनाना हो, उस दिन के सूर्य के राशि और अश पंचांग में देख कर लिख लेने चाहिए। आगे दी गयी लग्न-सारणी में राशि का कोष्ठक बायी ओर और अंश का कोष्ठक ऊपरी भाग मे है। सूर्य के जो राशि, अश लिखे हैं उन का फल लग्न-सारणी में अर्थात् सूर्य की राशि के सामने और अश के नीचे जो अंक सख्या मिले उसे इष्टकाल के घटी, पलों में जोड दे, वही योग या उस के लगभग जिस कोष्ठक में मिले, उसके बायी ओर राशि का अंक 'और ऊपरी अश का अंक होगा, 'यही राश्यादि लग्न माना होगा। त्रैराशिक-द्वारा कला विकला का प्रमाण भी निकाल लेना चाहिए।

उदाहरण—वि० सं० २००१ वैशाख शुक्ला २ सोमवार को २३ घटी २२ पल इष्टकाल का लग्न बनाना है। इस दिन पचाग में सूर्य ०।१०।२८।५७ लिखा है। इस को एक स्थान पर लिख लिया। लग्न-सारणी में शून्य राशि अर्थात् मेष राशि के सामने और १० अंश के नीचे ४।७।४२ संख्या लिखी है, इसे इष्टकाल में जोडा—

२३।२२।० इष्टकाल में
४।७।४२ फल को जोड़ा
२७।२९।४२

इस योग को पुनः लग्न-सारणी में देखा पर २७।२९।४२ तो कही नही मिले; किन्तु सिंह राशि के २३वें अंश के कोष्ठक में २७।२४।५९ संख्या मिली। इसी राशि के २४वें अंश के कोष्ठक में २७।३६।६ अंकसंख्या है, यह अंकसंख्या अभीष्ट योग की अंकसंख्या से अधिक है, अतः अंश २३ अंश सिंह राशि के ग्रहण करना चाहिए। अतएव लग्न का मान ४।२३ राश्यादि हुआ। कला, विकला निकालने के लिए २३वें और २४वें कोष्ठक के अको का एवं पूर्वोक्त योगफल और २३वें अंश के कोष्ठक के अंशो का अन्तर कर लेना चाहिए। द्वितीय अन्तर की संख्या को ६० से गुणा कर गुणनफल में प्रथम

अन्तर संख्या का भाग देने पर कलाएँ आयेंगी, शेष को पुन ६० से गुणा कर उसी सस्या का भाग देने से विकला आयेंगी। प्रस्तुत उदाहरण में—

२७।३६। ६—२४ अश के को० में-से
२७।२४।५९—२३ अश के को० को घटाया
११।७ इसे एकजातीय किया

११।७ × ६० =
६६० + ७ =
६६७

२७ २९।४२ योगफल में-से
२७।२४।५९—२३ अश के को० घटाया
४।४३ इसे एकजातीय किया
४।४३ × ६०
= २४० + ४३ = २८३,
२८३ × ६० = १६९८० ÷ ६६७ = २५।२७, अतएव लग्नमान ४।२३°।२५'।२७" हुआ।

इसी प्रकार अन्य उदाहरणो का गणित किया जा सकता है। यद्यपि यह गणित-प्रक्रिया सरल है, लेकिन स्वदेशीय उदयमान-द्वारा साधित गणित क्रिया की अपेक्षा स्थूल है।

प्राणपदसाधन और उस के द्वारा लग्नशुद्धि

यद्यपि कुछ विशेषज्ञो का मत है कि प्राणपद-द्वारा इष्टकाल की शुद्धि नही करनी चाहिए, क्योकि पराशर आदि प्राचीन ज्योतिर्विदो ने प्राणपद को एक अप्रकाशक ग्रह के रूप में मान कर उस का द्वादश भावो में फल बतलाया है। इसके द्वारा इष्टकाल की शुद्धि करने की जो प्रक्रिया प्रचलित है, वह आर्ष नही है। इस सम्बन्ध में मेरा यह मत है कि यह प्रणाली आर्ष हो या नही, किन्तु इष्टकाल का शोधन इस के द्वारा उपयुक्त है। ज्योतिषशास्त्र की प्रत्यक्ष-गणित-क्रिया ही इस में प्रमाण है।

१५ पल समय को प्राण कहते हैं, इस प्रकार एक घटी में चार प्राण होते हैं। क्रिया करने के लिए इष्टकाल की घटियों को चार से गुणा करना चाहिए और पलो में १५ का भाग देकर लब्धि को चतुर्गुणित[1] घटी संख्या में जोड़ देना चाहिए। इस योगफल में १२ का भाग देने पर जो शेष बचे वही प्राणपद की राशि होगी, शेष पलो को २से गुणा करने पर अंश होगे।

प्राणपद साधन का दूसरा नियम यह है कि इष्टकाल को पलात्मक बना कर १५ का भाग देने पर लब्ध राशि और शेष में २ का गुणा करने पर अंश होगे। पर यहाँ इतनी विशेषता और समझनी चाहिए कि राशि-संख्या यदि १२ से अधिक हो तो उस में १२ का भाग दे कर लब्ध को जोड शेष को राशिसंख्या माननी चाहिए। यह प्राणपद साधन की मध्यम विधि है। स्पष्ट करने के लिए यदि सूर्य चर[2] राशि में हो तो उस के राशि, अंश में प्राणपद के राशि, अंशो को जोड देने से स्पष्ट प्राणपद होता है और सूर्य स्थिर या द्विस्वभाव राशि में हो तो उस से पचम या नवम राशियो में जो चरराशि हो उस राशि और सूर्य के अंशो में गणितागत मध्यम प्राणपद के राशि अंशो को जोड़ देने से स्पष्ट प्राणपद होता है।

यदि गणितागत लग्न के अंश और प्राणपद के अंश बराबर हो तो लग्न को शुद्ध समझना चाहिए। अशो में अतुल्यता होने पर इष्टकाल को संशोधित करना—कुछ पल घटाना या बढाना चाहिए लेकिन यह सशोधन भी इस प्रकार का हो जिस से लग्नाशो में न्यूनता न आये।

उदाहरण—इष्टकाल २३ घटी २२ पल है और सूर्य ०।१० है २३।२२—इष्टकाल के पल बनाये—

---

१. घटी चतुर्गुणा कार्या तिथ्याप्तैश्च पलैर्युता। दिनकरेणापहृत शेष प्राणपद स्मृतम्॥ शेषात्पलान्ताद्द्विगुणीविधाय राश्यशसूर्यर्क्षनियोजिताय। तत्रापि तद्राशि-चरात् क्रमेण लग्नाशप्राणाशपदैक्यता स्यात्॥

२ चर—मेष, कर्क, तुला, मकर, स्थिर—वृष, सिंह, वृश्चिक, कुम्भ और द्विस्वभाव—मिथुन, कन्या, धन, मीन।

१३८० + २२ = १४०२ पलात्मक इष्टकाल
१४०२ ÷ १५ = ९३ लब्धि ७ शेष। शेष को २ से गुणा किया तो ७ × २ = १४ हुआ। ९३ ÷ १२ = ७ लब्धि ९ शेष आया। यहाँ लब्धि का त्याग कर दिया तो गणितागत मध्यम प्राणपद ९ राशि १४ अंश हुआ।

सूर्य मेष राशि के १० अंश पर है। मेष राशि चर है, अतः सूर्य के राशि अंशो में ही आगत प्राणपद को जोड़ा।

०।१० सूर्य के राशि के अंश में ९।१४ प्राणपद को जोड़ा तो =

९।२४ स्पष्ट प्राणपद हुआ।

पहले इसी इष्टकाल का लग्नांश २३ आया है और प्राणपद का अंश २४ है। ये दोनो अंशात्मक मान मिलते नही हैं अतः इष्टकाल को कुछ कम या अधिक करना चाहिए जिससे लग्नांश मिल जाये। प्राणपदांश सख्या में १ अंश अधिक है, इसलिए इष्टकाल को कुछ कम करना होगा। यदि इष्टकाल में ½ पल कम कर दिया जाये तो प्राणपदांश लग्नांश से मिल जायेगा, क्योंकि १ पल में २ अंश होते हैं, अत. इष्टकाल २३ घटी २१½ मानना होगा। इस इष्टकाल पर से पूर्वोक्त प्रक्रिया के अनुसार लग्न के राश्यादि निकाल लेने चाहिए। प्राणपद से लग्न निश्चय करने में एक रहस्यपूर्ण बात यह है कि प्राणपद की राशि या उससे ५वी, ७वी और ९वी लग्न की राशि आती हो अथवा प्राणपद की ७वी राशि से ५वी और ९वी लग्न की राशि हो तो मनुष्य का जन्म समझना चाहिए। यदि प्राणपद की राशि से २री, ६ठी और १०वी राशि लग्न-राशि हो तो पशु का जन्म, प्राणपद की राशि से ३री, ७वी और ११वी राशि लग्न-राशि हो तो पक्षी का जन्म एवं प्राणपद की राशि से ४थी, ८वीं और १२वी राशि लग्न-राशि हो तो कीट, सर्पादि का जन्म समझना चाहिए।

लड़के या लडकी की जन्मकुण्डली बनाते समय प्राणपद से मनुष्य-जन्म सिद्ध न हो तो उस इष्टकाल को कुछ घटा-बढाकर शुद्ध करना चाहिए।

गुलिकसाधन

अपने स्थान के दिनमान में ८का भाग देकर प्रत्येक भाग में एक-एक अधिपति की कल्पना की जाती है और जिस भाग का अधिपति शनि होता है—शनि के खण्ड को, गुलिक कहते हैं। प्रतिदिन के खण्डो के अधिपतियों की गणना उस दिन के वाराधिपति से क्रमश की जाती है। जैसे मगलवार के दिन गुलिक बनाना हो तो १ले खण्ड का अधिपति मगल, २रे का बुध, ३रे का बृहस्पति, ४थे का शुक्र, ५वें का शनि, ६ठे का रवि और ७वें का चन्द्रमा होगा। ८वें खण्ड का कोई अधिपति नही होता है। इस दिन शनि ५वाँ खण्ड है, अतः ५वाँ गुलिक कहलायेगा।

रात मे जन्म होने पर रात्रिमान के समान ८ भागो में से प्रथम भाग खण्ड का वाराधिपति से पंचमग्रह अधिपति होता है। इसी प्रकार क्रमश. आगे गणना करने पर जिस खण्ड का अधिपति शनि होगा, वही गुलिक खण्ड कहलायेगा। जैसे—सोमवार की रात्रि को गुलिक जानने के लिए रात्रिमान में ८का भाग देकर पृथक्-पृथक् खण्ड निकाल लिये। यहाँ प्रथम खण्ड का स्वामी चन्द्रमा से पंचम ग्रह शुक्र होगा। द्वितीय खण्ड का शनि, तृतीय का रवि; चतुर्थ का चन्द्रमा, पंचम का मंगल, षष्ठ का बुध और सप्तम का बृहस्पति होगा। यहाँ सुविधा के लिए नीचे गुलिक-चक्र दिया जाता है जिस से प्रतिदिन के दिनाखण्ड और रात्रिखण्ड के गुलिक का बिना गणना किये ज्ञान हो सके।

गुलिक-ज्ञापक चक्र

रवि	सोम	मंगल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि	वार
७	६	५	४	३	२	१	दिन के इष्टकाल में गुलिक खण्ड
३	२	१	७	६	५	४	रात्रि के इष्टकाल में गुलिक खण्ड

गुलिक इष्ट बनाने की प्रक्रिया यह है कि जिस दिन का गुलिक बनाना हो, उस दिन दिन का जन्म होने पर दिनमान में और रात का जन्म होने पर रात्रिमान में ८का भाग देने से जो लब्ध आवे, उस में गुलिक-ज्ञापक चक्र में लिखित उस दिन के अंक से गुणा कर देने पर इष्टकाल हो जाता है। इस गुलिक इष्टकाल पर से लग्न-साधन की प्रक्रिया के अनुसार लग्न बनाना चाहिए, वही गणितागत गुलिक लग्न होगा।

उदाहरण—वि० स० २००१ वैशाख शुक्ल द्वितीया सोमवार को दिन के २-४५ मिनिट पर जन्म हुआ है। इस दिन का गुलिक इष्टकाल—

सोमवार के दिनमान ३२ घटी ६ पल में ८का भाग दिया—३२।६ ÷ ८=४।०।४५ एक खण्ड का मान हुआ। इसे गुलिक-ज्ञापक चक्र में अंकित सोमवार की अंक सख्या ६ से गुणा किया—

४।०।४५ × ६=२४।४।३० गुलिक इष्टकाल हुआ। लग्न बनाने के लिए सोमवार के सूर्य के राश्यंश (०।१०) लग्न-सारणी में देखें तो ४ ७।४२ फल मिला। २४।४।३० इष्टकाल में

४।७।४२ प्राप्त फल को जोडा

२८।१२।१२ इसे पुन लग्न-सारणी में देखा तो ४।२७ लग्न आया। अर्थात् सिंह राशि के २७वें अंश पर गुलिक लग्न है।

गुलिक लग्न का उपयोग

गुलिक लग्न से पूर्व साधित जन्म-लग्न राशि १ली, ३री, ५वी, ७वी, ९वी और ११वी हो तो मनुष्य का जन्म समझना चाहिए तथा गणितागत लग्न को शुद्ध मानना चाहिए।

लग्न के शुद्धाशुद्ध अवगत करने के अन्य उपाय

(१) इष्टकाल में २ का भाग देने से जो लब्ध आवे, उस में सूर्य जिस नक्षत्र में हो उस नक्षत्र की सख्या को मिला दे। इस योग में २७ का भाग

देने से जो शेष रहे उसी संख्यक नक्षत्र की राशि में लग्न होता है।

उदाहरण—२३।२२ इष्टकाल है और सूर्य अश्विनी नक्षत्र में है।

२३।२२ ÷ २ = ११,४१; यहाँ अश्विनी नक्षत्र से सूर्य नक्षत्र तक गणना की तो १ संख्या आयी, इसे फल में जोड़ा—११।४१ + १।० = १२।४१ ÷ २७ = ० लब्ध, १२।४१ शेष रहा। अश्विनी से १२वी संख्या तक गणना करने पर उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र आया। उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र की सिंह राशि है; यही लग्न राशि १ले भी आयी है, अत. यह लग्न शुद्ध है।

(१) इष्टकाल को ६ से गुणा कर गुणनफल में जन्मदिन के सूर्य के अंश जोड़ दे। इस योगफल में ३० का भाग देकर लब्धि ग्रहण कर लेनी चाहिए तथा १५ से अधिक शेष रहने पर लब्धि में और जोड देना चाहिए। यदि ३० से भाग न जाये तो लब्धि एक मान लेनी चाहिए। सूर्य राशि को अगली राशि से भागफल के अंको को गिन लेने से जो राशि आवे वही लग्न की राशि होगी। यदि यह गणितागत लग्न से मिल जाये तो लग्न को शुद्ध समझना चाहिए।

उदाहरण—इष्टकाल २३।२२ × ६ = १४०।१२

१४०।१२ इस में
१०।० सूर्य के अंश जोडे

१५०।१२ ÷ ३० = ५ लब्धि, ०।१२ शेष।

सूर्य मेष राशि पर है, उस से अगली राशि वृष है, अतः वृष से पाँच अंक आगे गिनने पर कन्या राशि आती है। प्रस्तुत उदाहरण का लग्न सिंह आया है, इस का निर्णय पहले दो-तोन नियमों से भी किया गया है, अतः यहाँ पर एक घटा कर लग्न निकालना चाहिए। ज्योतिष के गणित में कभी-कभी एक घटा कर या एक जोड़ कर भी क्रिया की जाती है।

(३) यदि दिन में दिनमान के अर्द्ध भाग से पहले जन्म हो तो जन्म-कालीन रविगत नक्षत्र से ७वें नक्षत्र की राशि; दिन के अवशेष भाग

में जन्म हो तो रविगत नक्षत्र से १२वें नक्षत्र की राशि एवं रात्रि के पूर्वार्द्ध में जन्म होने से १७वें नक्षत्र की राशि और शेप रात्रि में जन्म होने से २४वें नक्षत्र की राशि लग्नराशि होती है।

उदाहरण—इष्टकाल २३।२२ घट्यात्मक है। दिनमान ३२।६ है, इस का आधा १६।३ हुआ; प्रस्तुत इष्टकाल दिन के पूर्वार्द्ध से आगे का है, अत रवि-नक्षत्र से १२वें नक्षत्र की राशि लग्न की राशि होनी चाहिए। रवि नक्षत्र यहाँ अश्विनी है, अश्विनी से १२ नक्षत्र उत्तराफाल्गुनी आता है, इस नक्षत्र की राशि सिंह है, यही लग्न की राशि हुई।

(४) चन्द्रमा से पंचम या नवम स्थान में लग्न-राशि का होना सम्भव है। चन्द्रमा के नवमाश के सप्तम स्थान से नवम और पंचम स्थान में लग्न राशि का होना सम्भव है। चन्द्रमा जिस स्थान में हो उस स्थान के स्वामी से विपम स्थानो में लग्न का होना सम्भव है। लग्न में भी चन्द्रमा रह सकता है।

नवग्रह स्पष्ट करने की विधि

जिस इष्टकाल की जन्मपत्री बनानी हो, उस के ग्रह स्पष्ट अवश्य कर लेने चाहिए। क्योंकि ग्रहो के स्पष्ट मान के ज्ञान बिना अन्य फलादेश ठीक नही घट सकता है। यहाँ ग्रह स्पष्टीकरण का तात्पर्य ग्रहो के राश्यादि मान से है। दूसरी बात यह है कि कुण्डली के द्वादशभावों में ग्रहो का स्थापन ग्रहमान—राश्यादि ग्रह ज्ञात हो जाने पर ही सम्यक् हो सकता है। अतएव प्रत्येक जन्मकुण्डली में जन्माग चक्र के पूर्व ग्रहस्पष्ट चक्र लिखना अनिवार्य है। चन्द्रमा को छोड शेप आठ ग्रहो के स्पष्ट करने की विधि एक-सी है।

पंचांगों में ग्रहस्पष्ट की पंक्ति लिखी रहती[1] है। लेकिन किसी मे

---

१ प्रस्तारस्तु यदाग्रे स्यादिष्टं संशोधयेद्दणम्।
इष्टकालो यदाग्रे स्यात्प्रस्तार सशोधयेद्धनम्॥

पचांग में आठ-आठ दिन के ग्रह स्पष्ट किये लिखे रहते हैं, इसे पक्ति या प्रस्तार कहते है। प्रस्तार यदि इष्टकाल से आगे हो तो प्रस्तार के बार-घटी-पल में इष्ट समय के बार-घटी-पल घटा दें। जो शेप रहे वह वारादि ऋणचालन होता है और जो इष्टकाल

अष्टमी, अमावास्या और पूर्णिमा की पंक्ति रहती है और किसी में मिश्रमान कालिक या प्रात.कालिक। जिस पंचाग में दैनिक मिश्रमानकालिक या प्रात.कालिक ग्रहस्पष्ट की पंक्ति रहती है, उस के अनुसार मिश्रमान और इष्टकाल अथवा प्रात.काल और इष्टकाल का अन्तर कर दैनिक[1] गति से गुणाकर ६० का भाग देने से जो अश, कला, विकलारूप फल आये उसे मिश्रमानकालिक या प्रात.कालिक ग्रहस्पष्ट पंक्ति में ऋण, धन करने पर इष्टकालिक ग्रहस्पष्ट आ जाते है। परन्तु जिस पंचाग में साप्ताहिक, ग्रहस्पष्ट पंक्ति दी हो उस के अनुसार यदि अपने इष्ट समय से पंक्ति आगे की हो तो पक्ति के वार[2], घटी, पलों में से इष्टकाल के वार, घटी, पल घटाने से शेष तुल्य ऋण-चालन होता है। यदि पक्ति पीछे की हो और इष्टकाल आगे का हो तो इष्टकाल के वार, घटी, पलों में से पंक्ति के वार, घटी, पलो को घटाने पर धनचालन होता है। इस ऋण या धनचालन को पंचाग में दी गयी ग्रहगति से गुणा करने पर जो अशादि आयें उन्हें धन या ऋणचालन के अनुसार पंचागस्थित ग्रहमान में जोड़ने या घटाने से स्पष्ट ग्रह आते हैं।

वक्रीग्रह, राहु एवं केतु के लिए सर्वदा ऋणचालन में आगत अंशादि

आगे हो और प्रस्तार पीछे हो तो इष्टकालात्मक वार-घटी पलमें से प्रस्तार के वार-घटी-पल घटा देने से शेष अंक वारादि धनचालन होता है।

गतेष्यदिवसाद्येन गतिर्निघ्नो खषड्हृता।
लब्धमशादिकं शोध्य योज्यं स्पष्टो भवेद् ग्रह ॥

धनचालन या ऋणचालन से ग्रह की गति को गुणा करे, फिर गोमूत्रिका रीति से साठ का भाग दे तो अंश, कला, विकलात्मक लब्ध होगा। इसे पंचागस्थ ग्रह में घटा देने या जोड देने से तात्कालिक स्पष्ट ग्रह मान होता है। यहाँ यह ध्यातव्य है कि वक्री ग्रह होने पर ऋणचालन को जोडना और धनचालन को घटाना चाहिए।

१ दो दिन के स्पष्ट ग्रहों का अन्तर करने पर दैनिक गति आती है।

२. वार गणना रविवार से ली गयी है, अर्थात् रविवार को १ संख्या, सोमवार को २, मंगल को ३ इत्यादि।

फल को जोडने और घनचालन में आगत अंशादि फल को घटाने से स्पष्टमान होता है ।

उदाहरण—वि० सं० २००१ वैशाख शुक्ला २ सोमवार को २३।२२ इष्टकाल के ग्रह स्पष्ट करने हैं । पंचाग में वैशाख शुक्ला पंचमी शुक्रवार के ५।५१ इष्टकाल की ग्रहस्पष्ट पंक्ति लिखी है । यहाँ इष्टकाल सोमवार का है और ग्रहपंक्ति शुक्रवार की है, अतः इष्टकाल से ग्रहपंक्ति आगे की हुई तथा ग्रह पंक्ति में-से इष्टकाल को घटाना है, इस लिए यहाँ ऋण-सस्कार हुआ—

६।५।५१ पक्ति के वारादि, २।२३।२२ इष्टकाल के वारादि ।

ग्रहपंक्ति वै० शु० ५ शुक्रवार इष्टकाल ५।५१

सूर्य	मंगल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि	राहु	केतु	ग्रह
०	२	०	३	११	२	३	९	राशि
१३	२६	२२	२४	२७	०	८	८	अश
४३	०	१६	१६	२०	२३	५४	५४	कला
२२	३३	५	४४	१०	४६	५०	५०	विकला
५८	३४	१७	३	७४	५	३	३	कला गति
१२	२८	३९ व	४	१२	४८	११	११	वि० गति

६।५।५१ पक्ति के वारादि में-से २।१३।२२ इष्टकाल के वारादि को घटाया तो ३।४२।२९ ऋण चालन आया ।

सूर्यसाधन

चालन	सूर्यगति
	५८।१२
३	१७४।३६—तीन के अंक का गुणनफल
४२	२४३६।५०४ ब्यालीस के अंक का गुणनफल
२९	१६८२।३४८ उन्तीस के अंक का गुणनफल
	१७४।२४७२।२१८६।३४८ ÷ ६० (६० से भाग दे कर लब्धि ५, शेष ४८ आगे की राशियो में जोडा)

१७४।२४७२।२१९१ ÷ ६०

लब्ध ३६, शेष ३१

१७४।२५०८ ÷ ६०।३१।४८

लब्ध ४१, शेष ४८

---

२१५ ÷ ६०।४८।३१।४८

३'।३५'।४८"।३१'"।४८""

प्रक्रिया यह है कि गुणा करते समय एक-एक अक दाहिनो ओर बढा कर रखते जायेंगे और सब कलादि को जोड़ देंगे। फिर सब अंकों में ६० का भाग देते हुए लब्धि को बायी ओर की संख्या में जोडने से अंशादि फल होगा।

०।१३।४३।२२ पंक्ति के सूर्य में-से

३।३५।४७ आगतफल को घटाया   { ऋण चालन होने से फल को घटाया है।

०।१०।७।३४ स्पष्ट सूर्य हुआ

मंगलसाधन

चालन

	३४।२८ मंगल गति
३	१०२।८४
४२	१४२८।११७६
२९	९८६।८१२
	१०२।१५१२।२१६२।८१२ – ६०
	लब्ध १३ शेष ३२

१०२।१५१२।११७५ ÷ ६२।३२
लब्ध १६ शेष १५

१०२।१५४८ ÷ ६०।१५।३२
लब्ध २५ ४८ शेष

१२७ ÷ ६०।४८।१५।३२

२°।७'।४८"१५"।३२"" यहाँ केवल विकला तक ही फल इष्ट है।

२।२३।०।३२ पक्ति के मगल में-से

२।७।४८ आगत फल को घटाया

२।२१।५२।४४ स्पष्ट मंगल

बुधसाधन

	१७।३९ बुध गति
३	५१।११७
४२	७१४।१६३८
२९	४९३।११३१
	५११८३१।२१३।११३१ (पूर्ववत् ६० का भाग देने के पश्चात् अंशादि का फल निकाला)

1°।५'।२६"।४८'''।५१'''' बुध फल आया। यह बुध वक्री है, अत ऋणचालन होने से इस फल को पंक्ति के बुध में जोडा—

०।२२।१६।५
 १। ५।२६
―――――
०।२३।२१।३१ स्पष्ट बुध हुआ

इसी तरह चन्द्रमा के सिवा अन्य सभी ग्रहों का स्पष्टीकरण किया जाता है।

चन्द्रस्पष्ट की विधि

भयात की घटियों को ६० से गुणा कर पल जोडने से पलात्मक भयात और भभोग की घटियों को ६० से गुणा कर पल जोड़ देने से पलात्मक भभोग होता है। पलात्मक भयात को ६० से गुणा कर पलात्मक भभोग का भाग दें; शेष को पुन ६० से गुणा कर उसी पलात्मक भभोग का भाग दें; ३री वार शेष को फिर ६० से गुणा कर पलात्मक भभोग का भाग दें, तो लब्ध वर्तमान नक्षत्र के भुक्त घटी, पल होंगे। अश्विनी नक्षत्र से गत नक्षत्र तक गिन कर ६० से गुणा कर भुक्त घटी, पलादि में जोड़ दें और इस योगफल को २ से गुणा कर गुणनफल में ९ से भाग देने पर लब्ध अंश, कला, विकला फल होगा। यदि अंशसंख्या ३० से अधिक आवे तो ३० का भाग दे कर राशि बना लेना चाहिए।[1]

---

[1] गता भघटिका खतर्कगुणिता भभोगोद्धृता,
युता च भगतेन षष्टि ६० गुणितेन द्विघ्नीकृता।
नवाप्तलवपूर्वके शशिभवेत्तु तत्पूर्वके-
र्नभोऽम्बरवियद्गजाब्धि ४८००० युग्मवेज्जवा कीर्त्तिता॥

भयात घटी-पल को साठ से गुणा कर के भभोग के पलों से भाग देने पर जो अंक मिलें, उन घटी-पल-विपलात्मक तीन अंकों को स्पष्ट भयात जानना चाहिए। अनन्तर इन अंकों को साठ से गुणे हुए अश्विनी आदि गतनक्षत्र संख्या में जोड कर दूना करे। पश्चात् नौ से भाग देकर अंश, कला और विकला रूप फल आता है। अंशों में तीस का भाग देने से राशि आती है। इस प्रकार राश्यंशादि रूप चन्द्रमा होता है।

उदाहरण—भयात १६।३९ और भभोग ५८।४४ है।

१६।३९
६०

९६०+३९=९९९ पलात्मक भयात
५८।४४
६०

३४८०+४४=३५२४ पलात्मक भभोग
९९९×६०=५९९४०÷३५२४=१७।०।३२ अर्थात् १७ घटी की ० पल ३२ विपल लब्धि हुई। यहाँ जन्मनक्षत्र कृत्तिका है, अतः उस के पहले का नक्षत्र भरणी हुआ। अश्विनी से गणना करने पर भरणी तक दो संख्या हुई अतः २×६०=१२०
(१२०)+(१७।०।३२)=१३७।०।३२ इसे २ से गुणा किया—
१३७।०३२×२=२७४।१।४
२७४।१।४÷९=३०।२६।४७ अशात्मक लब्धि हुई। अत. अंशो में ३० का भाग दिया तो १।०।२६।४७ राश्यादि चन्द्र स्पष्ट हुआ।

चन्द्रगतिसाधन

२८८०००० में पलात्मक भभोग से भाग देने पर लब्ध चन्द्रमा की गति की कलाएँ आयेंगी, शेप में ६० का गुणा कर पलात्मक भभोग का भाग देने पर लब्ध गति की विकलाएँ आवेंगी।

उदाहरण—पलात्मक भभोग ३५४२ है।

२८८००००÷३५२४=८१७ लब्धि, शेप ८९२×६०=५३५२०÷३५२४=१५ लब्धि, शे० ५६०, अतएव चन्द्रस्पष्ट गति ८१७।१५ हुई।

चन्द्रसारणी-द्वारा चन्द्रस्पष्ट करने की विधि

जिस नक्षत्र का जन्म हो उस के पहले के नक्षत्र के नीचे की राश्यादि अकसंख्या 'सत्ताईस नक्षत्रोपरि स्पष्ट राश्यादि चन्द्रसारणी' में देखकर लिख लेना चाहिए। पश्चात् भयात की घटियो की राश्यादि अंकसंख्या को 'भयात गतघटी पर चन्द्रसारणी' में देख कर लिख लेना चाहिए। अनन्तर आगे वाले कोष्ठक के साथ अन्तर कर अनुपात से पलो का फल निकालना चाहिए अथवा अन्तर को पलो से गुणा कर ६० का भाग देने से अंशादि लब्ध उसे पहले वाले फल में जोड़ देने पर भयात का अंशादि फल आ जायेगा; पुन नक्षत्र और इस भयात के फल को जोड़ देने से चन्द्र स्पष्ट हो जायेगा। यहाँ स्मरण रखने की एक बात यह है कि १३ अंश २० कला का विभाजन भभोग में करना चाहिए। कारण भभोग ६० घटी से प्राय. सर्वदा ही ज्यादा या कम होता है अतः भयात के पलों को १३ अश २० कला से गुणा कर भभोग के पलो का भाग देकर जो अंशादि फल आये उसे नक्षत्रफल में जोड़ने से स्पष्ट चन्द्रमा होता है।

उदाहरण—भयात १६।३९ कृत्तिका, भभोग ५८।४४। यहाँ जन्म-नक्षत्र के पहले का नक्षत्र भरणी है। अतः भरणी के नीचे की अकसंख्या ०।२६।४०।० हैं। पलात्मक भयात ९९९ और पलात्मक भभोग ३५२४ है। अतएव १३ अश २० कला $= १३\frac{२०}{६०} = १३ + \frac{१}{३} = \frac{४०}{३} \times \frac{९९९}{३५२४} = \frac{३९९६०}{१०५७२} = \frac{४०}{३} \times \frac{९९९}{३५२४} = \frac{३३३०}{८८१} = ३\frac{६८७}{८८१} \times \frac{६०}{१} = ४७\frac{१३}{८८१} \times \frac{६०}{१} = \frac{७८०}{८८१}$ = ०, ७८० − ०, ३।४७।० अंशादि।

०।२६।४०।० भरणी की अंकसख्या

०। ३।४७।० भयात का फल

१। ०।२७।० स्पष्ट चन्द्रमा

नक्षत्रोपरि स्पष्ट राश्यादि चन्द्र सारणी

अ०	भ०	कृ०	रो०	मृ०	आ०	पु०	पु०	श्ले०	म०	पू०	उ०	ह०
१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३
०	०	१	१	२	२	३	३	४	४	४	५	५
१३	२६	१०	२३	६	२०	३	१६	०	१३	२६	१०	२३
२०	४०	०	२०	४०	०	२०	४०	०	२०	४०	०	२०
०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०

चि०	स्वा०	वि०	अनु०	ज्ये०	मू०	पू०	उ०	श्र०	ध०	श०	पू०	उ०	रे०
१४	१५	१६	१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४	२५	२६	२७
६	६	७	७	८	८	८	९	९	१०	१०	११	११	१२
६	२०	३	१६	०	१३	२६	१०	२३	६	२०	३	१६	०
४०	०	२०	४०	०	२०	४०	०	२०	४०	०	२०	४०	०
०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०

भयात गतघटीपर चन्द्र सारणी

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४	२५	२६	२७	२८	२९	३०
०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०
०	०	०	०	१	१	१	१	२	२	२	२	२	३	३	३	३	४	४	४	४	४	५	५	५	५	६	६	६	६
१३	२६	४०	५३	६	२०	३३	४६	०	१३	२६	४०	५३	६	२०	३३	४६	०	१३	२६	४०	५३	६	२०	३३	४६	०	१३	२६	४०
२०	४०	०	२०	४०	०	२०	४०	०	२०	४०	०	२०	४०	०	२०	४०	०	२०	४०	०	२०	४०	०	२०	४०	०	२०	४०	०
३१	**३२**	**३३**	**३४**	**३५**	**३६**	**३७**	**३८**	**३९**	**४०**	**४१**	**४२**	**४३**	**४४**	**४५**	**४६**	**४७**	**४८**	**४९**	**५०**	**५१**	**५२**	**५३**	**५४**	**५५**	**५६**	**५७**	**५८**	**५९**	**६०**
०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	१	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०
६	७	७	७	७	८	८	८	८	८	९	९	९	९	१०	१०	१०	१०	१०	११	११	११	११	१२	१२	१२	१२	१२	१३	१३
५३	६	२०	३३	४६	०	१३	२६	४०	५३	६	२०	३३	४६	०	१३	२६	४०	५३	६	२०	३३	४६	०	१३	२६	४०	५३	६	२०
२०	४०	०	२०	४०	०	२०	४०	०	२०	४०	०	२०	४०	०	२०	४०	०	२०	४०	०	२०	४०	०	२०	४०	०	२०	४०	०

सर्वर्क्षपर गति बोधक स्पष्ट सारणी

५४	५५	५६	५७	५८	५९	६०	६१	६२	६३	६४	६५	६६	६७
८८८	८७२	८५७	८४२	८२७	८१३	८००	७८६	७७४	७६१	७५०	७३८	७२७	७१६
४८	४०	८	६	३४	३३	०	५४	१२	५७	०	३०	१८	२८

स्पष्ट ग्रहचक्र

सूर्य	चन्द्र	मंगल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि	राहु	केतु	
०	१	२	०	३	११	२	३	९	रा०
१०	०	२१	२३	२४	२३	७	९	९	अ०
७	३४	५२	२१	७	२०	७	५	५	क०
३४	३४	४४	३१	३२	१०	१०	४५	१५	वि०

सारणी-द्वारा चन्द्रगति स्पष्ट करने का नियम भभोग की घटियों के नीचे की अंक-सख्या देख कर लिख लेनी चाहिए। पश्चात् आने वाले कोष्ठक के साथ अन्तर कर पलो से गुणा कर ६० का भाग दें। जो लब्ध आये उसे पूर्वोक्त फल में जोड या घटा देने से चन्द्र की स्पष्टगति आ जाती है।

उदाहरण—भभोग ५८।४४ है। 'सर्वर्क्ष पर गति का स्पष्ट' नामक चक्र में ५८ के नीचे अंकसंख्या ८२७।३४ है। आगे की कोष्ठक-संख्या ८१३।३३ है, दोनो संख्याओ का अन्तर किया—

८२७।३४
८१३।३३
―――――
१४। १ इसे ४४ से गुणा किया

१४। १ को एकजातीय बनाया तो १४।१
                                                ६०
                                            ―――
                                            ८४० + १=८४१

८४१ × ४४=३७००४ ÷ ६०=६१६ विकला

६१६ ÷ ६०=१०।१६ इसे पहले वाले फल में-से घटाया अत

८२७।३४,
१०।१६
―――――
८१७।१८ चन्द्र की गति

अन्य ग्रहो की गति पचाग में लिखी रहती है अत उसी को जन्मपत्री में लिख देते है। जिन पंचाग में दैनिक ग्रह स्पष्ट रहते है उन में दो दिन के

ग्रहों का अन्तर निकाल लेना चाहिए। परन्तु चन्द्रमा की स्पष्ट गति उपर्युक्त विधि से ही निकालनी चाहिए।

जन्मपत्री में नवग्रह स्पष्ट चक्र लिखने के पश्चात् जो लग्न आया हो उसी को पहले रख कर द्वादश कोठो में अंक स्थापित कर दें। पश्चात् जो ग्रह जिस राशि पर हो उसे वहाँ स्थापित कर देना चाहिए, उदाहरण—यहाँ लग्न ४।२३।२५।२।७ आया है, अत. लग्नस्थान में ५ का अंक रखा जायेगा। भारतीय पद्धति के अनुसार जन्मपत्री लिखने की प्रक्रिया निम्न प्रकार है.—

आदित्याद्या ग्रहाः सर्वे नक्षत्राणि च राशय.।
सर्वान् कामान् प्रयच्छन्तु यस्यैषा जन्मपत्रिका ॥१॥
स्वस्तिश्रीसौख्यधात्री सुतजयजननी तुष्टिपुष्टिप्रदात्री
माङ्गल्योत्साहकर्त्री गतभवसदसत्कर्मणां व्यञ्जयित्री।
नानासम्पद्विधात्री धनकुलयशसामायुषां वर्द्धयित्री
दुष्टापद्विघ्नहर्त्री गुणगणवसतिर्लिख्यते जन्मपत्री ॥२॥

श्रीमान् नृपति विक्रम संवत् २००१, शक संवत् १८६६, वैशाख मास, कृष्णपक्ष सोमवार को द्वितीया तिथि में, जिस का घट्यादि मान विश्व-पंचाग के अनुसार आरा में देशान्तर सस्कृत ४५ घटी ९ पल, भरणी नक्षत्र का मान ६ घटी ४३ पल तदुपरि कृत्तिका नक्षत्र, आयुष्मान् योग का मान १७ घटी ८ पल, बालव नाम करण का मान घट्यादि १६।४७, जन्म-समय का संस्कृत इष्टकाल २३।२२।२३ है। इस दिन दिनमान घट्यादि ३२।६, रात्रिमान २७।५४, उभयमान ६०।० में आरा नगरनिवासी श्रीमान् चित्रगुप्तवंश में श्रेष्ठ बाबू हनुमानदास के पुत्र बाबू हरिहरप्रसाद के चिरंजीवि पुत्र हरिमोहन सेन की वैदिक विधिपूर्वक परिणीता भार्या मोहनदेवी की दक्षिण कुक्षि से पुत्र उत्पन्न हुआ। होराशास्त्रानुसार भयात १६।३९ भभोग ५८।४४ है, अतएव कृत्तिका नक्षत्र के द्वितीय चरण में जन्म हुआ और इस का राशि नाम 'ई' अक्षर पर ईश्वरदेव रखा गया। यह पुत्र गुरुजन और पुण्य के प्रसाद से दीर्घजीवी हो।

संस्कृत भाषा में लिखने की विधि

अथ श्रीमन्नृपतिविक्रमार्कराज्यात् २००१ संवत्सरे १८६६ शाके वसन्तर्तौ शुभे वैशाखमासे कृष्णपक्षे चन्द्रवासरे द्वितीयाया तिथौ घट्यादय· ४५।९ भरणीनक्षत्रे घट्यादकः ६।४३ तदुपरि कृत्तिकानक्षत्रे, आयुष्मान्-योगे घट्यादय १७।८ वालवकरणे घट्यादय. १६।४७ अत्र सूर्योदयादिष्ट-कालः घट्यादय. २३।२२।२३ मेषराशिस्थिते सूर्ये वृषराशिस्थिते चन्द्रे एवं पुण्यतिथौ पञ्चाङ्गशुद्धौ शुभग्रहनिरीक्षितकल्याणवत्या वेलाया सिंहलग्नोदये दिनप्रमाणं घट्यादय. ३२।६ रात्रिप्रमाणं घट्यादयः २७।५४ उभयप्रमाणं ६०।० आरानगरे चित्रगुप्तवंशावतसस्य श्रीमत हनुमानदासस्य पुत्रः हरि-प्रसादस्तस्य पुत्रः बाबू हरिमोहनसेनस्य गृहे सुशीलवतीभार्याया· दक्षिणकुक्षौ द्वितीयपुत्रमजीजनत् । अत्रावकहोडाचक्रानुसारेण भयातम् १६।३९ भभोग ५८।४४ तेन कृत्तिकानक्षत्रस्य द्वितीयचरणे जायमानत्वात् ईकाराक्षरे 'ईश्वरदेव' इति राशिनाम प्रतिष्ठितम् । अयं च देवगुरुप्रसादाद्दीर्घायुर्भूयात् ।

इस के पश्चात् जो पहले नवग्रहस्पष्ट चक्र लिया गया है, उसे लिखना चाहिए, पश्चात् जन्मकुण्डली चक्र को अंकित करना । पहले उदाहरणानुसार जन्मकुण्डली चक्र निम्न प्रकार हुआ—

द्वादश भाव स्पष्ट करने की विधि[1]

भाव स्पष्ट करने के लिए प्रथम दशम भाव का साधन किया जाता है। इस भाव का गणित करने के लिए नतकाल जानने की आवश्यकता होती है, क्योंकि दशम भाव की साधनिका के लिए नतकाल ही इष्टकाल होता है। नतकाल ज्ञात करने के निम्न चार प्रकार हैं—

१—दिनार्ध से पहले का इष्टकाल हो तो इष्टकाल को दिनार्ध में-से घटाने से पूर्वनत होता है।

२—दिनार्ध के बाद का इष्टकाल हो तो दिनमान में-से इष्टकाल घटा कर जो अवशेष बचे, उसको दिनार्ध में घटाने से पश्चिमनत होता है।

३—रात्रि अर्ध से पहले का इष्टकाल हो तो दिनमान को इष्टकाल में घटाने से जो शेष आवे उस में दिनार्ध जोड़ने से पश्चिमनत होता है।

---

१. पूर्वं नतं स्याद्दिनरात्रिखण्डं दिवानिशोरिष्टघटीविहीनम्।
दिवानिशोरिष्टघटीषु शुद्धं द्युरात्रिखण्डं त्वपरं नतं स्यात्॥
तत्काले सायनार्कस्य भुक्तभोग्यांशसंगुणात्।
स्वोदयात्खाग्नि ३० लब्धं यद्भुक्तं भोग्यं रवेस्त्यजेत्॥
इष्टनाडीपलेभ्यश्च गतगम्यान्निजोदयात्।
शेषं खव्या ३० हतं भक्तमशुद्धेन लवादिकम्॥
अशुद्धशुद्धभे हीनं युक्तन्तुर्व्ययनांशकम्।
एवं लङ्कोदयैर्भुक्तं भोग्यं शोध्यं पलीकृतात्॥
पूर्वपश्चान्नतादन्यत्प्राग्वत्तद्दशमं भवेत्।
स्पष्टं लग्नखे जायातुर्यौ लग्नौ न वुर्यत॥
अग्रे त्रयं षडेवं ते भार्द्धयुक्ता परेऽपि षट्।
खेटे भावसमं पूर्णं फलं सन्धिसमे तु खम्॥
षष्ठांशयुक्तन्तु सन्धिरग्रे षष्ठांशयोजनात्।
त्रयं ससन्धयो भावाः षष्ठांशो नैक्युक्तत्वात्॥
—ताजिकनीलकंठी, बनारस सं० १९९६, संज्ञातन्त्र अ० १, श्लो० २०-२६

४—रात्रि अर्ध के बाद इष्टकाल हो तो ६० घटी में-से इष्टकाल को घटाने से जो शेष आवे उस में दिनार्ध जोड़ने से पूर्वनत होता है।

यदि पश्चिमनत हो तो भोग्य प्रकार से और पूर्वनत हो तो भुक्त प्रकार से लंकोदयमान-द्वारा लग्न साधन के समान दशम भाव का साधन करना चाहिए।

उदाहरण—इष्टकाल २३।२२, दिनमान ३२।६, रात्रिमान २७।५४ है। दिनमान ३२।६ का आधा किया तो दिनार्ध = ३२।६ ÷ २ = १६।३; इस उदाहरण में इष्टकाल दिनार्ध के बाद का है अतः नतकाल साधन के द्वितीय नियमानुसार—

३२।६ दिनमान से
२३।२२ इष्टकाल को घटाया

८।४४ शेष, इसे दिनार्ध में-से घटाया तो (१६।३) – (८।४४) = ७।१९ पश्चिमनत हुआ।

उदाहरण २—इष्टकाल ६।४५, दिनमान ३२।६, रात्रिमान २७।५४ दिनार्ध १६।३ है।

इस उदाहरण में इष्टकाल दिनार्ध से पहले का है; अतः १६।३ दिनार्ध में-से ६।४५ इष्टकाल को घटाया तो ९।१८ पूर्वनत हुआ।

उदाहरण ३—इष्टकाल ४२।४८, दिनमान ३२।३, रात्रिमान में २७ ५४। दिनार्ध १६ ३ रात्र्यर्ध १३।५७ है।

इस उदाहरण में पहले यह विचार करना होगा कि यह इष्टकाल रात का है या दिन का? प्रस्तुत उदाहरण में दिनमान ३२।६ है और इष्टकाल ४२।४८ है, अतः दिनमान के इष्टकाल अधिक होने के कारण रात का इष्टकाल कहलायेगा। अब रात में रात्र्यर्ध से पहले का या रात्र्यर्ध के बाद का? इस निश्चय के लिए दिनमान में रात्र्यर्ध जोड़ कर इष्टकाल से मिलान करना चाहिए। अतः ३२।६ दिनमान में रात्र्यर्ध जोड़ा तो—(३२।६)

+ (१३।५७) = ४६।३ राश्यर्ध तक का मिश्रकाल। प्रस्तुत उदाहरण का इष्टकाल राश्यर्ध के पहले का है, अतः ४२।४८ इष्ट में-से
३२। ६ दिनमान घटाया तो
१०।४२ शेष

१६। ३ दिनार्ध में
१०।४२ शेष को जोडा
२६।४५ पश्चिमनत

इस उदाहरण ४—इष्टकाल ५२।४५, दिनमान ३२।६, रात्रिमान २७।५४, दिनार्ध १६।३ अर्धरात्रि तक का मिश्रकाल ४६।३ है।

उदाहरण में अर्धरात्रि के बाद इष्टकाल है अतः नतकाल साधन के चतुर्थ नियमानुसार ६०। ० में
५२।४५ इष्ट घटाया
७।१५ अवशेष

७।१५ अवशेष में
१६। ३ दिनार्ध जोडा
२३।१८ पूर्वनत हुआ।

दशम साधन का उदाहरण

सूर्य ०।१०। ७।३४ (प्रथम उदाहरण में पश्चिमनत होने से भोग्य अयनांश ०।२३।४६। ० प्रकार से साधन करना होगा)
१। ३।३३।३४ सायन सूर्य।

भोग्यांश निकालने के लिए सूर्य के इन भुक्तांशों को ३० अंश में से घटाया—

३०। ०। ०
३।५३।३४
२४। ६।२६

२४।६।२६ भोग्यांश को लंकोदय राशिमान से गुणा करना है। लंकोदय का प्रमाण निम्न प्रकार है—

मेष	=	२७८	=	मीन
वृष	=	२९९	=	कुम्भ
मिथुन	=	३२३	=	मकर
कर्क	=	३२३	=	धनु
सिंह	=	२९९	=	वृश्चिक
कन्या	=	२७८	=	तुला

प्रस्तुत उदाहरण में सूर्य वृष राशि का है, अत: वृष के राशिमान से भोग्यांशो को गुणा किया—

२४।७।२६ × २९९=२४०।१६।३।३४ { इस गुणनफल के दो अंको में ६० का भाग और तीसरे में ३० का भाग दिया गया है।

नतकाल ७।१९ के पल बनाये, ७ × ६० + १९=४३९ नतपल

४३९ नतकाल के पलो में-से
२४०।१६ भोग्य पलादि को घटाया

१९८।४४ यहाँ मिथुन राशि के पल नही घटते हैं, अत मिथुन राशि ही अशुद्ध कहलायेगी—

१९८।४४ × ३०=५९६२।० इस में अशुद्ध राशिमान का भाग दें—

५९६२।० ÷ २२३=१८।२९।२१ अंशादि हुआ। उदाहरण में वृष-राशि का मान घट गया था, अतः इस अंशादि में दो राशि और जोड़ी—

१८।२९।२१
२। ०। ०। ०

२।१८।२९।२१ सायन दशम

२।१८।२९।२१ सायन दशम में-से
०।२३।४६। ० अयनांश घटाया

१।२४।४३।२१ दशम स्पष्ट

भुक्तांश साधन-द्वारा दशम का उदाहरण

सायन सूर्य १।३।५३।३४, पूर्वनत १७।९ है। सायन सूर्य वृष राशि का होने से भुक्तांशो को वृष के लंकोदय मान से गुणा किया—भुक्तांश ३।५३।३४ × २९९=२८।२३।६।३६ भुक्त पल हुआ

१७।९ नतकाल के पल बनाये; १७ × ६० + ९=१०२९ नतपल

१०२९ नतकाल के पलों में { भुक्तांश पर-से लग्न या दशम का साधन करते समय उलटा राशिमान घटाया जाता है।

२७८।० मेष का मान घटाया

७१२।०
२७८।० मीन का मान घटाया

४३४।३७
२९९। ० कुम्भ का मान घटाया

१३५।३७ इस में-से मकर का राशिमान नही घटा है, अत मकर अशुद्ध हुई।
१३५।३७ × ३०=४०६८।३० इस मे अशुद्ध राशिमान का भाग दिया—
४०६८।३० ÷ ३२३=१२।३५।३९ अशादि; इस में शुद्ध राशियाँ जहाँ तक घट सकी हैं, उस राशिपर्यन्त संख्या को इस पल में जोड़ा—

१२।३५।३९
११। ०। ०। ०
११।१२।३५।३९ सायन दशम में से
०।२३।४६। ० अयनांश घटाया
१०।१८।४९।३९ स्पष्ट दशम

दशम भाव साधन करने के अन्य नियम

१—नतकाल को इष्टकाल मान कर जिस दिन दशम भाव साधन करना हो, उस दिन के सूर्य के राशि, अंश पंचाग में देख कर लिख लेने चाहिए। आगे दी गयी दशमसारणी में राशि का कोष्ठक वायी ओर और अश का कोष्ठक ऊपरी भाग में है। सूर्य के जो राशि अंश लिखे हैं उन का फल दशमसारणी में—सूर्य की राशि के सामने और अश के नीचे जो अक सख्या मिले, उसे पश्चिमनत हो तो नतरूप इष्टकाल में जोड देने से और पूर्वनत हो तो सारणी के अको में घटा देने से जो अंक आवें उन को पुन दशमसारणी में देखें तो वायी ओर राशि और ऊपर अश मिलेंगे। ये राशि, अश ही दशम के राश्यादि होंगे। कला, विकला फल त्रैराशि-द्वारा निकलता है।

२—इष्टकाल में से दिनार्ध घटा कर जो आये वह दशम भाव का इष्ट होगा। यदि इष्टकाल में से दिनार्ध न घट सके तो इष्टकाल में ६० घटी जोड कर दिनार्ध घटाने से दशम का इष्टकाल होता है। इष्टकाल पर से प्रथम नियम के अनुसार दशमसारणी-द्वारा दशमसाधन करना चाहिए।

३—लग्नसारणी-द्वारा लग्न बनाते समय सूर्यफल में इष्टकाल जोड़ने से जो घटचादि अंश आये, उस में १५ घटी घटाने से शेष अंक दशम-सारणी में जिस राशि, अश का फल हो, वही दशम लग्न होगा।

दशम लग्न

	०	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३
मे ०	३ ३२ ४६	३ ४२ ११	३ ५१ ३६	४ १ ४	४ १० ३२	४ २० २	४ २९ ३३	४ ३९ ५	४ ४८ ४४	४ ५८ १४	५ ७ ५१	५ १७ २९	५ २७ १०	५ ३८ ३१
वृ. १	८ २६ ०	८ ३६ १३	८ ४६ २९	८ ५६ ४३	९ ७ ४	९ १७ २४	९ २७ ४७	९ ३८ १०	९ ४८ ३५	९ ५९ २	१० ९ ३१	१० २० २०	१० ३० ३४	१० ४१ ५९
मि. २	१३ ४३ ४६	१३ ५४ ३८	१४ ५ ३१	१४ १६ २५	१४ २७ १८	१४ ३८ १२	१४ ४९ ६	१५ ० ०	१५ १० ५४	१५ २१ ३८	१५ ३२ ४१	१५ ४३ ३५	१५ ५४ २८	१६ ५ २२
क. ३	१९ ८ १८	१९ १८ ५३	१९ २९ २६	१९ ३९ ५८	१९ ५० २९	२० ० ५७	२० ११ २४	२० २१ ४९	२० ३२ १३	२० ४२ ३६	२० ५२ ५६	२१ ३ १७	२१ १३ ३१	२१ २३ ४६
सि ४	२४ १३ २६	२४ २३ ९	२४ ३२ ५०	२४ ४२ ३१	२४ ५२ ९	२५ १ ४६	२५ ११ १६	२५ २० ५५	२५ ३० २७	२५ ३९ ५८	२५ ४९ २८	२५ ५८ ५५	२६ ८ २३	२६ १७ ४९
क. ५	२८ ५५ ४४	२९ ४ ५५	२९ १४ ७	२९ २३ १८	२९ ३२ २८	२९ ४१ ३९	२९ ५० ४९	३० ० ०	३० ९ १०	३० १८ २१	३० २७ ३२	३० ३६ ४२	३० ४५ ५३	३० ५५ ४

सारणी

१४	१५	१६	१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४	२५	२६	२७	२८	२९	
५ ४६ ३४	५ ५६ १९	६ ६ ५	६ १५ ५३	६ २५ ४३	६ ३५ ३५	६ ४५ ३०	६ ५५ २३	७ ५ २०	७ १५ १९	७ २५ १९	७ ३५ २१	७ ४५ २६	७ ५५ ३१	८ ५ ३९	८ १५ ४९	मे. ०
१० ५१ ४२	११ २ १९	११ १२ ५७	११ २३ ३६	११ ३४ १६	११ ४४ ५८	११ ५५ ४३	१२ ६ २६	१२ १७ ११	१२ २७ ५७	१२ ३८ ४५	१२ ४९ ३३	१३ ० २२	१३ ११ १४	१३ २२ ३	१३ ३२ ५४	वृ १
१६ १६ १४	१६ २७ ६	१६ ३७ ५७	१६ ४८ ४८	१६ ५९ ३८	१७ १० २७	१७ २१ १५	१७ ३२ ३	१७ ४२ ४९	१७ ५३ ३४	१८ ४ १७	१८ १५ २	१८ २५ ४३	१८ ३६ २४	१८ ४७ ३	१८ ५७ ४१	मि. २
२१ ३३ ५८	२१ ४४ ११	२१ ५५ २१	२२ ४ २८	२२ १४ ३४	२२ २४ ३८	२२ ३४ ४१	२२ ४४ ४१	२२ ५४ ३९	२३ ४ ३७	२३ १४ २९	२३ २४ २५	२३ ३४ १७	२३ ४४ ७	२३ ५३ ५५	२४ ३ ४१	क ३
२६ २७ १४	२६ ३६ ३७	२६ ४५ ४९	२६ ५५ २१	२७ ४ ४१	२७ १४ १	२७ २३ १९	२७ ३२ ३७	२७ ४१ ५४	२७ ५१ १०	२८ ० २५	२८ ९ ३९	२८ १८ ५३	२८ २८ ७	२८ ३७ १९	२८ ४६ ३२	सिं. ४
३१ ४ १६	३१ १३ २८	३१ २२ ४०	३१ ३१ ५३	३१ ४१ ७	३१ ५० २१	३१ ५९ ३५	३२ ८ ५०	३२ १८ ६	३२ २७ २३	३२ ३६ ४१	३२ ४५ ५९	३२ ५५ १८	३३ ४ ३९	३३ १४ ०	३३ २३ २२	क. ५

दशम लग्न

	०	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३
तु. ६	३३ ३२ ४६	३३ ४२ ११	३३ ५१ ३६	३४ १ ४	३४ १० ३२	३४ २० २	३४ २९ ३३	३४ ३९ ५	३४ ४८ ४४	३४ ५८ १४	३५ ७ ५१	३५ १७ २९	३५ २७ १०	३५ ३६ ५१
वृ. ७	३८ २६ ०	३८ ३६ १३	३८ ४६ २८	३८ ५६ ४३	३९ ७ ४	३९ १७ २४	३९ २७ ४७	३९ ३८ १०	३९ ४८ ३५	३९ ५९ २	४० ९ ४१	४० २० २०	४० ३० ३४	४० ४१ ७
ध. ८	४३ ४३ ४६	४३ ५४ ३८	४४ ५ ३१	४४ १६ २५	४४ २७ १८	४४ ३८ १२	४४ ४९ ६	४५ ० ०	४५ १० ५४	४५ २१ ४८	४५ ३२ ४१	४५ ४३ ३५	४५ ५४ २८	४६ ५ २२
म. ९	४९ ८ १८	४९ १८ ५३	४९ २९ २६	४९ ३९ ५८	४९ ५० २९	५० ० ५७	५० ११ २४	५० २१ ४९	५० ३२ १३	५० ४२ ३६	५० ५२ ५६	५१ ३ १७	५१ १३ ३१	५१ २३ ४८
कुं. १०	५४ १३ ३६	५४ २३ ९	५४ ३२ ५०	५४ ४२ ३०	५४ ५२ ९	५५ १ ४६	५५ ११ ४६	५५ २० ५५	५५ ३० २७	५५ ३९ ५८	५५ ४९ २८	५५ ५८ ५६	५६ ८ २३	५६ १७ ४९
मी. ११	५८ ५५ ४४	५९ ४ ५५	५९ १४ ७	५९ ३३ १७	५९ ३२ २८	५९ ४१ ३९	५९ ५० ४९	० ० ०	० ९ १०	० १८ २१	० २७ ३२	० ३६ ४२	० ४५ ५३	० ५५ ४

सारणी

१४	१५	१६	१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४	२५	२६	२७	२८	२९	
३५ ४६ ३४	३५ ५६ १०	३६ ६ ५	३६ १५ ५३	३६ २५ ४३	३६ ३५ ३५	३६ ४५ ३०	३६ ५५ २३	३७ ५ २०	३७ १५ १९	३७ २५ २१	३७ ३५ २६	३७ ४५ २६	३७ ५५ २१	३८ ५ ३९	३८ १५ ४८	तु. ६
४० ५१ ४२	४१ २ १९	४१ १२ ५७	४१ २३ ३६	४१ ३४ १६	४१ ४४ ५८	४१ ५५ ४३	४२ ६ २६	४२ १७ ११	४२ २७ ५७	४२ ३८ ४५	४२ ४९ ४३	४३ ० २२	४३ ११ १४	४३ २२ ३	४३ ३२ ५४	वृ. ७
४६ १६ १४	४६ २७ ६	४६ ३७ ५७	४६ ४८ ४८	४६ ५९ ३८	४७ १० २७	४७ २१ १५	४७ ३२ ३	४७ ४२ ४९	४७ ५३ ३४	४८ ४ १७	४८ १५ २	४८ २५ ४३	४८ ३६ २४	४८ ४७ ३	४८ ५७ ४१	ध. ८
५१ ३३ ५९	५१ ४४ ११	५१ ५४ २०	५२ ४ २८	५२ १४ ३४	५२ २४ ३८	५२ ३४ ११	५२ ४४ ४१	५२ ५४ ३९	५३ ४ ३७	५३ १४ २९	५३ २४ २५	५३ ३४ १७	५३ ४४ ७	५३ ५३ ५५	५४ ३ ४१	म. ९
५६ २७ १४	५६ ३६ ३७	५६ ४५ ५९	५६ ५५ २१	५७ ४ ४१	५७ १४ १	५७ २३ १९	५७ ३२ ३७	५७ ४१ १४	५७ ५१ १०	५८ ० २५	५८ ९ ३९	५८ १८ ५३	५८ २८ ६	५८ ३७ १९	५८ ४६ ३२	कुं. १०
१ ४ १६	१ १३ २८	१ २२ ४०	१ ३१ ५३	१ ४१ ७	१ ५० २१	१ ५९ ३५	२ ८ ५०	२ १८ ६	२ २७ २३	२ ३६ ४१	२ ४५ ५९	२ ५५ १८	३ ४ ३९	३ १४ ०	३ २३ २२	मी. ११

लग्नसे दशमभाव

	०	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३
मेष ०	८ २३ ५६ २६	८ २४ ३७ ५६	८ २५ १८ २६	८ २५ ५९ ३८	८ २६ ४० ४३	८ २७ २१ ४२	८ २८ २ ४७	८ २८ ४३ २२	८ २९ २४ २७	९ ० ५ ५२	९ ० ४० ११	९ १ २८ ५९	९ २ १५ २६	९ ३ ५ ३
वृष १	९ १६ ४३ ३९	९ १७ २३ २१	९ १८ २९ ६	९ १९ १९ २४	९ २० १० ४२	९ २१ १ २४	९ २१ ५२ ६	९ २२ ४२ ५४	९ २३ ३३ ४४	९ २४ २४ ३०	९ २५ १८ १८	९ २६ ६ २	९ २७ ८ ५४	९ २८ ९ ५४
मिथुन २	१० १५ ४६ ४८	१० १६ ५२ ४२	१० १७ ५७ ५८	१० १९ ३ २	१० २० ९ २७	१० २१ १५ ३	१० २२ २० ३८	१० २३ २९ १३	१० २४ ३१ ५१	१० २५ २७ २४	१० २६ ४१ २०	१० २७ ५१ २३	१० २९ ५ १२	११ ० ९ ८
कर्क ३	११ २१ १४ ०	११ २२ १७ ४५	११ २३ ४१ ३५	११ २४ ५५ २३	११ २६ ९ १६	११ २७ २३ २४	११ २८ ३६ ४१	११ २९ ५० २६	० १ ४ ५३	० २ १८ १९	० ३ ३२ ७	० ४ ४७ ५१	० ६ २ २२	० ७ १९ ४१
सिंह ४	० २७ ९ २५	० २८ १८ ३९	० २९ ५७ ५२	१ ० ३७ ६	१ १ ४६ १९	१ २ ५५ ३३	१ ४ ४ ४८	१ ५ १४ २	१ ६ २३ १६	१ ७ ३२ ३०	१ ८ २२ ५४	१ ९ ६ ३२	१ १० २० ५	१ १२ ३५ ८
कन्या ५	१ २९ ३८ २	२ ० ४१ ८	२ १ ४३ १०	२ २ ४५ १२	२ ३ ४७ १	२ ४ ५० ०	२ ५ ५२ ५	२ ६ ५४ ८	२ ७ ५९ ३	२ ८ ५९ ७	२ १० १ १३	२ ११ ३ २१	२ १२ ५ ३५	२ १३ ७ ५२

साधन सारणी

१४	१५	१६	१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४	२५	२६	२७	२८	२९	
९ ३ ४६ ३८	९ ४ ३६ ४९	९ ५ २३ १०	९ ६ १० ४६	९ ६ ५७ ४६	९ ७ ४४ ४८	९ ८ ३१ ४०	९ ९ १८ ५१	९ १० ५ १	९ ११ ७ १४	९ ११ ४२ ५०	९ १२ ३२ ४३	९ १३ २४ ४८	९ १४ २४ ५०	९ १५ ६ १	९ १५ ५६ ४८	मे ०
९ २९ १० ५४	१० ० ११ ५४	१० १ १२ ५४	१० २ १३ ५४	१० ३ १३ ५४	१० ४ १५ ५४	१० ५ १६ ५४	१० ६ १७ ५४	१० ७ १८ ५४	१० ८ १८ ५४	१० ९ २० ५४	१० १० २१ ५४	१० ११ २४ ३४	१० १२ २३ ३०	१० १३ ३५ ४०	१० १४ ४१ १७	वृ १
११ १ ३२ ५३	११ ० ४३ ३७	११ ४ ० ३८	११ ५ १४ २४	११ ६ २८ १०	११ ७ ४१ ४५	११ ८ ५५ ५५	११ १० ९ ४०	११ ११ २३ २९	११ १२ ३७ १७	११ १३ ५१ २	११ १५ ४ ५७	११ १६ १८ ४२	११ १७ ३१ २७	११ १८ ४६ २१	११ २० ० १३	मि. २
० ८ ३१ १५	० ९ ४५ ४२	० ११ ० १३	० १२ ९ ३५	० १३ १८ ३९	० १४ २७ ५२	० १५ ३७ ६	० १६ ४६ १९	० १७ ५५ ३५	० १९ ४ ४८	० २० १४ १२	० २१ २३ १६	० २२ ३२ २९	० २३ ४१ ४३	० २४ ५० ५६	० २६ ० १२	क. ३
१ १३ ४४ १२	१ १४ ३५ १२	१ १५ ४४ १९	१ १६ १० २०	१ १७ १२ ५५	१ १८ १४ ४	१ १९ १६ ८	१ २० १८ ९	१ २१ २७ १०	१ २२ ३० १५	१ २३ ३२ ५५	१ २४ ३४ ७	१ २५ ३६ २	१ २६ ३८ ५	१ २७ ४० ८	१ २८ ५२ १	सिं ४
२ १४ १० ८	२ १५ १२ १	२ १६ १४ ०	२ १७ १६ ७	२ १८ १४ १४	२ १९ २१ २२	२ २० २१ ३०	२ २१ २९ ३२	२ २२ २७ १	२ २३ ३० ५	२ २४ ३२ ८	२ २५ ३५ ९	२ २६ ३७ ७	२ २७ ४० २५	२ २८ ४२ ५०	२ २९ ४३ ५९	क ५

लग्नसे दशमभाव

	०	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३
तुला ६	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३
	०	१	२	३	४	५	६	८	९	१०	११	१२	१३	१४
	४५	४	५०	५२	५४	५९	५९	१	२	५	८	१५	२३	३४
	७	५	८	१३	१५	१९	२२	२	५	१४	३८	५५	१७	१२
वृश्चिक ७	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४
	४	५	६	७	८	९	११	१२	१३	१४	१६	१७	१८	१९
	१०	१९	२९	३८	४३	५३	३	२०	३५	४९	४	१६	३०	४४
	७	५	३	२	०	१	५	१३	२५	३५	४५	८	३	१०
धनु ८	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५
	१०	११	१३	१४	१५	१६	१८	१९	२०	२१	२२	२४	२५	२६
	३९	५३	६	२०	३४	४८	२	१५	२९	४३	५७	११	१४	१९
	१४	१	५	३	१५	२२	११	३	२९	१०	१५	२५	४८	३७
मकर ९	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६
	१४	१४	१६	१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४	२५	२६	२७
	३८	३९	४०	४१	४२	४३	४४	४५	४६	४७	४८	४९	५०	५२
	१	२	५	२	१	०	३	१	५०	२२	११	८	१५	३
कुम्भ १०	७	७	७	७	७	७	७	७	७	७	७	७	७	७
	११	१२	१३	१४	१४	१५	१६	१७	१८	१८	१९	२०	२१	२१
	४०	५	२२	९	५६	४३	३०	२१	१४	५१	३८	२४	५	४६
	५१	३२	३२	३३	३०	२७	७	५	९	१०	५२	८	३	१५
मीन ११	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८
	३	४	४	५	६	६	७	८	९	९	१०	१०	११	१२
	२४	५	४९	२८	९	५०	३२	१२	३	३४	१५	५६	२७	१३
	३९	१२	५	३	०	८	२	६	७	५	३	४५	४७	३६

सारणी

१४	१५	१६	१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४	२५	२६	२७	२८	२९	
३ १५ ४२ ३	३ १६ ५० ०	३ १८ १ १	३ १९ १० ८	३ २० ५९ १५	३ २१ २८ २२	३ २२ ३८ ८	३ २३ ४८ ९	३ २४ ५६ ३५	३ २६ ९ ४२	३ २७ १५ ५६	३ २८ २४ २	३ २९ ३३ ८	४ ० ४२ ५	४ १ ५२ ३	४ ३ १ ७	तु० ६
४ २० ५८ १	४ २२ १२ २	४ २३ २५ ५	४ २४ ३८ ३	४ २५ ५५ ५७	४ २७ ७ १२	४ २८ १९ २५	४ २९ ३४ १८	५ ० ४८ २१	५ २ २ ७	५ ३ १६ ४	५ ४ ३० ५	५ ५ ४३ ३	५ ६ ५३ १	५ ८ ११ १५	५ ९ २५ ०	बृ० ७
५ २७ २७ ३७	५ २८ ३० ३७	५ २९ ३० ४२	६ ० ४२ ३	६ १ ४७ ४	६ २ ५३ ५	६ ३ ५८ ३	६ ५ ४ १५	६ ६ १० १२	६ ७ १५ २०	६ ८ २१ ३०	६ ९ २६ ५	६ १० ३२ ८	६ ११ ३४ ३	६ १२ ३६ ४५	६ १३ ४० ०	ध० ८
६ २८ १० ३२	६ २९ १ ४०	७ ० १ ४५	७ ० ५२ ५०	७ १ ४३ ७	७ २ ३३ ३	७ ३ २४ ४	७ ४ १५ ९	७ ५ ६ १३	७ ५ ५७ २१	७ ६ ४६ २७	७ ७ ३८ ३५	७ ८ २९ ४०	७ ९ २० ४५	७ १० १० ५०	७ ११ ७ ५०	म० ९
७ २२ २८ २७	७ २३ ३९ ३७	७ २४ १६ ४८	७ २४ ५९ ५९	७ २५ १२ १	७ २५ ५६ २	७ २६ ३४ ३	७ २७ १५ ६	७ २७ ५६ ८	७ २८ ३७ १०	७ २९ १८ १२	७ २९ ५९ ५	८ ० ४० ३०	८ ११ २१ १५	८ २ ३० १६	८ २ ३ ४	कुं १०
८ १२ ५९ २६	८ १३ ४० १२	८ १४ २० ४२	८ १५ ० ३५	८ १५ ३५ १	८ १६ २४ २	८ १७ ५ ८	८ १७ ४६ ५	८ १८ २८ ७	८ १९ ९ ३	८ १९ ५७ ५३	८ २० ३१ ५९	८ २१ १२ १	८ २१ ५३ ५	८ २२ ३४ ३	८ २३ १५ ४	मी.११

लग्नसे दशम भाव साधन—लग्न के राशि अंशो-द्वारा फल लेकर—लग्न राशि के सामने और अंश के नीचे जो अंकसंख्या 'लग्न से दशम भाव साधनसारणी' में मिले वही दशम भाव होगा।

उदाहरण १—पश्चिमनतकाल ७।१९, सूर्य ०।१० इस सूर्य के राशि, अंशो को दशमसारणी में देखा तो शून्य राशि और दश अंश के सामने का फल ५।७।५१ मिला। पश्चिमनत होने के कारण इसे इष्टकाल-स्वरूप नत में जोड़ा—५। ७५१ आगत फल.

७।१९। ० नत-इष्टकाल
१२।२६।५१ इसे पुनः दशमसारणी में देखा तो इस संख्या के लगभग १ राशि २३ अंश का फल मिला, अतः दशम भाव १।२३ हुआ।

उदाहरण २—इष्टकाल १०।१५, दिनमान ३२।६, दिनार्ध १६।३, सूर्य ०।१० है।

यहाँ इष्टकाल में-से दिनार्ध घटाना है, लेकिन इष्टकाल कम होने के कारण दिनार्ध घटता नही है, अतः ६० जोड़कर घटाया—६० +
(१०।१५)
७०।१५ योगफल में-से
१६।३ दिनार्ध घटाया
५४।१२ दशम साधन का इष्टकाल। पूर्ववत् सूर्य के राश्यादि को दशमसारणी में देखा तो फल ५।७।५१ मिला। ५।७।५१ आगतफल में
५४।१२। ० इष्टकाल को जोड़ा
५९।१९।५१ इसे दशमसारणी में

देखा तो ११।२ आया, यही दशम भाव हुआ।

उदाहरण—लग्नमान ४।२३।२५।२७ है। इस के राशि अंशों को 'लग्न से दशम भाव साधनसारणी' में देखा तो ४ राशि के सामने और २३ अंश के नीचे १।२२।३०।१५ फल प्राप्त हुआ, यही दशम भाव हुआ।

अन्य भाव साधन करने की प्रक्रिया

दशम भाव की राशि में छह जोडने से चतुर्थ-भाव आता है। चतुर्थ भाव में से लग्न को घटाने से जो आये उस में छह का भाग देकर लब्ध को लग्न में जोडने से लग्न की सन्धि, लग्न की सन्धि में इस षष्ठांश को जोडने से द्वितीय भाव, द्वितीय भाव में इस षष्ठाश को जोडने से धनभाव की सन्धि, इस सन्धि में षष्ठांश को जोड़ने से तृतीय—सहजभाव, सहज-भाव में षष्ठांश को जोडने से तृतीय भाव की सन्धि और इस सन्धि मे षष्ठांश जोडने से चतुर्थभाव होता है।

३० अंश में से इस षष्ठांश को घटाकर शेष को चतुर्थ भाव—सुहृद्भाव में जोडने से चतुर्थ की सन्धि, इस सन्धि में उसी शेष को जोडने से पचम भाव—पुत्रभाव, पुत्रभाव में इसी शेष को जोडने से षष्ठ—रिपुभाव और इस षष्ठ भाव में इसी शेष को जोडने से—रिपुभाव की सन्धि होती है।

लग्न में छह राशि जोडने से सप्तम भाव, लग्नसन्धि में छह राशि जोडने से सप्तम भाव की सन्धि, द्वितीय भाव में छह राशि जोडने से अष्टम भाव, द्वितीय भाव की सन्धि में छह राशि जोडने से अष्टम भाव की सन्धि, तृतीय भाव में छह राशि जोडने से नवम भाव, तृतीय भाव की सन्धि में छह राशि जोडने से नवम भाव की सन्धि, चतुर्थ भाव में छह राशि जोडने से दशम भाव, चतुर्थ की सन्धि में छह राशि जोडने से दशम भाव की सन्धि, पंचम भाव में छह राशि जोडने से एकादश भाव, पचम भाव की सन्धि में छह राशि जोड़ने से एकादश भाव की सन्धि, षष्ठ भाव में छह राशि जोड़ने से द्वादश भाव और षष्ठ भाव की सन्धि में छह राशि जोडने से द्वादश भाव की सन्धि होती है।

उदाहरण—

१।२४।४३।२१ दशम भाव

६। ०। ०। ० जोड़ा

७।२४।४३।२१ चतुर्थ भाव में से

४।२३।२५।२७ लग्न को घटाया

३। १।१७।५४ ÷ ६ = ०।१५।१२।५९ षष्ठांश

४।२३।२५।२७ लग्न में

०।१५।१२।५९ षष्ठांश जोड़ा

५। ८।३८।२६ लग्न की सन्धि में

०।१५।१२।५९ षष्ठांश जोड़ा

५।२३।५१।२५ द्वितीय भाव में

०।१५।१२।५९ षष्ठांश जोड़ा

६। ९। ४।२४ द्वितीय भाव की सन्धि में

०।१५।१२।५९ षष्ठांश जोड़ा

६।२४।१७।२३ तृतीय भाव में

०।१५।१२।५९ षष्ठांश जोड़ा

७। ९।३०।२२ तृतीय भाव की सन्धि में

०।१५।१२।५९ षष्ठांश जोड़ा

७।२४।४३।२१ चतुर्थ भाव

३० अंश में-से

०।१५।१२।५९ षष्ठांश को घटाया

०।१४।४७। १ शेष

७।२४।४३।२१ चतुर्थ भाव में

०।१४।४७। १ शेष को जोड़ा

८। ९।३०।२२ चतुर्थ भाव की सन्धि

०।१४।४७। १ शेष को जोड़ा

८।२४।१७।२३ पंचम भाव

०।१४।४७। १ शेष को जोड़ा

९। ९। ४।२४ पंचम भाव की सन्धि

९। ९। ४।२४ पंचम भाव की सन्धि
०।१४।४७। १ शेष को जोडा
९।२३।५१।२५ षष्ठ भाव
०।१४।४७। १ शेष को जोडा
१०। ८।३८।२६ षष्ठ भाव की सन्धि
०।१४।४७। १ शेष को जोड़ा
१०।२३।२५।२७ सप्तम भाव

लग्न सन्धि ५।८।३८।२६ + ६ राशि = ११।८।३८।२६ सप्तम भाव-सन्धि
द्वितीय भाव ५।२३।५१।२५ + ६ राशि = ११।२३।५१।२५ अष्टम भाव
द्वितीय भाव की सन्धि ६।९।४।२४ + ६ राशि = ०।९।४।२४ अष्टम भाव की सन्धि

तृतीय भाव ६।२४।१७।५६ + ६ राशि = ०।२४।१७।३३ नवम भाव
तृतीय भाव की सन्धि ७।९।३०।२२ + ६ राशि = १।९।३०।२२ नवम भाव की सन्धि

चतुर्थ भाव ७।२४।४३।२१ + ६ राशि = १।२४।४३।२१ दशम भाव
चतुर्थ भाव की सन्धि ८।९।३०।२२ + ६ राशि = २।९।३०।२२ दशम भाव की सन्धि

पचम भाव ८।२४।१७।२३ + ६ राशि = २।२४।१७।२३ एकादश भाव
पचम भाव को सन्धि ९।९।४।२४ + ६ राशि = ९।९।४।२४ एकादश भाव
स० षष्ठ भाव ९।२३।५१।२५ + ६ राशि = ३।२३।५१।२५ द्वादश भाव
षष्ठ भाव की सन्धि १०।८।३८।२६ + ६ राशि = ४।८।३८।२६ द्वादश भाव की सन्धि

द्वादश भावो के नाम

तनु, धन, सहज, सुहृद्, पुत्र, रिपु, स्त्री, आयु, धर्म, कर्म, आय और व्यय ये क्रमश' बारह भावों के नाम हैं। द्वादश भाव स्पष्ट चक्र लिखते समय प्रत्येक भाव के अनन्तर उस के सन्धि मान को रखते हैं।

द्वादश भाव स्पष्ट चक्र

त०	स०	ध०	स०	स०	सं०	मु०	सं०	पु०	स०	रि०	सं०
४	५	५	६	६	७	७	८	८	९	९	१०
२३	८	२३	९	२४	९	२४	९	२४	९	२३	८
२५	३८	५१	५	१७	३०	४३	३०	१७	४	५१	३८
२७	२६	२५	२४	२३	२२	२१	२२	२३	२४	२५	२६

स्त्री०	सं०	आ०	सं०	ध०	स०	क०	स०	आ०	सं०	व्य०	सं०
१०	११	११	०	०	१	१	२	२	३	३	४
२३	८	२३	९	२४	९	२४	९	२४	९	२३	८
२५	३८	५१	४	१७	३०	४३	३०	१७	४	५१	३८
२७	३६	२५	२४	२३	२२	२१	२२	२३	२४	२५	२६

चलित चक्र अवगत करने का नियम

चलित चक्र ज्ञात करने के लिए ग्रहस्पष्ट और भावस्पष्ट के साथ तुलनात्मक विचार करना चाहिए। यदि ग्रह के राश्यादि भाव के राश्यादि के तुल्य हों तो वह ग्रह उस भाव में और उस के राश्यादि भावसन्धि के राश्यादि के समान हो अथवा भाव के राश्यादि से आगे और भावसन्धि के राश्यादि से पीछे हो तो भावसन्धि में एवं आगे वाले या पीछे वाले भाव के राश्यादि के समान हो तो आगे या पीछे के भाव में ग्रह को समझना चाहिए[1]।

---

१ वदन्ति भावैक्यदलं हि सन्धिस्तत्र स्थितः स्यादबलो ग्रहेन्द्रः।
ऊनेषु सन्धेर्गतभावजातमागामिजं चाप्यधिकं करोति॥
भावेशतुल्यः खलु वर्त्तमानो भावो हि सम्पूर्णफलं विधत्ते।
भावोनके चाप्यधिके च खेटे त्रिराशिकेनाप्फलं प्रकल्प्यम्॥
भावप्रवृत्तौ हि फलप्रवृत्तिः पूर्णं फलं भावसमांशकेषु।
ह्रासः क्रमाद्भावविरामकाले फलस्य नाशः कथितो मुनीन्द्रैः॥

चलित चक्र की जन्मपत्री में अत्यावश्यकता रहती है। चलित के बिना ग्रहो के स्थान का ठीक ज्ञान नही हो सकता है।

प्रस्तुत उदाहरण का चलित चक्र ज्ञात करने के लिए सर्वप्रथम सूर्य के साथ विचार किया। नवग्रहस्पष्ट चक्र में सूर्य ०।१०।७।३४ आया है और भावस्पष्ट में अष्टम—आयुभाव की सन्धि ०।९।४।२४ है, सूर्य के अश सन्धि के अशों से आगे है, अत सूर्य नवम—धर्मभाव में माना जायेगा। चन्द्रमा १।०।२४।३४ है, धर्मभाव ०।२४।१७।३३ और इस की सन्धि[1] १।९।३०।२२ है, अतएव यहाँ चन्द्रमा नवम भाव की सन्धि में माना जायेगा। मंगल २।२१।५२।४४ है, आयभाव २।९।३०।२२ से २।२४। १७।२३ तक है अतः मंगल आयभाव मे, इसी प्रकार बुध नवम में, गुरु व्ययभाव की सन्धि में, शुक्र अष्टम भाव में, शनि दशम भाव की सन्धि में, राहु व्ययभाव में एवं केतु रिपुभाव में माना जायेगा।

दशवर्ग विचार

ग्रहो के बलाबल का ज्ञान करने के लिए दशवर्ग का साधन किया जाता है। दशवर्ग में गृह, होरा, द्रेष्काण, सप्ताश, नवाश, दशाश, द्वादशाश, षोडशाश, त्रिशाश और षष्ट्यंश परिगणित किये गये हैं।

---

१ दो भावो के योगार्ध को सन्धि कहते है, सन्धि में स्थित ग्रह निर्बल होता है। ग्रह सन्धि से हीन हो तो पूर्वभाव के फल को देता है और सन्धि से अधिक हो तो आगामिभावोत्पन्न फल को उत्पन्न करता है। भावेशतुल्य वर्त्तमान भाव ही अपना पूर्ण फल देता है। भाव से हीन या अधिक होने से फल न्यूनाधिक होता है। ग्रहों के भाव को प्रवृत्ति से ही फल की निष्पत्ति होती है और भावेश के तुल्य ग्रह पूर्ण फल देता है। हीनाधिक होने से फल में ह्रास या वृद्धि होती जाती है।

ताजिकनीलकण्ठी के मतानुसार दोनों सन्धियो के मध्यभाग मे विद्यमान ग्रह बीच वाले भाव का फल देता है।

गृह—जो ग्रह जिस राशि का स्वामी होता है, वह राशि उस ग्रह का गृह कहलाती है। राशियों के स्वामी निम्न प्रकार है—

मेष,वृश्चिक का मंगल, वृष, तुला का शुक्र, मिथुन, कन्या का बुध; कर्क का चन्द्रमा, धनु, मीन का गुरु; सिंह का सूर्य एवं मकर, कुम्भ का स्वामी शनि होता है।

होरा—१५ अंश का एक होरा होता है, इस प्रकार एक राशि में दो होरा होते हैं। विषम राशि—मेष, मिथुन आदि में १५ अंश तक सूर्य का होरा और १६ अंश से ३० अंग तक चन्द्रमा का होरा। समराशि—वृष, कर्क आदि मे १५ अंश तक चन्द्रमा का होरा, और १६ अश से ३० अंश तक सूर्य का होरा होता है। जन्मपत्री में होरा लिखने के लिए पहले लग्न में देखना होगा कि किस ग्रह का होरा है, यदि सूर्य का होरा हो तो होरा-कुण्डली को ५ लग्नराशि और चन्द्रमा का होरा हो तो होराकुण्डली को ४ लग्नराशि होती हैं। होराकुण्डली में ग्रहो के स्थापन के लिए ग्रहस्पष्ट के राश्यादि से विचार करना चाहिए। नीचे होराज्ञान के लिए होराचक्र दिया जाता है, इस में सूर्य और चन्द्रमा के स्थान पर उन की राशियाँ दी गयी हैं।

मे०	वृ०	मि०	क०	सिंह	क०	तु०	वृ०	ध०	म०	कुं०	मी०	अं०
५	४	५	४	५	४	५	४	५	४	५	४	१५ अंश
४	५	४	५	४	५	४	५	४	५	४	५	३० अंश

उदाहरण—लग्न ४।२३।२५।२७ अर्थात् सिंह राशि के २३ अंश २५ कला २७ विकला पर है। सिंह राशि के १५ अंश तक सूर्य का होरा, १६ अंश से आगे ३० अंश तक चन्द्रमा का होरा होता है। अतः यहाँ चन्द्रमा का होरा हुआ और होरालग्न ४ माना जायेगा।

ग्रह स्थापित करने के लिए स्पष्ट ग्रहो पर-से विचार करना है। पूर्व में स्पष्ट सूर्य ०।१०।७।३४ अर्थात् मेष राशि का १० अंश ७ कला ३४ विकला

है। मेषराशि में १५ अंश तक सूर्य का होरा होता है, अत. सूर्य अपने होरा—५ में हुआ। चन्द्रमा का स्पष्ट मान १।०।२४।३४—वृष राशि का ० अंश २४ कला ३४ विकला है; वृष राशि में १५ अंश तक चन्द्रमा का होरा होता है। अतएव चन्द्रमा अपने होरा—४ में हुआ। मगल का स्पष्ट मान २।२१। ५२।४४—मिथुन राशि का २१ अंश ५२ कला ४४ विकला है। मिथुन राशि में १६ अंश से ३० अंश तक चन्द्रमा का होरा होता है, अत मंगल चन्द्रमा के होरा—४ में हुआ। बुध ०।२३।२१।३१—मेष राशि का २३ अश २१ कला ३१ विकला है। मेष राशि में १६ अंश से चन्द्रमा का होरा होता है अत. बुध चन्द्रमा के होरा—५ मे हुआ। इसी प्रकार बृहस्पति सूर्य के होरा—५ में शुक्र सूर्य के होरा—५ में, शनि सूर्य के होरा—५ में, राहु चन्द्रमा के होरा—४ में और केतु चन्द्रमा के होरा—४ में आया।

होराकुण्डली चक्र
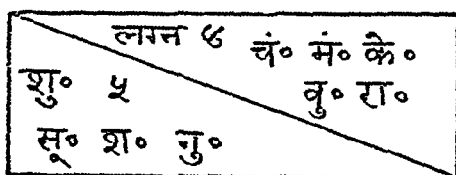
द्रेष्काण—१० अंश का एक द्रेष्काण होता है, इस प्रकार एक राशि में तीन द्रेष्काण—१ अश से १० अंश तक प्रथम द्रेष्काण, ११ से २० अंश तक द्वितीय द्रेष्काण और २१ अंश से ३० अंश तक तृतीय द्रेष्काण समझना चाहिए।

जिस-किसी राशि के प्रथम द्रेष्काण में ग्रह हो तो उसी राशि का, द्वितीय द्रेष्काण में उस राशि से पंचम राशि का और तृतीय द्रेष्काण में उस राशि से नवम राशि का द्रेष्काण होता है। सरलता से समझने के लिए द्रेष्काण चक्र नीचे दिया जाता है—

द्रेष्काण चक्र

मे०	वृ०	मि०	क०	सि०	क०	तु०	वृ०	ध०	म०	कु०	मी०	अंश
१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१०
५	६	७	८	९	१०	११	१२	१	२	३	४	२०
९	१०	११	१२	१	२	३	४	५	६	७	८	३०

जन्मपत्री में द्रेष्काण कुण्डली बनाने की प्रक्रिया यह है कि लग्न जिस द्रेष्काण मे हो, वही द्रेष्काण कुण्डली की लग्नराशि होगी, ग्रहस्थापन करने के लिए ग्रह स्पष्ट मान के अनुसार प्रत्येक ग्रह का पृथक्-पृथक् द्रेष्काण निकाल कर प्रत्येक ग्रह को उस की द्रेष्काण राशि में स्थापित करना चाहिए।

उदाहरण—लग्न ४।२३।२५।२७ अर्थात् सिंह राशि के २३ अश २५ कला और २७ विकला है। यह लग्न सिंह राशि के तृतीय द्रेष्काण—मेष राशि की हुई। अतएव द्रेष्काण कुण्डली का लग्न मेष होगा।

ग्रहो के विचार के लिए प्रत्येक ग्रह का स्पष्ट मान लिया तो सूर्य ०।१०।७।३४—मेष राशि का १० अश ७ कला और ३४ विकला है। मेष में १० अंश बीत जाने के कारण सूर्य मेष के द्वितीय द्रेष्काण—सिंह राशि का माना जायेगा। चन्द्रमा १।०।२४।३४—वृष राशि का ० अश २४ कला और ३४ विकला है। वृष में १० अंश तक प्रथम द्रेष्काण वृष राशि का ही होता है। अत चन्द्रमा वृष राशि में लिखा जायेगा। मंगल २।२१। ५२।५४—मिथुन राशि का २१ अश ५२ कला और ५४ विकला है। मिथुन राशि में २१ अश से तृतीय द्रेष्काण का प्रारम्भ होता है अत. मगल मिथुन के तृतीय द्रेष्काण कुम्भ का लिखा जायेगा। इसी प्रकार बुध धनु राशि का, गुरु मीन राशि का, शुक्र वृश्चिक राशि का, शनि मिथुन राशि का, राहु कर्क राशि का और केतु मकर राशि का माना जायेगा।

द्रेष्काण-कुण्डली चक्र
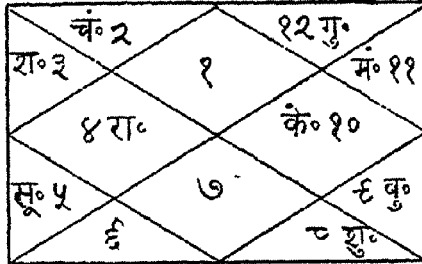
सप्तांश या सप्तमांश—एक राशि में ३० अंश होते हैं। इन अंशो में ७ का भाग देने से ४ अंश १७ कला ८ विकला का सप्तमांश होता है।

लग्न और ग्रहों के सप्तमांश निकालने के लिए समराशि में उस राशि की सप्तम राशि से और विषम राशि में उसी राशि से सप्तमांश की गणना की जाती है।

सप्तमांश बोधक चक्र

मे०	वृ०	मि०	क०	सि०	क०	तु०	वृ०	ध०	म०	कु०	मी०	अंश कला वि
१	८	३	१०	५	१२	७	२	९	४	११	६	४।१७ ८
२	९	४	११	६	१	८	३	१०	५	१२	७	८।३४।१७
३	१०	५	१२	७	२	९	४	११	६	१	८	१२।५१।२५
४	११	६	१	८	३	१०	५	१२	७	२	९	१७। ८।३४
५	१२	७	२	९	४	११	६	१	८	३	१०	२१।२५।४२
६	१	८	३	१०	५	१२	७	२	९	४	११	२५।४२।५१
७	२	९	४	११	६	१	८	३	१०	५	१२	३०। ०। ०

उदाहरण—लग्न ४।२३।२५।२७—सिंह राशि के २३ अंश २५ कला २७ विकला है। सिंह राशि में २१ अंश २५ कला ४२ विकला तक का पांचवां सप्तांश होता है, पर हमारा अभीष्ट लग्न इस से आगे है

अतः छठा सप्तांश कुम्भ राशि माना जायेगा। इस लिए सप्तांश कुण्डली की लग्न कुम्भ होगी।

ग्रह स्थापन के लिए प्रत्येक ग्रह के स्पष्ट मान से विचार करना चाहिए। सूर्य ०।१०।७।३४ है, मेष राशि में ८ अंश ३४ कला १७ विकला तक द्वितीय सप्तांश होता है और इस से आगे १२ अंश ५१ कला २५ विकला तृतीय सप्तांश होता है। सूर्य यहाँ पर तृतीय सप्तांश—मिथुन राशि का हुआ। चन्द्रमा १।०।२४।३४—वृष राशि के ० अंश २४ कला और ३४ विकला का है और वृष राशि का प्रथम सप्तांश ४ अंश १७ कला ८ विकला तक है अतः चन्द्रमा वृष का प्रथम सप्तांश वृश्चिक का हुआ। इस प्रकार मंगल की सप्तांश राशि वृश्चिक, बुध की कन्या, गुरु की मिथुन, शुक्र की कुम्भ, शनि की मिथुन, राहु की मीन और केतु की कन्या हुई।

सप्तमांश कुण्डली चक्र
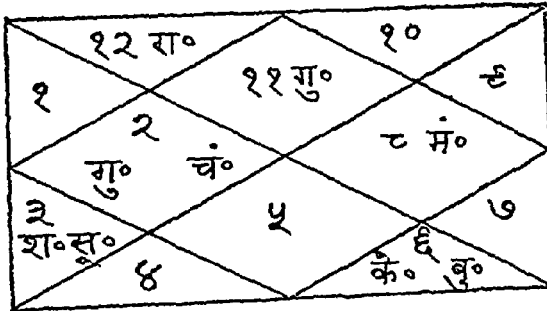
नवमांश—एक राशि के नौवें भाग को नवमांश या नवांश कहते हैं, यह ३ अंश २० कला का होता है। तात्पर्य यह है कि एक राशि में नौ राशियों के नवांश होते हैं, लेकिन बात जानने की यह रह जाती है कि ये नौ नवांश प्रति राशि में किन-किन राशियों के होते हैं। इस का नियम यह है कि मेष में पहला नवांश मेष का, दूसरा वृष का, तीसरा मिथुन का, चौथा

कर्क का, पाँचवाँ सिंह का, छठा कन्या का, सातवाँ तुला का, आठवाँ वृश्चिक का और नौवाँ धनु राशि का होता है। इस नौवें नवाश में मेप राशि की समाप्ति और वृष राशि का प्रारम्भ हो जाता है, अत. वृष राशि में प्रथम नवाश मेष राशि के अन्तिम नवाश से आगे का होगा। इस प्रकार वृष में पहला नवाश मकर का, दूसरा कुम्भ का, तीसरा मीन का, चौथा मेष का, पाँचवाँ वृष का, छठा मिथुन का, सातवाँ कर्क का, आठवाँ सिंह का और नौवाँ कन्या का नवाश होता है। मिथुन राशि मे पहला नवाश तुला का, दूसरा वृश्चिक का, तीसरा धनु का, चौथा मकर का, पाँचवाँ कुम्भ का, छठा मीन का, सातवाँ मेप का, आठवाँ वृप का और नौवाँ मिथुन का नवाश होता है। इसी तरह आगे-आगे गिन कर अगली राशियो के नवाश जान लेना चाहिए।

गणित विधि से नवाश निकालने का नियम यह है कि अभीष्ट संख्या मे राशि अंक को ९ से गुणा करने पर जो गुणनफल आवे, उस के अंशों में ३।२० का भाग दे कर जो नवाश मिले उसे जोड देने से नवाश आ जायेगा। लेकिन १२ से अधिक होने पर १२ का भाग देने से जो शेप रहे वही नवाश होगा।

नवांश बोधक-चक्र

मे	वृ	मि.	क	सि	क	तु	वृ.	ध	म.	कु	मी	अश क.
१	१०	७	४	१	१०	७	४	१	१०	७	४	३।२०
२	११	८	५	२	११	८	५	२	११	८	५	६।४०
:	१२	९	६	३	१२	९	६	३	१२	९	६	१०। ०
४	१	१०	७	४	१	१०	७	४	१	१०	७	१३।२०
५	२	११	८	५	२	११	८	५	२	११	८	१६।४०
६	३	१२	९	६	३	१२	९	६	३	१२	९	२०। ०
७	४	१	१०	७	४	१	१०	७	४	१	१०	२३।२०
८	५	२	११	८	५	२	११	८	५	२	११	२६।४०
९	६	३	१२	९	६	३	१२	९	६	३	१२	३०। ०

नवांश कुण्डली बनाने की विधि—लग्न स्पष्ट जिस नवांश में आया हो वही नवांश कुण्डली का लग्न माना जायेगा और ग्रहस्पष्ट-द्वारा ग्रहों का ज्ञान कर जिस नवांश का जो ग्रह हो, उस ग्रह को राशि में स्थापन करने से जो कुण्डली बनेगी, वही नवांश कुण्डली होगी।

उदाहरण—लग्न ४।२३।२५।२७ है। इसे नवांश बोधक चक्र में देखने से सिंह का आठवाँ नवांश हुआ अतएव नवांश कुण्डली की लग्न राशि वृश्चिक मानी जायेगी, क्योंकि सिंह के आठवें नवमांश की राशि वृश्चिक है।

ग्रहों के स्थापन के लिए विचार किया तो सूर्य ०।१०।७।३४ है, इसे नवांश बोधक चक्र में देखा तो यह मेष के चौथे नवांश—कर्क राशि का हुआ अत कर्क में सूर्य को रखा जायेगा। चन्द्रमा १।०।२४।३४ है, चक्र में देखने से यह वृष के प्रथम नवांश मकर राशि का होगा। इसी प्रकार मंगल मिथुन का, बुध वृश्चिक का, गुरु कुम्भ का, शुक्र कुम्भ का, शनि तुला का, राहु कन्या का, और केतु मीन राशि का लिखा जायेगा।

चर राशि का पहला नवांश, स्थिर राशि का पाँचवाँ और द्विस्वभाव राशि का अन्तिम वर्गोत्तम नवांश कहलाते हैं।

नवमांश कुण्डली चक्र
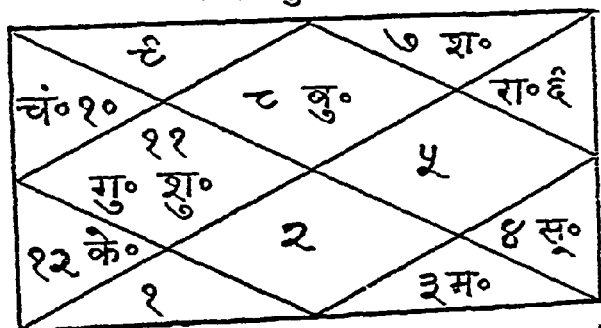
दशमांश विचार—एक राशि में दश दशमांश होते हैं, अर्थात् ३ अंश का एक दशमांश होता है।

विषम राशि में उसी राशि से और सम राशि में नवम राशि से दशमाश की गणना की जाती है। दशमाश कुण्डली बनाने का नियम यह है कि लग्न-स्पष्ट जिस दशमाश में हो, वही दशमाश कुण्डली का लग्न माना जायेगा। और ग्रहस्पष्ट-द्वारा ग्रहों को ज्ञात कर जिस दशमाश का जो ग्रह हो उस ग्रह को उस राशि में स्थापन करने से जो कुण्डली बनेगी, वही दशमाश कुण्डली होगी।

दशमांश का स्पष्ट बोध करने के लिए आगे चक्र दिया जाता है।

दशमांश चक्र

मे	वृ.	मि.	क	सि.	क	तु	वृ.	ध.	म	कु	मी	म० क० सख्या
०	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	
१	१०	३	१२	५	२	७	४	९	६	११	८	३।० प्रथम
२	११	४	१	६	३	८	५	१०	७	१२	९	६।० द्वितीय
३	१२	५	२	७	४	९	६	११	८	१	१०	९।० तृतीय
४	१	६	३	८	५	१०	७	१२	९	२	११	१२।० चतुर्थ
५	२	७	४	९	६	११	८	१	१०	३	१२	१५।० पंचम
६	३	८	५	१०	७	१२	९	२	११	४	१	८।० षष्ठ
७	४	९	६	११	८	१	१०	३	१२	५	२	२१।० सप्तम
८	५	१०	७	१२	९	२	११	४	१	६	३	२४।० अष्टम
९	६	११	८	१	१०	३	१२	५	२	७	४	२७।० नवम
१०	७	१२	९	२	११	४	१	६	३	७	५	३०।० दशम

उदाहरण—लग्न ४।२३।२५।२७ है, इसे दशमाश चक्र में देखा तो सिंह में आठवाँ दशमाश मीन राशि का मिला। अत दशमाश कुण्डली को लग्न राशि मीन होगी। ग्रहों के स्थापन के लिए सूर्य ०।१०।७।२४ का दशमाश मेष का चौथा हुआ, अर्थात् सूर्य की दशमांश कुण्डली में कर्क राशि-

में स्थिति रहेगी। इसी प्रकार चन्द्रमा की दशमांश राशि कन्या, मंगल को मकर, बुध की वृश्चिक, गुरु की वृश्चिक, शुक्र की मिथुन, शनि की मिथुन, राहु की मिथुन और केतु की धनु होगी।

दशमांश कुण्डली चक्र
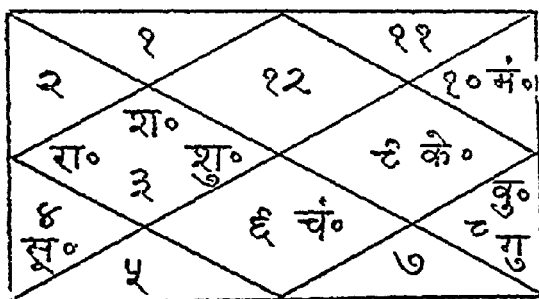
द्वादशांश—एक राशि में १२ द्वादशांश होते हैं अर्थात् राशि के बारहवें भाग २½ अंश का एक द्वादशांश होता है। द्वादशांश गणना अपनी राशि से ली जाती है। जैसे मेष में मेष से, वृष में वृष से, मिथुन में मिथुन से आदि। तात्पर्य यह है कि जिस राशि में द्वादशांश जानना हो, उस में पहला द्वादशांश अपना, दूसरा आगेवाली राशि का, इसी प्रकार १२ द्वादशांश उस राशि के होंगे।

द्वादशांश कुण्डली बनाने की विधि नवांश, दशमांश आदि की कुण्डलियों के समान है—अर्थात् लग्न स्पष्ट से द्वादशांश निकाल कर द्वादशांश कुण्डली की लग्न बना लेनी चाहिए, अनन्तर पहले के समान सभी ग्रहों की राश्यादि के द्वादशांश निकाल कर ग्रहों को द्वादशांश की राशि में स्थापित कर देना चाहिए।

द्वादशांश बोधक चक्र

० मे	१ वृ.	२ मि	३ क.	४ सिं.	५ क	६ तु.	७ वृ	८ ध	९ म.	१० कु	११ मी	अंश	सं०
१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	२।३०	१
२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१	५। ०	२
३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१	२	७।३०	३
४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१	२	३	१०। ०	४
५	६	७	८	९	१०	११	१२	१	२	३	४	१२।३०	५
६	७	८	९	१०	११	१२	१	२	३	४	५	१५। ०	६
७	८	९	१०	११	१२	१	२	३	४	५	६	१७।३०	७
८	९	१०	११	१२	१	२	३	४	५	६	७	२०। ०	८
९	१०	११	१२	१	२	३	४	५	६	७	८	२२।३०	९
१०	११	१२	१	२	३	४	५	६	७	८	९	२५। ०	१०
११	१२	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	२७।३०	११
१२	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	३०। ०	१२

उदाहरण—लग्न ४।२३।२५।२७, द्वादशांश बोधक चक्र में देखने पर सिंह में दसवाँ द्वादशांश वृष राशि का है। अत द्वादशांश कुण्डली की लग्न वृष राशि होगी। ग्रह स्थापन मे पहले के समान किया जायेगा।

द्वादशांश कुण्डली
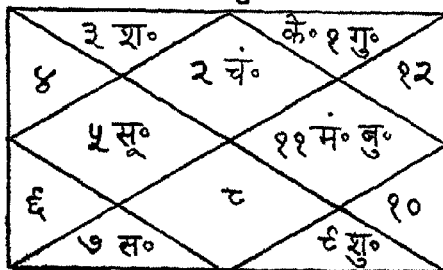
षोडशांश—एक राशि में १६ षोडशांश होते हैं। एक षोडशांश १ अंश ५२ कला ३० विकला का होता है। षोडशांश की गणना चर राशियों में मेषादि से, स्थिर राशियों में सिंहादि से और द्विस्वभाव राशियों में धनु राशि से की जाती है।

षोडशांश कुण्डली के बनाने की विधि यह है कि लग्नस्पष्ट जिस षोडशांश में आया हो, वही षोडशांश कुण्डली का लग्न माना जायेगा और ग्रहों के स्पष्ट के अनुसार ग्रह स्थापित किये जायेंगे।

षोडशांश ज्ञान करने का चक्र

चर मे० क० तु० म०	स्थिर वृ० सि० वृ० कुं०	द्विस्वभाव मि० क० ध० म०	अंशादि
१	५	९	१।५२।३०
२	६	१०	३।४५। ०
३	७	११	५।३७।३०
४	८	१२	७।३०। ०
५	९	१	९।२२।३०
६	१०	२	११।१५। ०
७	११	३	१३।७।३ ०
८	१२	४	१५। ०। ०
९	१	५	१६।५२।३०
१०	२	६	१८।४५। ०
११	३	७	२०।३७।३०
१२	४	८	२२।३०। ०
१	५	९	२४।२२।३०
२	६	१०	२६।१५ ।०
३	७	११	२८। ७।३०
४	८	१२	३०। ०। ०

उदाहरण—लग्न ४।२३।२५।२७ है, लग्न सिंह राशि की होने के कारण स्थिर कहलायेगी। सिंह के २३ अंश २४ कला २७ विकला का १३वां षोडशांश होगा, जिस की राशि सिंह है अत. यहां षोडशाश कुण्डली की लग्नराशि सिंह होगी। ग्रहो के राश्यादि को भी षोडशाश चक्र में देख कर षोडशाश की राशि में स्थापित कर देना चाहिए।

षोडशांश कुण्डली चक्र
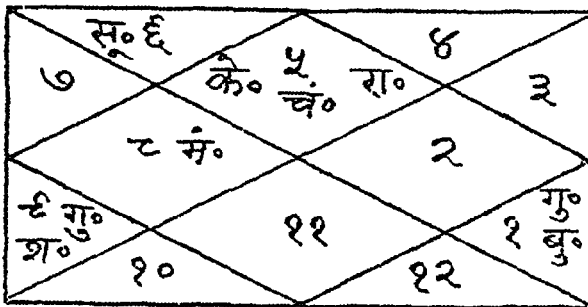
त्रिंशाश—विषम राशियो—मेष, मिथुन, सिंह, तुला, धनु और कुम्भ में १ला ५ अंश मगल का, २रा ५ अंश शनि का, ३रा ८ अंश वृहस्पति का, ४था ७ अंश बुध का और ५वां ५ अश शुक्र का त्रिंशाश होता है। तात्पर्य यह है कि उपर्युक्त विषम राशियो में यदि कोई ग्रह एक से ५ अश पर्यन्त रहे तो मगल के त्रिंशाश में कहा जायेगा। ६ठे से १०वें अंश तक रहे तो शनि के, १०वें से १८वें अश तक रहे तो वृहस्पति के, १९वें से २५वें अश तक रहे तो बुध के और २६ वें से ३० वें अश तक रहे तो शुक्र के त्रिंशाश में वह ग्रह कहा जायेगा।

सम राशियों—वृष, कर्क, कन्या, वृश्चिक, मकर और मीन-में १ला ५ अंश तक शुक्र का, २रा ७ अंश तक बुध का, ३रा ८ अंश तक

बृहस्पति का, ४था ५ अंश तक शनि का और ५वाँ ५ अंश तक मंगल का त्रिशांश है।

राशिपद्धति के अनुसार विषम राशियों में ५ अंश तक मेष का, १० अंश तक कुम्भ का, १८ अंश तक धनु का, २५ अंश तक मिथुन का और ३० अंश तक तुला का त्रिशांश होता है।

त्रिशांश कुण्डली भी पूर्ववत् बनायी जायेगी।

विषम राशि का त्रिशांश चक्र

मे०	मिथुन	सिं०	तु०	धनु०	कुम्भ	अंश
१मं.	१ मं०	१ मं०	१ मं०	१ मं०	१ मं०	५
११श.	११ श०	११ श०	११ श०	११ श०	११ श०	१०
९ गु.	९ गु०	९ गु०	९ गु०	९ गु०	९ गु०	१८
३ बु.	३ बु०	३ बु०	३ बु०	३ बु०	३ बु०	२५
७ शु.	७ शु०	७ शु०	७ शु०	७ शु०	७ शु०	३०

उदाहरण—लग्न ४।२३।२५।२७-सिंह राशि के २३ अंश २५ कला २७ विकला है, यह सिंह राशि के १८ अंश से आगे और २५ अंश के पीछे है।

अत मिथुन का त्रिंशाश कहलायेगा। त्रिंशाश कुण्डली का लग्न मिथुन होगा। सूर्य ०।१०।७।३४—मेष राशि के १० अंश के ७ कला ३४ विकला हैं। मेष राशि में १० अश से आगे १८ अश धनु राशि का त्रिंशाश होता है। अत सूर्य धनु राशि का होगा।

समराशि का त्रिंशांश चक्र

वृ०	क०	क०	वृ०	म०	मी०	अश
२ शु०	२ शु०	२ शु०	२ शु०	२ शु०	२ शु०	१ से ५ तक
६ बु०	६ बु०	६ बु०	६ बु०	६ बु०	६ बु०	६ से १२ तक
१२गु०	१२ गु०	१२ गु०	१२ गु०	१२ गु०	१२ गु०	१३से २० तक
१०श०	१० श०	१० श०	१० श०	१० श०	१० श०	२१से २५ तक
८ म०	८ म०	८ म०	८ मं०	८ म०	८ म०	२६से ३० तक

त्रिंशांश कुण्डली चक्र
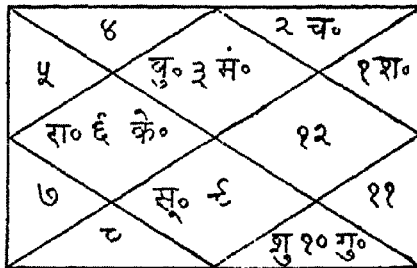
षष्ट्यश—एक राशि में ६० षष्ट्यंश होते हैं अर्थात् ३० कला का एक षष्ट्यश होता है।

जिस ग्रह या लग्न का षष्ट्यंश साधन करना हो उस ग्रह की राशि को छोड़ कर अंशो की कला बना कर आगे वाली कलाओं को उस में जोड़ देना चाहिए। इन योगफल वाली कलाओ में ३० का भाग देने से जो लब्ध आवे उस में एक और जोड़ दे। इस योगफल को आगे दिये गये षष्ट्यंश चक्र में देखने से षष्ट्यंश की राशि मिल जायेगी। विषम राशि वाले ग्रह का देवतांश विषम-देवतांश के नीचे और सम राशिवाले का सम देवतांश के नीचे मिलेगा।

षष्ट्यंश कुण्डली बनाने का उदाहरण—लग्न ४।२३।२५।२७ है। यहाँ राशि अंक को छोड कर अंशो की कला बनायी तो—२३।२५
१३८० + २५ = १४०५ ÷ ३० = ४६ शेष २५
लब्ध ४६ + १ = ४७वां षष्ट्यंश हुआ, चक्र में देखा तो सिंह राशि का ४७-वां षष्ट्यंश मिथुन है अत षष्ट्यंश कुण्डली की लग्न मिथुन होगी। इस चक्र से बिना गणित किये भी षष्ट्यंश का बोध कोष्ठक के अन्त में दिये गये अंशादि के द्वारा किया जा सकता है। प्रस्तुत लग्न सिंह के २३ अंश २५ कला २३ अंश से आगे है। अतः २३।३० वाले कोष्ठक में सिंह के नीचे मिथुन लिखा गया है अत. षष्ट्यंश लग्न मिथुन होगा।

ग्रहों के स्थान पहले के समान ही स्थापित करने चाहिए।

षष्ट्यंश कुण्डली चक्र

षष्ट्यंश चक्र

विषम-देवतांश	स	मे	वृ	मि	क	सि	क	तु	वृ	ध.	म.	कु	मी	अंश	सम-देवतांश
घोर	१	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	०।३०	इन्दुरेखा
राक्षस	२	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१	१।०	भ्रमण
देव	३	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१	२	१।३०	पयोधि
कुबेर	४	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१	२	३	२।०	सुधा
यक्ष	५	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१	२	३	४	२।३०	शीत
किन्नर	६	६	७	८	९	१०	११	१२	१	२	३	४	५	३।०	क्रूर
भ्रष्ट	७	७	८	९	१०	११	१२	१	२	३	४	५	६	३।३०	सौम्य
कुलघ्न	८	८	९	१०	११	१२	१	२	३	४	५	६	७	४।०	निर्मल
गरल	९	९	१०	११	१२	१	२	३	४	५	६	७	८	४।३०	दण्डायुध
अग्नि	१०	१०	११	१२	१	२	३	४	५	६	७	८	९	५।०	कालाग्नि
माया	११	११	१२	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	५।३०	प्रवीण
प्रेतपुरीप	१२	१२	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	६।०	इन्दुमुख
अपाम्पति	१३	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	६।३०	दष्ट्राकराल
देवगणेश	१४	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१	७।०	शीतल
काल	१५	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१	२	७।३०	मृदु

अहिभाग	१६	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१	२	३	८। ०	सौम्य
अमृत	१७	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१	२	३	४	८।३०	काल रूप
चन्द्र	१८	६	७	८	०	१०	११	१२	१	२	३	४	५	९। ०	पातक
मृदश	१९	७	८	९	१०	११	१२	१	२	३	४	५	६	९।३०	वशक्षय
कोमल	२०	८	९	१०	११	१२	१	२	३	४	५	६	७	१०। ०	कुलनाश
हेरम्ब	२१	९	१०	११	१२	१	२	३	४	५	६	७	८	१०।३०	विषप्रदग्ध
ब्रह्मा	२२	१०	११	१२	१	२	३	४	५	६	७	८	९	११। ०	पूर्णचन्द्र
विष्णु	२३	११	१२	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११।३०	अमृत
महेश्वर	२४	१२	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२। ०	सुधा
देव	२५	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१२।३०	कपटक
अद्रि	२६	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१	१३। ०	यम
कलिनाश	२७	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१	२	१३।३०	घोर
क्षितीश्वर	२८	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१	२	३	१४। ०	दावाग्नि
कमलाकर	२९	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१	२	३	४	१४।३०	काल
मान्दी	३०	६	७	८	९	१०	११	१२	१	२	३	४	५	१५। ०	मृत्यु

मृत्युकर	३१	७	८	९	१०	११	१२	१	२	३	४	५	६	१५।३०	मान्दी
काल	३२	८	९	१०	११	१२	१	२	३	४	५	६	७	१६।०	कमलाकर
दावाग्नि	३३	९	१०	११	१२	१	२	३	४	५	६	७	८	१६।३०	क्षितिज
घोर	३४	१०	११	१२	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१७।०	कलिनाश
यम	३५	११	१२	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	१७।३०	आर्द्र
कण्टक	३६	१२	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१८।०	देव
सुधा	३७	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१८।३०	महेश्वर
अमृत	३८	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१	१९।०	विष्णु
पूर्णचन्द्र	३९	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१	२	१९।३०	ब्रह्मा
विषप्रदग्ध	४०	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१	२	३	२०।०	हेरम्ब
कुलनाश	४१	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१	२	३	४	२०।३०	कोमल
वंशक्षय	४२	६	७	८	९	१०	११	१२	१	२	३	४	५	२१।०	मृदुश
पातक	४३	७	८	९	१०	११	१२	१	२	३	४	५	६	२१।३०	चन्द्र
काल	४४	८	९	१०	११	१२	१	२	३	४	५	६	७	२२।०	अमृत
सौम्य	४५	९	१०	११	१२	१	२	३	४	५	६	७	८	२२।३०	अहिभाग

मृदु	४६	१०	११	१२	१	२	३	४	५	६	७	८	९	२३।० काल
शीतल	४७	११	१२	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	२३।३० देवगणेश
दष्ट्राकराल	४८	१२	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	२४।० अपापति
इन्दुमुख	४९	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	२४।३० प्रेतपुरीप
प्रवीण	५०	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१	२५।० माया
कालाग्नि	५१	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१	२	२५।३० अग्नि
दण्डायुध	५२	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१	२	३	२६।० गरल
निर्मल	५३	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१	२	३	४	२६।३० कुलघ्न
शुभाकर	५४	६	७	८	९	१०	११	१२	१	२	३	४	५	२७।० भ्रष्ट
क्रूर	५५	७	८	९	१०	११	१२	१	२	३	४	५	६	२७।३० किन्नर
अतिशीतल	५६	८	९	१०	११	१२	१	२	३	४	५	६	७	२८।० यक्ष
सुधा	५७	९	१०	११	१२	१	२	३	४	५	६	७	८	२८।३० कुबेर
पयोधि	५८	१०	११	१२	१	२	३	४	५	६	७	८	९	२९।० देव
भ्रमण	५९	११	१२	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	२९।३० राक्षस
इन्दुरेखा	६०	१२	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	३०।० घोर

ग्रहों का निसर्ग-मैत्री विचार

सूर्य के मंगल, चन्द्रमा और वृहस्पति मित्र, शुक्र और शनि शत्रु एवं बुध सम हैं। चन्द्रमा के सूर्य और बुध मित्र, वृहस्पति मंगल, शुक्र और शनि सम हैं। मंगल के सूर्य, चन्द्रमा एव वृहस्पति मित्र, बुध शत्रु, शुक्र और शनि सम हैं। बुध के सूर्य और शुक्र मित्र; शनि, वृहस्पति और मगल सम एव चन्द्रमा शत्रु है। वृहस्पति के सूर्य, मगल और चन्द्रमा मित्र, शनि सम एवं शुक्र और बुध शत्रु है। शुक्र के शनि, बुध मित्र, चन्द्रमा, सूर्य शत्रु और वृहस्पति, मगल सम है। शनि के सूर्य, चन्द्रमा और मगल शत्रु, वृहस्पति सम एवं शुक्र और बुध मित्र है।

निसर्ग मैत्री बोधक चक्र

ग्रह	मित्र	शत्रु	सम (उदासीन)
सूर्य	चन्द्र, मगल, गुरु	शुक्र, शनि	बुध
चन्द्र	रवि, बुध	×	चन्द्र, मंगल, गुरु, शनि
मंगल	रवि, चन्द्र, गुरु	बुध	शुक्र, शनि
बुध	सूर्य, शुक्र	चन्द्र	मगल, गुरु, शनि
वृहस्पति	सूर्य, चन्द्र, मंगल	बुध, शुक्र	शनि
शुक्र	बुध, शनि	सूय, चन्द्र	मगल, गुरु
शनि	बुध, शुक्र	सूर्य, चन्द्र मंगल	गुरु

तात्कालिक मैत्री विचार

जो ग्रह जिस स्थान में रहता है, वह उस से दूसरे, तीसरे, चौथे, दसवें, ग्यारहवें और बारहवें भाव के ग्रहों के साथ मित्रता रखता है—

तात्कालिक मित्र होता है अन्य स्थानो—१, ५, ६, ७, ८, ९,—के ग्रह शत्रु होते है।

जन्मपत्री बनाते समय निसर्ग मैत्रीचक्र लिखने के अनन्तर जन्मलग्न-कुण्डली के ग्रहो का उपर्युक्त नियम के अनुसार तात्कालिक मैत्री चक्र भी लिखना चाहिए।

पंचधा मैत्री विचार

नैसर्गिक और तात्कालिक मैत्री इन दोनो के सम्मिश्रण से पाँच प्रकार के मित्र, शत्रु होते है—(१) अतिमित्र (२) अतिशत्रु (३) मित्र (४) शत्रु और (५) उदासीन—सम।

तात्कालिक और नैसर्गिक दोनो जगह मित्र होने से अतिमित्र, दोनो जगह शत्रु होने से अतिशत्रु, एक में मित्र और दूसरे मे सम होने से मित्र, एक में सम और दूसरे में शत्रु होने से शत्रु एव एक में शत्रु और दूसरे में मित्र होने से सम-उदासीन ग्रह होते हैं।

जन्मपत्री में इस पंचधा मैत्रीचक्र को भी लिखना चाहिए।

पारिजातादि विचार

पारिजातादि ज्ञान करने के लिए पहले दशवर्ग चक्र बना लेना चाहिए। इस चक्र की प्रक्रिया यह है कि पहले जो होरा, द्रेष्काण, सप्तांश आदि बनाये है उन्हें एक साथ लिख कर रख लेना चाहिए। इस चक्र में जो ग्रह अपने वर्ग अतिमित्र के वर्ग या उच्च के वर्ग में हो उस की स्वर्क्षादि वर्गी संज्ञा होती है।

जिस जन्मपत्री में दो ग्रह स्वर्क्षादि वर्गी हो उन की पारिजात संज्ञा, तीन की उत्तम, चार की गोपुर, पाँच की सिंहासन, छह की पारावत, सात की देवलोक, आठ की ब्रह्मलोक, नौ की ऐरावत और दश की श्रीधाम संज्ञा होती है। ये सब योग विशेष है, आगे इन का फल लिखा जायेगा।

२	३	४	५	६	७	८	९	१०	वर्गैक्य
पारिजात	उत्तम	गोपुर	सिंहासन	पारावत	देवलोक	ब्रह्मलोक	ऐरावत	श्रीधाम	योग विशेष

कारकांश कुण्डली बनाने की विधि

सूर्यादि ७ ग्रहों में जिस के अश सब से अधिक हो वही आत्मकारक ग्रह होता है। यदि अश बराबर हो तो उन में जिस की कला अधिक हों वह; कला को भी समता होने पर जिस की विकला अधिक हों वह आत्मकारक होता है। विकलाओ में भी समानता होने पर जो बली ग्रह होगा, वही आत्मकारक उस कुण्डली में माना जायेगा। आत्मकारक से अल्प अशवाला भ्रातृकारक, उस से न्यून अंश वाला मातृकारक, उस से न्यून अश वाला पुत्रकारक, उस से न्यून अश वाला जातिकारक और उस से न्यून अंश वाला स्त्रीकार होता है। किसी-किसी आचार्य के मत से पितृकारक पुत्रकारक के स्थान में माना गया है।

कारकाश कुण्डली निर्माण की प्रक्रिया यह है कि आत्मकारक ग्रह जिस राशि के नवाश में हो, उस को लग्न मान कर सभी ग्रहो को यथास्थान रख देने से जो कुण्डली होती है, उसी को कारकाश कुण्डली कहते है।

उदाहरण—ग्रह स्पष्ट चक्र में सब से अधिक अंश वृहस्पति के हैं, अतः वृहस्पति आत्मकारक हुआ। इस से अल्प अश वाला बुध अमात्यकारक, इस से अल्प अश वाला शुक्र भ्रातृकारक, इस से अल्प अश वाला मंगल मातृकारक, इस से अल्प अश वाला सूर्य पुत्रकारक, इस से अल्प अश वाला चन्द्र जातिकारक और इस से अल्प अश वाला शनि स्त्रीकारक होगा।

कुण्डली निर्माण के लिए विचार किया तो आत्मकारक वृहस्पति कुम्भ के नवाश में है अत कारकाश कुण्डली की लग्न राशि कुम्भ होगी।

जन्म-कुण्डली में ग्रह जिस-जिस राशि में हैं, उसी-उसी राशि में उन्हें स्थापित कर देने से कारकांश कुण्डली बन जायेगी।

स्वांश कुण्डली के निर्माण की विधि—स्वांश कुण्डली का निर्माण प्रायः कारकांश कुण्डली के समान होता है। इस में लग्न राशि कारकांश कुण्डली की ही मानी जाती है, किन्तु ग्रहों का स्थापन अपनी-अपनी नवांश राशि में किया जाता है। तात्पर्य यह है कि नवांश कुण्डली में ग्रह जिस-जिस राशि में आये हैं स्वांश कुण्डली में भी उस-उस राशि में रखे जायेंगे। उदाहरण—स्वांश कुण्डली की लग्न ११ राशि होगी।

स्वांशकुण्डली चक्र
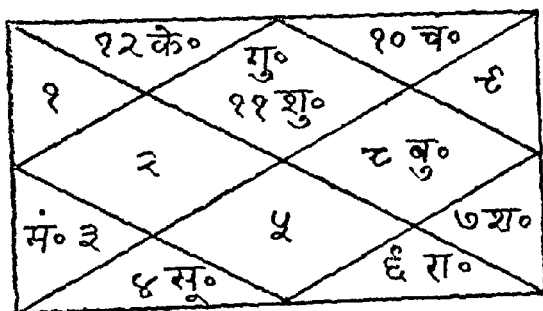
दशा विचार

अष्टोत्तरी, विंशोत्तरी, योगिनी आदि कई प्रकार की दशाएँ होती हैं। फल अवगत करने के लिए प्रधान रूप से विंशोत्तरी दशा का ही ग्रहण किया गया है। जातक शास्त्र के मर्मज्ञों ने ग्रहों के शुभाशुभत्व का समय जानने के लिए विंशोत्तरी को ही प्रधान माना है। मारकेश का निर्णय भी विंशोत्तरी दशा से ही किया जाता है; अतः नीचे विंशोत्तरी दशा बनाने की विधि लिखी जाती है।

विंशोत्तरी—इस दशा में १२० वर्ष की आयु मान कर ग्रहों का विभाजन

किया गया है। सूर्य की दशा ६ वर्ष, चन्द्रमा की १० वर्ष, भौम की ७ वर्ष, राहु की १८ वर्ष, बृहस्पति की १६ वर्ष, शनि की १९ वर्ष, बुध की १७ वर्ष, केतु की ७ वर्ष एवं शुक्र की २० वर्ष की दशा बतायी गयी है।

जन्म-नक्षत्रानुसार ग्रहोंकी दशा यह होती है। कृत्तिका, उत्तराफाल्गुनी और उत्तराषाढा में जन्म होने से सूर्य की, रोहिणी, हस्त और श्रवण में जन्म होने से चन्द्रमा की; मृगशिर, चित्रा और धनिष्ठा नक्षत्र में जन्म होने से मंगल की, आर्द्रा, स्वाति और शतभिषा में जन्म होने से राहु की; पुनर्वसु, विशाखा और पूर्वाभाद्रपद में जन्म होने से बृहस्पति की, पुष्य, अनुराधा और उत्तराभाद्रपद में जन्म होने से शनि की, आश्लेषा, ज्येष्ठा और रेवती में जन्म होने से बुध की, मघा, मूल और अश्विनी में जन्म होने से केतुकी एवं भरणी, पूर्वाफाल्गुनी और पूर्वाषाढा में जन्म होने से शुक्र की दशा होती है।

जन्मनक्षत्र-द्वारा ग्रहदशा बोधक चक्र

आदित्य	चन्द्र	भौम	राहु	जीव या गुरु	शनि	बुध	केतु	शुक्र	ग्र०
६	१०	७	१८	१६	१९	१७	७	२०	वर्ष
कृ उ. फा उ पा.	रो. ह श्र	मृ चि. ध.	आर्द्रा स्वा. श	पुन. वि पू. भा.	पुष्य अनु उ.भा.	आश्ले ज्ये रे	म. मू. अश्वि	पू. फा. पू. पा. भ.	नक्षत्र

दशा जानने की सुगम विधि—कृत्तिका नक्षत्र से जन्मनक्षत्र तक गिनकर ९ का भाग देने से एकादि शेष में क्रम से आ०, चं०, भौ०, रा०, जी०, श०, बु०, के० और शु० की दशा होती है। उदाहरण—जन्मनक्षत्र मघा है। यहाँ कृत्तिका से मघा तक गणना की तो ८ संख्या हुई, इसमें ९ का भाग दिया तो लब्ध कुछ नहीं मिला, शेष ८ ही रहे। आ०, च०, भौ० आदि क्रमसे आठ तक गिना तो आठवी संख्या केतु की हुई। अतः जन्मदशा केतु की कहलायेगी।

दशासाधन[1]

भयात और भभोग को पलात्मक बना कर जन्मनक्षत्र के अनुसार जिस ग्रह की दशा हो, उस के वर्षो से पलात्मक भयात को गुणा कर पलात्मक भभोग का भाग देने से जो लब्ध आये वह वर्ष और शेष को १२ से गुणा कर पलात्मक भभोग से भाग देने से जो लब्ध आये वह मास, और शेष को पुन ३०से गुणाकर पलात्मक भभोग का भाग देने से जो लब्ध आये वह दिन, शेष को पुनः ६० से गुणाकर पलात्मक भभोग का भाग देने से जो लब्ध आये वह घटी एवं शेष को पुन ६०से गुणा कर पलात्मक भभोग का भाग देने से लब्ध पल आयेंगे। यह वर्ष, मास, दिन, घटी और फल दशा के भुक्त वर्षादि कहलायेंगे। इन को दशा वर्ष में घटाने से भोग्य वर्षादि आ जायेंगे।

विंशोत्तरी दशा का चक्र बनाने की प्रक्रिया यह है कि पहले जिस ग्रह की भोग्य दशा जितनी आयी है, उसको रखकर फिर क्रम से सब ग्रहो को स्थापित कर देंगे। बीच चक्र में एक खाना संवत् के लिए रहेगा और नीचे एक खाना जन्मसमय के राश्यादि सूर्य के लिए रहेगा। नीचे खाने के सूर्य स्पष्ट को भोग्य दशा के मासादि में जोड देना चाहिए और इस योगफल को नीचे के खाने में जोड देना चाहिए और इस योगफल को नीचे के खाने के अगले कोष्ठक में रखना चाहिए। मध्यवाले कोष्ठक के सवत् को ग्रहो के वर्षों में जोडकर आगे रखना चाहिए।

उदाहरण—भयात १६ घटी ३९ पल। भभोग ५८।४४

६०	६०
९६०	३४८०
३९	४४
पलात्मक भयात ९९९	पलात्मक भभोग ३५२४

यहाँ जन्मनक्षत्र कृत्तिका है। जन्मनक्षत्र-द्वारा यह दशाबोधक चक्र में

---

१ दशामान भयातघ्न भभोगेन हृत फलम्।
दशाया भुक्तवर्षाद्य भोग्य मानाद्द विशोधितम्॥
—बृहत्पाराशर होरा, काशी १९५२ ई०, ४६।१६

कृत्तिका नक्षत्र की जन्मदशा सूर्य की लिखी गयी है। इस ग्रह को ६ वर्ष की दशा होती है, अत पलात्मक भयात को ग्रह दशा वर्ष से गुणा किया--

९ ९ ९ भयात   ३५२४ भभोग

६

५९९४

३५२४)५९९४(१ वर्ष
३५२४
२४७०
१२
३५२४)२९६४०(८ मास
२८१९२
१४४८
३०
३५२४)४३४४०(१२ दिन
३५२४
८२००
७०४८
११५२
६०
३५२४)६९१२०(१९ घटी
३५२४
३३८८०
३१७१६
२१६४ × ६०
३५२४)१२९८४०(३६ पल
१०५७२
२४१२०
२११४४
२९७६

सूर्य के भुक्त वर्षादि = १।८।१२।१९।३६
इसे ग्रह वर्षमें-से घटाया तो—
६।०। ०। ०। ० ग्रह वर्ष
१।८।१२।१९।३६ भुक्त वर्षादि
४।३।१७।४०।२४ भोग्य वर्षादि

विंशोत्तरी दशा चक्र

आदित्य	चन्द्रमा	भौम	राहु	जीव	शनि	बुध	केतु	शुक्र	ग्र०
४	१०	७	१८	१६	१९	१७	७	२०	वर्ष
३	०	०	०	०	०	०	०	०	मास
१७	०	०	०	०	०	०	०	०	दिन
४०	०	०	०	०	०	०	०	०	घटी
२४	०	०	०	०	०	०	०	०	पल
संवत्	संवत्	सवत्	सवत्	संवत्	संवत्	सवत्	सवत्	सवत्	सवत्
२००१	२००५	२०१५	२०२२	२०४०	२०५६	२०७५	२०९२	२०९९	२११९
सूर्य	सूर्य	सूर्य	सूर्य	सूर्य	सूर्य	सूर्य	सूर्य	सूर्य	सूर्य
००	३	३	३	३	३	३	३	३	३
१०	२७	२७	२७	२७	२७	२७	२७	२७	२७
७	४७	४७	४७	४७	४७	४७	४७	४७	४७
३४	५८	५८	५८	५८	५८	५८	५८	५८	५८

अन्तर्दशा निकालने की विधि

प्रत्येक ग्रह की महादशा में ९ ग्रहो की अन्तर्दशा होती है। जैसे सूर्य की महादशा में पहली अन्तर्दशा सूर्य की, दूसरी चन्द्रमा की, तीसरी भौम की, चौथी राहु की, पाँचवी जीव (बृहस्पति) की, छठी शनि की, सातवी बुध की, आठवी केतु की और नौवी शुक्र की होती है। इसी प्रकार अन्य ग्रहो में समझना चाहिए। सारांश यह है कि जिस ग्रह की दशा हो उस से आ०, चं०, भौ० के क्रमानुसार अन्य नव ग्रहो की अन्तर्दशाएँ होती है।

अन्तर्दशा निकालने का सरल नियम यह है कि दशा-दशा का परस्पर गुणाकर १०से भाग देने से लब्ध मास और शेष को तीन से गुणा करने से दिन होंगे।

अन्तर्दशा निकालने का एक अन्य नियम यह भी है कि दशा-दशा का परस्पर गुणा करने से जो गुणनफल आवे उसमें इकाई के अक को छोड शेष अक मास और इकाई के अक को तीन से गुणा करने पर दिन आयेंगे।

उदाहरण—सूर्य की महादशा में अन्तर्दशा निकालनी है तो सूर्य के दशा वर्ष ६ का सूर्य के ही दशा वर्षो से गुणा किया तो

६ × ६ = ३६ ÷ १० = ३ शेष ६

६ × ३ = १८ दिन अर्थात् ३ मास १८ दिन सूर्य की दशा

सूर्य की महादशा में चन्द्रमा की अन्तर्दशा = ६ × १० = ६०

६० ÷ १० = ६ मास

सूर्य में मगल की—६ × ७ = ४२ – १० = ४ शेष २ × ३ = ६ दिन = ४ मास ६ दिन

सूर्य में राहु की—६ × १८ = १०८ – १० = १० शेष ८ × ३ = २४ = १० मास २४ दिन

सूर्य में जीव—गुरु की अन्तर्दशा–६ × १६ = ९६ ÷ १० = ९ शेष ६

६ × ३ = १८ दिन, ९ मास, १८ दिन

सूर्य में शनि की अन्तर्दशा—६ × १९ = ११४ ÷ १० = ११, शेष ४

४ × ३ = १२ दिन, ११ मास १२ दिन

सूर्य में बुध की अन्तर्दशा—६ × १७ = १०२ – १० = १० शेष २,

२ × ३ = ६ दिन, १० मास ६ दिन

सूर्य में शुक्र की अन्तर्दशा—६ × ७=४२ – ४ = १० = ४ शेष २ × ३ = ६ दिन, ४ मास ६ दिन

सूर्य में शुक्र की अन्तर्दशा—६ × २० = १२० ÷ १० = १२

१२ मास अर्थात् १ वर्ष

चन्द्रमा की अन्तर्दशा में नौ ग्रहो की अन्तर्दशा

१० × १० = १०० – १० = १० मास = चन्द्र की महादशा में चन्द्र की अन्तर्दशा

१० × ७ = ७० ÷ १० = ७ मास = चन्द्र में भौम की अन्तर्दशा

१० × १८ = १८० ÷ १० = १८ मास = १ वर्ष ६ मास = चन्द्र में राहु की अन्तर्दशा

१० × १६ = १६० ÷ १० = १६ मास = १ वर्ष ४ मास = चन्द्र में जीवान्तर

१० × १९ = १९० – १० = १९ मास = १ वर्ष ७ मास = चन्द्र में शन्यन्तर

१० × १७ = १७० ÷ १० = १७ मास = १ वर्ष ५ मास = चन्द्र में बुधान्तर

१० × ७ = ७० ÷ १० = ७ मास = चन्द्र में केत्वन्तर

१० × २० = २०० ÷ १० = २० मास = १ वर्ष ८ मास = चन्द्र में शुक्रान्तर

१० × ६ = ६० ÷ १० = ६ मास = चन्द्र में आदित्यान्तर

ग्रहो की अन्तर्दशा के चक्र नीचे दिये जाते हैं, इन चक्रों-द्वारा बिना गणित के ही अन्तर्दशा का ज्ञान किया जा सकता है।

सूर्यान्तर्दशा चक्र

आ०	च०	भौ०	रा०	जी०	श०	बु०	के०	शु०	ग्र०
०	०	०	०	०	०	०	०	१	वर्ष
३	६	४	१०	९	११	१०	४	०	मास
१८	०	६	२४	१८	१२	६	६	०	दिन

चन्द्रान्तर्दशा चक्र

चं०	भौ०	रा०	जी०	श०	बु०	के०	शु०	आ०	ग्र०
०	०	१	१	१	१	०	१	०	वर्ष
१०	७	६	४	७	५	७	८	६	मास
०	०	०	०	०	०	०	०	०	दिन

भौमान्तर्दशा चक्र

भौ०	रा०	जा०	श०	बु०	के०	शु०	आ०	च०	ग्र०
०	१	०	१	०	०	१	०	०	वर्ष
४	०	११	१	११	४	२	४	७	मास
२७	१८	६	९	२७	२७	०	६	०	दिन

राह्वन्तर्दशा चक्र

रा०	जी०	श०	बु०	के०	शु०	आ०	च०	भौ०	ग्र०
२	२	२	२	१	३	०	१	१	वर्ष
८	४	१०	६	०	०	१०	६	०	मास
१२	२४	६	१८	१८	०	२४	०	१८	दिन

जीवान्तर्दशा चक्र

जी०	श०	बु०	के०	शु०	आ०	च०	भौ०	रा०	ग्र०
२	२	२	०	२	०	१	०	२	वप
१	६	३	११	८	९	४	११	४	मास
१८	१२	६	६	०	१८	०	६	२४	दिन

शन्यन्तर्दशा चक्र

श०	बु०	के०	शु०	आ०	च०	भौ०	रा०	जी०	ग्र०
३	२	१	३	०	१	१	२	२	वर्ष
०	८	१	२	११	७	१	१०	६	मास
३	९	९	०	१२	०	९	६	१२	दिन

बुधान्तर्दशा चक्र

बु०	के०	शु०	आ०	च०	भौ०	रा०	जी०	श०	ग्र०
२	०	२	०	१	०	२	२	२	वर्ष
४	११	१०	१०	५	११	६	३	८	मास
२७	२७	०	६	०	२७	१८	६	९	दिन

केत्वन्तर्दशा चक्र

के०	शु०	आ०	च०	भौ०	रा०	जी०	श०	बु०	ग्र०
०	१	०	०	०	१	०	१	०	वर्ष
४	२	४	७	४	०	११	१	११	मास
२७	०	६	०	२७	१८	६	९	२७	दिन

शुक्रान्तर्दशा चक्र

शु०	आ०	च०	भौ०	रा०	जी०	श०	बु०	के०	ग्र०
३	१	१	१	३	२	३	२	१	वर्ष
४	०	८	२	०	८	२	१०	२	मास
०	०	०	०	०	०	०	०	०	दिन

जन्मपत्री में अन्तर्दशा लिखने की विधि

जन्मकुण्डली में जो महादशा आयी है पहले उस की अन्तर्दशा बनायी जाती है। अन्तर्दशा चक्रों में जिस ग्रह का जो चक्र है पहले कोष्ठक में विंशोत्तरी के समान उस चक्र के वर्षादि को लिख देना, मध्य में संवत् का कोष्ठक और अन्त में सूर्य का कोष्ठक रहेगा। सूर्य के राशि अंश को दशा के मास और दिन में जोडना चाहिए। दिनसख्या में तीस से अधिक होने पर तीस का भाग दे कर लब्ध को मास में जोड देना चाहिए और माससख्या में १२ से अधिक होने पर १२ का भाग दे कर लब्ध को वर्ष में जोड देना चाहिए। नीचे और ऊपर के कोष्ठक के जोड़ने के अनन्तर मध्यवाले में संवत् के वर्षों में जोडकर रख लेना चाहिए।

जिस ग्रह की महादशा आयी है, उस का अन्तर निकालने के लिए उस के भुक्त वर्षों को अन्तर्दशा के ग्रहों के वर्षों में से घटा कर तब अन्तर्दशा लिखनी चाहिए।

प्रस्तुत उदाहरण में सूर्य की दशा आयी है। और इस के भुक्त वर्षादि १।८।१२।१९।३६ हैं। सूर्य की महादशा में पहला अन्तर सूर्य का ३ मास १८ दिन, चन्द्रमा का ६ मास, भौम का ४ मास ६ दिन; इन तीनो को जोडा—

३।१८ सूर्य
६। ० चन्द्र
४। ६ भौम
११।२४

१।८।१२ में-से
११।२४ को घटाया
६।१८

१०।२४ राहु
६।१८
४। ६ राहु का भोग्य हुआ।

यहाँ पर राहु के पहले तक सूर्यादि ग्रहो का काल शून्य माना जायेगा और आगे चक्र के अनुसार वर्षादि लिखे जायेंगे। आगे कुण्डली में सूर्य महादशा की अन्तर्दशा लिखी जाती है।

सूर्यान्तर्दशा चक्र

आ०	च०	भौ०	रा०	जी०	श०	बु०	के०	शु०	ग्र०
०	०	०	०	०	०	०	०	१	वर्ष
०	०	०	४	९	११	१०	४	०	मास
०	०	०	६	१८	२०	६	६	०	दिन
सवत्	संवत्	सवत्	संवत्	सवत्	सवत्	सवत	सवत्	संवत्	सवत्
२००१	२००१	२००१	२००१	२००१	२००२	२००३	२००३	२००४	२००५
सूर्य	सूर्य	सूर्य	सूर्य	सूर्य	सूर्य	सूर्य	सूर्य	सूर्य	सूर्य
०	०	०	०	४	२	१	११	३	३
१०	१०	१०	१०	१६	४	१६	१२	२८	२८

चन्द्रान्तर्दशा चक्र

चं०	भौ०	रा०	जी०	श०	बु०	के०	शु०	आ०	ग्र०
०	०	१	१	१	१	०	१	०	वर्ष
१०	७	६	४	७	५	७	८	६	मास
०	०	०	०	०	०	०	०	०	दिन
सवत्	सवत्	सवत्	संवत्	सवत्	सवत्	सवत्	सवत्	सवत्	सवत्
२००५	२००६	२००६	२००८	२००९	२०११	२०१२	२०१३	२०१४	२०१५
सूर्य	सूर्य	सूर्य	सूर्य	सूर्य	सूर्य	सूर्य	सूर्य	सूर्य	सूर्य
३	१	८	२	६	१	६	१	९	३
२८	२८	२८	२८	२८	२८	२८	२८	२८	२८

विवरण—जिस प्रकार विंशोत्तरी दशा निकालने में ऊपर के वर्षादि मान को नीचे के राश्यादि में जोडा गया था। अर्थात् विकलाओं को पलों में, कलाओ को घटियो में, अंशो को दिनो में और राशियो को मासो में जोडा था, इसी प्रकार अन्तर्दशा निकालते समय भी राशि और अशो को मास और दिनों में जोडा गया है। जैसे चन्द्रान्तर्दशा चक्र में १०।० में ३।२८ को जोड़ा तो १।२८ आया है यहाँ १३ महीने योग आने के कारण इस में १२ का भाग दे दिया है और लब्ध एक को हासिल के रूप में संवत् के कोष्ठ में खडी रेखा का चिह्न बना देना चाहिए। इसी प्रकार आगे ७।० में १।२८ को जोडा तो ८।२८ आया, ८।२८ को ६।० में जोडा तो २।२८ आया, एक हासिल को पुन॰ खडी रेखा के ऊपर सवत् के खाने में + इस प्रकार लिख दिया। इस तरह आगे-आगे जोडने पर चन्द्रान्तर्दशा का पूरा चक्र बन जाता है।

— संवत्‌वाले कोष्ठ को भरते समय वर्षों को जोडा जाता है और हासिलवाली संख्या जो वर्षों की मिलती है, उस को भी जोड दिया जाता है। अन्तर्दशा के समान ही प्रत्यन्तर और सूक्ष्मान्तर आदि दशाएँ लिखी जाती हैं।

प्रत्यन्तर्दशा विचार

जिस प्रकार प्रत्येक ग्रह की महादशा में नौ ग्रहो की अन्तर्दशा होती है, उसी प्रकार एक अन्दर्दशा में नौ ग्रहो को प्रत्यन्तर्दशा होती है; जैसे सूर्य की महादशा में सूर्य की अन्तर्दशा ३ मास १८ दिन है। इस ३ मास और १८ दिन में उसी क्रम और परिमाणानुसार प्रत्यन्तर भी होता है। प्रत्यन्तर्दशा निकालने का नियम यह है कि महादशा के वर्षों को अन्तर और प्रत्यन्तर्दशा के वर्षों से गुणा कर ४० का भाग देने पर जो दिनादि आयेंगे वही प्रत्यन्तर्दशा के दिनादि होंगे।

उदाहरण—सूर्य की महादशा में चन्द्रमा की अन्तर्दशा में प्रत्यन्तर्दशा निकालनी है—

सूर्य की महादशा ६ वर्ष × चं० की अन्तर्दशा १० वर्ष = ६ × १० = ६० × १० = ६०० ÷ ४० = १५ दिन चन्द्रमा का प्रत्यन्तर, ६० × ७ = ४२० – ४० = १०, २० × ३० = १० दिन ३० घटी मंगल का प्रत्यन्तर, ६० × १८ = १०८० = १०८० ÷ ४० = २७ दिन राहु का प्रत्यन्तर; ६० × १६ = ९६० – ४० = २४ दिन जीव का प्रत्यन्तर, ६० × १९ = ११४० ÷ ४० = २८ दिन, ३० घटी शनि का प्रत्यन्तर, ६० × १७ = १०२० ÷ ४० = २५ दिन, ३० घटी बुध का प्रत्यन्तर, ६० × ७ = ४२० ÷ ४० = १० दिन ३० घटी केतु का प्रत्यन्तर, ६० × २० = १२०० ÷ ४० = ३० दिन = १ मास, शुक्र का प्रत्यन्तर
६० × ६ = ३६० ÷ ४० = ९ दिन आदित्य का प्रत्यन्तर।

सूर्य की महादशा में सूर्य की अन्तर्दशा में प्रत्यन्तर

सूर्य	च०	भौ०	रा०	वृ०	श०	बु०	के०	शु०	ग्र०
०	०	०	०	०	०	०	०	०	मा०
५	९	६	१६	१४	१७	१५	६	१८	दि०
२४	०	१८	१२	२४	६	१८	१८	०	घ०

सू० द० चन्द्रमा की अन्तर्दशा में प्रत्यन्तर

च०	म०	रा०	वृ०	श०	बु०	के०	शु०	सू०	ग्र०
०	०	०	०	०	०	०	१	०	मा०
१५	१०	२७	२४	२८	२५	१०	०	९	दि०
०	३०	०	०	३०	३०	३०	०	०	घ०

सू० द० मंगल की अन्तर्दशा मे प्रत्यन्तर

म०	रा०	वृ०	श०	बु०	के०	शु०	सू०	च०	ग्र०
०	०	०	०	०	०	०	०	०	मा०
७	१८	१६	१९	१७	७	२१	६	१०	दि०
२१	५४	४८	५७	५१	२१	०	१८	३०	घ०

सू० द० राहु की अन्तर्दशा में प्रत्यन्तर

रा०	वृ०	श०	बु०	के०	शु०	र०	च०	म०	ग्र०
१	१	१	१	०	१	०	०	०	मा०
१८	१३	२१	१५	१८	२४	१६	२४	१८	दि०
३६	१२	१८	५४	५४	०	१२	०	५४	घ०

सू० द० गुरु की अन्तर्दशा में प्रत्यन्तर

वृ०	श०	बु०	के०	शु०	सू०	चं०	म०	रा०	ग्र०
१	१	१	०	१	०	०	०	१	मा०
८	१५	१०	१६	१८	१४	२४	१६	१३	दि०
२४	३६	४८	४८	०	२४	०	४८	१२	घ०

सू० द० शनि की अन्तर्दशा में प्रत्यन्तर

श०	बु०	के०	शु०	सू०	चं०	म०	रा०	वृ०	ग्र०
१	१	०	१	०	०	०	१	१	मा०
२४	१८	१९	२७	१७	२८	१९	२१	१५	दि०
९	२७	५७	०	६	३०	५७	२८	३६	घ०

सू० द० बुध की अन्तर्दशा मे प्रत्यन्तर

बु०	के०	शु०	सू०	च०	मं०	रा०	बृ०	श०	ग्र०
१	०	१	०	०	०	१	१	१	मा०
१३	१७	२१	१५	२५	१७	१५	१०	१८	दि०
२१	५१	०	१८	३०	५१	५४	४५	२७	घ०

सू० द० केतु की अन्तर्दशा मे प्रत्यन्तर

के०	शु०	सू०	च०	म०	रा०	बृ०	श०	बु०	ग्र०
०	०	०	०	०	०	०	०	०	मा०
७	२१	६	१०	७	१८	१६	१९	१७	दि०
२१	०	१८	३०	२१	५४	४८	५७	५१	घ०

सू० द० शुक्र की अन्तर्दशा मे प्रत्यन्तर

शु०	सू०	च०	म०	रा०	बृ०	श०	बु०	के०	ग्र०
२	०	१	०	१	१	१	१	०	मा०
०	१८	०	२१	२४	१८	२७	२१	२१	दि०

चन्द्रमा की दशा मे चन्द्रमा की अन्तर्दशा मे प्रत्यन्तर

च०	म०	रा०	बृ०	श०	बु०	के०	शु०	सू०	ग्र०
०	०	१	१	१	१	०	१	०	मा०
२५	१७	१५	१०	१७	१२	१७	२०	१५	दि०
०	३०	०	०	३०	३०	३०	०	०	घ०

चं० द० मंगल की अन्तर्दशा मे प्रत्यन्तर

म०	रा०	बृ०	श०	बु०	के०	शु०	सू०	च०	ग्र०
०	१	०	१	०	०	१	०	०	मा०
१२	१	२८	३	२९	१२	५	१०	१७	दि०
१५	३०	०	१५	४५	१५	०	३०	३०	घ०

चं० द० राहु के अन्तर में प्रत्यन्तर

रा०	वृ०	श०	बु०	के०	शु०	सू०	च०	म०	ग्र०
२	२	२	२	१	३	०	१	१	मा०
२१	१२	२५	१६	१	०	२७	१५	१	दि०
०	०	३०	३०	३०	०	०	०	३०	घ०

चं० द० बृहस्पति के अन्तर में प्रत्यन्तर

वृ०	श०	बु०	के०	शु०	सू०	च०	म०	रा०	ग्र०
२	२	२	०	२	०	१	०	२	मा०
४	१६	८	२८	२०	२४	१०	२८	१२	दि०

चं० द० शनि के अन्तर मे प्रत्यन्तर

श०	बु०	के०	शु०	सू०	च०	म०	रा०	वृ०	ग्र०
३	२	१	३	०	१	१	२	२	मा०
०	२०	३	५	२८	१७	३	२५	१६	दि०
१५	४५	१५	०	३०	३०	१५	३०	०	घ०

चं० द० बुध के अन्तर मे प्रत्यन्तर

बु०	के०	शु०	सू०	च०	मं०	रा०	वृ०	श०	ग्र०
२	०	२	०	१	०	२	२	२	मा०
१२	२९	२५	२५	१२	२९	१६	८	२०	दि०
१५	४५	०	३०	३०	४५	३०	०	४५	घ०

चं० द० केतु के अन्तर में प्रत्यन्तर

के०	शु०	सू०	च०	म०	रा०	वृ०	श०	बु०	ग्र०
०	१	०	०	०	१	०	१	०	मा०
१२	५	१०	१७	१२	१	२८	३	२९	दि०
१५	०	३०	३०	१५	३०	०	१५	४५	घ०

चन्द्रमाकी दशामें शुक्रके अन्तरमें प्रत्यन्तर

शु०	सू०	च०	म०	रा०	बृ०	श०	बु०	के०	ग्र०
३	१	१	१	३	२	३	२	१	मा०
१०	०	२०	५	०	२०	५	२५	५	दि०

चं० द० सूर्य के अन्तर मे प्रत्यन्तर

सू०	च०	म०	रा०	बृ०	श०	बु०	के०	सू०	ग्र०
०	०	०	०	०	०	०	०	१	मा०
९	१५	१०	२७	२४	२८	२५	१०	०	दि०
०	०	३०	०	०	३०	३०	३०	०	घ०

मंगल की दशा मे मंगल के अन्तर में प्रत्यन्तर

मं०	रा०	बृ०	श०	बु०	के०	शु०	सू०	च०	ग्र०
०	०	०	०	०	०	०	०	०	मा०
८	२२	१९	२३	२०	८	२४	७	१२	दि०
३४	२	३६	१६	४९	३४	३०	२१	१५	घ०
३०	०	०	३०	३०	३०	०	०	०	प०

मं० द० राहु के अन्तर में प्रत्यन्तर

रा०	बृ०	श०	बु०	के०	शु०	सू०	च०	म०	ग्र०
१	१	१	१	०	२	०	१	०	मा०
२६	२०	२९	२३	२२	३	१८	१	२२	दि०
४२	२४	५१	३३	३	०	५४	३०	३	घ०

मं० द० गुरु के अन्तर में प्रत्यन्तर

बृ०	श०	बु०	के०	शु०	सू०	च०	म०	रा०	ग्र०
१	१	१	०	१	०	०	०	१	मा०
१४	२३	१७	१९	२६	१६	२८	१९	२०	दि०
४८	१२	३६	३६	०	४८	०	३६	२४	घ०

मं० द० शनि के अन्तर में प्रत्यन्तर

श०	बु०	के०	शु०	सू०	च०	मं०	रा०	बृ०	ग्र०
२	१	०	२	०	१	०	१	१	मा०
३	२६	२३	६	१९	३	२३	२९	२३	दि०
१०	३१	१६	३०	५७	१५	१६	५१	१२	घ०
३०	३०	३०	०	०	०	३०	०	०	प०

मं० द० बुध के अन्तर में प्रत्यन्तर

बु०	के०	शु०	सू०	च०	मं०	रा०	बृ०	श०	ग्र०
१	०	१	०	०	०	१	१	१	मा०
२०	२०	२९	१७	२९	२०	२३	१७	२६	दि०
३४	४९	३०	५१	४५	४९	३३	३६	३१	घ०
३०	३०	०	०	०	३०	०	०	३०	प०

मं० द० केतु के अन्तर में प्रत्यन्तर

के०	शु०	सू०	च०	मं०	रा०	बृ०	श०	बु०	ग्र०
०	०	०	०	०	०	०	०	०	मा०
८	२४	७	१२	८	२२	१९	२३	२०	दि०
३४	३०	२१	१५	३४	३	३६	१६	४९	घ०
३०	०	०	०	३०	०	०	३०	३०	प०

मं० द० शुक्र के अन्तर में प्रत्यन्तर

शु०	सू०	च०	मं०	रा०	बृ०	श०	बु०	के०	ग्र०
२	०	१	०	२	१	२	१	०	मा०
१०	२१	५	२४	३	२६	६	२९	२४	दि०
०	०	०	३०	०	०	३०	३०	३०	घ०

मं० द० सूर्य के अन्तर में प्रत्यन्तर

सू०	च०	म०	रा०	वृ०	श०	बु०	के०	शु०	ग्र०
०	०	०	०	०	०	०	०	०	मा०
६	१०	७	१८	१६	१९	१७	७	२१	दि०
१८	३०	२१	५४	४८	५७	५१	२१	०	घ०

मंगलकी दशा में चन्द्रमा के अन्तर में प्रत्यन्तर

च०	मं०	रा०	वृ०	श०	बु०	के०	शु०	सू०	ग्र०
०	०	१	०	१	०	०	१	०	मा०
१७	१२	१	२८	३	२९	१२	५	१०	दि०
३०	१५	३०	०	१५	४५	१५	०	३०	घ०

राहु की दशा में राहु के अन्तर में प्रत्यन्तर

रा०	वृ०	श०	बु०	के०	शु०	सू०	च०	म०	ग्र०
४	४	५	४	१	५	१	२	१	मा०
२५	९	३	१७	२६	१२	१८	२१	२६	दि०
४८	३६	५४	४२	४२	०	३६	०	४२	घ०

रा० द० बृहस्पति के अन्तर में प्रत्यन्तर

वृ०	श०	बु०	के०	शु०	सू०	च०	म०	रा०	ग्र०
३	४	४	१	४	१	२	१	४	मा०
२५	१६	२	२०	२४	१३	१२	२०	९	दि०
१२	४८	२४	२४	०	१२	०	२४	३६	घ०

रा० द० शनि के अन्तर में प्रत्यन्तर

श०	बु०	के०	शु०	सू०	च०	म०	रा०	वृ०	ग्र०
५	४	१	५	१	२	१	५	४	मा०
१२	२५	२९	२१	२१	२५	२९	३	१६	दि०
२७	२१	५१	०	१८	३०	५१	५४	४८	घ०

रा० द० बुध के अन्तर में प्रत्यन्तर

बु०	के०	शु०	सू०	चं०	मं०	रा०	बृ०	श०	ग्र०
४	१	५	१	२	१	४	४	४	मा०
१०	२३	३	१५	१६	२३	१७	२	२५	दि०
३	३३	०	५४	३०	३३	४२	२४	२१	घ०

रा० द० केतु के अन्तर में प्रत्यन्तर

के०	शु०	सू०	चं०	मं०	रा०	बृ०	श०	बु०	ग्र०
०	२	०	१	०	१	१	१	१	मा०
२२	३	१८	१	२२	२६	२०	२९	२३	दि०
३	०	५४	३०	३	४२	२४	५१	३३	घ०

रा० द० शुक्र के अन्तर में प्रत्यन्तर

शु०	सू०	चं०	मं०	रा०	बृ०	श०	बु०	के०	ग्र०
६	१	३	२	५	४	५	५	२	मा०
०	२४	०	३	१२	२४	२१	३	३	दि०

रा० द० रवि के अन्तर में प्रत्यन्तर

सू०	चं०	मं०	रा०	गु०	श०	बु०	के०	शु०	ग्र०
०	०	०	१	१	१	१	०	१	मा०
१६	२७	१८	१८	१३	२१	१५	१८	२४	दि०
१२	०	५४	३६	१२	१८	५४	५४	०	घ०

रा० द० चन्द्रमा के अन्तर में प्रत्यन्तर

चं०	मं०	रा०	बृ०	श०	बु०	के०	शु०	सू०	ग्र०
१	१	२	२	२	२	१	३	०	मा०
१५	१	२१	१२	२५	१६	१	०	२७	दि०
०	३०	०	०	३०	३०	३०	०	०	घ०

रा० द० मंगल के अन्तर में प्रत्यन्तर

म०	रा०	वृ०	श०	बु०	के०	शु०	सू०	चं०	ग्र०
०	१	१	१	१	०	२	०	१	मा०
२२	२६	२०	२९	२३	२२	३	१८	१	दि०
३	४२	२४	५१	३३	३	०	५४	३०	घ०

बृहस्पति की दशा में बृहस्पति के अन्तर में प्रत्यन्तर

वृ०	श०	बु०	के०	शु०	सू०	च०	म०	रा०	ग्र०
३	४	३	१	४	१	२	१	३	मा०
१२	१	१८	१४	८	८	४	१४	२५	दि०
२४	३६	४८	४८	०	२४	०	४८	१२	घ०

गु० द० शनि के अन्तर में प्रत्यन्तर

श०	बु०	के०	शु०	सू०	च०	म०	रा०	वृ०	ग्र०
४	४	१	५	१	२	१	४	४	मा०
२४	९	२३	२	१५	१६	२३	१६	१	दि०
२४	१२	१२	०	३६	०	१२	४८	३६	घ०

गु० द० बुध के अन्तर मे प्रत्यन्तर

बु०	के०	शु०	सू०	च०	म०	रा०	वृ०	श०	ग्र०
३	१	४	१	२	१	४	३	४	मा०
२५	१७	१६	१०	८	१७	२	१८	९	दि०
३६	३६	०	४८	०	३६	२४	४८	१२	घ०

गु० द० केतु के अन्तर मे प्रत्यन्तर

के०	शु०	सू०	च०	म०	रा०	वृ०	श०	बु०	ग्र०
०	१	०	०	०	१	१	१	१	मा०
१९	२६	१६	२८	१९	२०	१४	२३	१७	दि०
३६	०	४८	०	३६	२४	४८	१२	३६	घ०

गु० द० शुक्र के अन्तर में प्रत्यन्तर

शु०	सू०	च०	म०	रा०	वृ०	श०	बु०	के०	ग्र०
५	१	२	१	४	४	५	४	१	मा०
१०	१८	२०	२६	२४	८	२	१६	२६	दि०

गु० द० सूर्य के अन्तर में प्रत्यन्तर

सू०	चं०	म०	रा०	वृ०	श०	बु०	के०	शु०	ग्र०
०	०	०	१	१	१	१	०	१	मा०
१४	२४	१६	१३	८	१५	१०	१६	१८	दि०
२४	०	४८	१२	२४	३६	४८	४८	०	घ०

गु० द० चन्द्रमा के अन्तर में प्रत्यन्तर

च०	म०	रा०	वृ०	श०	बु०	के०	शु०	सू०	ग्र०
१	०	२	२	२	२	०	२	०	मा०
१०	२८	१२	४	१६	८	२८	२०	२४	दि०

गु० द० मंगल के अन्तर में प्रत्यन्तर

म०	रा०	वृ०	श०	बु०	के०	शु०	सू०	च०	ग्र०
०	१	१	१	१	०	१	०	०	मा०
१९	२०	१४	२३	१७	१९	२६	१६	२८	दि०
३६	२४	४८	१२	३६	३६	०	४८	०	घ०

गु० द० राहु के अन्तर में प्रत्यन्तर

रा०	वृ०	श०	बु०	के०	शु०	सू०	चं०	म०	ग्र०
४	३	४	४	१	४	१	२	१	मा०
९	२५	१६	२	२०	२४	१३	१२	२०	दि०
३६	१२	१८	२४	२४	०	१२	०	२४	घ०

शनि की दशा और शनि के ही अन्तर मे प्रत्यन्तर

श०	बु०	के०	शु०	सू०	च०	म०	रा०	वृ०	ग्र०
५	५	२	६	१	३	२	५	४	मा०
२१	३	३	०	२४	०	३	१२	२४	दि०
२८	२५	१०	३०	९	१५	१०	२७	२४	घ०
३०	३०	३०	०	०	०	३०	०	०	प०

श० द० बुध के अन्तर मे प्रत्यन्तर

बु०	के०	शु०	सू०	च०	म०	रा०	वृ०	श०	ग्र०
४	१	५	१	२	१	४	४	५	मा०
१७	२६	११	१८	२०	२६	२५	९	३	दि०
१६	३१	३०	२७	४५	३१	२१	१२	२५	घ०
३०	३०	०	०	०	३०	०	०	३०	प०

श० द० केतु के अन्तर मे प्रत्यन्तर

के०	शु०	सू०	च०	म०	रा०	वृ०	श०	बु०	ग्र०
०	२	०	१	०	१	१	२	१	मा०
२३	६	१९	३	२३	२९	२३	३	२६	दि०
१६	३०	५७	१५	१६	५१	१२	१०	३१	घ०
३०	०	०	०	३०	०	०	३०	३०	प०

श० द० शुक्र के अन्तर में प्रत्यन्तर

शु०	सू०	च०	मं०	रा०	वृ०	श०	बु०	के०	ग्र०
६	१	३	२	५	५	६	५	२	मा०
१०	२७	५	६	२१	२	०	११	६	दि०
०	०	०	३०	०	०	३०	३०	३०	घ०

श० द० सूर्य के अन्तर में प्रत्यन्तर

सू०	च०	म०	रा०	बृ०	श०	बु०	के०	शु०	ग्र०
०	०	०	१	१	१	१	०	१	मा०
१७	२८	१९	२१	१५	२४	१८	१९	२७	दि०
६	३०	५७	१८	३६	९	२७	५७	०	घ०

श० द० चन्द्रमा के अन्तर में प्रत्यन्तर

च०	म०	रा०	बृ०	श०	बु०	के०	शु०	सू०	ग्र०
१	१	२	२	३	२	१	३	०	मा०
१७	३	२५	१६	०	२०	३	५	२८	दि०
३०	१५	३०	०	१५	४५	१५	०	३०	घ०

श० द० मंगल के अन्तर में प्रत्यन्तर

म०	रा०	बृ०	श०	बु०	के०	शु०	सू०	चं०	ग्र०
०	१	१	२	१	०	२	०	१	मा०
२३	२९	२३	३	२६	२३	६	१९	३	दि०
१६	५१	१२	१०	३१	१६	३०	५७	१५	घ०
३०	०	०	३०	३०	३०	०	०	०	प०

श० द० राहु के अन्तर में प्रत्यन्तर

रा०	बृ०	श०	बु०	के०	शु०	सू०	च०	म०	ग्र०
५	४	५	४	१	५	१	२	१	मा०
३	१६	१२	२५	२९	२१	२१	२५	२९	दि०
५४	४८	२७	२१	५१	०	१८	३०	५१	घ०

श० द० गुरु के अन्तर में प्रत्यन्तर

बृ०	श०	बु०	के०	शु०	सू०	च०	म०	रा०	ग्र०
४	४	४	१	५	१	२	१	४	मा०
१	२४	९	२३	२	१५	१६	२३	१६	दि०
३६	२४	१२	१२	०	३६	०	१२	४८	घ०

बुध की दशा और बुध की अन्तर्दशा में प्रत्यन्तर

बु०	के०	शु०	सू०	च०	म०	रा०	बृ०	श०	ग्र०
४	१	४	१	२	१	४	३	४	मा०
२	२०	२४	१३	१२	२०	१०	२५	१७	दि०
४९	३४	३०	२१	१५	३४	३	३६	१६	घ०
३०	३०	०	०	०	३०	०	०	३०	प०

बु० दशा और केतु के अन्तर में प्रत्यन्तर

के०	शु०	सू०	चं०	म०	रा०	बृ०	श०	बु०	ग्र०
०	१	०	०	०	१	१	१	१	मा०
२०	२९	१७	२९	२०	२३	१७	२६	२०	दि०
४९	३०	५१	४५	४९	३३	३६	३१	३४	घ०
३०	०	०	०	३०	०	०	३०	३०	प०

बु० द० शुक्र के अन्तर में प्रत्यन्तर

शु०	सू०	च०	म०	रा०	बृ०	श०	बु०	के०	ग्र०
५	१	२	१	५	४	५	४	१	मा०
२०	२१	२५	२९	३	१६	११	२४	२९	दि०
०	०	०	३०	०	०	३०	३०	३०	घ०

बु० द० सूर्य के अन्तर में प्रत्यन्तर

सू०	च०	म०	रा०	बृ०	श०	बु०	के०	शु०	ग्र०
०	०	०	०	१	१	१	०	१	मा०
१५	२५	१७	१५	१०	१८	१३	१७	२१	दि०
१८	३०	५१	५४	४८	२७	२१	५१	०	घ०

बु० दशा में चन्द्रमा के अन्तर में प्रत्यन्तर

चं०	म०	रा०	वृ०	श०	बु०	के०	शु०	सू०	ग्र०
१	०	२	२	२	२	०	२	०	मा०
१२	२९	१६	८	२०	१२	२९	२५	२५	दि०
३०	४५	३०	०	४५	१५	४५	०	३०	घ०

बु० दशा मंगल के अन्तर मे प्रत्यन्तर

म०	रा०	वृ०	श०	बु०	के०	शु०	सू०	चं०	ग्र०
०	१	१	१	१	०	१	०	०	मा०
२०	२३	१७	२६	२०	२०	२९	१७	२९	दि०
४९	३३	३६	३१	३४	४९	३०	५१	४५	घ०
३०	०	०	३०	३०	३०	०	०	०	प०

बु० द० राहु के अन्तर में प्रत्यन्तर

रा०	वृ०	श०	बु०	के०	शु०	सू०	च०	मं०	ग्र०
४	४	४	४	१	५	१	२	१	मा०
१७	२	२५	१०	२३	३	१५	१६	२३	दि०
४२	२४	२१	३	३३	०	५४	३०	३३	घ०

बु० द० गुरु के अन्तर में प्रत्यन्तर

वृ०	श०	बु०	के०	शु०	सू०	च०	मं०	रा०	ग्र०
३	४	३	१	४	१	८	१	४	मा०
१८	९	२५	१७	१६	१०	८	१७	२	दि०
४८	१२	३६	३६	०	४८	०	३६	२४	घ०

बु० द० शनि के अन्तर में प्रत्यन्तर

श०	बु०	के०	शु०	सू०	च०	मं०	रा०	बृ०	ग्र०
५	४	१	५	१	२	१	४	४	मा०
३	१७	२६	११	१८	२०	२६	२५	९	दि०
२५	१६	३१	३०	२७	४५	३१	२१	१२	घ०
३०	३०	३०	०	०	०	३०	०	०	प०

केतु की दशा मे केतु के अन्तर में प्रत्यन्तर

के०	शु०	सू०	च०	म०	रा०	बृ०	श०	बु०	ग्र०
०	०	०	०	०	०	०	०	०	मा०
८	२४	७	१२	८	२२	१९	२३	२०	दि०
३४	३०	२१	१५	३४	३	३६	१६	४९	घ०
३०	०	०	०	३०	०	०	३०	३०	प०

के० द० शुक्र के अन्तर में प्रत्यन्तर

शु०	सू०	च०	म०	रा०	बृ०	श०	बु०	के०	ग्र०
२	०	१	०	२	१	२	१	०	मा०
१०	२१	५	२४	३	२६	६	२९	२४	दि०
०	०	०	३०	०	०	३०	३०	३०	घ०

के० द० सूर्य के अन्तर में प्रत्यन्तर

सू०	च०	म०	रा०	बृ०	श०	बु०	के०	शु०	ग्र०
०	०	०	०	०	०	०	०	०	मा०
६	१०	७	१८	१६	१९	१७	७	२१	दि०
१८	३०	२१	५४	४८	५७	५१	२१	०	घ०

के० द० चन्द्रमा के अन्तर मे प्रत्यन्तर

च०	म०	रा०	बृ०	श०	बु०	के०	शु०	सू०	ग्र०
०	०	१	०	१	०	०	१	०	मा०
१७	१२	१	२८	३	२९	१२	५	१०	दि०
३०	१५	३०	०	१५	४५	१५	०	३०	घ०

के० द० मगल के अन्तर मे प्रत्यन्तर

म०	रा०	बृ०	श०	बु०	के०	शु०	सू०	च०	ग्र०
०	०	०	०	०	०	०	०	०	मा०
८	२२	१९	२३	२०	८	२४	७	१२	दि०
३४	३	३६	१६	४९	३४	३०	२१	१५	घ०
३०	०	०	३०	३०	३०	०	०	०	प०

के० द० राहु के अन्तर में प्रत्यन्तर

रा०	बृ०	श०	बु०	के०	शु०	सू०	च०	म०	ग्र०
१	१	१	१	०	२	०	१	०	मा०
२६	२०	२९	२३	२२	३	१८	१	२२	दि०
२४	२४	५१	३३	३	०	५४	३०	३	घ०

के० द० गुरु के अन्तर में प्रत्यन्तर

बृ०	श०	बु०	के०	शु०	सू०	च०	म०	रा०	ग्र०
१	१	१	०	१	०	०	०	१	मा०
१४	२३	१७	१९	२६	१६	२८	१९	२०	दि०
४८	१२	३६	३६	०	४८	०	३६	२४	घ०

के० द० शनि के अन्तर में प्रत्यन्तर

श०	बु०	के०	शु०	सू०	च०	म०	रा०	बृ०	ग्र०
२	१	०	२	०	१	०	१	१	मा०
३	२६	२३	६	१९	३	२३	२९	२३	दि०
१०	३१	१६	३०	५७	१५	१६	५१	१२	घ०
३०	३०	३०	०	०	०	३०	०	०	प०

के० द० बुध के अन्तर मे प्रत्यन्तर

बु०	के०	शु०	सू०	च०	मं०	रा०	वृ०	श०	ग्र०
१	०	१	०	०	०	१	१	१	मा०
२०	२०	२१	१७	२१	२०	२३	१७	२६	दि०
३४	४१	३०	५१	४५	४१	३३	३६	३१	घ०
३०	३०	०	०	०	०	०	०	३०	प०

शु० द० शुक्र के अन्तर में प्रत्यन्तर

शु०	सू०	च०	म०	रा०	वृ०	श०	बु०	के०	ग्र०
६	२	३	२	६	५	६	५	२	मा०
२०	०	१०	१०	०	१०	१०	२०	१०	दि०

शु० द० रवि के अन्तर मे प्रत्यन्तर

सू०	च०	मं०	रा०	वृ०	श०	बु०	के०	शु०	ग्र०
०	१	०	१	१	१	१	०	२	मा०
१८	०	२१	२४	१८	२७	२१	२१	०	दि०

शु० द० चन्द्रमा के अन्तर मे प्रत्यन्तर

च०	म०	रा०	वृ०	श०	बु०	के०	शु०	सू०	ग्र०
१	१	३	२	३	२	१	३	१	मा०
२०	५	०	२०	५	२५	५	१०	०	दि०

शु० द० मंगल के अन्तर मे प्रत्यन्तर

म०	रा०	वृ०	श०	बु०	क०	शु०	सू०	च०	ग्र०
०	२	१	२	१	०	२	०	१	मा०
२४	३	२६	६	२१	२४	४०	२१	५	दि०
३०	०	०	३०	३०	३०	०	०	०	घ०

शु० द० राहु के अन्तर में प्रत्यन्तर

रा०	बृ०	श०	बु०	के०	शु०	सू०	च०	मं०	ग्र०
५	४	५	५	२	६	१	३	२	मा०
१२	२४	२१	३	३	०	२४	०	३	दि०

शु० द० गुरु के अन्तर में प्रत्यन्तर

बृ०	श०	बु०	के०	शु०	सू०	च०	मं०	रा०	ग्र०
४	५	४	१	५	१	२	१	४	मा०
८	२	१६	२६	१०	१८	२०	२६	२४	दि०

शु० द० शनि के अन्तर में प्रत्यन्तर

श०	बु०	के०	शु०	सू०	च०	मं०	रा०	बृ०	ग्र०
६	५	२	६	१	३	२	५	५	मा०
०	११	६	१०	२७	५	६	२१	२	दि०
३०	३०	३०	०	०	०	३०	०	०	घ०

शु० द० बुध के अन्तर में प्रत्यन्तर

बु०	के०	शु०	सू०	च०	मं०	रा०	बृ०	श०	ग्र०
४	१	५	१	२	१	५	४	५	मा०
२४	२९	२०	२१	२५	२९	३	१६	११	दि०
३०	३०	०	०	०	३०	०	०	३०	घ०

शु० द० केतु के अन्तर में प्रत्यन्तर

के०	शु०	सू०	च०	मं०	रा०	बृ०	श०	बु०	ग्र०
०	२	०	१	०	२	१	२	१	मा०
२४	१०	२१	५	२४	३	२५	६	२९	दि०
३०	०	०	०	३०	०	०	३०	३०	घ०

अष्टोत्तरी दशा विचार

दक्षिण भारत में अष्टोत्तरी दशा का विशेष प्रचार है। स्वरशास्त्र में बताया गया है कि जिस का जन्म शुक्लपक्ष में हो उस का अष्टोत्तरी दशा-द्वारा और जिस का जन्म कृष्णपक्ष में हो उस का विंशोत्तरी दशा-द्वारा शुभाशुभ फल जानना चाहिए। दशा-द्वारा हमें किसी भी व्यक्ति के समय का परिज्ञान होता है।

अष्टोत्तरी (१०८ वर्ष की) दशा में सूर्यदशा ६ वर्ष, चन्द्रदशा १५वर्ष, भौमदशा ८ वर्ष, बुधदशा १७ वर्ष, शनिदशा १० वर्ष, गुरुदशा १९ वर्ष, राहुदशा १२ वर्ष और शुक्रदशा २१ वर्ष की होती है।

जन्म नक्षत्र-द्वारा दशा ज्ञात करने की यह विधि है कि अभिजित् सहित आर्द्रादि नक्षत्रों को पापग्रहो में चार-चार और शुभ ग्रहो में तीन-तीन स्थापित करने से ग्रहदशा मालूम पड जाती है। सरलता से अवगत करने के लिए नीचे चक्र दिया जाता है।

जन्मनक्षत्र से अष्टोत्तरी दशा ज्ञात करने का चक्र

सू०	च०	म०	बु०	श०	गु०	रा०	शु०	ग्र०
आर्द्रा	म.	ह	अनु	पू.षा.	ध.	उ.भा.	कृत्ति.	जन्म-
पुन	पू.फा	चि		उ षा	श.	रे.	रो०	
पुष्य	उ.फा.	स्वा	ज्ये.	अभि.		अ.		
आश्ले		वि	मू.	श्र	पू.भा.	भ	मृ.	नक्षत्र

अष्टोत्तरी दशा स्पष्ट करने की विधि

भयात के पलों को दशा के वर्षो से गुणा कर भभोग के पलो का भाग देने से विंशोत्तरी के समान भुक्त वर्षादि मान आता है। इसे ग्रहवर्षों में-से घटाने पर भोग्य वर्षादि मान निकलता है।

उदाहरण—भयात १६।३९ भभोग ५८।४४

६०	६०
९६० + ३९ =	३४८० + ४४ =
पलात्मक भयात = ९९९	पलात्मक भभोग = ३५२४

इस उदाहरण में जन्मनक्षत्र कृत्तिका होने के कारण शुक्र की दशा में जन्म हुआ है, अत शुक्र के दशा वर्षों से भयात के पलो को गुणा किया।

९९९ भयात | ३५२४ भभोग

२१ ग्रहवर्ष

२०९७९ ÷ ३५२४

३५२४)२०९७९(५ वर्ष
१७६२०
३३५९
१२
३५२४)४०३०८(११ मास
३५२४
५०६८
३५२४
१५४४ × ३०
३५२४)४६३२०(१३ दिन
३५२४
११०८०
१०५७२
५०८

शुक्र दशा के भुक्त वर्षादि ५।११।१३।८, इन्हें समस्त दशा के वर्षों में से घटाया तो—

२१।०।०
५।११।१३
१५। ०।१७ भोग्य वर्षादि

अष्टोत्तरी दशा चक्र

शु०	सू०	च०	म०	बु०	श०	गु०	रा०	ग्र०
१५	६	१५	८	१७	१०	१९	१२	वर्ष
०	०	०	०	०	०	०	०	मास
१७	०	०	०	०	०	०	०	दिन
सवत्	सवत्	सवत्	सवत्	सवत्	सवत्	संवत्	सवत्	संवत्
२००१	२०१६	२०२२	२०३७	२०४५	२०६२	२०७२	२०९१	२१०३
सूर्य	सूर्य	सूर्य	सूर्य	सूर्य	सूर्य	सूर्य	सूर्य	सूर्य
०	०	०	०	०	०	०	०	०
१०	२७	२७	२७	२७	२७	२७	२७	२७

अष्टोत्तरी अन्तर्दशा साधन

दशा-दशा का परस्पर गुणाकर १०८ का भाग देने से लब्ध वर्ष और शेष को, १२ से गुणा कर १०८ का भाग देने से लब्ध मास, शेष को पुनः ३० से गुणा कर १०८ का भाग देने से लब्ध दिन एवं शेष को पुनः ६० से गुणा कर १०८ का भाग देने से लब्ध घटी होगी।

उदाहरण—शुक्र मे सूर्य का अन्तर निकालना है—

२१ × ६ = १२६ ÷ १०८ = १ ल० वर्ष, १८ शेष

१८ × १२ = २१६ ÷ १०८ = २ मास अर्थात् १ वर्ष २ मास हुआ। यहाँ सरलता के लिए अन्तर्दशा के चित्र दिये जाते हैं—

अष्टोत्तरी अन्तर्दशा—सूर्यान्तर्दशा चक्र

सूर्य	च०	भौ०	बु०	श०	गु०	रा०	शु०	ग्र०
०	०	०	०	०	१	०	१	वर्ष
४	१०	५	११	६	०	८	२	मास
०	०	१०	१०	२०	२०	०	०	दिन

चन्द्रान्तर्दशा चक्र

च०	भौ०	बु०	श०	गु०	रा०	शु०	सू०	ग्र०
२	१	२	१	२	१	२	०	वर्ष
१	१	४	४	७	८	११	१०	मास
०	१०	१०	२०	२०	०	०	०	दिन

भौमान्तर्दशा चक्र

भौ०	बु०	श०	गु०	रा०	शु०	सू०	च०	ग्र०
०	१	०	१	०	१	०	१	वर्ष
७	३	८	४	१०	६	५	१	मास
३	३	२६	२६	२०	२०	१०	१०	दिन
२०	२०	४०	४०	०	०	०	०	घटी

बुधान्तर्दशा चक्र

बु०	श०	गु०	रा०	शु०	सू०	च०	भौ०	ग्र०
२	१	२	१	३	०	२	१	वर्ष
८	६	११	१०	३	११	४	३	मास
३	२६	२६	२०	२०	१०	१०	३	दिन
२०	४०	४०	०	०	०	०	२०	घटी

शन्यन्तर्दशा चक्र

श०	गु०	रा०	शु०	सू०	च०	भौ०	बु०	ग्र०
०	१	१	१	०	१	०	१	वर्ष
११	८	१	११	६	४	८	६	मास
३	३	१	१०	२०	२०	२६	२६	दिन
२०	२०	०	०	०	०	४०	४०	घटी

गुर्वन्तर्दशा चक्र

गु०	रा०	शु०	सू०	च०	भौ०	बु०	श०	ग्र०
३	२	३	१	२	१	२	१	वर्ष
४	१	८	०	७	४	११	९	मास
३	१०	१०	२०	२०	२६	२६	३	दिन
२०	०	०	०	०	४०	४०	२०	घटी

राह्वन्तर्दशा चक्र

रा०	शु०	सू०	च०	भौ०	बु०	श०	गु०	ग्र०
१	२	०	१	०	१	१	२	वर्ष
४	४	८	८	१०	१०	१	१	मास
०	०	०	०	२०	२०	१०	१०	दिन
०	०	०	०	०	०	०	०	घटी

शुक्रान्तर्दशा चक्र

शु०	सू०	चं०	भौ०	बु०	श०	गु०	रा०	ग्र०
४	१	२	१	३	१	३	२	वर्ष
१	२	११	६	३	११	८	४	मास
०	०	०	२०	२०	१०	१०	०	दिन
०	०	०	०	०	०	०	०	घटी

योगिनी दशा

योगिनी दशा ३६ वर्ष में पूर्ण होती है, इसलिए कुछ ज्योतिर्विद् इस का फल ३६ वर्ष की आयु तक ही मानते हैं। लेकिन कुछ लोग ३६ वर्ष के बाद इस की पुनरावृत्ति मानते हैं। आजकल जन्मपत्री में विंशोत्तरी और योगिनी दशा नियमित रूप से लगायी जाती है।

योगिनी दशाओं के मंगला, पिंगला, धान्या, भ्रामरी, भद्रिका, उल्का, सिद्धा और संकटा ये नाम बताये गये हैं। इन की वर्ष संख्या भी क्रमश.

१, २, ३, ४, ५, ६, ७ और ८ हैं। इन दशाओं के स्वामी क्रमश: चन्द्र, सूर्य, गुरु, भौम, बुध, शनि, शुक्र होते हैं। संकटा दशा के पूर्वार्द्ध (१ से ४ वर्ष तक) में राहु और उत्तरार्द्ध (५ से ८ वर्ष तक) में केतु स्वामी होता है।

जन्म नक्षत्र से योगिनी दशा निकालने के लिए जन्म-नक्षत्रसंख्या में तीन जोड कर आठ से भाग देने पर एकादि शेष में क्रमश: मंगला, पिंगलादि दशा एवं शून्य शेष में संकटा दशा समझनी चाहिए।

स्पष्ट दशा साधन करने के लिए विंशोत्तरी दशा के समान भयात के पलों को दशा के वर्षों से गुणा कर भभोग के पलों का भाग देने पर दशा के भुक्त वर्षादि आयेंगे। भुक्त वर्षादि को दशा वर्ष में से घटाने पर भोग्य वर्षादि होंगे।

उदाहरण—भयात १६।३९ = ९९९ पल, भभोग ५८।४४ = ३५२४ पल।

इस उदाहरण में जन्मनक्षत्र कृत्तिका है। अश्विनी से कृत्तिका तक गणना करने पर तीन संख्या हुई, अत: ३ + ३ = ६

६ ÷ ८ = ६ शेष। यहाँ मंगला को आदि कर ६ तक गिना तो उल्का की दशा आयी। बिना नक्षत्र-गणना किये जन्मनक्षत्र से योगिनी दशा जानने के लिए नीचे चक्र दिया जाता है—

जन्म-नक्षत्रसे योगिनी दशा बोधक चक्र

म०	पि०	धा०	भ्रा०	भ०	उ०	सि०	सं०	दशा
चं० १	सू० २	गु० ३	मं० ४	बु० ५	श० ६	शु० ७	रा.के० ८	स्वामी वर्ष
आर्द्रा चि० श्र०	पुन० स्वा० ध०	पु० वि० श०	आश्ले० अनु० पू०भा० अश्वि०	म० ज्ये० उ०भा. भ०	पू.फा. मू० रे० कृ०	उ. फा. पू. षा. रो०	ह० उ०षा. मृ०	जन्म नक्षत्र

भयात के पलों को उल्का के वर्षों से गुणा किया—

९९९ × ६ = ५९९४ ÷ ३५२४ पलात्मक भभोग

३५२४)५९९४(१ वर्ष
३५२४
२४७० × १२
३५२४)२९६४०(८ मास
२८१९२
१४४८ × ३०
३५२४)४३४४०(१२ दिन
३५२४
८२००
७०४८

उल्का दशा के भुक्त वर्षादि १।८।१२ इस को ६ वर्ष में घटाया तो ४।३।१८ उल्का दशा के भोग्य वर्षादि हुए।

योगिनी दशा का चक्र विंशोत्तरी और अष्टोत्तरी के समान ही लगाया जाता है। आगे उदाहरण के लिए योगिनी दशा लिखी जा रही है।

योगिनीदशा चक्र

उ०	सि०	स०	म०	पि०	धा०	भ्रा०	भ०	दशा
४	७	८	१	२	३	४	५	वर्ष
३	०	०	०	०	०	०	०	मास
१८	०	०	०	०	०	०	०	दिन
सवत्	संवत्	संवत्	सवत्	संवत्	सवत्	सवत्	सवत्	संवत्
२००१	२००५	२०१२	२०२०	२०२१	२०२३	२०२६	२०३०	२०३५
सूर्य	सूर्य	सूर्य	सूर्य	सूर्य	सूर्य	सूर्य	सूर्य	सूर्य
० १०	३ २८	३ २८	३ २८	३ २८	३ २८	३ २८	३ २८	३ २८

अन्तर्दशा साधन

दशा-दशा की वर्षसंख्या को परस्पर गुणा कर ३६ से भाग देने पर अन्तर्दशा के वर्षादि आते हैं। मंगला दशा की अन्तर्दशा—

१ × १ = १ ÷ ३६ = ० शेष १ × १२ = १२ ÷ ३६ = ० शेष १२
१२ × ३० = ३६० ÷ ३६ = १० दिन

मंगला में पिंगला का अन्तर = १ × २ = २ ÷ ३६ = ०।
२ × १२ = २४ ÷ ३६ = ०, शेष २४ × ३० = ७२० ÷ ३६ = २० दिन

मंगला में धान्या का अन्तर = १ × ३ = ३ ÷ ३६ = ० शेष ३ × १२ = ३६ ÷ ३६ = १ मास

मंगला में भ्रामरी का अन्तर = १ × ४ = ४ ÷ ३६ = ० शेष ४ = १२ = ४८ = ४८ ÷ ३६ = १ शेष १२ × ३० = ३६० ÷ ३६ = १०, १ मास १० दिन

मंगला मे भद्रिका का अन्तर = १ × ५ = ५ ÷ ३६ = ० शेष ५ × १२ = ६०

६० ÷ ३६ = १ शे०, २४ × ३० = ७२० ÷ ३६ = २० दिन = १ मास २० दिन

मंगला में उल्का का अन्तर = १ × ६ = ६ ÷ ३६ = ० शे० ६ × १२ = ७२, ७२ ÷ ३६ = २ मास

मंगला में सिद्धा का अन्तर—१ × ७ = ७ ÷ ३६ = ० शेष ७ × १२ = ८४

८४ ÷ ३६ = २ शेष १२ × ३० = ३६० ÷ ३६ = १० = २ मास १० दिन

मंगला में संकटा का अन्तर—१ × ८ = ८ ÷ ३६ = ० शेष ८ × १२ = ९६ ÷ ३६ = २ शेष २४ × ३० = ७२० ÷ ३६ = २० २ मास २० दिन

मंगला में अन्तर्दशा चक्र

म०	पिं०	धा०	भ्रा०	भ०	उ०	सि०	स०	दशा
०	०	०	१	१	१	०	०	वर्ष
०	०	१	१	१	२	२	२	मास
१०	२०	०	१०	२०	०	१०	२०	दिन

पिंगला में अन्तर्दशा चक्र

पिं०	धा०	भ्रा०	भ०	उ०	सि०	सं०	मं०	द०
०	०	०	०	०	०	०	०	वर्ष
१	२	२	३	४	४	५	०	मास
१०	०	१०	१०	०	२०	१०	२०	दिन

धान्या में अन्तर्दशा चक्र

धा०	भ्रा०	भ०	उ०	सि०	स०	म०	पिं०	द०
०	०	०	०	०	०	०	०	वर्ष
३	४	५	६	७	८	१	२	मास
०	०	०	०	०	०	०	०	दिन

भ्रामरी में अन्तर्दशा चक्र

भ्रा०	भ०	उ०	सि०	स०	म०	पिं०	धा०	द०
०	०	०	०	०	०	०	०	वर्ष
५	६	८	९	१०	१	२	४	मास
१०	२०	०	१०	२०	१०	२०	०	दिन

भद्रिका में अन्तर्दशा चक्र

भ०	उ०	सि०	स०	मं०	पिं०	धा०	भ्रा०	द०
०	०	०	१	०	०	०	०	वर्ष
८	१०	११	१	१	३	५	६	मास
१०	०	२०	१०	२०	१०	०	२०	दिन

उल्का में अन्तर्दशा चक्र

उ०	सि०	सं०	मं०	पि०	धा०	भ्रा०	भ०	द०
१	१	१	०	०	०	०	०	वर्ष
०	२	४	२	४	६	८	१०	मास
०	०	०	०	०	०	०	०	दिन

सिद्धा में अन्तर्दशा चक्र

सि०	स०	मं०	पि०	धा०	भ्रा०	भ०	उ०	द०
१	१	०	०	०	०	०	१	वर्ष
४	६	२	४	७	९	११	२	मास
१०	२०	१०	२०	०	१०	२०	०	दिन

संकटा में अन्तर्दशा चक्र

सं०	मं०	पि०	धा०	भ्रा०	भ०	उ०	सि०	द०
१	०	०	०	०	१	१	१	वर्ष
९	२	५	८	१०	१	४	६	मास
१०	२०	१०	०	२०	१०	०	२०	दिन

बलविचार

जन्मपत्री का यथार्थ फल ज्ञात करने के लिए षड्बल का विचार करना नितान्त आवश्यक है। क्योंकि ग्रह अपने बलाबलानुसार ही फल देते हैं। ज्योतिष शास्त्र में ग्रहों के स्थानबल, दिग्बल, कालबल, चेष्टाबल, नैसर्गिकबल और दृग्बल ये छह बल माने गये हैं।

स्थानबल मे उच्चबल, युग्मायुग्मबल, सप्तवर्गैक्यबल, केन्द्रबल, द्रेष्काण-बल ये पाँच सम्मिलित हैं। इन पाँचो बलो का योग करने से स्थान-बल होता है।

उच्चवलसाधन

स्पष्ट ग्रह में से ग्रह के नीच को घटाना चाहिए। घटाने से जो आवे वह ६ राशि से अधिक हो तो १२ राशि में उसे घटा लेना चाहिए। शेप की विकला बना ले और उन विकलाओं में १०८०० से भाग देने पर लब्ध कलाएँ आयेंगी। शेष को ६० से गुणा कर, गुणनफल में १०८०० से भाग देने पर लब्ध विकलाएँ होगी। इन कला-विकलाओं के अंशादि बना लें।

उदाहरण—स्पष्ट सूर्य ०।१०।७।३४ है, इस मे से सूर्य के नीच राश्यंश को घटाया तो ६।०।७।३४ आया। यहाँ राशि स्थान में घटाने से अधिक होने के कारण इसे १२ राशि में से घटाया—

१२। ०। ०। ०
६। ०। ७।३४

५।२९।५२।२६ शेष

५ × ३० = १५० + २९ = १७९ × ६० = १०७४० + ५२ = १०७९२ × ६० = ६४७५२० + २६ = ६४७५४६ ÷ १०८०० = ५९ शेष ५३४६ × ६० = ३२०७६० ÷ १०८०० = २९ लब्धि, यहाँ शेष का त्याग कर दिया। अतः सूर्य का उच्चबल ०।५९।२९ हुआ।

चन्द्र स्पष्ट १। ०।३४।३४
नीच राश्यंश ७। ३। ०।२४

५।२७।३४।१० शेप

५ × ३० = १५० + २७ = १७७ × ६० = १०६२० + २४ = १०६४४ .

१०६४४ × ६० = ६३८६४० + १० = ६३८६५० ÷ १०८०० = ५९, शेष १४४० × ६० = ८६४०० ÷ १०८०० = ८

अर्थात् ०।५९।८ चन्द्रमा का उच्चबल हुआ। इसी प्रकार अन्य ग्रहों

के उच्चबल का साधन कर जन्मपत्री में स्पष्ट उच्चबल चक्र लिखना चाहिए। नीचे प्रत्येक ग्रह के उच्च और नीच राश्यंश दिये जाते हैं। समस्त ग्रहो के उच्चबल सरलतापूर्वक निकालने के हेतु सारणियाँ दी जा रही हैं। इस पर से समस्त ग्रहो के उच्चबल का साधन किया जा सकेगा।

उच्च-नीच राश्यंश बोधक चक्र

सूर्य	चन्द्र	भौम	बुध	गुरु	शुक्र	शनि	राहु	केतु	ग्रह
०	०	९	५	३	११	६	२	८	उच्च
१०	३	२८	१५	५	२७	२०	०	०	राश्यंश
६	७	३	११	९	५	०	८	२	नीच
१०	३	२८	१५	५	२७	२०	०	०	राश्यंश

युग्मायुग्मबल साधन

चन्द्र और शुक्र सम राशि—वृष, कर्क, कन्या, वृश्चिक, मकर एवं मीन या सम राशि के नवाश में हो तो १५ कला बल होता है। यदि ये ग्रह सम राशि और सम नवाश दोनो में हो तो ३० कला बल होता है और दोनों में न हो तो शून्यकला बल होता है।

सूर्य, भौम, बुध, गुरु और शनि विषम राशि या विषम नवाश में हो तो १५ कला बल, दोनो में हो तो ३० कला बल और दोनों में ही न हो तो शून्य कला युग्मायुग्म बल होता है।

उदाहरण—

सूर्य जन्मकुण्डली में मेष राशि का और नवाश कुण्डली में कर्क राशि का है। यहाँ मेष राशि विषम है और नवाश राशि सम है। अतः सूर्य का युग्मायुग्म बल १५ कला हुआ।

चन्द्रमा जन्मकुण्डली में वृष राशि और नवांश कुण्डली में मकर राशि में है, ये दोनो ही राशियाँ विषम है अतः चन्द्रमा का युग्मायुग्म बल ३० कला हुआ।

भौम जन्मकुण्डली में मिथुन राशि और नवांश कुण्डली में भी मिथुन राशि का है। ये दोनो ही राशियाँ विषम हैं अत. ३० कला युग्मायुग्म बल भौम का हुआ।

बुध जन्मकुण्डली में मेष राशि और नवांश कुण्डली में वृश्चिक राशि का है। मेष राशि विषम और वृश्चिक राशि सम है अत. १५ कला बल भौम का हुआ। इसी प्रकार समस्त ग्रहो का बल निकाल कर चक्र बना देना चाहिए। कुण्डली के बल साधन प्रकरण में राहु-केतु का बल नही बताया गया।

उदाहरण कुण्डली का युग्मायुग्मबल चक्र निम्न प्रकार से है—

सू०	चं०	भौ०	बु०	गु०	शु०	श०	ग्रह
०	०	०	०	०	०	०	अंश
१५	३०	३०	१५	१५	१५	३०	कला
०	०	०	०	०	०	०	विकला

केन्द्रादि बल साधन

केन्द्र—प्रथम, चतुर्थ, सप्तम और दशम भाव में स्थित ग्रहो का बल एक अंश, पणफर—द्वितीय, पंचम, अष्टम और एकादश स्थान में स्थित ग्रहो का बल ३० कला एवं आपोक्लिम—तृतीय, षष्ठ, नवम और द्वादश भाव में स्थित ग्रहो का बल १५ कला होता है।

उदाहरण—इष्ट उदाहरण की जन्म-कुण्डली में सूर्य लग्न से नवम स्थान में चन्द्रमा दशम में, भौम एकादश में, बुध नवम में, गुरु द्वादश में, शुक्र अष्टम में और शनि एकादश में है। उपर्युक्त नियम के अनुसार सूर्य के आपोक्लिम में होने से उस का १५ कला बल, चन्द्रमा का केन्द्र में होने से एक अंश बल, भौम का पणफर में होने से ३० कला बल, बुध का आपोक्लिम में होने से १५ कला बल, गुरु का भी आपोक्लिम में होने से १५ कला बल, शुक्र का पणफर में होने से ३० कला बल और शनि का भी पणफर में होने से ३० कला बल होगा।

उदाहरण कुण्डली का केन्द्रादि वल-चक्र

सू०	च०	भौ०	वु०	गु०	शु०	श०	ग्र०
०	१	०	०	०	०	०	अश
१५	०	३०	१५	१५	३०	३०	कला
०	०	०	०	०	०	०	विकला

द्रेष्काण वलसाधन

पुरुष ग्रहों—सूर्य, भौम और गुरु का प्रथम द्रेष्काण में १५ कला वल, स्त्रीग्रहों—शुक्र और चन्द्रमा का तृतीय द्रेष्काण में १५ कला वल एवं नपुंसक ग्रहों—वुध और शनि का द्वितीय द्रेष्काण में १५ कला वल होता है। जिस ग्रह का जिस द्रेष्काण मे वल वतलाया गया है, यदि उस में ग्रह न रहें तो शून्य वल होता है ।

उदाहरण—अभीष्ट उदाहरण कुण्डली में पूर्वोक्त द्रेष्काण विचार के अनुसार सूर्य द्वितीय द्रेष्काण में, चन्द्रमा प्रथम में, भौम तृतीय में, वुध तृतीय मे, गुरु तृतीय में, शुक्र तृतीय में और शनि प्रथम में है। उपर्युक्त नियमानुसार सूर्य का शून्य वल, चन्द्रमा का शून्य, भौम का शून्य, वुध का शून्य, गुरु का शून्य, शुक्र का १५ कला और शनि का शून्य वल हुआ ।

द्रेष्काण वल चक्र

सू०	च०	भौ०	वु०	गु०	शु०	श०	ग्र०
०	०	०	०	०	०	०	अश
०	०	०	०	०	१५	०	कला
०	०	०	०	०	०	०	विकला

सप्तवर्ग वल साधन

पहले गृह, होरा, द्रेष्काण, नवाश, द्वादशाश, त्रिंशाश और सप्ताश का

साधन कर उक्त कुण्डली चक्र बनाने की विधि उदाहरण सहित लिखी गयी है। इन सातो वर्गों का साधन कर बल निम्न प्रकार सिद्ध करना चाहिए —

	अं०।क०।वि०
स्वगृही ग्रह का बल	०।३०।०
अतिमित्रगृही ग्रह का बल	०।२२।३०
मित्र ,, ,, ,, ,,	०।१५।०
सम ,, ,, ,, ,,	०। ७।३०
शत्रु ,, ,, ,, ,,	०। ३।४५
अतिशत्रु ,, ,, ,,	०। १।५२।३०

सब ग्रहो के बल को जोड कर ६० से भाग देने पर अंशात्मक ऐक्य बल होता है।

उदाहरण—सूर्य जन्मकुण्डली में मेष राशि का है, अतः अतिमित्र[1] के गृह में होने से २२।३० बल गृह का प्राप्त हुआ।

चन्द्रमा—वृष राशि का होने से मित्र शुक्र के गृह में है, इस कारण इस का गृह बल १५।० लिया जायेगा।

भौम—मिथुन राशि का होने से मित्र बुध के गृह में है, अत. इस का गृह बल १५।० ग्रहण करना चाहिए। इस तरह समस्त ग्रहों का गृहबल निकाल लेना चहिए।

होरा बल—सूर्य अपने होरा में है, अत इस का ३०।० बल, चन्द्रमा अपने होरा में है, अत॰ इसका ३०।० बल; भौम का चन्द्रमा के गृह में होने के कारण २२।३० बल, बुध का अपने सम चन्द्रमा के गृह में रहने के कारण ७।३० बल, गुरु का अपने अतिमित्र सूर्य के गृह में रहने के कारण २२।३०

---

१ यहाँ मित्रामित्र की गणना पचधा मैत्री चक्र के अनुसार ग्रहण करनी चाहिए।

बल, शुक्र का अपने सम सूर्य के गृह में होने के कारण ७।३० बल एवं शनि का अपने सम सूर्य के गृह में रहने के कारण ७।३० होरा का बल होगा।

द्रेष्काण बल—द्रेष्काण कुण्डली में अपनी राशि में रहने के कारण सूर्य का ३०।० बल, चन्द्रमा का समसंज्ञक—उदासीन शुक्र की राशि में रहने के कारण ७।३० बल, भौम का उदासीन शनि की राशि में रहने के कारण ७।३० बल, बुध का मित्र गुरु की राशि में रहने के कारण १५।० बल, गुरु का अपनी राशि में रहने के कारण ३०।० बल, शुक्र का मित्र मंगल की राशि में रहने के कारण १५।० बल और शनि का अतिमित्र बुध की राशि में रहने के कारण २२।३० द्रेष्काण बल होगा।

सप्तांश बल—सप्तांश कुण्डली में सूर्य का शत्रु बुध की राशि में रहने के कारण ३।४५ सप्तांश बल, चन्द्रमा का मित्र शुक्र की राशि में रहने के कारण १५।० बल, मंगल का अपनी राशि में रहने के कारण ३०।० बल होगा। इसी प्रकार समस्त ग्रहों का सप्तांश बल बना लेना चाहिए।

गृह, होरा, द्रेष्काण, सप्तांश बल साधन के समान ही नवांश, द्वादशांश और त्रिंशांश कुण्डली में स्थित ग्रहों का बल-साधन भी कर लेना चाहिए। इन सातों फलों के योगफल में ६० का भाग देने से सप्तवर्गैक्य बल आयेगा।

पूर्वोक्त उच्चबल, सप्तवर्गैक्यबल, युग्मायुग्मबल, केन्द्रादिबल एवं द्रेष्काणबल इन पाँचों बलों का योग स्थानबल होता है। जन्मपत्री में स्थानबल चक्र लिखने के लिए उपर्युक्त पाँचों बलों के योग का चक्र लिखना चाहिए।

दिग्बलसाधन

शनि में-से लग्न को, सूर्य और मंगल में से चतुर्थ भाव को, चन्द्रमा और शुक्र में-से दशम भाव को, बुध और गुरु में से सप्तम भाव को घटा कर शेष में राशि ६ का भाग देने से ग्रहों का दिग्बल आता है। यदि शेष ६ राशि से अधिक हो तो १२ राशि में-से घटाकर तब भाग देना चाहिए।

दूसरा नियम यह भी है कि शेष की विकलाओं में १०८०० का भाग देने से कला, विकलात्मक, दिग्बल आ जाता है।

उदाहरण—सूर्य ०।१०।७।३४ में-से चतुर्थ भाव ७।२४।४३।२१ जो भाव स्पष्ट में आया है, को घटाया तो—

०।१०।७।३४
७।२४।४३।२१
४।१५।२४।१३ शेष

४ × ३० = १२० + १५ = १३५ × ६० = ८१०० + २४ = ८१२४ × ६० = ४८७४४० + १३ = ४८७४५३

४८७४५३ ÷ १०८०० = ४५, शेष १४५३ × ६० = ८७१८० – १०८०० = ८, यहाँ शेष का त्याग कर दिया गया अतः सूर्य का दिग्बल ४५।८ हुआ।

चन्द्रमा का—११०।२४।३४ चन्द्रस्पष्ट में-से
१।२४।४३।२१ दशम भाव को घटाया
११।५।४१।१३

यहाँ ६ राशि से अधिक होने के कारण १२ राशि में-से घटाया।

१२।०।०।०
११।५।४१।१३
०।२४।१८।४७ शेष

० × ३० = ० + २४ = २४ × ६० = १४४० + १४५८

१४५८ × ६० = ८७४८० + ४७ = ८७५२७

८७५२७ ÷ १०८०० = ८ शेष ११२७ × ६० = ६७६२०

६७६२० – १०८०० = ६। यहाँ शेष का प्रयोजन न होने से त्याग कर दिया गया।

८।६ चन्द्रमा का बल हुआ। इसी प्रकार समस्त ग्रहों का दिग्बल बना कर जन्मपत्री में दिग्बल चक्र लिखना चाहिए।

कालबलसाधन

नतोन्नतबल, पक्षबल, अहोरात्रित्रिभाग-बल, वर्षेशादिबल, इन चारो बलो का योग कर देने पर काल-बल आता है।

नतोन्नतबलसाधन—नत घट्यादिको को दूना कर देने से चन्द्र, भौम और शनि का नतोन्नत बल एवं उन्नत घट्यादिको को दूना करने से सूर्य, गुरु एवं शुक्र का नतोन्नत बल होता है। बुध का सदा १ अंश नतोन्नत बल लिया जाता है। नतसाधन की प्रक्रिया पहले लिखी जा चुकी है, इसे ३० घटी मे से घटाने पर नत के समान पूर्व या पश्चिम उन्नत होता है।

उदाहरण—७।१९ पश्चिम नत है (इष्ट काल पर से प्रथम नत-साधन के नियमानुसार आया है) इसे ३० घटी में से घटाया तो—३०।०

७।१९

उन्नत-पश्चिम २२।४१

उपर्युक्त नियम में सूर्य का नतोन्नत बल उन्नत-द्वारा बनाया जाता है अत· २२।४१ × २ = ४५।२२ कलादि नतोन्नत बल सूर्य, गुरु और शुक्र का हुआ।

चन्द्र, भौम, शनि का—७।१९ × २ = १४।३८ कलादि बल हुआ। बुध का एक अंश माना जायेगा। अत इस उदाहरण का नतोन्नत बल-चक्र निम्न प्रकार बनेगा—

नतोन्नत बलचक्र

सू०	च०	भौ०	बु०	बृ०	शु०	श०	ग्र०
०	०	०	१	०	०	०	अंश
४५	१४	१४	०	४५	४५	१४	कला
२२	३८	३८	०	२२	२२	३८	विकला

पक्षबलसाधन—सूर्य चन्द्रमा के अन्तर के अंशो मे ३ का भाग देने से शुभ ग्रहो—चन्द्र, बुध, गुरु और शुक्र का पक्षबल होता है, इसे ६० कला में

घटाने से पापग्रहों—सूर्य, मंगल, शनि और पापयुक्त बुध का पक्षबल होता है।

उदाहरण—चन्द्रमा १। ०।२४।३४ में-से
सूर्य ०।१०। ७।३४ को घटाया
२०।१७। ०

३)२०।१७(६ कला — ६।४५ शुभग्रहों का पक्षबल हुआ
१८
२×६०
१२०
१७
३) १३७ (४५ विकला — ६०।०
१२ — ६।४५
१७ — ५३।१५ अशुभ
१५ — ग्रहों का पक्षबल होगा।
२

पक्षबल चक्र

सू०	चं०	भौ०	बु०	गु०	शु०	श०	ग्र०
०	०	०	०	०	०	०	अंश
५३	६	५३	५३	६	६	५३	कला
१५	४५	१५	१५	४५	४५	१५	विकला

दिवारात्रि त्र्यंशबल—दिन का जन्म हो तो दिनमान का त्रिभाग करे और रात का जन्म हो तो रात्रिमान का त्रिभाग करे। यदि दिन के प्रथम भाग में जन्म हो तो बुध का, दूसरे भाग में सूर्य का और तीसरे भाग में शनि का एक अंश बल होता है। रात के प्रथम भाग में जन्म हो तो सूर्य का, द्वितीय भाग में शुक्र का और तृतीय भाग में भौम एवं गुरु का सदा एक अंश बल होता है।

इस से विपरीत स्थिति मे शून्यबल समझना चाहिए। उदाहरण—दिनमान ३२।६ है और इष्टकाल २३।२२ है, दिनमान ३२।६ ÷ ३ = १०।४२; १०।४२ का एक भाग, १०।४२ से २१।२४ तक दूसरा भाग एवं २१।२४ से ३२।६ तक तीसरा भाग होगा। अभीष्ट इष्टकाल तृतीय भाग का है, अत शनि का एक अंश बल होगा। गुरु का सर्वदा एक अंश बल माना जाता है, अत उस का भी एक अंश बल ग्रहण करना चाहिए। बलचक्र नियम इस प्रकार होगा—

दिवारात्रि त्रिभाग बलचक्र

सू०	चं०	भौ०	बु०	गु०	शु०	श०	ग्र०
०	०	०	०	१	०	१	अंश
०	०	०	०	०	०	०	कला
०	०	०	०	०	०	०	विकला

वर्षेशादि बल—इष्ट दिन का कलियुगाद्यहर्गण ला कर उस मे ३७३ घटा कर शेष में २५२० का भाग देने पर जो शेष आवे उसे दो जगह स्थापित करें। पहले स्थान में ३६० का और दूसरे स्थान मे ३० का भाग दें। दोनो स्थान की लब्धियो को क्रमश तीन और दो से गुणा करें, गुणनफल में एक जोड दें। इस योगफल में ७ का भाग देने पर प्रथम स्थान के शेष मे वर्षपति और द्वितीय स्थान के शेष में मासपति होता है।

कलियुगाद्यहर्गणसाधनविधि—इष्ट शक वर्ष मे ३१७९ जोड देने से कलिगत वर्ष होते है। कलिगत वर्षो को १२ से गुणा कर चैत्रादि गतमास जोड़ देना चाहिए। इस योगफल को तीन स्थानो में रखना चाहिए, प्रथम स्थान मे ७० से भाग दे कर जो लब्ध आये उसे द्वितीय स्थान में जोडे और इस योगफल में ३३ का भाग दे कर लब्धि को तृतीय स्थान में जोड दें। पुनः इस योगफल को ३० से गुणा कर गत तिथि जोड दें। इस योगफल को दो स्थानो मे स्थापित करें। प्रथम स्थान की संख्या को ११ से गुणा कर ७०३

का भाग देकर लब्धि को द्वितीय स्थान की संख्या में घटाने से कलियुगाद्यहर्गण होता है।

उदाहरण—वि० सं० २००१ शक १८६६ के वैशाख मास कृष्ण पक्ष द्वितीया तिथि, सोमवार का जन्म है।

१८६६ + ३१७९ = ५०४५ कलियुगादि गतवर्ष

५०४५ × १२ = ६०५४० + १ = ६०५४१ गतमास

६०५४१ ÷ ७० = ८६४	६०५४१	६०५४१ + १८६०
शेष ६१	८६४	= ६२४०१
	६१४०५	
	÷ ३३	
	= १८६०	शेष २५

६२४०१ × ३० = १८७२०३० + १६ (तिथि शुक्ल प्रतिपदा से जोड़नी चाहिए)

१८७२०४६ × ११ = २०५९२५०६   १८७२०४६

२०५९२५०६ ÷ ७०३ =   २९२९२

२९२९२, शेष २४०   १८४२७५४

१८४२७५४ − ३७३ = १८४२३८१ − २५२० = ७३१, शेष २६१, यहाँ लब्धि का उपयोग न होने से शेष को दो स्थानों में स्थापित किया।

२६१ − ३६० = ०   २६१ ÷ ३० = ८, शेष २१

शेष = २६१   मासेश ८ × २ = १६ + १ = १७

१७ ÷ ७ = २, शेष ३

वर्षेश = ० × ३ = ० + १ = १ ÷ ७ = ०, शेष १

दिनेश साधन—जिस दिन का इष्ट काल हो, वही दिनेश होता है। प्रस्तुत उदाहरण में सोमवार का इष्टकाल है, अत दिनेश चन्द्रमा होगा।

कालहोरेशसाधन—सूर्य दक्षिण गोल में हो तो इष्टकाल में चर घटी को जोडना और उत्तर गोल में हो तो इष्टकाल में-से चर घटी को घटाना चाहिए। इस काल में पूर्व देशान्तर को ऋण और पश्चिम देशान्तर को धन करने से वारप्रवृत्ति के समय से इष्टकाल होता है। इस इष्टकाल को दो से गुणा कर ५ का भाग देने पर जो शेष रहे उसे गुणनफल मे-से घटाना चाहिए। अब शेष में एक जोडकर ७ का भाग देने से जो शेष आवे उसे दिनपति से आगे गणना करने पर कालहोरेश आता है।

उदाहरण—इष्टकाल २३।२२, चर मिनिटादि २५।१७—यह पहले निकाला गया है। इस में घटचादि–२५ − $\frac{१७}{६०}$ = २५ + $\frac{१७}{६०}$ = $\frac{१५१७}{६०}$ × $\frac{१}{२४}$ = $\frac{१५१७}{१४४०}$ = १$\frac{७७}{१४४०}$ = $\frac{६०}{१}$ × $\frac{७७}{१४४०}$=३$\frac{५}{२४}$ अर्थात् एक घटी ३ पल चर काल हुआ। यहाँ सूर्य मेष राशि का होने के कारण दक्षिण गोल का है अत उपर्युक्त नियमानुसार इष्टकाल २३।२२ में देशान्तर ८ मिनिट ४० से० के घटी पल बनाये तो { चर घटी १।३ को इष्टकाल २३।२२ में जोड़ा देशान्तर २४।२५।

२१$\frac{३}{४}$ पल हुए।

०।२१, आरा रेखादेश से पश्चिम होने के कारण देशान्तर घटी का धन संस्कार किया।

२४।२५
०।२१
———
२४।४६ वारप्रवृत्ति से इष्टकाल

२४।४६ × २=४९।३२ ÷ ५ = ९ लब्धि, शेष ३।४७।४९।३२ − ३।४७= ४५।४५ + १=४६।४५ ÷ ७= ६ लब्धि, शेष ४।४५, यहाँ वाराधिपति चन्द्रमा से ४ तक गिनने पर बृहस्पति कालहोरेश हुआ।

बल साधन का नियम यह है कि वर्षपति, मासपति, दिनपति और काल होरापति ये क्रमश एक चरण वृद्धि से बलवान् होते हैं। जैसे वर्षपति का बल १५ कला, मासपति का ३० कला, दिनपति का ४५ कला और काल-

होरापति का एक अश वल होता है ।

प्रस्तुत उदाहरण में वर्षपति रवि, मासपति मगल, दिनपति चन्द्रमा और कालहोरापति वृहस्पति हुआ । इन सभी ग्रहों का वल चरण-वृद्धि क्रम से नीचे दिया जाता है —

वर्षेशादि वल चक्र

सू०	च०	भौ०	वु०	गु०	शु०	श०	ग्र०
०	०	०	०	१	०	०	अश
१५	४५	३०	०	०	०	०	कला
०	०	०	०	०	०	०	विकला

जन्मपत्री में कालवल चक्र लिखने के लिए नतोन्नतवल, पक्षवल, दिवारात्र्यंशवल और वर्षेशादिवल इन चारो का जोड करना चाहिए ।

अयनवल—इस का साधन करने के लिए सूक्ष्म क्रान्ति का साधन करना परमावश्यक है । गणित क्रिया की सुविधा के लिए नीचे १० अंको में ध्रुवाक और ध्रुवान्तराक सारणी दो जाती है ।

सायन ग्रह के भुजाशो में १० का भाग देने से जो लब्धि हो वह गत-क्रान्ति खण्डाक होता है । अशादि शेष को ध्रुवान्तराक से गुणा कर १० का भाग देने से जो लब्धि हो उसे गत खण्ड में जोड कर पुन. १० का भाग देने पर अंशादि क्रान्ति स्पष्ट होती है । इस क्रान्ति की दिशा सायन ग्रह के गोलानुसार अवगत करनी चाहिए ।

तीन राशि—९० अंशों की भुजा का ध्रुवांक चक्र

अश	१०	२०	३०	४०	५०	६०	७०	८०	९०
	(१)	(२)	(३)	(४)	(५)	(६)	(७)	(८)	(९)
ध्रुवाक	४०	८०	११७	१५१	१८१	२०६	२२४	२३६	२४०
ध्रुवान्तराक	४०	४०	३७	३४	३०	२५	१८	१४	४

उदाहरण—सूर्य ०।१०।७।३४ अयनांश २३।४६ है।

०।१०।७।३४ स्पष्ट सूर्य

१।३।४६।० अयनांश

१।३।५३।३४ सायन सूर्य—इस के भुजाश निकालने है।

भुजाश बनाने का नियम यह है कि यदि ग्रह तीन राशि के भीतर हो तो वही, उस का भुजाश और तीन राशि से अधिक और ६ राशि से कम हो तो ६ राशि मे से ग्रह को घटा देने से भुजाश, ६ राशि से ग्रह अधिक और ९ राशि से कम हो तो ग्रह में-से ६ राशि घटाने से भुजाश एवं नौ राशि से अधिक हो तो बारह राशि में-से घटाने से भुजाश होता है।

प्रस्तुत उदाहरण में सूर्य ३ राशि के भीतर है। अत उस का भुजाश १।३।५३।३४ राश्यादि ही होगा।

गणित क्रिया के लिए राशि के अंश बनाकर अंशो में जोड दिये तो ३३।५३।३४ अंशादि भुजाश हुआ।

३३।५३।३४ ÷ १० = ३ लब्धि, शेष ३।५३।३४, यहाँ लब्धि ३ है। अत' तीन खण्ड के नीचेवाला गत ध्रुवाक ११७ हुआ। इस लब्धि खण्ड का ध्रुवान्तरांक ३७ इस अंक के शेष के अंशादि को गुणा करना चाहिए।

३।५३।३४ × ३७ = १४५।४१।५८ ÷ १० = १४।३४।११

११७ + १४।३४।११ = १३१।३४।११ ÷ १० = १३।११।२५

सूर्य की उत्तरा क्रान्ति हुई। इसी प्रकार समस्त ग्रहो को क्रान्ति का साधन कर लेना चाहिए।

बुध की उत्तरा या दक्षिणा क्रान्ति को सर्वदा २४ में जोडना चाहिए। शनि और चन्द्र की दक्षिणा क्रान्ति हो तो २४ में क्रान्ति को जोडना और उत्तरा हो तो २४ मे-से घटाना चाहिए। सूर्य, मंगल, बुध और शुक्र को क्रान्ति को दक्षिणा क्रान्ति होने से २४ मे-से घटाना और उत्तरा क्रान्ति हो तो २४ में जोडना चाहिए। इस प्रकार धन-ऋण से जो क्रान्ति आयेगी, उस में ४८ का भाग देने से अयनबल होता है। सूर्य के अयनबल को द्विगुणित

कर देने से उस का स्पष्ट चेष्टावल होता है।

उदाहरण—सूर्य उत्तरा क्रान्ति १३।११।२५ है, अत. इसे २४ में जोडा तो—१३।११।२५

२४

३७।११।२५ ÷ ४८ = ०।४६।१३

सूर्य का अयनवल

भौमादि पांच ग्रहो का मध्यम चेष्टावल-साधन करने का यह नियम है। पहले इष्टकालिक मध्यम ग्रह और स्पष्ट ग्रह के योगार्ध को शीघ्रोच्च में घटाने से भौमादि पांच ग्रहों का चेष्टाकेन्द्र होता है। चेष्टाकेन्द्र ६ राशि से अधिक हो तो उसे १२ राशि में-से घटाकर शेष अंशादि को दूनाकर ६ का भाग देने पर कला-विकलादि रूप मध्यम चेष्टावल होता है।

सूर्य का अयनवल और चन्द्रमा का पक्षवल ही मध्यम चेष्टावल होता है।

सभी ग्रहो के अयनवल और मध्यम चेष्टावल को जोड देने पर स्पष्ट चेष्टावल होता है।

मध्यम ग्रह वनाने का नियम

मध्यम ग्रह ग्रह-लाघव, सर्वानन्दकरण, केतकी, करणकुतूहल आदि करण ग्रन्थो-द्वारा अहर्गण साधन कर करना चाहिए। इस प्रकरण में ग्रह-लाघव-द्वारा मध्यम ग्रह साधन करने की विधि दी जाती है।

अहर्गण वनाने का नियम—इष्ट शक संख्या में-से १४४२ घटा कर शेष में ११ का भाग देने से लब्धि चक्र संज्ञक होती है। शेष को १२ से गुणा कर उस से चैत्र शुक्ल प्रतिपदा से गतमास सख्या जोड़ कर दो स्थानो में स्थापित करना चाहिए। प्रथम स्थान की राशि में द्विगुणित चक्र और दस जोड कर ३३ का भाग देने से लब्धितुल्य अधिमास होते हैं। इन्हें द्वितीय स्थान की राशि में जोड कर ३० से गुणा कर वर्तमान मास की

शुक्ल प्रतिपदा से ले कर गत तिथि तथा चक्र का षष्ठांश जोड कर संख्या को दो स्थानो में स्थापित कर देना चाहिए। प्रथम स्थान में ६४ का भाग देने से लब्ध दिन आते है। इन्हें द्वितीय स्थान की राशि में घटाने से शेष इष्ट-दिनकालिक अहर्गण होता है—

उदाहरण—शक १८६६ वैशाख कृष्ण २ का जन्म है।

१४४२ को घटाया

४२४ ÷ ११ = ३८, शेप ६,

६ × १२ = ७२ + ० = ७२ ३८ चक्र

७२ ३८ × २ = ७६

७६ ७२ + ४ = ७६ × ३० = २२८० + १६

१०

३३) १५८ (४ अधि० २२९६ + ६ = २३०२ इसे दो स्थानो में स्थापित किया

२३०२ ÷ ६४=३५, शेप ६२

२३०२ लब्ध

३५ दिन

२२६७ अहर्गण

मध्यम सूर्य, शुक्र और बुध की साधन विधि—अहर्गण में ७० का भाग देकर लब्ध अंशादि फल को अहर्गण मे ही घटाने से शेष अशादि रहता है, इस में अहर्गण का १५वाँ भाग कलादि फल को घटाने से सूर्य, बुध और शुक्र अंशादिक होते है।

मध्यम चन्द्र साधन—अहर्गण को १४ से गुणा कर के जो गुणनफल हो उस मे उसी का १७वाँ भाग अशादि घटाने से जो शेप रहे उसमें-से अहर्गण का १४०वाँ भाग कलादि घटाने से शेष अंशादिक मध्यम चन्द्र होता है।

मध्यम मंगल साधन—अहर्गण को १० से गुणा कर दो जगह रखना चाहिए। प्रथम स्थान में १९ का भाग देने से अंशादि और दूसरे स्थान में

७३ का भाग देने से कलादि फल होता है। इन दोनों का अन्तर करने से अंशादि मगल होता है।

मध्यम गुरु साधन—अहर्गण में १२ का भाग दे कर अशादि फल में अहर्गण के ७०वें भाग कलादि फल को घटाने से अशादि गुरु होता है।

मध्यम शनि साधन—अहर्गण में ३० का भाग दे कर अंशादि फल आता है। अहर्गण में १५६ का भाग देने से कलादि फल होता है। इन दोनो फलो को जोडने से अंशादि शनि होता है।

मध्यम राहु साधन—अहर्गण को दो स्थानो में रख कर प्रथम स्थान में १९ का भाग देने से अंशादि फल और दूसरे स्थान में ४५ का भाग देने से कलादि फल होता है। इन दोनो फलो के योग को १२ राशि में घटाने से राहु होता है और राहु में ६ राशि जोडने से केतु आता है।

इस प्रकार अहर्गणोत्पन्न जो ग्रह आवें उन में चक्र गुणित अपने ध्रुवक-को घटाने से और अपने क्षेपकको जोडने से सूर्योदयकालिक मध्यम ग्रह होते है। चन्द्रसाधन के लिए स्वदेश और स्वरेखादेश के अन्तर योजन में ६ का भाग देने से लब्ध कलादि फल को पश्चिम देश में चन्द्रमा में जोडने से और पूर्व देश में चन्द्रमा में घटाने से वास्तविक मध्यम चन्द्रमा स्वदेशीय होता है।

ध्रुवक चक्र

सू०	च०	भौ०	बु०	गु०	शु०	श०	रा०	ग्र०
०	०	१	४	०	१	७	७	राशि
१	३	२५	३	२६	१४	१५	२	अश
४९	४६	३२	२७	१८	२	४२	५०	कला
११	११	०	०	०	०	०	०	विकला

क्षेपक चक्र

सू०	चं०	भौ०	बु०	गु०	शु०	श०	रा०	ग्रह
११	११	१०	८	७	७	९	०	राशि
१९	१९	७	२९	७	२०	१५	२७	कला
४१	६	८	३३	१६	९	२१	३८	विकला
०	०	०	०	०	०	०	०	अश

उदाहरण—अहर्गण २२६७ है, मध्यम मंगल साधन करना है—

२२६७ × १० = २२६७०

२२६७० ÷ १९=
११९६।१८।५६ अंशादि फल

२२६७० ÷ ७२=३१०।३२ कलादि फल इसे अंशादि करने के लिए कलाओ में ६० का भाग दिया तो ३१०।३२

६०)३१०(५।१०
३००
१०

अर्थात् ५।१०।३२

११९६।१८।५६
५।१०।३२

११९१।८।२४ इस के राश्यादि वनाये तो ३९।११।८।२४ हुए। यहाँ राशि स्थान में १२ से अधिक है। अत: १२ का भाग दे कर शेष लब्धि को छोड दिया और शेषमात्र को ग्रहण कर लिया।

३।११।८।२४ अहर्गणोत्पन्न मध्यम मंगल इसे प्रात.कालीन वनाने के लिए—अहर्गण साधन में जो चक्र ३८ आया है उसे मंगल के ध्रुवक से गुणा

किया तो—१।२५।३२।० × ३८ = १०।१०।१६।०

३।११।८।२४ अहर्गणोत्पन्न मगल में-से

१०।१०।१६।० चक्र गुणित मगल के ध्रुवक को घटाया

५।०।५२।२४ में

१०।७।८।० मंगल का क्षेपक जोडा

३।८।०।२४ मध्यम मगल हुआ ।

इसी प्रकार समस्त ग्रहों का मध्यम मान निकाल लेना चाहिए ।

भौमादि ग्रहो का शीघ्रोच्च वनाने का नियम

बुध और शुक्र के शीघ्र केन्द्र में मध्यम सूर्य युक्त करने से बुध और शुक्र का शीघ्रोच्च होता है । मगल, वृहस्पति और शनि का शीघ्रोच्च मध्यम सूर्य ही होता है ।

प्रस्तुत मगल का शीघ्रोच्च ११।२४।५३।४७ जो कि मध्यम सूर्य है, माना जायेगा ।

३।८।०।२४ मध्यम मगल

२।२१।५२।४४।स्पष्ट करते मगल ग्रहस्पष्ट साधन समय आया है ।

५।२९।५३।८ योग

२।२९।५६।३४ योगार्ध

११।२४।५३।४७ मगल के शीघ्रोच्च में-से

२।२९।५६।३४ योगार्ध को घटाया

९। ४।५७।१३ मगल का चेष्टा केन्द्र हुआ ।

यह छह राशि से अधिक है । अत १२ में-से घटाया तो—

१२। ०। ०। ०।

९। ४।५७।१३

२।२५।२।४७ × २ =

५।२५।५।४४ ÷ ६ =

५ × ३० = १५० + २० = १७०।५।३४ ÷ ६ = २८।२० यह मंगल का मध्यम चेष्टाबल हुआ। इस में मंगल का अयनबल जोड देने से स्पष्ट चेष्टाबल आ जायेगा।

नैसर्गिक-बल-साधन—एकोत्तर अको में पृथक्-पृथक् ७ का भाग देने से क्रमश. शनि, मगल, वुध, गुरु, शुक्र, चन्द्र और सूर्य का नैसर्गिक बल होता है—एक में ७ का भाग देने से शनि का, दो में ७ का भाग देने से मंगल का, तीन में ७ का भाग देने से वुध का, चार में ७ का भाग देने से गुरु का, पाँच में ७ का भाग देने मे शुक्र का, छह में ७ का भाग देने से सूर्य का नैसर्गिक बल होता है।

उदाहरण—१ ÷ ७ = ०, शेष १ × ६० ÷ ८ = ७, शेष ४ × ६० = २४० – ७ = ३४ शनि का नैसर्गिक बल हुआ। इसी प्रकार सभी ग्रहों का बल बना लेना चाहिए।

नैसर्गिक बल चक्र

सू०	च०	भौ०	बु०	गु०	शु०	श०	ग्र०
१	०	०	०	०	०	०	अंश
०	५१	१७	२५	३४	४२	८	कला
०	२६	९	४३	१७	५१	३४	विकला

दृग्बल—देखने वाला ग्रह द्रष्टा और जिसे देखे वह ग्रह दृश्यसंज्ञक होता है। द्रष्टा को दृश्य में घटा कर एकादि शेष के अनुसार दृष्टि ध्रुवांश चक्र में-से राशि का ध्रुवांक ज्ञात करना चाहिए। अंशादि शेष को ध्रुवांकान्तर से गुणा कर ३० का भाग दे लब्धि को गत ध्रुवांक मे धन, ऋण—गत से ऐष्य अधिक हो तो धन, अल्प हो तो ऋण कर के ४ का भाग देने से लब्धिरूप ग्रह दृष्टि होती है। शुभ ग्रहों—गुरु, शुक्र, चन्द्र और बुध की दृष्टि के जोड मे ४ का भाग देने से जो आये उसे पहले वाले ५ बलों के योग में जोड देने से षड्बलैक्य और पाप ग्रहों—सूर्य,

मगल, शनि तथा पाप ग्रह युक्त बुध की दृष्टि के जोड़ में ४ का भाग देने पर जो आये उसे पहले वाले ५ बलो के योग में घटाने से षड्बलैक्य बल होता है।

दृष्टि ध्रुवांक चक्र

शेष राशि	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	०
ध्रुवाक	०	१	३	२	०	४	३	२	१	०	०	०

उदाहरण—सूर्य पर बुध की दृष्टि का साधन करना है, अत. यहाँ बुध द्रष्टा और सूर्य दृश्य होगा।

०।१०। ७।३४ दृश्य मे-से
०।२३।२१।३१ द्रष्टा को घटाया

११।१६।४६। ३ शेष, इस में राशि सख्या ११ है, अत ११ के नीचे ध्रुवाक शून्य मिला, आगे वाला ध्रुवाक भी शून्य है, अत दोनो का अन्तर भी शून्यरूप होगा। अशादि १६।४६।३ × ० = ० − ३० = ०, ० + ० = ० ÷ ४ = ०, अत यहाँ सूर्य पर बुध की दृष्टि शून्य रूप होगी।

इस प्रकार प्रत्येक ग्रह पर सातों ग्रहो की दृष्टि का साधन कर शुभा-शुभ ग्रहो की अपेक्षा से दृष्टियोग निकालना चाहिए।

प्रत्येक ग्रह के पृथक्-पृथक् स्थानबल, दिग्बल, कालबल, चेष्टाबल, निसर्गबल और दृग्बल इन छहो बलों का योग कर देने से हर एक ग्रह का षड्बल आ जाता है।

ग्रहो के बलाबल का निर्णय

जिन ग्रहो का बलयोग—षड्बलैक्य तीन अश से कम हो वे निर्बल और जिन का छह अश से अधिक हो वे पूर्ण बलवान् और जिन का तीन अश से अधिक और छह अश से कम हो वे मध्यबली होते है।

अष्ट-वर्ग विचार

फल कहने की प्राय तीन विधियाँ प्रचलित है—जन्मलग्न-द्वारा, जन्मराशि—चन्द्रलग्न-द्वारा और नवाश कुण्डली-द्वारा। मनुष्य का जन्म जिस राशि मे होता है, वह राशि उस के जीवन मे अत्यन्त महत्त्वपूर्ण होती है। जन्मलग्न से शरीर का विचार, जन्मराशि से मानसिक विचार, नवाश कुण्डली से जीवन की विभिन्न समस्याओ का विचार किया जाता है। जन्मराशि-द्वारा जो फल कहने की विधि प्रचलित है, उसे गोचर विधि कहते है। लेकिन गोचर का फल स्थूल होता है। ज्योतिर्विदो ने गोचर विधि को सूक्ष्मता प्रदान करने के लिए अष्टक वर्ग विधि को निकाला है।

जिस प्रकार प्रत्येक ग्रह जन्मसमय की स्थित राशि पर अपना शुभाशुभ प्रभाव डालता है, उसी प्रकार जन्मलग्न का भी अपना शुभाशुभ फल होता है। तात्पर्य यह है कि सात ग्रह स्थित, राशियाँ और जन्मलग्न इन आठो स्थानो मे सातो ग्रह और लग्न का प्रभाव इष्टानिष्ट रूप में पडता है। सूर्य कुण्डली, सूर्याष्टकवर्ग, चन्द्र कुण्डली—चन्द्राष्टक वर्ग, मंगल कुण्डली—मगलाष्टक वर्ग, बुध कुण्डली—बुधाष्टक वर्ग, गुरु कुण्डली—गुरु अष्टक वर्ग आदि सात ग्रह और लग्न इन आठो के अष्टक वर्ग बना लेना चाहिए। प्रत्येक ग्रह जन्म समय की कुण्डली मे अपने-अपने स्थान से जिन-जिन स्थानो में बल प्रदान करता है, उन स्थानो में, इस शुभ फलदायित्व को रेखा या बिन्दु कहते है। किसी-किसी आचार्य ने शुभफल का चिह्न रेखा माना है तो किसी ने बिन्दु। साराश यह है कि शुभ फल को यदि रेखा द्वारा व्यक्त किया जायेगा तो अशुभ फल को शून्य-द्वारा और शुभ फल को शून्य-द्वारा व्यक्त किया जायेगा तो अशुभ फल को रेखा-द्वारा। नीचे सामान्य अष्टक वर्ग चक्र दिये जाते है। जिस अष्टक वर्ग में जो ग्रह जिन-जिन स्थानो मे बल प्रदान करते है, उन स्थानो की संख्या दी गयी है। जैसे सूर्याष्टक वर्ग मे चन्द्रमा जिस स्थान पर बैठा होगा, उस से तीसरे,

छठे, दसवे, ग्यारहवें भाव में शुभ फल देता है शेष में अशुभ फल देता है। इसी प्रकार अन्य स्थानों को समझना चाहिए।

रवि रेखा ४८

सू०	च०	भौ०	बु०	बृ०	शु०	श०	ल०
१	३	१	३	५	६	१	३
२							
४							
७	६	२	५	६	७	२	४
८						४	
९			६				६
१०		४		९	१२	७	
११	१०		९			८	१०
		७	१०	११		९	
	११	८	११			१०	११
		९	१२			११	१२
		१०					
		११					

चन्द्र रेखा ४९

सू०	च०	म०	बु०	बृ०	शु०	श०	ल०
३	१	२	१	१	३	३	३
६	३	३	३	४	४	५	६
७	६	५	४	७	५	६	१०
८	७	६	५	८	७	११	११
१०	१०	९	७	१०	९		
११	११	१०	८	११	१०		
		११	१०	१२	११		
			११				

भौम रेखा ३९

सू०	चं०	मं०	बु०	बृ०	शु०	श०	ल०
३	६	१	३	६	६	१	१
५	६	२	५	१०	८	४	३
६	११	४	६	११	११	७	६
१०		७	११	१२	१२	८	१०
११		८				९	११
		१०				१०	
		११				११	

बुध रेखा ५४

सू०	चं०	मं०	बु०	बृ०	शु०	श०	ल०
५	२	१	१	६	१	१	१
६	४	२	३	८	२	२	२
९	६	४	५	११	३	४	४
११	८	७	६	१२	४	७	६
१२	१०	८	९		५	८	८
	११	९	१०		८	९	१०
		१०	११		९	१०	११
		११	१२		११	११	

गुरु रेखा ५६

सू०	चं०	मं०	बु०	बृ०	शु०	श०	ल०
१	२	१	१	१	२	३	१
२	५	२	२	२	५	५	२
३			४		६	६	४
४	७	४		३			
७			५				५
	९	७	६	४	९	१२	६
८				७			
९		८			१०		७
	११	१०	९	८			९
१०			१०		११		
				१०			१०
११		११	११	११			११

शुक्र रेखा ५२

सू०	चं०	मं०	बु०	बृ०	शु०	श०	ल०
८	१	३	३	५	१	३	१
११	२						
	३	५	५	८	२	४	२
१२							
	४	६	६	९	३	५	३
	५					८	
	८	९	९	१०	४	९	४
	९	११	११	११	५		५
					८		
	११					१०	
	१२	१२			९		८
					१०	११	९
					११		११

शनि रेखा ३९

सू०	चं०	मं०	बु०	बृ०	शु०	श०	ल०
१		३	६	५	६	३	१
	३	५					३
२			८	६	११	५	
	६						४
४		६	९	११	१२	६	६
७	१	१०	१०	१२		११	१०
८	१	११	११				११
१०		१२	१२				
११							

लग्न रेखा ४९

सू०	चं०	मं०	बु०	बृ०	शु०	श०	ल०
३	३	१	१	१	१	१	३
४	६	३	२	२	२	३	
							६
६	१०	६	४	४	३	४	
१०	११	१०	६	५	४	६	१०
११		११	८	६	५	१०	११
१२			१०	७	८	११	
			११	९	९		
				११	११		

अष्टकवर्गांक फल

जन्मलग्न और जन्मकुण्डली में स्थित ग्रहो के स्थानों से सूर्यादि ग्रहो के शुभाशुभ स्थानो को निकाल लेना चाहिए। रेखा या विन्दुओ के स्थानो को शुभ और शेष स्थानो को अशुभ कहते हैं। शुभ स्थान अधिक होने से ग्रह बलवान् और अशुभ स्थानो के अधिक होने से ग्रह निर्बल माना जाता है। यथा सूर्य का बल अवगत करना है। जन्म समय में वृश्चिक लग्न है और कुण्डली निम्न प्रकार है।

सूर्य का	स्थान	धनु	९,
चन्द्र का	स्थान	वृश्चिक	८,
मगल का	स्थान	सिंह	५,
बुध का	स्थान	मकर	१०,
गुरु का	स्थान	मीन	१२,
शुक्र का	स्थान	मकर	१०,
शनि का	स्थान	मिथुन	३,
लग्न का	स्थान	वृश्चिक	८,

पचांग में	सूर्य का स्थान	मकर	१०
,,	चन्द्र ,,	वृष	२
,,	मंगल ,,	कुम्भ	११
,,	बुध ,,	मकर	१०
,,	गुरु ,,	मिथुन	३
,,	शुक्र ,,	धनु	९
,,	शनि ,,	कुम्भ	११

जन्म के सूर्य के स्थान धनु से पंचाग के सूर्य के स्थान मकर तक गणना करने से दो संख्या आयी, जो बिन्दु या रेखा की है। अनन्तर सूर्य के स्थान से चन्द्रमा के स्थान की गणना की तो धनु से वृष का स्थान छठाँ आया। रविरेखा के कोष्ठक में छठे स्थान में बिन्दु या रेखा है, अत यहाँ भी रेखा या बिन्दु को रखा। पश्चात् सूर्य के धनु स्थान से मंगल के स्थान कुम्भ की गणना की तो तीन सख्या आयी। तीन संख्या बिन्दु या रेखा के विपरीत अशुभ भी है। अत. मंगल अशुभ हुआ। इसी प्रकार आगे बुधादि की रेखाएँ निकाल लेनी चाहिए। यह रवि रेखाष्टक बनेगा। आगे चन्द्रमा से चन्द्ररेखाष्टक, मंगल से मंगलरेखाष्टक, बुध से बुधरेखाष्टक आदि रेखाष्टक बना लेने चाहिए। अब जिस ग्रह का बल जानना हो उस की समस्त रेखाओ को जोड़ लेना तथा उस के विपरीत बिन्दुओं को जोड़ना, अनन्तर दोनो का अन्तर कर ग्रह के बलाबल या शुभाशुभ को समझ लेना चाहिए। यह रेखाष्टक का सरल विचार है, विस्तार से अवगत करने के लिए बृहत्पाराशर शास्त्र का वर्गाष्टकाध्याय देखना चाहिए।

तृतीयाध्याय

जन्मपत्री मानव के पूर्वजन्म के संचित कर्मों का मूर्तिमान् रूप है, अथवा यो कह सकते हैं कि यह पूर्व जन्म के कर्मों को जानने की कुंजी है। जिस प्रकार विशाल वट वृक्ष का समावेश उस के बीज में है, उसी प्रकार प्रत्येक व्यक्ति के पूर्व जन्म-जन्मान्तरो के कृतकर्म जन्मपत्री में अंकित हैं। जो आस्तिक हैं, आत्मा को नित्य पदार्थ स्वीकार करते हैं, वे इस बात को मानने से इनकार नही कर सकते कि संचित एवं प्रारब्ध कर्मों के फल को मनुष्य अपनी जीवन-नौका में बैठकर क्रियमाणरूपी पतवार के द्वारा हेर-फेर करते हुए उपभोग करता है। अतएव जन्मपत्री से मानव के भाग्य का ज्ञान किया जाता है। यहाँ इतना स्मरण सदा रखना होगा कि क्रियमाण कर्मों के द्वारा पूर्वोपार्जित अदृष्ट में हीनाधिकता भी की जा सकती है। यह पहले भी कहा गया है कि ज्योतिष का प्रधान उपयोग अपने अदृष्ट को ज्ञात कर उस में सुधार करना है। यदि हम अपने भाग्य को पहले से जान जायें तो सजग हो उस भाग्य को उलट भी सकते हैं। परन्तु जो तीव्र अदृष्ट का उदय होता है, वह टाला नही जा सकता, उस का फल अवश्य भोगना पडता है। अतएव जो आज साधारण जनता में मिथ्या विश्वास फैला हुआ है कि ज्योतिष में अमुक व्यक्ति का भाग्य अमुक प्रकार का बताया गया है, अतएव अमुक व्यक्ति अमुक प्रकार का होगा ही, यह ग़लत है। यदि क्रियमाण का पलडा भारी हो गया तो संचित अदृष्ट अपना फल देने में असमर्थ रहेगा। हाँ, क्रियमाण यथार्थ रूप में सम्पन्न न किया जाये तो पूर्वोपार्जित अदृष्ट का फल भोगना ही पडता है, इसलिए जन्मपत्री में ज्योतिषी-द्वारा जिस प्रकार का फलादेश बतलाया जाता है, वह ठीक घट भी सकता है और अन्यथा भी हो सकता है। फिर भी जीवन को उन्नति-

शील बनाने एवं क्रियमाण-द्वारा अपने भविष्य को सुधारने के लिए ज्योतिष ज्ञान की आवश्यकता है। जन्मपत्री के फलादेश को अवगत करने के लिए प्रथम ग्रह और उन के सम्बन्ध में निम्न आवश्यक बातें जान लेना चाहिए। भाव, राशि और ग्रह की स्थिति को देख कर फल का वर्णन करना एवं ग्रहों का स्वरूप ज्ञात कर उन के सम्बन्ध में फल अवगत करना चाहिए।

सूर्य—पूर्व दिशा का स्वामी, पुरुष, रक्तवर्ण, पित्त प्रकृति और पाप ग्रह है। सूर्य, आत्मा, स्वभाव, आरोग्यता, राज्य और देवालय का सूचक तथा पितृकारक है। पिता के सम्बन्ध मे सूर्य से विचार किया जाता है। नेत्र, कलेजा, मेरुदण्ड और स्नायु आदि अवयवो पर इस का विशेष प्रभाव पडता है। यह लग्न से सप्तम स्थान में बली माना गया है। मकर से छह-राशि पर्यन्त चेष्टाबली है। इस से शारीरिक रोग, सिरदर्द, अपचन, क्षय, महाज्वर, अतिसार, मन्दाग्नि, नेत्रविकार, मानसिक रोग, उदासीनता, खेद, अपमान एवं कलह आदि का विचार किया जाता है।

चन्द्रमा—पश्चिमोत्तर दिशा का स्वामी, स्त्री, श्वेतवर्ण और जल-ग्रह है। वातश्लेष्मा इस की धातु और यह रक्त का स्वामी है। माता-पिता, चित्तवृत्ति, शारीरिक पुष्टि, राजानुग्रह, सम्पत्ति और चतुर्थ स्थान का कारक है। चतुर्थ स्थान में चन्द्रमा बली और मकर से छह राशि मे इस का चेष्टाबल होता है। इस से शारीरिक रोग, पाण्डुरोग, जलज तथा कफज रोग, पीनस, मूत्रकृच्छ्र, स्त्रीजन्य रोग, मानसिक रोग, व्यर्थ भ्रमण, उदर एवं मस्तिष्क का विचार किया जाता है। कृष्णपक्ष की षष्ठी से शुक्लपक्ष की दशमी तक क्षीण चन्द्रमा रहने के कारण पापग्रह और शुक्लपक्ष की दशमी से कृष्णपक्ष की पंचमी तक पूर्ण ज्योति रहने से शुभ ग्रह और बली माना जाता है। बली चन्द्रमा ही चतुर्थ भाव में अपना पूर्ण फल देता है।

मंगल—दक्षिण दिशा का स्वामी, पुरुष जाति, पित्त प्रकृति, रक्त-वर्ण और अग्नि तत्त्व है। यह स्वभावतः पाप ग्रह है, धैर्य तथा पराक्रम का स्वामी है। तीसरे और छठे स्थान में बली और द्वितीय स्थान में

निष्फल होता है। दशम स्थान में दिग्बली और चन्द्रमा के साथ रहने से चेष्टाबली होता है। यह भ्रातृ और भगिनी कारक है।

बुध—उत्तर दिशा का स्वामी, नपुंसक, त्रिदोप प्रकृति, श्यामवर्ण और पृथ्वी तत्त्व है। यह पाप ग्रहो के—सू० म० रा० के० श० के साथ रहने से अशुभ और शुभ ग्रहो—पूर्ण चन्द्रमा, गुरु शुक्र के साथ रहने से शुभ फलदायक होता है। यह ज्योतिष विद्या, चिकित्सा शास्त्र, शिल्प, कानून, वाणिज्य और चतुर्थ तथा दशम स्थान का कारक है। चतुर्थ स्थान में रहने से निष्फल होता है, इस से जिह्वा और तालु आदि उच्चारण के अवयवो का विचार किया जाता है। इस से वाणी, गुह्यरोग, संग्रहणी, बुद्धिभ्रम, मूक, आलस्य, वातरोग एवं श्वेतकुष्ठ आदि का विचार विशेष रूप से होता है।

गुरु—पूर्वोत्तर दिशा का स्वामी, पुरुष जाति, पीतवर्ण और आकाश तत्त्व है। यह लग्न में बली और चन्द्रमा के साथ रहने से चेष्टाबली होता है। यह चर्बी और कफ धातु की वृद्धि करने वाला है। इस से पुत्र, पौत्र, विद्या, गृह, गुल्म एवं सूजन (शोथ) आदि रोगो का विचार किया जाता है।

शुक्र—दक्षिण पूर्व का स्वामी, स्त्रीजाति, श्याम-गौर वर्ण एवं कार्य-कुशल है। इस ग्रह के प्रभाव से जातक का रग गेहुँआ होता है। छठे स्थान में यह निष्फल एव सातवें में अनिष्टकर होता है। यह जलग्रह है, इस लिए कफ, वीर्य आदि धातुओ का कारक माना गया है। मदनेच्छा, गानविद्या, काव्य, पुष्प, आभरण, नेत्र, वाहन, शय्या, स्त्री, कविता आदि का कारक है। दिन में जन्म होने से शुक्र से माता का विचार किया जाता है। सासारिक सुख का विचार इसी ग्रह से होता है।

शनि—पश्चिम दिशा का स्वामी, नपुंसक, वात-श्लेष्मिक प्रकृति, कृष्णवर्ण और वायुतत्त्व है। यह सप्तम स्थान में बली और वक्रीग्रह या चन्द्रमा के साथ रहने से चेष्टाबली होता है। इस से अँगरेजी विद्या का विचार किया जाता है। रात में जन्म होने पर शनि मातृ और पितृ कारक

होता है। इस से आयु, शारीरिक बल, उदारता, विपत्ति, योगाभ्यास, प्रभुता, ऐश्वर्य, मोक्ष, ख्याति, नौकरी एवं मूर्च्छादि रोगो का विचार किया जाता है।

राहु—दक्षिण दिशा का स्वामी, कृष्णवर्ण और क्रूर ग्रह है। जिस स्थान पर राहु रहता है, यह उस स्थान की उन्नति को रोकता है।

केतु—कृष्णवर्ण और क्रूर ग्रह है। इस से चर्मरोग, मातामह, हाथ-पाँव और क्षुधाजनित कष्ट आदि का विचार किया जाता है।

विशेष—यद्यपि वृहस्पति और शुक्र दोनो शुभ ग्रह हैं, पर शुक्र से सासारिक और व्यावहारिक सुखो का तथा वृहस्पति से पारलौकिक एवं आध्यात्मिक सुखो का विचार किया जाता है। शुक्र के प्रभाव से मनुष्य स्वार्थी और वृहस्पति के प्रभाव से परमार्थी होता है।

शनि और मंगल ये दोनो भी पाप ग्रह है, पर दोनो में अन्तर यही है कि शनि यद्यपि क्रूर ग्रह है, लेकिन उस का अन्तिम परिणाम सुखद होता है, यह दुर्भाग्य और यन्त्रणा के फेर मे डाल कर मनुष्य को शुद्ध बना देता है। परन्तु मंगल उत्तेजना देने वाला, उमग और तृष्णा से परिपूर्ण कर देने के कारण सर्वदा दु खदायक होता है। ग्रहो में सूर्य और चन्द्रमा राजा, वुध युवराज, मंगल सेनापति, शुक्र-गुरु मन्त्री एव शनि भृत्य है। सवल ग्रह जातक को अपने समान वनाता है।

ग्रहों के छह प्रकार के वल

स्थानवल, दिग्वल, कालवल, नैसर्गिकवल, चेष्टावल और दृग्वल ये छह प्रकार के वल है। यद्यपि पूर्व में ग्रहो के वलावल का विचार गणित प्रक्रिया-द्वारा किया जा चुका है, तथापि फलित ज्ञान के लिए इन वलों को जान लेना आवश्यक है।

स्थानवल—जो ग्रह उच्च, स्वगृही, मित्रगृही, मूल-त्रिकोणस्थ, स्व-नवांशस्थ अथवा द्रेष्काणस्थ होता है, वह स्थानवली कहलाता है।

चन्द्रमा शुक्र समराशि में और अन्य ग्रह विषमराशि में वली होते हैं।

दिग्वल—बुध और गुरु लग्न में रहने से, शुक्र और चन्द्रमा चतुर्थ में रहने से, शनि सप्तम में रहने से एवं सूर्य और मगल दशम स्थान में रहने से दिग्वली होते हैं। यत लग्न पूर्व, दशम दक्षिण, सप्तम पश्चिम और चतुर्थ भाव उत्तर दिशा में होते हैं। इसी कारण उन स्थानो में ग्रहो का रहना दिग्वल कहलाता है।

कालवल—रात में जन्म होने पर चन्द्र, शनि और मंगल तथा दिन में जन्म होने पर सूर्य, बुध और शुक्र कालवली होते हैं। मतान्तर से बुध को सर्वदा कालवली माना जाता है।

नैसर्गिकवल—शनि, मंगल, बुध, गुरु, शुक्र, चन्द्र और सूर्य उत्तरोत्तर वली होते हैं।

चेष्टावल—मकर से मिथुन पर्यन्त किसी राशि में रहने से सूर्य और चन्द्रमा तथा मगल, बुध, गुरु, शुक्र और शनि चन्द्रमा के साथ रहने से चेष्टा वली होते हैं।

दृग्वल—शुभ ग्रहो से दृष्ट ग्रह दृग्वली होते हैं।

वलवान् ग्रह अपने स्वभाव के अनुसार जिस भाव में रहता है, उस भाव का फल देता है। पाठको को राशिस्वभाव और ग्रहस्वभाव इन दोनो का समन्वय कर फल अवगत करना चाहिए।

ग्रहों की दृष्टि

सभी ग्रह अपने स्थान से तीसरे और दसवें भाव को एक चरण दृष्टि से, पाँचवें और नवें भाव को दो चरण दृष्टि से; चौथे और आठवें भाव को तीन चरण दृष्टि से एव सातवें भाव को पूर्ण दृष्टि से देखते हैं। किन्तु मगल चौथे और आठवें भाव को, गुरु पाँचवें और नवें भाव को एवं शनि तीसरे और दसवे भाव को भी पूर्ण दृष्टि से देखते हैं।

ग्रहों के उच्च और मूलत्रिकोण का विचार

सूर्य का मेष के १० अंश पर, चन्द्रमा का वृष के ३ अंश पर, मंगल का मकर के २८ अंश पर, बुध का कन्या के १५ अंश पर, बृहस्पति का कर्क के ५ अंश पर, शुक्र का मीन के २७ अंश पर और शनि का तुला के २० अंश पर परमोच्च होता है[1]। प्रत्येक ग्रह अपने स्थान से सप्तम राशि में इन्हीं अंशों पर नीच का होता है। राहु वृष राशि में उच्च और वृश्चिक राशि में नीच एवं केतु वृश्चिक राशि में उच्च और वृष राशि में नीच का होता है।

उच्चग्रह की अपेक्षा मूलत्रिकोण में ग्रहों का प्रभाव कम पड़ता है, लेकिन स्वक्षेत्री—अपनी राशि में रहने की अपेक्षा मूलत्रिकोण बली होता है। पहले लिखा गया है कि सूर्य सिंह में स्वक्षेत्री है—सिंह का स्वामी है, परन्तु सिंह के १ अंश से २० अंश तक सूर्य का मूलत्रिकोण[2] और २१ से ३० अंश तक स्वक्षेत्र कहलाता है। जैसे किसी का जन्मकालीन सूर्य सिंह के १५वें अंश पर है तो यह मूलत्रिकोण का कहलायेगा, यदि यही सूर्य २२वें अंश का होता तो स्वक्षेत्री कहलाता। चन्द्रमा का वृषराशि के ३ अंश तक परमोच्च है और इसी राशि के ४ अंश से ३० अंश तक मूलत्रिकोण है। मंगल का मेष के १८ अंश तक मूलत्रिकोण है, और इस से आगे स्वक्षेत्र है। बुध का कन्या के १५ अंश तक उच्च, १६ अंश से २० अंश तक मूलत्रिकोण और २१ से ३० अंश तक स्वक्षेत्र है। गुरु का धनराशि के १ अंश से १३ अंश तक मूलत्रिकोण और १४ से ३० अंश तक स्वगृह होता है। शुक्र का तुला के १ अंश से १० अंश तक मूलत्रिकोण और ११ से ३० अंश तक स्वक्षेत्र है। शनि-

---

१ अजवृषभमृगाङ्गनाकुलीरा झषवणिजौ च दिवाकरादितुङ्गाः।
दशशशिमनुयुक्तिथीन्द्रियांशैस्त्रिनवकविंशतिभिश्च तेऽस्तनीचाः॥
—बृहज्जातक राशिभेदाध्याय, श्लो० १३

२ वर्गोत्तमाश्चरगृहादिषु पूर्वमध्यपर्यन्तगाः शुभफला नवभागसंज्ञाः। सिंहो वृष प्रथमषष्ठहयाङ्गतौलिकुम्भास्त्रिकोणभवनानि भवन्ति सूर्यात्। बृह, श्लो० १४।

का कुम्भ के १ अश से २० अंश तक मूलत्रिकोण और २१ से ३० अंश तक स्वक्षेत्र हैं। राहु का वृष में उच्च, मेष में स्वगृह और कर्क में मूलत्रिकोण है।

द्वादश भावों—स्थानों का परिचय

जन्मकुण्डली के द्वादश भावो के नाम पहले लिखे गये है। यहाँ द्वादश भावो की सज्ञाएँ और उन से विचारणीय बातो का उल्लेख किया जाता है। केन्द्र १।४।७।१०, पणफर २।५।८।११, आपोक्लिम ३।६।९।१२, त्रिकोण ५।९, उपचय, ३।६।१०।११, चतुरस्र ४।८, मारक २।७, नेत्रत्रिक सज्ञक ६।८।१२ स्थान हैं।

प्रथम भाव के नाम—आत्मा, शरीर, लग्न, होरा, देह, वपु, कल्प, मूर्त्ति, अग, तनु, उदय, आद्य, प्रथम, केन्द्र, कण्टक और चतुष्टय हैं।

विचारणीय बातें—रूप, चिह्न, जाति, आयु, सुख, दु ख, विवेक, शील, मस्तिष्क, स्वभाव, आकृति आदि है। इस का कारक रवि है, इस में मिथुन, कन्या, तुला और कुम्भ राशियाँ बलवान् मानी जाती है। लग्नेश की स्थिति के बलाबलानुसार कार्यकुशलता, जातीय उन्नति-अवनति का ज्ञान किया जाता है।

द्वितीय भाव के नाम—पणफर, द्रव्य, स्व, वित्त, कोश, अर्थ, कुटुम्ब और धन हैं।

विचारणीय बातें—कुल, मित्र, आँख, कान, नाक, स्वर, सौन्दर्य, गान, प्रेम, सुखभोग, सत्यभाषण, सचित पूँजी (सोना, चाँदी, मणि, माणिक्य आदि), क्रय एव विक्रय आदि हैं।

तृतीय भाव के नाम—आपोक्लिम, उपचय, पराक्रम, सहज, भ्रातृ और दुश्चिक्य हैं।

विचारणीय बातें—नौकर-चाकर, सहोदर, पराक्रम, आभूषण, दास-कर्म, साहस, आयुष्य, शौर्य, धैर्य, दमा, खाँसी, क्षय, श्वास, गायन, योगाभ्यास आदि है।

चतुर्थ भाव के नाम—केन्द्र, कण्टक, सुख, पाताल, तुर्य, हिबुक, गृह, सुहृद्, वाहन, यान, अम्बु, बन्धु, नीर आदि हैं।

विचारणीय बातें—मातृ-पितृ सुख, गृह, ग्राम, चतुष्पद, मित्र, शान्ति, अन्तःकरण की स्थिति, मकान, सम्पत्ति, बाग-बगीचा, पेट के रोग, यकृत्, दया, औदार्य, परोपकार, कपट, छल एवं निधि है। इस स्थान में कर्क, मीन और मकर राशि का उत्तरार्ध बलवान् होता है। चन्द्रमा और बुध इस स्थान के कारक हैं। यह स्थान विशेषतः माता का है।

पंचम भाव के नाम—पंचम, सुत, तनूज, पणफर, त्रिकोण, बुद्धि, विद्या, आत्मज और वाणी हैं।

विचारणीय बातें—बुद्धि, प्रबन्ध, सन्तान, विद्या, विनय, नीति, व्यवस्था, देवभक्ति, मातुल-सुख, नौकरी छूटना, धन मिलने के उपाय, अनायास बहुत धन-प्राप्ति, जठराग्नि, गर्भाशय, हाथ का यश, मूत्रपिण्ड एवं बस्ती है। इस का कारक गुरु है।

षष्ठ भाव के नाम—आपोक्लिम, उपचय, त्रिक, शत्रु, रिपु, द्वेष, क्षत, वैरी, रोग और नष्ट हैं।

विचारणीय बातें—मामा की स्थिति, शत्रु, चिन्ता, शंका, जमींदारी रोग, पीड़ा, व्रणादिक, गुदास्थान एवं यश आदि हैं। इस के कारक शनि और मंगल हैं।

सप्तम भाव के नाम—केन्द्र, मदन, सौभाग्य, जामित्र और काम हैं।

विचारणीय बातें—स्त्री, मृत्यु, मदन-पीड़ा, स्वास्थ्य, कामचिन्ता, मैथुन, अंगविभाग, जननेन्द्रिय, विवाह, व्यापार, झगड़े एवं बवासीर रोग आदि हैं। इस में वृश्चिक राशि बलवान् होती है।

अष्टम भाव के नाम—पणफर, चतुरस्त्र, त्रिक, आयु, रन्ध्र और जीवन हैं।

विचारणीय बातें—व्याधि, आयु, जीवन, मरण, मृत्यु के कारण,

मानसिक चिन्ता, समुद्र-यात्रा, ऋण का होना, उतरना, लिंग, योनि, अण्ड-कोष आदि के रोग एवं संकट प्रभृति है। इस स्थान का कारक शनि है।

नवम भाव के नाम—धर्म, पुण्य, भाग्य और त्रिकोण हैं।

विचारणीय बातें—मानसिक वृत्ति, भाग्योदय, शील, विद्या, तप, धर्म, प्रवास, तीर्थयात्रा, पिता का सुख एवं दान आदि है। इस के कारक रवि और गुरु हैं।

दशम भाव के नाम—व्यापार, आस्पद, मान, आज्ञा, कर्म, व्योम, गगन, मध्य, केन्द्र, ख और नभ हैं।

विचारणीय बातें—राज्य, मान, प्रतिष्ठा, नौकरी, पिता, प्रभुता, व्यापार, अधिकार, ऐश्वर्य-भोग, कीर्तिलाभ एवं नेतृत्व आदि है। इस में मेष, सिंह, वृष, मकर का पूर्वार्द्ध एवं धन का उत्तरार्द्ध बलवान् होता है। इस के कारक रवि, बुध, गुरु एवं शनि हैं।

एकादश भाव के नाम—पणफर, उपचय, लाभ, उत्तम और आय हैं।

विचारणीय बातें—गज, अश्व, रत्न, मांगलिक कार्य, मोटर, पालकी सम्पत्ति एवं ऐश्वर्य आदि है। इस का कारक गुरु है।

द्वादश भाव के नाम—रिष्फ, व्यय, त्रिक, अन्तिम और प्रान्त्य है।

विचारणीय बातें—हानि, दान, व्यय, दण्ड, व्यसन एवं रोग आदि है। इस स्थान का कारक शनि है।

फल प्रतिपादन के लिए कतिपय नियम

जिस भाव में जो राशि हो, उस राशि का स्वामी ही उस भाव का स्वामी या भावेश कहलाता है। छठे, आठवें और बारहवें भाव के स्वामी जिन भावों—स्थानों में रहते हैं, अनिष्टकारक होते हैं। किसी भाव का स्वामी

स्वगृही हो तो उस स्थान का फल अच्छा होता है। ग्यारहवें भाव में सभी ग्रह शुभ फलदायक होते हैं। किसी भाव का स्वामी पापग्रह हो और वह लग्न से तृतीय स्थान में पड़े तो अच्छा होता है किन्तु जिस भाव का स्वामी शुभ ग्रह हो और वह तीसरे स्थान में पड़े तो मध्यम फल देता है। जिस भाव में शुभ ग्रह रहता है, उस भाव का फल उत्तम और जिस में पापग्रह रहता है, उस भाव के फल का ह्रास होता है।

१।४।५।७।९।१० स्थानों में शुभ ग्रहों का रहना शुभ है। ३।६।११ भावों में पाप ग्रहों का रहना शुभ है। जो भाव अपने स्वामी, शुक्र, बुध या गुरु-द्वारा युक्त अथवा दृष्ट हो एवं अन्य किसी ग्रह से युक्त और दृष्ट न हो तो वह शुभ फल देता है। जिस भाव का स्वामी शुभ ग्रह से युक्त अथवा दृष्ट हो अथवा जिस भाव में शुभ ग्रह बैठा हो या जिस भाव को शुभ ग्रह देखता हो उस भाव का शुभ फल होता है। जिस भाव का स्वामी पाप ग्रह से युक्त अथवा दृष्ट हो या पापग्रह बैठा हो तो उस भाव के फल का ह्रास होता है।

भावाधिपति मूलत्रिकोण, स्वक्षेत्रगत, मित्रगृही और उच्च का हो तो उस भाव का फल शुभ होता है।

किसी भाव के फल-प्रतिपादन में यह देखना आवश्यक है कि उस भाव का स्वामी किस भाव में बैठा है और किस भाव के स्वामी का किस भाव में बैठे रहने से क्या फल होता है। सूर्य, मंगल, शनि और राहु क्रम से अधिक-अधिक पाप ग्रह हैं। ये ग्रह अपनी—पाप ग्रहों की राशियों में रहने से विशेष पापी एवं शुभ की राशि, मित्र की राशि और अपने उच्च में रहने से अल्प पापी होते हैं। चन्द्रमा, बुध, शुक्र, केतु और गुरु ये क्रम से अधिक-अधिक शुभ ग्रह हैं। ये शुभ ग्रहों की राशियों में रहने से अधिक शुभ तथा पाप ग्रहों की राशियों में रहने से अल्प शुभ होते हैं। केतु फल विचार करने में प्रायः पाप ग्रह माना गया है। ८।१२ भावों में सभी ग्रह अनिष्टकारक होते हैं।

गुरु छठे भाव में शत्रुनाशक, शनि आठवें भाव में दीर्घायुकारक एव मगल दसवें स्थान में उत्तम भाग्यविधायक होता है। राहु, केतु और अष्टमेश जिस भाव में रहते हैं, उस भाव को विगाडते हैं, गुरु अकेला द्वितीय, पचम और सप्तम भाव में होता है तो धन, पुत्र और स्त्री के लिए सर्वदा अनिष्टकारक होता है। जिस भाव का जो ग्रह कारक माना गया है, यदि वह अकेला उस भाव में हो तो उस भाव को विगाडता है।

जन्मसमय मे मेषादि द्वादश राशियो मे नवग्रहो का फल

रवि—मेष राशि में रवि हो तो जातक आत्मवली, स्वाभिमानी, प्रतापी, चतुर, पित्तविकारी, युद्धप्रिय, साहसी, महत्त्वाकाक्षी, शूरवीर, गम्भीर, उदार, वृष में हो तो स्वाभिमानी, व्यवहारकुशल, शान्त, पापभीरु, मुखरोगी स्त्रीद्वेषी, मिथुन में हो तो विवेकी, विद्वान्, बुद्धिमान्, मधुरभाषी, नम्र, प्रेमी, धनवान्, ज्योतिषी, इतिहासप्रेमी, उदार, कर्क में हो तो कीर्तिमान्, लब्ध-प्रतिष्ठ, कार्यपरायण, चचल, साम्यवादी, परोपकारी, इतिहासज्ञ, कफरोगी, सिंह में हो तो योगाभ्यासी, सत्सगी, पुरुषार्थी, धैर्यशाली, तेजस्वी, उत्साही, गम्भीर, क्रोधी, वनविहारी, कन्या मे हो तो मन्दाग्निरोगी, शक्तिहीन, लेखन-कुशल, दुर्वल, व्यर्थवकवादी, तुला राशि में हो तो आत्मवलहीन, मन्दाग्निरोगी, परदेशाभिलापी, व्यभिचारी, मलीन, वृश्चिक में हो तो गुप्त उद्योगी, उदररोगी, लोकमान्य, क्रोधी, साहसी, लोभी, चिकित्सक, धन राशि में हो तो बुद्धिमान्, योगमार्गरत, विवेकी, धनी, आस्तिक, व्यवहारकुशल, दयालु, शान्त; मकर मे हो तो चचल, झगडालू, वहुभापी, दुराचारी, लोभी, कुम्भ मे हो तो स्थिरचित्त, कार्यदक्ष, क्रोधी, स्वार्थी एवं मीन में रवि हो तो ज्ञानी, विवेकी, योगी, प्रेमी, बुद्धिमान्, यशस्वी, व्यापारी और श्वसुर से लाभान्वित होता है।

चन्द्रमा—मेष में चन्द्रमा हो तो दृढशरीर, स्थिर सम्पत्तिवान्, शूर, वन्धुहीन, कामी, उतावला, जल-भीरु, वृष मे हो तो सुन्दर, प्रसन्नचित्त,

कामी, दानी, कन्या सन्ततिवान्, शान्त, कफरोगी, मिथुन में हो तो रति-कुशल, भोगी, मर्मज्ञ, विद्वान्, नेत्रचिकित्सक, कर्क में हो तो सन्ततिवान्, सम्पत्तिवाली, श्रेष्ठ बुद्धि, जलविहारी, कामी, कृतज्ञ, ज्योतिषी, उन्माद रोगी, सिंह में हो तो दृढदेही, दाँत तथा पेट का रोगी, मातृभक्त, अल्प-सन्ततिवान्, गम्भीर, दानी, कन्या राशि में हो तो सुन्दर, मधुरभाषी, सदाचारी, धीर, विद्वान्, सुखी, तुला राशि में हो तो दीर्घदेही, आस्तिक, अन्नदाता, धनवान्, जमीन्दार, परोपकारी, वृश्चिक राशि मे हो तो नास्तिक, लोभी, बन्धुहीन, परस्त्रीरत, धनु राशि में हो तो वक्ता, सुन्दर, शिल्पज्ञ, शत्रुविनाशक, मकर राशि मे हो तो प्रसिद्ध, धार्मिक, कवि, क्रोधी, लोभी, सगीतज्ञ; कुम्भ राशि मे हो तो उन्मत्त, सूक्ष्मदेही, मद्यपायी, आलसी, शिल्पी, दु खी एवं मीन राशि मे चन्द्रमा हो तो शिल्पकार, सुदेही, शास्त्रज्ञ, धार्मिक, अतिकामी और प्रसन्नमुख जातक होता है।

मंगल—मेष राशि में मंगल हो तो सत्यवक्ता, तेजस्वी, शूरवीर, नेता, साहसी, दानी, राजमान्य, लोकमान्य, धनवान्; वृष राशि में हो तो पुत्र-द्वेषी, प्रवासी, सुखहीन, पापी, लड़ाकू प्रकृति, वचक, मिथुन राशि में हो तो शिल्पकार, परदेशवासी, कार्यदक्ष, सुखी, जनहितैषी, कर्क में हो तो सुखाभिलाषी, दीन, सेवक, कृषक, रोगी, दुष्ट, सिंह राशि में हो तो शूर-वीर, सदाचारी, परोपकारी, कार्यनिपुण, स्नेहशील, कन्या राशि मे हो तो लोकमान्य, व्यवहारकुशल, पापभीरु, शिल्पज्ञ, सुखी, तुला राशि में हो तो प्रवासी, वक्ता, कामी, परधनहारी, वृश्चिक राशि में हो तो व्यापारी, चोरो का नेता, पातकी, शठ, दुराचारी, धनुराशि में हो तो कठोर, शठ, क्रूर, परिश्रमी, पराधीन, मकर राशि में हो तो ख्यातिप्राप्त, पराक्रमी, नेता, ऐश्वर्यशाली, सुखी, महत्त्वाकाक्षी; कुम्भ राशि मे हो तो आचारहीन, मत्सरवृत्ति, सट्टे से धननाशक, व्यसनी, लोभी एवं मीन राशि में मगल हो तो रोगी, प्रवासी, मान्त्रिक, बन्धु-द्वेषी, नास्तिक, हठी, धूर्त और वाचाल जातक होता है।

बुध—मेष राशि में बुध हो तो कृशदेही, चतुर, प्रेमी, नट, सत्यप्रिय, रतिप्रिय, लेखक, ऋणी, वृष में हो तो शास्त्रज्ञ, व्यायामप्रिय, धनवान्, गम्भीर, मधुरभाषी, विलासी, रतिशास्त्रज्ञ, मिथुन राशि में हो तो मधुरभाषी, शास्त्रज्ञ, लब्ध-प्रतिष्ठ, वक्ता, लेखक, अल्पसन्ततिवान्, विवेकी, सदाचारी, कर्क राशि में हो तो वाचाल, गवैया, स्त्रीरत, कामी, परदेशवासी, प्रसिद्ध कार्यकारी, परिश्रमी, सिंह राशि मे हो तो मिथ्याभाषी, कुकर्मी, ठग, कामुक, कन्या राशि में हो तो वक्ता, कवि, साहित्यिक, लेखक, सम्पादक, सुखी, तुला राशि में हो तो शिल्पज्ञ, चतुर, वक्ता, व्यापारदक्ष, आस्तिक, कुटुम्बवत्सल, उदार, वृश्चिक राशि में हो तो व्यसनी, दुराचारी, मूर्ख, ऋणी, भिक्षुक, धनु राशि में हो तो उदार, प्रसिद्ध, राजमान्य, विद्वान्, लेखक, सम्पादक, वक्ता, मकर राशि में हो तो कुलहीन, दुश्शील, मिथ्याभाषी, ऋणी, मूर्ख, डरपोक, कुम्भ राशि में हो तो कुटुम्बहीन, दुःखी, अल्पधनी एव मीन राशि मे हो तो सदाचारी, भाग्यवान्, प्रवास में सुखी, धन-सग्रही, कार्यदक्ष, मिष्ठभाषी, सहनशील, स्वाभिमानी जातक होता है।

गुरु—मेष राशि में गुरु हो तो वादी, वकील, ऐश्वर्यशाली, तेजस्वी, प्रसिद्ध, कीर्तिमान्, विजयी, वृष राशि में हो तो आस्तिक, पुष्ट शरीर, सदाचारी, धनवान्, चिकित्सक, विद्वान्, बुद्धिमान्, मिथुन में हो तो विज्ञान-विशारद, अनायास धन प्राप्त करने वाला, लोक-मान्य, लेखक, व्यवहार-कुशल, कर्क में हो तो सदाचारी, विद्वान्, सत्यवक्ता, महायशस्वी, साम्य-वादी, सुधारक, योगी, लोकमान्य, सुखी, धनी, नेता, सिंह में हो तो सभाचतुर, शत्रुजित्, धार्मिक, प्रेमी, कार्यकुशल, कन्या में हो तो सुखी, भोगी, विलासी, चित्रकला निपुण, चचल, तुला मे हो तो बुद्धिमान्, व्यापार-कुशल, कवि, लेखक, सम्पादक, बहुपुत्रवान्, सुखी, वृश्चिक में हो तो शास्त्रज्ञ, कार्यकुशल, राजमन्त्री, पुण्यात्मा, धनु राशि में हो तो धर्माचार्य, दम्भी, धूर्त, रतिप्रेमी, मकर में हो तो द्रव्यहीन, प्रवासी, व्यर्थ परिश्रमी,

चंचलचित्त, धूर्त, कुम्भ में हो तो डरपोक, प्रवासी, कपटी, रोगी एवं मीन में हो तो लेखक, शास्त्रज्ञ, राजमान्य, गर्वहीन, शान्त, दयालु, व्यवहार-कुशल, साहित्य-प्रेमी जातक होता है।

शुक्र—मेष में शुक्र हो तो विश्वासहीन, दुराचारी, परस्त्रीरत, झगडालू, वेश्यागामी, वृष में हो तो सुन्दर, ऐश्वर्यवान्, दानी, सात्त्विक, सदाचारी, परोपकारी, अनेक शास्त्रज्ञ, मिथुन में हो तो चित्रकलानिपुण, साहित्यिक, कवि, साहित्य-स्रष्टा, प्रेमी, सज्जन, लोकहितैषी, कर्क राशि में हो तो धार्मिक, ज्ञाता, सुन्दर, सुख और धन का इच्छुक, नीतिज्ञ, सिंह में हो तो अल्पसुखी, उपकारी, चिन्तातुर, शिल्पज्ञ, कन्या में हो तो सभापण्डित, अतिकामी, सुखी, भोगी, रोगी, वीर्यहीन, सट्टे-द्वारा धननाशक, तुला में हो तो प्रवासी, यशस्वी, कार्यदक्ष, विलासी, कलानिपुण, वृश्चिक में हो तो कुकर्मी, नास्तिक, क्रोधी, ऋणी, दरिद्री, गुह्य रोगी, स्त्रीद्वेषी, धनु में हो तो स्वोपार्जित द्रव्य-द्वारा पुण्य करने वाला, विद्वान्, सुन्दर, लोकमान्य, राजमान्य, सुखी, मकर में हो तो बलहीन, कृपण, हृदय-रोगी, दुःखी, मानी, कुम्भ में हो तो चिन्ताशील, रोग से सन्तप्त, धर्महीन, परस्त्रीरत, मलीन एवं मीनराशि में शुक्र हो तो शिल्पज्ञ, शान्त, धनी, कार्यदक्ष, कृषि-कर्म का मर्मज्ञ या जमीन्दार और जौहरी जातक होता है।

शनि—मेष राशि में शनि हो तो आत्मबलहीन, व्यसनी, निर्धन, दुराचारी, लम्पट, कृतघ्न, वृष में हो तो असत्यभाषी, द्रव्यहीन, मूर्ख, वचनहीन, मिथुन में हो तो कपटी, दुराचारी, पाखण्डी, निर्धनी, कामी, कर्क में हो तो बाल्यावस्था में दुःखी, मातृरहित, प्राज्ञ, उन्नतिशील, विद्वान्, सिंह में हो तो लेखक, अध्यापक, कार्यदक्ष, कन्या में हो तो बलवान्, मितभाषी, धनवान्, सम्पादक, लेखक, परोपकारी, निश्चितकार्यकर्त्ता, तुला में हो तो सुभाषी, नेता, यशस्वी, स्वाभिमानी, उन्नतिशील, वृश्चिक में हो तो स्त्रीहीन, क्रोधी, कठोर, हिंसक, लोभी, धनु में हो तो व्यवहारज्ञ, पुत्र की कीर्त्ति से प्रसिद्ध, सदाचारी, वृद्धावस्था में सुखी, मकर में हो तो मिथ्याभाषी, आस्तिक, परि-

श्रमी, भोगी, शिल्पकार, प्रवासी, कुम्भ में हो तो व्यसनी, नास्तिक, परीश्रमी एवं मीन में हो तो हतोत्साही, अविचारी, शिल्पकार जातक होता है।

राहु—मेष में राहु हो तो जातक पराक्रमहीन, आलसी, अविवेकी; वृष में हो तो सुखी, चंचल, कुरूप; मिथुन में हो तो योगाभ्यासी, गवैया, बलवान्, दीर्घायु, कर्क में हो तो उदार, रोगी, धनहीन, कपटी, पराजित, सिंह में हो तो चतुर, नीतिज्ञ, सत्पुरुष, विचारक, कन्या में हो तो लोकप्रिय, मधुरभाषी, कवि, लेखक, गवैया, तुला में हो तो अल्पायु, दन्तरोगी, मृतधनाधिकारी, कार्यकुशल, वृश्चिक में हो तो धूर्त, निर्धन, रोगी, धननाशक, धनु में राहु हो तो अल्पावस्था में सुखी, दत्तक जानेवाला, मित्रद्रोही, कुम्भ में राहु हो तो मितव्ययी, कुटुम्बहीन, दाँत का रोगी, विद्वान्, लेखक, मितभाषी एव मीन में राहु हो तो आस्तिक, कुलीन, शान्त, कलाप्रिय और दक्ष होता है।

केतु—मेष राशि में केतु हो तो चचल, बहुभाषी, सुखी, वृष में हो तो दु खी, निरुद्यमी, आलसी, वाचाल, मिथुन में हो तो वातविकारी, अल्प सन्तोषी, दाम्भिक, अल्पायु, क्रोधी, कर्क में हो तो वातविकारी, भूतप्रेत पीडित, दु:खी, सिंह में हो तो बहुभाषी, डरपोक, असहिष्णु, सर्प दशन का भय, कलाविज्ञ, कन्या में हो तो सदा रोगी, मूर्ख, मन्दाग्निरोगी, व्यर्थवादी, तुला में हो तो कुष्ठरोगी, कामी, क्रोधी, दु खी, वृश्चिक में हो तो क्रोधी, कुष्ठरोगी, धूर्त, वाचाल, निर्धन, व्यसनी, धनु में हो तो मिथ्यावादी, चचल, धूर्त, मकर में हो तो प्रवासी, परिश्रमशील, तेजस्वी, पराक्रमी, कुम्भ में हो तो कर्णरोगी, दु खी, भ्रमणशील, व्ययशील, साधारण धनी एव मीन में केतु हो तो कर्णरोगी, प्रवासी, चचल और कार्यपरायण जातक होता है।

द्वादश भावों में रहनेवाले नवग्रहों का फल

सूर्य—लग्न में सूर्य हो तो जातक स्वाभिमानी, क्रोधी, पित्त-वात-

रोगी, चंचल, प्रवासी, कृशदेही, उन्नत नासिका और विशाल ललाटवाला, शूरवीर, अस्थिर सम्पत्तिवाला एवं अल्पकेशी, द्वितीय में[1] हो तो मुखरोगी, सम्पत्तिवान्, भाग्यवान्, झगडालू, नेत्र-कर्ण-दन्तरोगी, राजभीरु एवं स्त्री के लिए कुटुम्बियो से झगडनेवाला, तृतीय में हो तो पराक्रमी, प्रतापशाली, राज्यमान्य, कवि, बन्धुहीन, लब्धप्रतिष्ठ एवं बलवान्, चतुर्थ में हो तो चिन्ताग्रस्त, परमसुन्दर, कठोर, पितृधननाशक, भाइयो से वैर करनेवाला, गुप्त विद्याप्रिय एव वाहनसुख हीन, पचम मे हो तो रोगी, अल्पसन्तिवान्, सदाचारी, बुद्धिमान्, दु खी, शीघ्र क्रोधी एवं वंचक, छठे स्थान में हो तो शत्रुनाशक, तेजस्वी, वीर्यवान्, मातुलकष्टकारक, बलवान्, श्रीमान्, न्यायवान्, निरोगी, सातवें स्थान में हो तो स्त्रीक्लेशकारक, स्वाभिमानी, कठोर, आत्मरत, राज्य से अपमानित एवं चिन्तायुक्त, आठवें भाव मे हो तो पित्तरोगी, चिन्तायुक्त, क्रोधी, धनी, सुखी और धैर्यहीन एव निर्बुद्धि, नवें भाग मे हो तो योगी, तपस्वी, सदाचारी, नेता, ज्योतिषी, साहसी, वाहनसुख युक्त एवं भृत्य सुख सहित, दशम स्थान में हो तो प्रतापी, व्यवसायकुशल, राजमान्य, लब्ध-प्रतिष्ठ, राजमन्त्री, उदार, ऐश्वर्यसम्पन्न एवं लोकमान्य, ग्यारहवें भाव में हो तो धनी; बलवान्, सुखी, स्वाभिमानी, मितभाषी, तपस्वी, योगी, सदाचारी, अल्पसन्तति एवं उदररोगी और बारहवें हो तो उदासीन, वाम-नेत्र तथा मस्तक रोगी, आलसी, परदेशवासी, मित्र-द्वेषी एवं कृशशरीर होता है।

चन्द्रमा—लग्न मे हो तो जातक बलवान्, ऐश्वर्यशाली, सुखी, अव्यवसायी, गान-वाद्यप्रिय एवं स्थूलशरीर, द्वितीय स्थान मे हो तो मधुरभाषी, सुन्दर, भोगी, परदेशवासी, सहनशील, शान्तिप्रिय एवं भाग्यवान्, तृतीय स्थान मे हो तो प्रसन्नचित्त, तपस्वी, आस्तिक, मधुरभाषी, कफरोगी एवं

---

१ भाव गणना लग्न से होती है—लग्न को प्रथम मान कर बाँयी ओर द्वितीयादि भावो की गणना की जाती है।

प्रेमी, चतुर्थ स्थान मे हो तो दानी, मानी, सुखी, उदार, रोगरहित, राग-द्वेष वर्जित, कृषक, विवाह के पश्चात् भाग्योदयी, जलजीवी एव बुद्धिमान्, पाँचवें स्थान में हो तो चंचल, कन्यासन्ततिवान्, सदाचारी, सट्टे से धन कमानेवाला एवं क्षमाशील, छठे स्थान में हो तो कफरोगी, अल्पायु, आसक्त, खर्चीले स्वभाववाला, नेत्ररोगी एव भृत्यप्रिय, सातवें स्थान मे हो तो सभ्य, धैर्यवान्, नेता, विचारक, प्रवासी, जलयात्रा करनेवाला, अभिमानी, व्यापारी, वकील, कीर्त्तिमान्, शीतलस्वभाववाला एव स्फूर्तिवान्, आठवें भाव में हो तो विकार-ग्रस्त, प्रमेहरोगी, कामी, व्यापार से लाभवाला, वाचाल, स्वाभिमानी, बन्धन से दु खो होनेवाला एव ईर्ष्यालु, नवें भाग मे हो तो सन्तति-सम्पत्ति युक्त, सुखी, धर्मात्मा, कार्यशील, प्रवासप्रिय, न्यायी, चचल, विद्वान्, विद्याप्रिय, साहसी एव अल्पभ्रातृवान्, दसवे भाव में हो तो कार्यकुशल, दयालु, निर्वल वुद्धि, व्यापारी, कार्यपरायण, सुखी, यशस्वी, विद्वान्, कुल-दीपक, सन्तोषी, लोकहितैषी, मानी, प्रसन्नचित्त एव दीर्घायु, ग्यारहवें भाव में हो तो चंचल वुद्धि, गुणी, सन्तति और सम्पत्ति से युक्त, सुखी, लोकप्रिय, यशस्वी, दीर्घायु, मन्त्रज्ञ, परदेशप्रिय और राज्यकार्यदक्ष एवं बारहवें भाव में चन्द्रमा हो तो नेत्ररोगी, चचल, कफरोगी, क्रोधी, एकान्तप्रिय, चिन्ताशील, मृदुभाषी एवं अधिक व्यय करनेवाला होता है।

मगल—लग्न में मंगल हो तो जातक क्रूर, साहसी, चपल, विचाररहित, महत्त्वाकांक्षी, गुप्तरोगी, लौह धातु एवं व्रणजन्य कष्ट से युक्त एवं व्यवसायहानि, द्वितीय स्थान में हो तो कटुभाषी, धनहीन, निर्बुद्धि, पशुपालक, कुटुम्ब क्लेशवाला, चोर से भक्ति, धर्मप्रेमी, नेत्र-कर्ण रोगी तथा कटु-तिक्तरस प्रिय, तृतीय भाव में हो तो प्रसिद्ध, शूरवीर, धैर्यवान्, साहसी, सर्वगुणी, बन्धुहीन, बलवान्, प्रदीप्त जठराग्निवाला, भ्रातृकष्टकारक एवं कटुभाषी, चतुर्थ में मगल हो तो वाहन सुखी, सन्ततिवान्, मातृसुखहीन, प्रवासी, अग्निभय युक्त, अल्पमृत्यु या अपमृत्यु प्राप्त करने वाला,

कृषक, बन्धुविरोधी एवं लाभयुक्त, पाँचवें भाव में हो तो उग्रबुद्धि, कपटी, व्यसनी, रोगी, उदररोगी, कृशशरीरी, गुप्तागरोगी, चंचल, बुद्धिमान् एवं सन्तति-क्लेश युक्त, छठे भाव में हो तो प्रबल जठराग्नि, बलवान्, धैर्यशाली, कुलवन्त, प्रचण्ड शक्ति, शत्रुहन्ता, ऋणी, पुलिस अफसर, दाद रोगी, क्रोधी, व्रण और रक्तविकार युक्त एव अधिक व्यय करनेवाला; सातवें स्थान में हो तो स्त्री-दुखी, वातरोगी, राजभीरु, शीघ्र कोपी, कटुभाषी, धूर्त, मूर्ख, निर्धन, घातकी, धननाशक एवं ईर्ष्यालु, आठवें भाव में हो तो व्याधिग्रस्त, व्यसनी, मद्यपायी, कठोरभाषी, उन्मत्त, नेत्र-रोगी, शस्त्रचोर, अग्निभीरु, संकोची, रक्तविकारयुक्त एव धनचिन्ता युक्त, नौवें भाव में हो तो द्वेषी, अभिमानी, क्रोधी, नेता, अधिकारी, ईर्ष्यालु, अल्प लाभ करनेवाला, यशस्वी, असन्तुष्ट एव भ्रातृविरोधी, दसवें भाव मे हो तो धनवान्, कुलदीपक, सुखी, यशस्वी, उत्तम वाहनो से सुखी, स्वाभिमानी एवं सन्तति कष्टवाला, ग्यारहवें भाव में हो तो कटुभाषी, दम्भी, झगडालू, क्रोधी, लाभ करनेवाला, साहसी, प्रवासी, न्यायवान् एवं धैर्यवान् और बारहवें भाव में मंगल हो तो नेत्र रोगी, स्त्रीनाशक, उग्र, ऋणी, झगडालू, मूर्ख, व्ययशील एवं नीच प्रकृति का पापी होता है।

बुध—लग्न मे बुध हो तो जातक दीर्घायु, आस्तिक, गणितज्ञ, विनोदी, उदार, वैद्य, विद्वान्, स्त्री-प्रिय, मिष्टभाषी एव मितव्ययी, द्वितीय में हो तो वक्ता, सुन्दर, सुखी, गुणी, मिष्टान्नभोजी, दलाल या वकील का पेशा करनेवाला, मितव्ययी, सग्रही, सत्कार्यकारक एव साहसी, तीसरे भाव में हो तो कार्यदक्ष, परिश्रमी, भीरु, लेखक, सामुद्रिकशास्त्र का ज्ञाता, सम्पादक, कवि, सन्ततिवान्, विलासी, अल्प भ्रातृवान्, चचल, व्यवसायी, यात्राशील, धर्मात्मा, मित्रप्रेमी एवं सद्‌गुणी, चतुर्थ में हो तो पण्डित, भाग्यवान्, वाहन-सुखी, दानी, स्थूलदेही, आलसी, गीतप्रिय, उदार, बन्धुप्रेमी, विद्वान्, लेखक, नीतिज्ञ एव नीतिवान्, पंचम में हो तो प्रसन्न, कुशाग्रबुद्धि, गण्यमान्य, सुखी, सदाचारी, वाद्यप्रिय, कवि, विद्वान् एव उद्यमी, छठे

स्थान में हो तो विवेकी, वादी, कलहप्रिय, आलसी, रोगी, अभिमानी, परिश्रमी दुर्बल, कामी एवं स्त्री-प्रिय, सातवें भाव में हो तो सुन्दर, विद्वान्, कुलीन, व्यवसायकुशल, धनी, लेखक, सम्पादक, उदार, सुखी, धार्मिक, अल्प-वीर्य, दीर्घायु; अष्टम भाव में हो तो दीर्घायु, लब्धप्रतिष्ठ, अभिमानी, कृपक, राजमान्य, मानसिक दुःखी, कवि, वक्ता, न्यायाधीश, मनस्वी, धनवान् एव धर्मात्मा, नवम भाव में हो तो सदाचारी, कवि, गवैया, सम्पादक, लेखक, ज्योतिषी, विद्वान्, धर्मभीरु, व्यवसायप्रिय एवं भाग्यवान्, दसवें भाव मे हो तो सत्यवादी, विद्वान्, लोकमान्य, मनस्वी, व्यवहारकुशल, कवि, लेखक, न्यायी, भाग्यवान्, राजमान्य, मातृ-पितृ-भक्त एवं जमीदार, ग्यारहवें भाव में हो तो दीर्घायु, योगी, सदाचारी, धनवान्, प्रसिद्ध, विद्वान्, गायनप्रिय, सरदार, ईमानदार, सुन्दर, पुत्रवान्, विचारवान् एव शत्रुनाशक और बारहवें भाव में बुध हो तो विद्वान्, आलसी, अल्पभाषी, शास्त्रज्ञ, लेखक, वेदान्ती, सुन्दर, वकील एवं धर्मात्मा होता है।

गुरु—लग्न में गुरु हो तो जातक ज्योतिषी, दीर्घायु, कार्यपरायण, विद्वान्, कार्यकर्ता, तेजस्वी, स्पष्टवक्ता, स्वाभिमानी, सुन्दर, सुखी, विनीत, धनी, पुत्रवान्, राजमान्य एव धर्मात्मा, द्वितीय भाव में हो तो सुन्दर शरीरी, मधुरभाषी, सम्पत्ति और सन्ततिवान्, राजमान्य, लोकमान्य, सुकार्यरत, सदाचारी, पुण्यात्मा, भाग्यवान्, शत्रुनाशक, दीर्घायु एव व्यवसायी, तृतीय भाव में हो तो जितेन्द्रिय, मन्दाग्नि, शास्त्रज्ञ, लेखक, प्रवासी, योगी, आस्तिक, ऐश्वर्यवान्, कामी, स्त्रीप्रिय, व्यवसायी, विदेश-प्रिय, पर्यटनशील एव वाहनयुक्त; चतुर्थ मे हो तो भोगी, सुन्दरदेही, कार्य-रत, उद्योगी, ज्योतिर्विद्, सन्तानरोधक, राजमान्य, लोकमान्य, मातृ-पितृभक्त, यशस्वी एवं व्यवहारज्ञ, पाँचवें भाव में हो तो आस्तिक, ज्यो-तिषी, लोकप्रिय, कुलश्रेष्ठ, सट्टे से धन प्राप्त करने वाला, सन्ततिवान् एवं नीतिविशारद; छठे भाव मे हो तो मधुरभाषी, ज्योतिषी, विवेकी, प्रसिद्ध, विद्वान्, सुकर्मरत, दुर्बल, उदार, लोकमान्य, निरोगी एव प्रतापी, सातवें

भाव में हो तो भाग्यवान्, विद्वान्, वक्ता, प्रधान, नम्र, ज्योतिषी, धैर्यवान्, प्रवासी, सुन्दर, स्त्रीप्रेमी एवं परस्त्रीरत; आठवें भाव में हो तो दीर्घायु, शीलसम्पन्न, सुखी, शान्त, मधुरभाषी, विवेकी, ग्रन्थकार, कुलदीपक, ज्योतिषप्रेमी, लोभी, गुप्तरोगी एव मित्रों-द्वारा धननाशक; नौवे भाव में हो तो तपस्वी, यशस्वी, भक्त, योगी, वेदान्ती, भाग्यवान्, विद्वान्, राजपूज्य, पराक्रमी, बुद्धिमान्, पुत्रवान् एवं धर्मात्मा, दसवें भाव में हो तो सत्कर्मी, सदाचारी, पुण्यात्मा, ऐश्वर्यवान्, साधु, चतुर, न्यायी, प्रसन्न, ज्योतिषी, सत्यवादी, शत्रुहन्ता, राजमान्य, स्वतन्त्र विचारक, मातृ-पितृभक्त, लाभवान्, धनी एवं भाग्यवान्, ग्यारहवें भाव में हो तो सुन्दर, निरोगी, लाभवान्, व्यवसायी, धनिक, सन्तोषी, अल्पसन्ततिवान्, राजपूज्य, विद्वान्, बहुस्त्रीयुक्त, सद्व्ययी और पराक्रमी एव द्वादश भाव में गुरु हो तो आलसी, मितभाषी, सुखी, मितव्ययी, योगाभ्यासी, परोपकारी, उदार, शास्त्रज्ञ, सम्पादक, सदाचारी, लोभी, यात्री एव दुष्ट चित्तवाला होता है। गुरु के सम्बन्ध में इतना विशेष है कि २।५।७।११ भाव में अकेला गुरु हानिकारक होता है अर्थात् उन भावों को नष्ट करता है।

शुक्र—लग्न मे शुक्र हो तो जातक दीर्घायु, सुन्दरदेही, ऐश्वर्यवान्, सुखी, मधुरभाषी, प्रवासी, विद्वान्, भोगी, विलासी, कामी एवं राजप्रिय; द्वितीय भाव में हो तो धनवान्, मिष्टान्नभोजी, यशस्वी, लोकप्रिय, जौहरी, सुखी, समयज्ञ, कुटुम्बयुक्त, कवि, दीर्घजीवी, साहसी एवं भाग्यवान्, तृतीय भाव मे हो तो सुखी, धनी, कृपण, आलसी, चित्रकार, पराक्रमी, विद्वान्, भाग्यवान्, एवं पर्यटनशील, चतुर्थ भाव में हो तो सुन्दर, बलवान्, परोपकारी, आस्तिक, सुखी, व्यवहारदक्ष, विलासी, भाग्यवान्, पुत्रवान् एवं दीर्घायु, पाँचवें भाव में हो तो सुखी, भोगी, सद्गुणी, न्यायवान्, आस्तिक, दानी, उदार, विद्वान्, प्रतिभाशाली, वक्ता, कवि, पुत्रवान्, लाभयुक्त, व्यवसायी एव शत्रुनाशक, छठे भाव में हो तो स्त्रीसुखहीन, बहुमित्रवान्, दुराचारी, मूत्ररोगी, वैभवहीन, दुखी, गुप्तरोगी, स्त्रीप्रिय, शत्रुनाशक

एव मितव्ययी, सातवें भाव में हो तो स्त्री से सुखी, उदार, लोकप्रिय, धनिक, चिन्तित, विवाह के बाद भाग्योदयी, साधुप्रेमी, कामी, अल्प-व्यभिचारी, चचल, विलासी, गानप्रिय एव भाग्यवान्, आठवें भाव में हो तो विदेशवासी, निर्दयी, रोगी, क्रोधी, ज्योतिषी, मनस्वी, दुःखी, गुप्तरोगी, पर्यटनशील एवं परस्त्रीरत; नौवें भाव में हो तो आस्तिक, गुणी, गृहसुखी, प्रेमी, दयालु, पवित्र तीर्थयात्राओं का कर्त्ता, राजप्रिय एवं धर्मात्मा, दसवें भाव में हो तो विलासी, ऐश्वर्यवान्, न्यायवान्, ज्योतिषी, विजयी, लोभी, धार्मिक, गानप्रिय, भाग्यवान्, गुणवान् एवं दयालु, ग्यारवें भाव में शुक्र हो तो विलासी, वाहनसुखी, स्थिरलक्ष्मीवान्, लोकप्रिय, परोपकारी, जौहरी, धनवान्, गुणज्ञ, कामी एव पुत्रवान् और बारहवें भाव में शुक्र हो तो न्यायशील, आलसी, पतित, धातुविकारी, स्थूल, परस्त्रीरत, बहुभोजी, धनवान्, मितव्ययी एव शत्रुनाशक होता है।

शनि—लग्न में शनि मकर तथा तुला का हो तो धनाढ्य, सुखी, अन्य राशियों का हो तो दरिद्री, द्वितीय भाव में हो तो मुखरोगी, साधु-द्वेषी, कटु-भाषी और कुम्भ या तुला का शनि हो तो धनी, कुटुम्ब तथा भ्रातृ-वियोगी, लाभवान्, तृतीय भाव में हो तो निरोगी, योगी, विद्वान्, शीघ्र कार्यकर्त्ता, मल्ल, सभाचतुर, विवेकी, शत्रुहन्ता, भाग्यवान् एव चचल, चतुर्थ में हो तो बलहीन, अपयशी, कृशदेही, शीघ्रकोपी, कपटी, धूर्त, भाग्यवान्, वातपित्तयुक्त एव उदासीन, पाँचवें भाव में हो तो वातरोगी, भ्रमणशील, विद्वान्, उदासीन, सन्तानयुक्त, आलसी एव चंचल, छठे भाव में हो तो शत्रुहन्ता, भोगी, कवि, योगी, कण्ठरोगी, श्वासरोगी, जाति-विरोधी, व्रणी, बलवान् एव आचारहीन, सातवें भाव में हो तो क्रोधी, धन-सुखहीन, भ्रमण-शील, नीच कर्मरत, आलसी, स्त्रीभक्त, विलासी एव कामी, आठवें भाव में हो तो कपटी, वाचाल, कुष्टरोगी, डरपोक, धूर्त, गुप्तरोगी, विद्वान् स्थूल-शरीरी एवं उदार प्रकृति, नवें भाव में हो तो रोगी, वातरोगी, भ्रमणशील, वाचाल, कृशदेही, प्रवासी, भीरु, धर्मात्मा, साहसी, भ्रातृहीन एवं शत्रुनाशक,

दसवें भाव मे हो तो नेता, न्यायी, विद्वान्, ज्योतिषी, राजयोगी, अधिकारी, चतुर महत्त्वाकांक्षी, निरुद्योगी, परिश्रमी, भाग्यवान्, उदरविकार, राजमान्य एवं धनवान्, ग्यारहवें भाव में हो तो दीर्घायु, क्रोधी, चंचल, शिल्पी, सुखी, योगाभ्यासी, नीतिवान्, परिश्रमी, व्यवसायी, विद्वान्, पुत्रहीन, कन्याप्रज, रोगहीन एवं बलवान् और बारहवें भाव में हो तो अपस्मार, उन्माद का रोगी, व्यर्थ व्यय करने वाला, व्यसनी, दुष्ट, कटुभाषी, अविश्वासी, मातुलकष्टदायक एवं आलसी होता है।

राहु—लग्न मे राहु हो तो जातक दुष्ट, मस्तक रोगी, स्वार्थी, राजद्वेषी, नीचकर्मरत, मनस्वी, दुर्बल, कामी एवं अल्पसन्ततियुक्त; द्वितीय भाव में हो तो परदेशगामी, अल्प सन्तति, कुटुम्बहीन, कठोरभाषी, अल्प धनवान्, संग्रहशील एवं मात्सर्ययुक्त, तृतीय भाव में हो तो योगाभ्यासी, पराक्रमशून्य, दृढविवेकी, अरिष्टनाशक, प्रवासी, बलवान्, विद्वान् एवं व्यवसायी, चतुर्थ भाव मे राहु हो तो असन्तोषी, दु खी, मातृक्लेश युक्त, क्रूर, कपटी, उदरव्याधियुक्त, मिथ्याचारी एव अल्पभाषी, पाँचवें भाव में राहु हो तो उदररोगी, मतिमन्द, धनहीन, कुलधननाशक, भाग्यवान्, कार्यकर्ता एवं शास्त्रप्रिय, छठे भाव मे हो तो विधर्मियों-द्वारा लाभ, निरोगी, शत्रुहन्ता, कमरदर्द पीड़ित, अरिष्टनिवारक, पराक्रमी एव बडे-बडे कार्य करने वाला; सातवें भाव में हो तो स्त्रीनाशक, व्यापार से हानिदायक, भ्रमणशील, वातरोगजनक, दुष्कर्मी, चतुर, लोभी एवं दुराचारी, आठवें भाव मे हो तो पुष्टदेही, गुप्तरोगी, क्रोधी, व्यर्थभाषी, मूर्ख, उदररोगी एवं कामी, नौवें भाव में हो तो प्रवासी, वातरोगी, व्यर्थ परिश्रमी, तीर्थाटनशील, भाग्योदय से रहित, धर्मात्मा एव दुष्टबुद्धि, दसवें भाव मे हो तो आलसी, वाचाल, अनियमित कार्यकर्त्ता, मितव्ययी, सन्ततिक्लेशी तथा चन्द्रमा से युक्त राहु के होने पर राजयोग कारक, ग्यारहवें भाव मे हो तो मन्दमति, लाभहीन, परिश्रमी, अल्पसन्ततियुक्त, अरिष्टनाशक, व्यवसाययुक्त, कदाचित् लाभदायक एवं कार्य सफल करने वाला और बारहवें भाव में हो तो

विवेकहीन, मतिमन्द, मूर्ख, परिश्रमी, सेवक, व्ययी, चिन्ताशील एवं कामी होता है।

केतु—लग्न में केतु हो तो चंचल, भीरु, दुराचारी, मूर्ख तथा वृश्चिक राशि में हो तो सुखकारक, धनी, परिश्रमी; द्वितीय में हो तो राजभीरु, विरोधी एव मुखरोगी, तृतीय स्थान में हो तो चचल, वातरोगी, व्यर्थवादी, भूत-प्रेतभक्त; चतुर्थ में हो तो चचल, वाचाल, कार्यहीन, निरुत्साही एव निरुपयोगी, पाँचवें स्थान में हो तो कुवुद्धि, कुचाली, वातरोगी, छठे भाव में हो तो वात-विकारी, झगडालू, भूत-प्रेतजनित रोगो से रोगी, मितव्ययी, सुखी एव अरिष्टनिवारक, सातवें भाव में हो तो मतिमन्द, मूर्ख, शत्रुभीरु एव सुखहीन, आठवें भाव में हो तो दुर्बुद्धि, तेजहीन, दुष्टजनसेवी, स्त्रीद्वेषी एवं चालाक, नौवें भाव में हो तो सुखाभिलाषी, व्यर्थ परिश्रमी, अपयशी, दसवें भाव में हो तो पितृद्वेषी, दुर्भागी, मूर्ख, व्यर्थ परिश्रमशील एव अभिमानी, ग्यारहवें भाव में हो तो बुद्धिहीन, निज का हानिकर्त्ता, वातरोगी एव अरिष्टनाशक और बारहवें भाव में हो तो चचल बुद्धि, धूर्त, ठग, अविश्वासी एवं जनता को भूत-प्रेतो की जानकारी-द्वारा ठगने वाला होता है।

उच्च राशिगत ग्रहो का फल

रवि उच्च राशि में हो तो धनवान्, विद्वान्, सेनापति, भाग्यवान् एव नेता, चन्द्रमा हो तो माननीय, मिष्टान्नभोजी, विलासी, अलकारप्रिय एव चपल; मगल हो तो शूरवीर, कर्त्तव्यपरायण एव राजमान्य, बुध हो तो राजा, बुद्धिमान्, लेखक, सम्पादक, राजमान्य, सुखी, वंशवृद्धिकारक एव शत्रुनाशक, गुरु हो तो सुशील, चतुर, विद्वान्, राजप्रिय, ऐश्वर्यवान्, मन्त्री, शासक एव सुखी, शुक्र हो तो विलासी, गीत-वाद्यप्रिय कामी एवं भाग्यवान्, शनि हो तो राजा, जमीन्दार, भूमिपति, कृषक

एवं लब्ध-प्रतिष्ठ; राहु हो तो सरदार, धनवान्, शूरवीर एव लम्पट और केतु हो तो राजप्रिय, सरदार एवं नीच प्रकृति का जातक होता है।

मूल-त्रिकोण राशि मे गये हुए ग्रहो का फल

रवि मूल त्रिकोण में हो तो जातक धनी, पूज्य एव लब्ध-प्रतिष्ठ, चन्द्र हो तो धनवान, सुखी, सुन्दर एवं भाग्यवान्, मगल हो तो क्रोधी, निर्दयी, दुष्ट, चरित्रहीन, स्वार्थी, साधारण धनी, लम्पट एव नीचो का सरदार; बुध हो तो धनवान्, राजमान्य, महत्त्वाकाक्षी, सैनिक, डॉक्टर, व्यवसायकुशल, प्रोफेसर एव विद्वान्, गुरु हो तो तपस्वी, भोगी, राजप्रिय एव कीर्तिवान्, शुक्र हो तो जागीरदार, पुरस्कारविजेता एव कामिनीप्रिय, शनि हो तो शूरवीर, सैनिक, उच्च सेना अफसर, जहाज चालक, वैज्ञानिक अस्त्र-शस्त्रो का निर्माता एव कर्त्तव्यपरायण और राहु हो तो धनी, लुब्धक एवं वाचाल होता है।

स्वक्षेत्रगत ग्रहो का फल

रवि स्वगृही—अपनी ही राशि में—हो तो सुन्दर, व्यभिचारी, कामी एव ऐश्वर्यवान्, चन्द्रमा हो तो तेजस्वी, रूपवान्, धनवान् एव भाग्यवान्, मंगल हो तो बलवान्, ख्यातिप्राप्त, कृषक एवं जमीन्दार, बुध हो तो विद्वान्, शास्त्रज्ञ, लेखक एव सम्पादक, गुरु हो तो काव्य-रसिक, वैद्य एव शास्त्रविशारद; शुक्र हो तो स्वतन्त्र प्रकृति, धनी एव विचारक, शनि हो तो पराक्रमी, कष्टसहिष्णु एव उग्र प्रकृति और राहु हो तो सुन्दर, यशस्वी एवं भाग्यवान् जातक होता है।

एक स्वगृही हो तो जातक अपनी जाति में श्रेष्ठ, दो हो तो कर्त्तव्य-शील, धनवान्, पूज्य, तीन हो तो राजमन्त्री, धनिक, विद्वान्, चार हो तो श्रीमन्त, सम्मान्य, सरदार, नेता एवं पाँच हो तो राजतुल्य राज्याधिकारी होता है।

मित्रक्षेत्रगत ग्रहों का फल

सूर्य—मित्र की राशि में हो तो जातक यशस्वी, दानी, व्यवहारकुशल; चन्द्र हो तो सुखी, धनवान्, गुणज्ञ, मगल हो तो मित्र-प्रिय, धनिक, बुध हो तो शास्त्रज्ञ विनोदी, कार्यदक्ष; गुरु हो तो उन्नतिशील, बुद्धिमान्, शुक्र हो तो पुत्रवान्, सुखी एव शनि हो तो परान्नभोजी, धनवान्, सुखी और प्रेमिल होता है।

एक ग्रह मित्रक्षेत्री हो तो दूसरे के द्रव्य का उपयोगकर्त्ता, दो हों तो मित्र के द्रव्य का उपभोक्ता, तीन हो तो स्वोपार्जित धन का उपभोक्ता, चार हो तो दाता, पाँच हो तो सेनानायक, सरदार नेता, छह हो तो सर्वोच्च नेता, सेनापति, राजमान्य, उच्च पदासीन एव सात हो तो जातक राजा या राजा के तुल्य होता है।

शत्रुक्षेत्रगत ग्रहो का फल

रवि शत्रुक्षेत्री—शत्रुग्रह की राशि में हो तो जातक दुखी, नौकरी करने वाला, चन्द्रमा हो ता माता से दुखी, हृद्रोगी, मगल हो तो विकलागी, व्याकुल, दीन-मलीन, बुध हो तो वासनायुक्त, साधारणत सुखी, कर्त्तव्यहीन, गुरु हो तो भाग्यवान्, चतुर, शुक्र हो तो नौकर, दासवृत्ति करने वाला और शनि हो तो दु.खी होता है।

नीचराशिगत ग्रहो का फल

सूर्य नीच राशि में हो तो जातक पापी, बन्धुसेवा करने वाला, चन्द्रमा हो तो रोगी, अल्प धनवान् और नीच प्रकृति; मगल हो तो नीच, कृतघ्न, बुध हो तो बन्धुविरोधी, चचल, उग्र प्रकृति, गुरु हो तो खल, अपवादी, अपयशभागी, शुक्र हो तो दुखी और शनि हो तो दरिद्री, दुखी होता है।

तीन ग्रह नीच के हों तो जातक मूर्ख, तीन ग्रह अस्तंगत हो तो दास और तीन ग्रह शत्रुराशि गत हों तो दु:खी तथा जीवन के अन्तिम भाग में सुखी होता है।

नवग्रहों की दृष्टि का फल

सूर्य—प्रथम भाव को सूर्य पूर्ण दृष्टि से देखता हो तो जातक रजोगुणी, नेत्ररोगी, सामान्य धनी, साधुसेवी, मन्त्रज्ञ, वेदान्ती, पितृभक्त, राजमान्य और चिकित्सक, द्वितीय भाव को पूर्ण दृष्टि से देखता हो तो धन तथा कुटुम्ब से सामान्य सुखी, नेत्ररोगी, पशु व्यवसायी, सञ्चित धननाशक, परिश्रम से थोड़े धन का लाभ करने वाला और कष्टसहिष्णु, तृतीय भाव को पूर्ण दृष्टि से देखता हो तो कुलीन, राजमान्य, बड़े भाई के सुख से रहित, उद्यमी, शासक, नेता और पराक्रमी, चतुर्थ भाव को पूर्ण दृष्टि से देखता हो तो २२-२३ वर्ष पर्यन्त सुखहानि प्राप्त करने वाला, सामान्यत: मातृसुखी, २२ वर्ष की आयु के पश्चात् वाहनादि सुखों को प्राप्त करने वाला और स्वाभिमानी, पञ्चम भाव को पूर्ण दृष्टि से देखता हो तो प्रथम सन्तान नाशक, पुत्र के लिए चिन्तित, मन्त्रशास्त्रज्ञ, विद्वान्, सेवावृत्ति और २०-२१ वर्ष की अवस्था में सन्तान प्राप्त करने वाला; छठें भाव को पूर्ण दृष्टि से देखता हो तो शत्रुभयकारक, दु:खी, वामनेत्ररोगी, ऋणी और मातुल को नष्ट करने वाला, सातवें भाव को पूर्ण दृष्टि से देखता हो तो जीवन-भर ऋणी, २२-२३ वर्ष की आयु में स्त्रीनाशक, व्यापारी, उग्र स्वभाव वाला और प्रारम्भ में दु:खी तथा अन्तिम जीवन में सुखी, आठवें भाव को देखता हो तो बवासीर रोगी, व्यभिचारी, मिथ्याभाषी, पाखण्डी और निन्दित कार्य करने वाला, नौवें भाव को पूर्ण दृष्टि से देखता हो तो धर्मभीरु, बड़े भाई और साले के सुख से रहित, दसवें भाव को पूर्ण दृष्टि से देखता हो तो राजमान्य, धनी, मातृनाशक तथा उच्च राशि का सूर्य हो तो माता, वाहन और धन का पूर्ण सुख प्राप्त करने वाला; ग्यारहवें भाव को

पूर्ण दृष्टि से देखता हो तो धन लाभ करने वाला, प्रसिद्ध व्यापारी, प्रथम सन्ताननाशक, बुद्धिमान्, विद्वान्, कुलीन और धर्मात्मा एवं बारहवें भाव को पूर्ण दृष्टि से देखता हो तो प्रवासी, नेत्ररोगी, कान या नाक पर तिल या मस्से का चिह्न धारक, शुभ कार्यों में व्यय करने वाला, मामा को कष्टकारक एव सवारी का शौकीन होता है।

चन्द्रमा—लग्न को चन्द्रमा पूर्ण दृष्टि से देखता हो तो जातक प्रवासी, व्यवसायी, भाग्यवान्, शौकीन, कृपण और स्त्रीप्रेमी, द्वितीय भाव को पूर्ण दृष्टि से देखता हो तो अधिक सन्तति वाला, सामान्य सुखी, ८-१० वर्ष की अवस्था में शारीरिक कष्ट युक्त, धन हानिकारक, जल में डूबने की आशका-वाला और चोट, घाव, खरौंच आदि के दु ख को प्राप्त करने वाला, तृतीय भाव को पूर्ण दृष्टि से देखता हो तो धार्मिक, प्रवासी, अधिक बहन तथा कम भाई वाला, २४ वर्ष की अवस्था से पराक्रमी, सत्सगति प्रिय और मिलनसार, चतुर्थ भाव को पूर्ण दृष्टि से देखता हो तो २४ वर्ष की अवस्था से सुखी होने वाला, राजमान्य, कृषक, वाहनादि सुख का धारक और मातृ-सेवी, पचम भाव को पूर्ण दृष्टि से देखता हो तो व्यवहारकुशल, बुद्धिमान्, प्रथम पुत्र सन्तान प्राप्त करने वाला और कलाप्रिय, षष्ठभाव को पूर्ण दृष्टि से देखता हो तो शान्त, रोगी, शत्रुओं से कष्ट पाने वाला, गुप्त रोगों से आक्रान्त, व्यय अधिक करने वाला और २४ वर्ष की अवस्था में जल से हानि प्राप्त करने वाला, सप्तम भाव को पूर्ण दृष्टि से देखता हो तो सुन्दर, सुखी, सुन्दर स्त्री प्राप्त करने वाला, सत्यवादी, व्यापार से धन सचित करने वाला और कृपण, अष्टम भाव को पूर्ण दृष्टि से देखता हो तो पितृधन नाशक, कुटुम्बविरोधी, नेत्ररोगी और लम्पट, नवम भाव को पूर्ण दृष्टि से देखता हो तो, धर्मात्मा, भाग्यशाली, भ्रातृहीन और बुद्धिमान्, दशम भाव को पूर्ण दृष्टि से देखता हो तो पशु-व्यवसायी, धर्मान्तर में दीक्षित होने वाला, पितृ-विरोधी और चिडचिडे स्वभाव का; एकादश भाव को पूर्ण दृष्टि से देखता हो तो लाभ प्राप्त करने वाला, कुशल व्यवसायी, अधिक कन्या सन्तति वाला

और मित्रप्रेमी एवं द्वादश भाव को पूर्ण दृष्टि से देखता हो तो शत्रु-द्वारा धन खर्च करने वाला, चिन्तायुक्त, राजमान्य एवं अन्तिम जीवन में सुखी होता है।

भौम—लग्न भाव को मंगल पूर्ण दृष्टि से देखता हो तो उग्र प्रकृति, प्रथम भार्या का २१ या २८ वर्ष की अवस्था में नाश करने वाला, राजमान्य और भूमि से धन प्राप्त करने वाला, द्वितीय भाव को पूर्ण दृष्टि से देखता हो तो बवासीर रोगी, स्वल्पधनी, कुटुम्ब से पृथक् रहने वाला, परिश्रमी और खिन्न चित्त रहने वाला, तीसरे भाव को पूर्ण दृष्टिसे देखता हो तो बडे भाई के सुख से रहित, पराक्रमी, भाग्यवान् और एक विधवा बहन वाला, चौथे भाव को पूर्ण दृष्टि से देखता हो तो माता-पिता के सुख से रहित, शारीरिक कष्ट-धारक, २८ वर्ष की अवस्था तक दु खी पश्चात् सुखी और परिश्रम से जी चुराने वाला; पाँचवें भाव को पूर्ण दृष्टि से देखता हो तो अनेक भाषाओं का ज्ञाता, विद्वान्, सन्तान कष्टवाला, उपदंश रोगी और व्यभिचारी, छठे भाव को पूर्ण दृष्टि से देखता हो तो शत्रुनाशक, मातुल कष्टकारक, रुधिर विकारी और कीर्त्तिवान्; सातवें भाव को पूर्ण दृष्टि से देखता हो तो परस्त्रीरत, कामी, प्रथम भार्या का २१ या २८ वर्ष की आयु में वियोगजन्य दु ख प्राप्त करने वाला, और मद्यपायी; आठवें भाव को पूर्ण दृष्टिसे देखता हो तो धन कुटुम्ब नाशक, ऋण ग्रस्त, परिश्रमी, दु खी और भाग्यहीन; नवें भाव को पूर्ण दृष्टि से देखता हो तो बुद्धिमान्, धनवान्, पराक्रमी और धर्म में अरुचि रखने वाला; दसवें भाव को पूर्ण दृष्टि से देखता हो तो राज्यसेवी, मातृ-पितृ कष्टकारक, सुखी और भाग्यवान्; ग्यारहवें भाव को पूर्ण दृष्टिसे देखता हो तो धनवान्, सन्तानकष्ट से पीडित और कुटुम्ब के दु ख से दु.खी एव बारहवें भाव को पूर्ण दृष्टि से देखता हो तो कुमार्गगामी, मातुलनाशक, बवासीर और भगन्दर रोगी, शत्रुनाशक और उग्रप्रकृति होता है।

बुध—लग्नभाव को बुध पूर्ण दृष्टि से देखता हो तो जातक गणितज्ञ, सुन्दर, व्यापारी, व्यवहारकुशल, मिलनसार और लब्धप्रतिष्ठ, द्वितीय

भाव को पूर्ण दृष्टि से देखता हो तो व्यापार से धन लाभ करने वाला, कुटुम्ब-विरोधी, स्वतन्त्र विचारक, हठी और अभिमानी; तीसरे भाव को पूर्ण दृष्टि से देखता हो तो भाग्यवान्, प्रवासी, भ्रातृसुख युक्त, सत्संगी और धार्मिक, चौथे भाव को पूर्ण दृष्टि से देखता हो तो राज्य से लाभ प्राप्त करने वाला, भूमि तथा वाहन के सुख से परिपूर्ण, श्रेष्ठ बुद्धि वाला और विद्वान्, पाँचवें भाव को पूर्ण दृष्टि से देखता हो तो गुणवान्, विद्वान्, धनवान्, शिल्पकार और प्रथम पुत्र उत्पन्न करने वाला, छठे भाव को पूर्ण दृष्टि से देखता हो तो वातरोगी, कुमार्गव्ययी, शत्रुओं से पीड़ित और अन्तिम जीवन में धन सञ्चय करने वाला, सातवें भाव को पूर्ण दृष्टि से देखता हो तो सुन्दर, सुशीला भार्यावाला, व्यापारी, गणितज्ञ, चतुर और कार्यदक्ष, आठवें भाव को पूर्ण दृष्टि से देखता हो तो भ्रमणशील, दुःखी, कुटुम्बविरोधी एवं प्रवासी, नौवें भाव को पूर्ण दृष्टि से देखता हो तो हँसमुख, धनोपार्जन करने वाला, भ्रातृद्वेषी, राजाओं से मिलने वाला, गायनप्रिय और विलासी, दसवें भाव को पूर्ण दृष्टि से देखता हो तो राजमान्य, कीर्तिमान्, सुखी, कुलीन और कुलदीपक, ग्यारहवें भाव को पूर्ण दृष्टि से देखता हो तो धनार्जन करने वाला, सन्तान से युक्त, विद्वान् और कलाविशारद एवं बारहवें भाव को पूर्ण दृष्टि से देखता हो तो मिथ्याभाषी, कुलकलंकी, मद्य-पायी, नीच प्रकृति और व्यसनी होता है।

गुरु—लग्नभाव को बृहस्पति पूर्ण दृष्टि से देखता हो तो जातक धर्मात्मा, कीर्तिवान्, कुलीन, विद्वान् और पतिव्रता—शुभाचरण वाली स्त्री का पति, दूसरे भाव को पूर्ण दृष्टि से देखता हो तो पितृ-धन नाशक, धनार्जन करने-वाला, कुटुम्बी, मित्रवर्ग में श्रेष्ठ और राजमान्य, तीसरे भाव को पूर्ण दृष्टि से देखता हो तो भाग्यवान्, पराक्रमी, भ्रातृ-सुखयुक्त, प्रवासी और शुभा-चरण करने वाला, चौथे भाव को पूर्ण दृष्टि से देखता हो तो श्रेष्ठ विद्या-व्यसनी, भूमिपति, वाहन-सुखयुक्त और माता-पिता के पूर्ण सुख को प्राप्त करने वाला, पाँचवें भाव को पूर्ण दृष्टि से देखता हो तो धनिक, ऐश्वर्यवान्,

विद्वान्, व्याख्याता, पाँच पुत्र वाला और कलाप्रिय, छठे भाव को पूर्ण दृष्टि से देखता हो तो व्याधिग्रस्त, धन नष्ट करने वाला, क्रोधी और धूर्त, सातवें भाव को पूर्ण दृष्टि से देखता हो तो सुन्दर, धनवान्, कीर्तिवान् और भाग्यशाली, आठवें भाव को पूर्ण दृष्टि से देखता हो तो राजभय, चिन्तित, आठ वर्ष की अवस्था में मृत्यु तुल्य कष्ट भोगने वाला और २६ वर्ष की आयु में कारागारजन्य कष्ट पाने वाला, नवें भाव को पूर्ण दृष्टि से देखता हो तो कुलीन, भाग्यवान्, शास्त्रज्ञ, धर्मात्मा, स्वतन्त्र, सन्तानयुक्त, दानी और व्रतोपवास करने वाला, दसवें भाव को पूर्ण दृष्टि से देखता हो तो राजमान्य, सुखी, धन-पुत्रादि से युक्त, भूमिपति और ऐश्वर्यवान्, ग्यारहवें भाव को पूर्ण दृष्टि से देखता हो तो बुद्धिमान्, पाँच पुत्रो का पिता, विद्वान्, कलाप्रिय, स्नेही और ७० वर्ष की अवस्था से अधिक जीवित रहने वाला एवं बारहवें भाव को पूर्ण दृष्टि से देखता हो तो रजोगुणी, दु खी, धन खर्च करने वाला और निर्बुद्धि होता है।

शुक्र—लग्नस्थान को शुक्र पूर्ण दृष्टि से देखता हो तो जातक सुन्दर, शौकीन, परस्त्रीरत, भाग्यशाली और चतुर; दूसरे भाव को पूर्ण दृष्टि से देखता हो तो धन तथा कुटुम्ब से सुखी, धनार्जन करने वाला, परिश्रमी और विलासी, तीसरे भाव को पूर्ण दृष्टि से देखता हो तो शासक, अधिक भाई-बहन वाला, अल्पवीर्य और २५ वर्ष की आयु में भाग्योदय को प्राप्त होने वाला; चौथे भाव को पूर्ण दृष्टि से देखता हो तो सुखी, सुन्दर, समाजसेवी, भाग्यशाली, आज्ञाकारी और राजसेवी, पाँचवें भाव को पूर्ण दृष्टि से देखता हो तो विद्वान्, धनी, एक कन्या तथा तीन या पाँच पुत्रो का पिता, प्रेमी और बुद्धिमान्, छठे भाव को पूर्ण दृष्टि से देखता हो तो पराक्रमी, शत्रुनाशक, कुमार्गगामी, वीर्यविकारी, श्वेत कुष्ठयुक्त और वाचाल, सातवें भाव को पूर्ण दृष्टि से देखता हो तो कामी, व्यभिचारी, लम्पट, सुन्दर भार्या को प्राप्त करने वाला और २५ वर्ष की अवस्था से स्वाधीन जीवन व्यतीत करने वाला, आठवें भाव को पूर्ण दृष्टि से देखता हो तो प्रमेह रोगी, दु खी,

निर्धन, कुटुम्बरहित, साधु-सेवारत और कफ तथा वात रोग से पीडित; नौवें भाव को पूर्ण दृष्टि से देखता हो तो कुलदीपक, ग्रामाधिपति, शत्रुजयी, धर्मात्मा, कीर्त्तिवान् और विलक्षण; दसवें भाव को पूर्ण दृष्टि से देखता हो तो भाग्यशाली, धनी, प्रवासी, राजसेवी और भूमिपति, ग्यारहवें भाव को पूर्ण दृष्टि से देखता हो तो नाना प्रकार से लाभ करने वाला, नेता, प्रमुख, परस्त्रीरत और कवि एवं बारहवें भाव को पूर्ण दृष्टि से देखता हो तो वीर्य-रोगी, विवाहादि कार्यों में व्यय करने वाला, शत्रुओं से पीडित, चिन्तित और स्त्री-द्वेषी जातक होता है।

शनि—लग्नस्थान को शनि पूर्ण दृष्टि से देखता हो तो जातक श्याम वर्णवाला, नीच स्त्रीरत, स्वस्त्री से विमुख और लम्पट; दूसरे भाव को पूर्ण दृष्टि से देखता हो तो ३६ वर्ष की अवस्था तक धननाशक, कुटुम्ब-विरोधी, १९ वर्ष की अवस्था में शारीरिक कष्ट प्राप्त करने वाला और नाना रोगों का शिकार, तीसरे भाव को पूर्ण दृष्टि से देखे तो पराक्रमी, अधार्मिक, भाइयों के सुख से रहित, नीच संगतिप्रिय और बुरे कार्य करने वाला, चौथे भाव को पूर्ण दृष्टि से देखे तो प्रथम वर्ष में शारीरिक कष्ट पाने वाला, राजमान्य, ३५ या ३६ वर्ष की अवस्था में राज्याधिकार में वृद्धि प्राप्त करने वाला और लब्धप्रतिष्ठ, पाँचवें भाव को पूर्ण दृष्टि से देखता हो तो सन्तानहानि, नीच-विद्या-विशारद, नीचजनप्रिय और नीचकार्यरत, छठे भाव को पूर्ण दृष्टि से देखता हो तो शत्रुनाशक, मातुलकष्टकारक, नेत्ररोगी, प्रमेह रोगी, धर्म से विमुख और कुमार्गरत, सातवें भाव को पूर्ण दृष्टि से देखता हो तो कलह-प्रिय, ३६ वर्ष की अवस्था में मृत्युतुल्य कष्ट पाने वाला, धननाशक और मलीन स्वभाव वाला, आठवें भाव को पूर्ण दृष्टि से देखता हो तो कुटुम्ब-विरोधी, राज्यहानिवाला, पिता के धन का ३६ वर्ष की आयु तक नाश करने वाला और रोगी, नौवें भाव को देखता हो तो देशाटन करने वाला, भाइयों से विरोध करने वाला, प्रवासी, धन प्राप्त करने वाला, नीच कर्म-रत, पराक्रमी, धर्महीन और निन्दक, दसवें भाव को पूर्ण दृष्टि से देखता

हो तो पिता के सुख से रहित, माता के लिए कष्टकारक, भूमिपति, राज्य-मान्य और सुखी, ग्यारहवें भाव को पूर्ण दृष्टि से देखता हो तो वृद्धावस्था में पुत्र का सुख पाने वाला, नाना भाषाओं का ज्ञाता और साधारण व्यापार में लाभ प्राप्त करने वाला एवं बारहवें भाव को पूर्ण दृष्टि से देखता हो तो अशुभ कार्यों में धन खर्च करने वाला, मातुल को कष्टदायक, शत्रुनाशक और सामान्य लाभ करने वाला होता है।

राहु—लग्नभाव को राहु पूर्ण दृष्टि से देखता हो तो शारीरिक रोगी, वातविकारी, उग्रस्वभाववाला, खिन्न चित्त वाला, उद्योगरहित और अधार्मिक, दूसरे भाव को पूर्ण दृष्टि से देखता हो तो कुटुम्ब-सुखहीन, धननाशक, पत्थर की चोट से दुःखी होने वाला और चंचल प्रकृति, तीसरे भाव को पूर्ण दृष्टि से देखता हो तो पराक्रमी, पुरुषार्थी और पुत्रसन्तान-रहित, चौथे भाव को पूर्ण दृष्टि से देखता हो तो उदररोगी, मलीन और साधारण सुखी; पाँचवें भाव को पूर्ण दृष्टि से देखता हो तो भाग्यशाली, धनी, व्यवहार-कुशल और सन्तानसुखी, छठे भाव को पूर्ण दृष्टि से देखता हो तो शत्रु-नाशक, वीर, गुदा स्थान में फोडों के दुःख से पीडित, व्ययशील, नेत्र पर खरोंच के निशान वाला, पराक्रमी और बलवान्, सातवें भाव को पूर्ण दृष्टि से देखता हो तो धनी, विषयी, कामी और नीच-संगतिप्रिय, आठवें भाव को पूर्ण दृष्टि से देखता हो तो पराधीन, धननाशक, कण्ठरोग से पीडित, धर्म-हीन, नीचकर्मरत और कुटुम्ब से पृथक् रहने वाला, नवें भाव को पूर्ण दृष्टि से देखता हो तो बडे भाई के सुख से रहित, ऐश्वर्यवान्, भोगी, पराक्रमी और सन्ततिवान्, दसवें भाव को पूर्ण दृष्टि से देखता हो तो मातृ-सुखहीन, पितृकष्टकारक, राजमान्य और उद्योगशील, ग्यारहवें भाव को पूर्ण दृष्टि से देखता हो तो सन्ततिकष्ट से पीडित, नीच-कर्मरत और अल्पलाभ कराने वाला एवं बारहवें भाव को पूर्ण दृष्टि से देखता हो तो गुप्तरोगी, शत्रुनाशक, कुमार्ग मे धन व्यय करने वाला और दरिद्री होता है। केतु की दृष्टि का फल राहु के समान है।

ग्रहों की युति का फल

रवि-चन्द्र एक स्थान पर हो तो जातक लोहा पत्थर का व्यापारी, शिल्पकार, वास्तु एवं मूर्तिकला का मर्मज्ञ, रवि-मंगल एक साथ हों तो शूरवीर यशस्वी, मिथ्याभाषी, परिश्रमी एवं अध्यवसायी, रवि-बुध हों तो मधुरभाषी, विद्वान्, ऐश्वर्यवान्, भाग्यशाली, कलाकार, लेखक, संशोधक एव विचारक, रवि-गुरु एक साथ हो तो आस्तिक, उपदेशक, राजमान्य एवं ज्ञानवान्, रवि-शुक्र एक साथ हो तो चित्रकार, नेत्ररोगी, विलासी, कामक एवं अविचारक, रवि-शनि एक साथ हों तो अल्पवीर्य, धातुओं का ज्ञाता, आस्तिक, चन्द्र-मंगल एक साथ हो तो विजयी, कुशल वक्ता, धीर, शूरवीर, कलाकुशल एवं साहसी, चन्द्र-बुध एक साथ हो तो धर्म-प्रेमी, विद्वान्, मनोज्ञ, निर्मल बुद्धि एवं संशोधक, चन्द्र-गुरु एक साथ हों तो शील सम्पन्न, प्रेमी, धार्मिक, सदाचारी एवं सेवावृत्तिवाला, चन्द्र-शुक्र एक साथ हो तो व्यापारी, सुखी, भोगी एवं धनी, चन्द्र-शनि एक साथ हों तो शीलहीन, धनहीन, मूर्ख एवं वञ्चक, मंगल-बुध एक साथ हों तो धनिक, वक्ता, वैद्य, शिल्पज्ञ एवं शास्त्रज्ञ, मंगल-गुरु एक साथ हो तो गणित, शिल्पज्ञ, विद्वान् एवं वाद्यप्रिय, मंगल-शुक्र एक साथ हो तो व्यापार कुशल, धातुसंशोधक, योगाभ्यासी, कार्यपरायण एव विमान-चालक, मंगल-शनि एक साथ हो तो कपटी, धूर्त, जादूगर, ढोंगी एव अविश्वासी, बुध-गुरु एक साथ हों तो वक्ता, पण्डित, सभाचतुर, प्रख्यात, कवि, काव्य स्रष्टा एवं संशोधक, बुध-शुक्र एक साथ हो तो मन्त्री, विलासी, सुखी, राजमान्य, रतिप्रिय एव शासक, बुध-शनि एक साथ हो तो कवि, वक्ता, सभापण्डित, व्याख्याता एवं कलाकार, गुरु-शुक्र एक साथ हो तो भोक्ता, सुखी, बलवान्, चतुर एवं नीतिवान्, गुरु-शनि एक साथ हो तो लोकमान्य, कार्यदक्ष, धनाढ्य, यशस्वी, कीर्तिवान् एवं आदरपात्र और शुक्र-शनि एक साथ हो तो चित्रकार, मल्ल, पशुपालक, शिल्पी, रोगी,

वीर्यविकारी एवं अल्पधनी जातक होता है।

तीन ग्रहों की युति का फल

रवि-चन्द्र-मंगल एक साथ हो तो जातक शूरवीर, धीर, ज्ञानी, बली, वैज्ञानिक, शिल्पी एवं कार्यदक्ष; रवि-चन्द्र-बुध एक साथ हो तो तेजस्वी, विद्वान्, शास्त्रप्रेमी, राजमान्य, भाग्यशाली एवं नीतिविशारद; रवि-चन्द्र-गुरु एक साथ हों तो योगी, ज्ञानी, मर्मज्ञ, सौम्यवृत्ति, सुखी, स्नेही, विचारक, कुशल कार्यकर्ता एवं आस्तिक; रवि-चन्द्र-शुक्र एक साथ हो तो हीनवीर्य, व्यापारी, सुखी, निस्सन्तान या अल्पसन्तान, लोभी एवं साधारण धनी; रवि-चन्द्र-शनि एक साथ हो तो अज्ञानी, धूर्त, वाचाल, पाखण्डी, अविवेकी, चंचल एवं अविश्वासी; रवि-मंगल-बुध एक साथ हो तो साहसी, निष्ठुर, ऐश्वर्यहीन, तामसी, अविवेकी, अहंकारी एवं व्यर्थ बकवादी; रवि-मंगल-गुरु एक साथ हो तो राजमान्य, सत्यवादी, तेजस्वी, धनिक, प्रभावशाली एवं ईमानदार; रवि-मंगल-शुक्र एक साथ हों तो कुलीन, कठोर, वैभवशाली, नेत्ररोगी एवं प्रवीण; रवि-मंगल-शनि एक साथ हो तो धन-जनहीन, दुःखी, लोभी एवं अपमानित होनेवाला, रवि-बुध-गुरु एक साथ हों तो विद्वान्, चतुर, शिल्पी, लेखक, कवि, शास्त्र-रचयिता, नेत्ररोगी, वातरोगी एवं ऐश्वर्यवान्; रवि-बुध-शुक्र एक साथ हों तो दुःखी, वाचाल, भ्रमणशील, द्वेषी एवं घृणित कार्य करनेवाला; रवि-बुध-शनि एक साथ हो तो कलहप्रिय, कुटिल, धननाशक, छोटी अवस्था में सुन्दर, पर ३६ वर्ष की अवस्था में विकृतदेही एवं नीचकर्मरत; रवि-गुरु-शुक्र एक साथ हो तो परोपकारी, सज्जन, राजमान्य, नेत्रविकारी, लब्धप्रतिष्ठ एवं सफल कार्य संचालक; रवि-गुरु-शनि एक साथ हो तो चरित्रहीन, दुःखी, शत्रुपीड़ित, उद्विग्न, कुष्ठरोगी एवं नीच संगति प्रिय, रवि-शुक्र-शनि एक साथ हो तो दुश्चरित्र, नीचकार्यरत, घृणित रोग से पीड़ित एवं लोक-तिरस्कृत; चन्द्र-मंगल-बुध एक साथ हों तो कठोर, पापी,

धूर्त, क्रूर एवं दुष्टस्वभाव वाला; चन्द्र-बुध-गुरु एक साथ हों तो धनी, सुखी, प्रसन्नचित्त, तेजस्वी, वाक्पटु एवं कार्यकुशल, चन्द्र-बुध-शुक्र एक साथ हो तो धन-लोभी, ईर्ष्यालु, आचारहीन, दाम्भिक, मायावी और धूर्त, चन्द्र-बुध-शनि एक साथ हो तो अशान्त, प्राज्ञ, वचनपटु, राजमान्य एवं कार्यपरायण, चन्द्र-गुरु-शुक्र एक साथ हो तो सुखी, सदाचारी, धनी, ऐश्वर्यवान्, नेता, कर्त्तव्यशील एव कुशाग्रबुद्धि, चन्द्र-गुरु-शनि एक साथ हों तो नीतिवान्, नेता, सुबुद्धि, शास्त्रज्ञ, व्यवसायी, अध्यापक एव वकील, चन्द्र-शुक्र-शनि एक साथ हो तो लेखक, शिक्षक, सुकर्मरत, ज्योतिषी, सम्पादक, व्यवसायी एव परिश्रमी; मंगल-बुध-गुरु एक साथ हो तो कवि, श्रेष्ठ पुरुष, गायन-निपुण, स्त्रीसुख से युक्त, परोपकारी, उन्नतिशील, महत्त्वाकांक्षी एवं जीवन में बडे-बडे कार्य करने वाला, मगल-बुध-शुक्र एक साथ हों तो कुलहीन, विकलांगी, चपल, परोपकारी एव जल्दबाज, मगल-बुध-शनि एक साथ हों तो व्यसनी, प्रवासी, मुखरोगी एवं कर्त्तव्यच्युत, मंगल-गुरु-शुक्र एक साथ हो तो राजमित्र, विलासी, सुपुत्रवान्, ऐश्वर्यवान्, सुखी एव व्यवसायी, मगल-गुरु-शनि एक साथ हों तो पूर्ण ऐश्वर्यवान्, सम्पन्न, सदाचारी, सुखी एव अन्तिम जीवन में महान् कार्य करने वाला और गुरु-शुक्र-शनि एक साथ हों तो शीलवान्, कुलदीपक, शासक, उच्चपदाधिकारी, नवीन कार्य सस्थापक एवं आश्रयदाता होता है।

चार ग्रहों की युति का फल

रवि-चन्द्र-मंगल-बुध एक साथ हो तो जातक लेखक, मोही, रोगी, कार्यकुशल एव चतुर; रवि-चन्द्र-मंगल-गुरु एक साथ हों तो भूपति, धनी, नीतिज्ञ एव सरदार, रवि-चन्द्र-मंगल-शुक्र एक साथ हो तो धनी, तेजस्वी, नीतिमान्, कार्यदक्ष, विनोदी एवं गुणज्ञ, रवि-चन्द्र-मगल-शनि एक साथ हो तो नेत्ररोगी, शिल्पकार, स्वर्णकार, धनी, धैर्यवान् एवं शास्त्रज्ञ, रवि-चन्द्र-बुध-गुरु एक साथ हो तो सुखी, सदाचारी, प्रख्यात, पण्डित एवं

मध्यम वित्तवाला, रवि-चन्द्र-बुध-शुक्र एक साथ हो तो आलसी, स्वल्प-धनी, दुखी, विद्वान्, मनोज्ञ एव क्षीण शक्ति; रवि-चन्द्र-बुध-शनि एक साथ हों तो विकलदेही, वाक्पटु, शीलवान्, चंचल, कार्यकुशल एवं यन्त्रज्ञ, रवि-चन्द्र-गुरु-शुक्र एक साथ हो तो परोपकारी, धर्मशास्त्री, धर्मशाला तथा तालाब आदि का निर्मापक, सज्जन, मिलनसार एवं उच्चाभिलापी; रवि-चन्द्र-गुरु-शनि एक साथ हों तो तामसी, हठी, कुलीन, सुखी, निन्दक, कार्यरत एव अध्यवसायी, रवि-चन्द्र-शुक्र-शनि एक साथ हो तो दुर्वलदेही, स्त्रीरत, कामी एवं व्यभिचार की ओर झुकने वाला, रवि-मगल-बुध-गुरु एक साथ हो तो परस्त्रीगामी, चोर, निन्दक, जीवन में अपमानित होने-वाला एव व्यापार-द्वारा धनी, रवि-मगल-बुध-शनि एक साथ हो तो कवि, मन्त्री, सज्जन, लब्धप्रतिष्ठ, सुखी एव सम्माननीय, रवि-मंगल-गुरु-शुक्र एक साथ हो तो लोकमान्य, ऐश्वर्यवान्, नीतिज्ञ, कार्यदक्ष एव सर्वप्रिय; रवि-मंगल-गुरु-शनि एक साथ हो तो राजमान्य, कुटुम्बप्रेमी, साधुसेवी, कार्यकुशल, व्यापारी, मिल संस्थापक, विधानज्ञ, शिक्षक एव शासक; रवि-मंगल-शुक्र-शनि एक साथ हो तो बन्धु-द्वेषी, अपयशी, दुराचारी, मलिन एवं नीच कर्मरत, रवि-बुध-गुरु-शुक्र एक साथ हो तो धनिक, बन्धु-वान्, सुखी, सफल कार्यकर्त्ता, सभापति, सभाजित्, लोकमान्य एव नीति-वान्, रवि-बुध-गुरु-शनि एक साथ हो तो मानी, हीनवीर्य, झगडालू, कवि, सशोधक, सम्पादक एव साहित्यिक, रवि बुध-शुक्र-शनि एक साथ हो तो वाचाल, सदाचारी, अल्पसुखी, वनविहारी, प्रवासी एवं साधनसम्पन्न, रवि-गुरु-शुक्र-शनि एक साथ हों तो लोभी, कवि, प्रधान, नेता, स्वार्थी, ख्याति-वान् एव चतुर, चन्द्र-मंगल-बुध-गुरु एक साथ हो तो बुद्धिमान्, सुखी, सदाचारी, शास्त्रज्ञ, लोकपालक एवं शिल्पशास्त्रज्ञ, चन्द्र-मगल-बुध-शुक्र एक साथ हो तो आलसी, झगडालू, सुखी एव असहयोगी, चन्द्रमा-मंगल-बुध-शनि एक साथ हो तो शूर, बहुपुत्रवान्, विकल शरीरी, सुकलत्रवान् एव गुणवान्, चन्द्र-मगल-गुरु-शुक्र एक साथ हो तो मानी, धनी

स्त्रीसुखी, निर्मलचित्त, धर्मात्मा एव समाजसेवी, चन्द्र-मंगल-गुरु-शनि एक साथ हो तो धीर, पराक्रमशाली, धनी, परिश्रमी एवं शस्त्र-शास्त्रज्ञ, चन्द्र-मंगल-शुक्र-शनि एक साथ हों तो गुरुजनहीन, दु खी, वाचाल एवं नीच कर्मरत, चन्द्र-बुध-गुरु-शुक्र एक साथ हो तो आस्तिक, मातृ-पितृ-भक्त, विद्वान्, धनवान्, सुखी एव कार्यदक्ष, चन्द्र-बुध-गुरु शनि एक साथ हो तो कीत्तिवान्, तेजस्वी, बन्धुप्रेमी, प्रसिद्ध कवि एव सम्मान्य; चन्द्र-बुध-शुक्र-शनि एक साथ हो तो चरित्रहीन, जनद्वेषी एवं वचक, चन्द्र-गुरु-शुक्र-शनि एक साथ हो तो त्वग्रोगी, प्रवासी, दु खी, वाचाल एव निर्धन, मगल-बुध-गुरु-शुक्र एक साथ हो तो लोकमान्य, विद्वान्, शूर, चतुर, धनहीन एव परिश्रमी, मगल-बुध-शुक्र-शनि एक साथ हो तो पुष्ट, मल्ल, युद्धविजयी एव पराक्रमी, मगल-गुरु-शुक्र-शनि एक साथ हो तो तेजस्वी, धनिक, स्त्रीलोभी, साहसी एव चपल और बुध-गुरु-शुक्र-शनि एक साथ हो तो विद्वान्, पितृभक्त, धर्मात्मा, सुखी, सच्चरित्र एवं कार्यदक्ष होता है। इन ग्रहो का पूर्ण फल उच्च के होने पर, मध्यम फल मूलत्रिकोण में रहने पर और अधम फल अपना राशि या मित्र के गृह में रहने पर मिलता है।

पंचग्रह योग-फल

रवि-चन्द्र-मंगल-बुध-गुरु एक साथ हो तो जातक युद्धकुशल, धूर्त्त, सामर्थ्यवान्, अशान्त एव प्रपचकर्ता, रवि-चन्द्र-मंगल-बुध-शुक्र एक साथ हो तो परस्वार्थी, अन्यधर्मश्रद्धालु, बन्धुरहित एव बलहीन, रवि-चन्द्र-मगल-बुध-शनि एक साथ हो तो अल्पायु, सुखहीन, स्त्री-पुत्र-धनरहित एव विरह से पीडित, रवि-चन्द्र-बुध-गुरु-शुक्र एक साथ हो तो माता-पिता भाई से रहित, परधनहर्ता, दुष्ट, पिशुन, नेत्ररोगी, चोर एवं कपटी; रवि-चन्द्र-भौम-शुक्र-शनि एक साथ हो तो युद्ध-कुशल, चालक, धन-मान-प्रभाव से हीन एव सन्तापदाता, रवि-चन्द्र-भौम-शुक्र-शनि एक साथ हों

तो धनी, पराक्रमी, मलिन, परस्त्रीरत एवं व्यवहारशून्य; रवि-चन्द्र-बुध-गुरु-शुक्र एक साथ हो तो मंत्री, धनवान्, बलवान्, यशस्वी एवं प्रतापवान्; रवि-चन्द्र-बुध-गुरु-शनि एक साथ हो तो भिक्षुक, डरपोक, उग्रस्वभाव वाला, पराम्नभोजी एवं पापी, रवि-चन्द्र-बुध-शुक्र-शनि एक साथ हो तो दरिद्री, पुत्रहीन, रोगी, दीर्घदेही एवं आत्मघाती; रवि-चन्द्र-गुरु-शुक्र-शनि एक साथ हों तो स्त्रीसुखयुक्त, वली, चतुर, निर्भय, जादूगर एवं अस्थिर चित्त-वृत्ति; रवि-मंगल-बुध-गुरु-शुक्र एक साथ हो तो सेनानायक, सरदार, परकामिनीरत, विनोदी, सुखी, प्रतापी एव वीर; रवि-मंगल-बुध-गुरु-शनि एक साथ हो तो रोगी, नित्योद्वेगी, मलिन एवं अल्पधनी, रवि-बुध-गुरु-शुक्र-शनि एक साथ हो तो ज्ञानी, धर्मात्मा, शास्त्रज्ञ, विद्वान् एवं भाग्यवान्; चन्द्र-मंगल-बुध-गुरु-शुक्र एक साथ हो तो सज्जन, सुखी, विद्वान्, बलवान्, लेखक, संशोधक एवं कर्त्तव्यशील, चन्द्र-मंगल-बुध-शुक्र-शनि एक साथ हो तो दु खी, रोगी, परोपकारी, स्थिरचित्त एवं यशस्वी, चन्द्र-बुध गुरु-शुक्र-शनि एक साथ हो तो पूज्य, यन्त्रकर्त्ता (नवीन मशीन बनानेवाला), लोकमान्य, राजा या तत्तुल्य ऐश्वर्यवान् एवं नेत्ररोगी और मंगल-बुध-गुरु-शुक्र-शनि एक साथ हो तो सदा प्रसन्नचित्त, सन्तोषी एव लब्धप्रतिष्ठ होता है।

षड्ग्रह योग-फल

रवि-चन्द्र-मंगल-बुध-गुरु-शुक्र एक साथ हो तो तीर्थयात्रा करनेवाला, सात्त्विक, दानी, स्त्री-पुत्रयुक्त, धनी, अरण्य-पर्वत आदि में निवास करनेवाला एवं सत्कीर्त्तिवान्, रवि-चन्द्र-बुध-गुरु-शुक्र-शनि एक साथ हो तो शिररोगी, परदेशी, उन्माद प्रकृतिवाला, देवभूमि में निवास करने वाला एवं शिथिल चारित्र धारक; रवि-मंगल-बुध-गुरु-शुक्र-शनि एक साथ हों तो बुद्धिमान्, भ्रमणशील, परसेवी, बन्धुद्वेषी एवं रोगी, रवि-चन्द्र-मंगल-बुध-गुरु-शनि एक साथ हों तो कुष्ठरोगी, भाइयो से निन्दित, दुःखी, पुत्ररहित एवं परसेवी,

रवि-चन्द्र-मंगल-गुरु-शुक्र-शनि एक साथ हो तो मन्त्री, नेता, मान्य, नीच-कर्मरत, क्षय तथा पीनस के रोग से दु खी एवं स्वल्पधनी, रवि-चन्द्र-मंगल-गुरु-शुक्र-शनि एक साथ हों तो शान्त, उदार, धनी-मानी एवं शासक और चन्द्र-मंगल-बुध-गुरु-शुक्र-शनि एक साथ हो तो धनिक, धर्मात्मा, ऐश्वर्य-वान् एवं चरित्रवान् होता है। किसी भी ग्रह के साथ मंगल-बुध का योग, वक्ता, वैद्य, कारीगर और शास्त्रज्ञ होने की सूचना देता है।

द्वादश भाव विचार

लग्न विचार—पहले ही कहा गया है कि प्रथम भाव से शरीर की आकृति, रूप आदि का विचार किया जाता है। इस भाव में जिस प्रकार की राशि और ग्रह होंगे जातक का शरीर भी वैसा ही होगा। शरीर की स्थिति के सम्बन्ध में विचार करने के लिए ग्रह और राशियो के तत्त्व नीचे लिखे जाते हैं।

सूर्य	शुष्कग्रह	अग्नितत्त्व	सम (कद)
चन्द्र	जलग्रह	जलतत्त्व	दीर्घ ,,
भौम	शुष्कग्रह	अग्नितत्त्व	ह्रस्व ,,
बुध	जलग्रह	पृथ्वीतत्त्व	सम ,,
गुरु	जलग्रह	आकाश या तेजतत्त्व	मध्यम या ह्रस्व
शुक्र	जलग्रह	जलतत्त्व	,,
शनि	शुष्कग्रह	वायुतत्त्व	दीर्घ

राशि संज्ञाएँ

मेष	अग्नि	पादजल (¼)	ह्रस्व	(२४ अंश)
वृष	पृथ्वी	अर्द्धजल (½)	ह्रस्व	(२४ अंश)
मिथुन	वायु	निर्जल (०)	सम	(२८ अंश)
कर्क	जल	पूर्णजल (१)	सम	(३२ अंश)

सिंह	अग्नि	निर्जल (०)	दीर्घ (३६ अंश)
कन्या	पृथ्वी	निर्जल (०)	दीर्घ (४० अंश)
तुला	वायु	पादजल ($\frac{1}{4}$)	दीर्घ (४० अंश)
वृश्चिक	जल	पादजल ($\frac{1}{4}$)	दीर्घ (३६ अंश)
धनु	अग्नि	अर्द्धजल ($\frac{1}{2}$)	सम (३२ अंश)
मकर	पृथ्वी	पूर्णजल (१)	सम (२८ अंश)
कुम्भ	वायु	अर्द्धजल ($\frac{1}{2}$)	ह्रस्व (२४ अंश)
मीन	जल	पूर्णजल (१)	ह्रस्व (२० अंश)

उपर्युक्त संज्ञाओं पर से शारीरिक स्थिति ज्ञात करने के नियम

१—लग्न जलराशि हो और उस में जलग्रह की स्थिति हो तो जातक का शरीर मोटा होगा।

२—लग्न और लग्नाधिपति जलराशिगत होने से शरीर खूब स्थूल होगा।

३—यदि लग्न अग्निराशि हो और अग्निग्रह उस में स्थित हो तो मनुष्य बली होता है, पर शरीर देखने में दुबला मालूम पड़ता है।

४—अग्नि या वायुराशि लग्न हो और लग्नाधिपति पृथ्वी राशिगत हो तो हड्डियाँ साधारणतया पुष्ट और मजबूत होती हैं, और शरीर ठोस होता है।

५—यदि अग्नि या वायुराशि लग्न हो, लग्नाधिपति जलराशिगत हो तो शरीर स्थूल होता है।

६—यदि लग्न वायुराशि हो और उस में वायु ग्रह स्थित हो तो जातक दुबला, पर तीक्ष्ण बुद्धि वाला होता है।

७—यदि लग्न पृथ्वीराशि हो और उस में पृथ्वीग्रह स्थित हो तो मनुष्य नाटा होता है।

८—पृथ्वीराशि लग्न हो और लग्नाधिपति पृथ्वीराशिगत हो तो शरीर स्थूल और दृढ होता है।

९—पृथ्वीराशि लग्न हो और उस का अधिपति जलराशि में हो तो शरीर साधारणतया स्थूल होता है।

लग्न की राशि ह्रस्व, दीर्घ या सम जिस प्रकार की हो, उसी के अनुसार जातक के शरीर को ऊँचाई समझनी चाहिए। शरीर की आकृति निर्णय के लिए निम्न नियम उपयोगी हैं—

(१) लग्नराशि कैसी है ? (२) लग्न में ग्रह हैं तो कैसा है ? (३) लग्नेश कैसा ग्रह है ? और किस राशि में है ? (४) लग्नेश के साथ कैसे ग्रह हैं ? (५) लग्न पर किस की दृष्टि है ? (६) लग्नेश अष्टम या द्वादश भाव में तो नही है ? (७) गुरु लग्न में है अथवा लग्न को देखता है। कैसी राशि में वृहस्पति की स्थिति है ?

इन सात नियमो-द्वारा विचार करने पर ज्ञात हो जायेगा कि जल, पृथ्वी, अग्नि, वायु तत्त्वो में किस की विशेषता है। अन्त में अन्तिम निर्णय के लिए पहले वाले नौ नियमो का आश्रय ले कर निश्चय करना चाहिए।

लग्नेश और लग्नराशि के स्वरूप के अनुसार जातक के रूप-रग का निश्चय करना चाहिए। मेष लग्न में लालमिश्रित सफेद, वृष में पीला मिश्रित सफ़ेद, मिथुन में गहरा लालमिश्रित सफेद, कर्क में नीला, सिंह में धूसर, कन्या में घनश्याम रग, तुला में कृष्णवर्ण लाली लिये, वृश्चिक में बादामी, धनु में पीत वर्ण, मकर में चितकबरी, कुम्भ में आकाश सदृश नीला और मीन में गौरवर्ण होता है।

सूर्य से रक्त श्याम, चन्द्र से गौरवर्ण, मगल से समवर्ण, बुध से दूर्वा-दल के समान श्यामल, गुरु से काचन वर्ण, शुक्र से श्यामल, शनि से कृष्ण, राहु से कृष्ण और केतु से धूम्र वर्ण का जातक को समझना चाहिए। लग्न तथा लग्नेश पर पापग्रह की दृष्टि होने से मनुष्य कुरूप होता है, बुध-शुक्र एक साथ कहीं भी हों तो गौरवर्ण न होते हुए भी सुन्दर होता है। शुभग्रह

युत या दृष्ट लग्न होने पर जातक सुन्दर होता है। रवि लग्न में हो तो आँखें सुन्दर नही होती, चन्द्रमा लग्न मे हो तो गौरवर्ण होते हुए भी सुडौल नही होता। मंगल लग्न में हो तो शरीर सुन्दर होता है, पर चेहरे पर सुन्दरता में अन्तर डालने वाला कोई निशान होता है। बुध लग्न में हो तो चमकदार साँवला रंग होता है तथा कम या अधिक चेचक के दाग होते हैं। बृहस्पति लग्न में हो तो गौर रंग, सुडौल शरीर होता है, किन्तु कम आयु में ही वृद्ध बना देता है, बाल जल्द सफेद होते है, ४५ वर्ष की उम्र में ही दांत गिर जाते है। मेदवृद्धि से पेट बडा हो जाता है। शुक्र लग्न में हो तो शरीर सुन्दर और आकर्षक होता है। शनि लग्न में हो तो मनुष्य के रूप में कमी होती है और राहु-केतु के लग्न में रहने से चेहरे पर काले दाग होते हैं।

शरीर के रूप का विचार करते समय ग्रहो की दृष्टि का अवश्य आश्रय लेना चाहिए। लग्न में कुरूपता करने वाले क्रूर ग्रहो के रहने पर भी लग्न स्थान पर शुभ ग्रह की दृष्टि होने से जातक सुन्दर होता है। इसी प्रकार पापग्रहो की दृष्टि होने से जातक की सुन्दरता में कमी आती है।

शरीर के अंगों का विचार

अंगो के परिमाण का विचार करने के लिए ज्योतिषशास्त्र में लग्न-स्थान गत राशि को सिर, द्वितीय स्थान की राशि को मुख और गला, तृतीय स्थान की राशि को वक्षस्थल और फेफडा, चतुर्थ स्थान की राशि को हृदय और छाती, पचम स्थान की राशि को कुक्षि और पीठ, षष्ठ स्थान की राशि को कमर और आँते, सप्तम स्थान की राशि को नाभि और लिंग के बीच का स्थान, अष्टम स्थान की राशि को लिंग और गुदा, नवम स्थान की राशि को ऊरु और जंघा, दशम स्थान की राशि को ठेहुना, एकादश स्थान को राशि को पिंडुलियाँ और द्वादश स्थान की राशि को पैर समझना चाहिए।

जिस अग पर विचार करना हो उस अंग की राशि जिस प्रकार की

ह्रस्व या दीर्घ हो तथा उस अंगसज्ञक राशि में रहनेवाला जैसा ग्रह हो, उस अंग को वैसा ही ह्रस्व या दीर्घ अवगत करना चाहिए। अग-ज्ञान के लिए कुछ नियम निम्न प्रकार हैं—

(१) अग को राशि कैसी है। (२) उस राशि में ग्रह कैसा है। (३) अंग निर्दिष्ट राशि का स्वामी किस प्रकार की राशि में पडा है। (४) अंग निर्दिष्ट राशि में कोई ग्रह है तो वह किस प्रकार की राशि का स्वामी है। यदि अंग स्थान राशि में एक से अधिक ग्रह हो तो जो सब से बलवान् हो उस से विचार करना चाहिए।

कालपुरुष

ज्योतिषशास्त्र में फलनिरूपण के हेतु काल—समय को पुरुष माना गया है और इस के आत्मा, मन, बल, वाणी एवं ज्ञान आदि का कथन किया है। बताया है कि इस कालपुरुष का सूर्य आत्मा[१], चन्द्रमा मन, मंगल बल, बुध वाणी, गुरु ज्ञान, शुक्र सुख, राहु मद और शनि दु ख है। जन्म समय में आत्मादिकारक ग्रह बली हो तो आत्मा आदि सबल, और दुर्बल हो तो निर्बल समझना चाहिए, पर शनि का फल विपरीत होता है। शनि दु ख-कारक माना गया है, अत यह जितना होन बल रहता है, उतना उत्तम होता है।

तात्कालिक लग्न के पीछे की छह राशियाँ जो उदित रहती हैं, वे काल या जातक के वाम अंग तथा अनुदित—क्षितिज से नीचे अर्थात् लग्न से आगे की छह राशियाँ दक्षिण अंग कहलाती हैं।

यदि लग्न में प्रथम द्रेष्काण (त्र्यश) हो तो लग्न १ मस्तक, २,१२ नेत्र, ३, ११ कान; ४, १० नाक, ५, ९ गाल, ६, ८ ठुड्डी और सप्तम

---

१ आत्मा रवि शीतकरस्तु चेत सत्त्व धराज शशिजोऽथ वाणी।
गुरु सितो ज्ञानसुखे मद च राहु शनि कालनरस्य दु खम्॥
—सारावली, बनारस १९५३ ई०, अ० ४, श्लो० १

भाव मुख होता है। द्वितीय द्रेष्काण हो तो लग्न १ ग्रीवा, २, १२ कन्धा; ३, ११ दोनो भुजाएँ; ४, १० पंजरी, ५, ९ हृदय, ६, ८, पेट और सप्तम भाव नाभि है। तृतीय द्रेष्काण लग्न में हो तो लग्न १ वस्ति, २, १२ लिंग और गुदामार्ग, ३, ११ दोनो अण्डकोश, ४, १० जाँघ, ५, ९ घुटना, ६, ८ दोनो घुटनो के नीचे का हिस्सा और सप्तम भाव पैर होता है। इस प्रकार लग्न के द्रेष्काण के अनुसार अंग विभाग को अवगत कर फलादेश समझना चाहिए।

जिस अंग स्थित भाव में पाप ग्रह हो उस में व्रण (घाव), जिस में शुभ ग्रह हो उस में चिह्न कहना चाहिए। यदि ग्रह अपने गृह या नवाश में हो तो व्रण या चिह्न जन्म के समय (गर्भ से ही) से समझना चाहिए, अन्यथा अपनी-अपनी दशा के समय में व्रण या चिह्न प्रकट होते हैं।

सूर्य और चन्द्रमा को ज्योतिष में राजा माना गया है[1]। बुध युवराज, मंगल सेनापति, गुरु और शुक्र मन्त्री एव शनि को भृत्य माना है। जन्म समय जो ग्रह सवल होता है, जातक का भविष्य उस के अनुसार निर्मित होता है।

द्वादश राशियो में-से सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक, धनु और मकर इन छह राशियो का भगणाधिपति सूर्य और कुम्भ, मीन, मेष, वृष, मिथुन और कर्क का भगणाधिपति चन्द्रमा है। सूर्य के भगणार्ध चक्र में अधिक ग्रह हो तो जातक तेजस्वी और चन्द्र के चक्र मे हो तो मृदु स्वभाव जातक होता है।

---

१ राजा रवि शशधरस्तु बुध कुमार
सेनापति क्षितिसुत सचिवौ सितेज्यौ।
भृत्यस्तयोश्च रविज सबला नराणां
कुर्वन्ति जन्मसमये निजमेव रूपम्॥
—सारावली, बनारस १९६३ ई०, अध्याय ४, श्लो० ७

जिस[1] जातक के जन्मलग्न में मगल हो और सप्तम भाव में गुरु या शुक्र हो उस के सिर में व्रण-दाग होता है। जब जन्मलग्न में मंगल, शुक्र और चन्द्रमा हो तो व्यक्ति को जन्म से दूसरे या छठे वर्ष सिर में चोट लगने से घाव का चिह्न प्रकट होता है। जन्मलग्न में शुक्र और आठवें स्थान में राहु हो तो मस्तक या बायें कान में चिह्न होता है। यदि लग्न में बृहस्पति, सप्तम स्थान में राहु और आठवें स्थान में पाप ग्रह हो तो व्यक्ति के बायें हाथ में चिह्न होता है। लग्न में गुरु या शुक्र और अष्टम में पाप ग्रह हों तो भी बायें हाथ में चिह्न समझना चाहिए। ग्यारहवें, तीसरे और छठे भाव में शुक्र युक्त मगल हो तो वामपार्श्व में व्रण का चिह्न होता है।

लग्न में मगल और त्रिकोण—५।९ में शुक्र की दृष्टि से युक्त शनि हो तो लिंग या गुदा के समीप तिल का चिह्न होता है। पचम या नवम भाव में शुक्र और बुध हो, अष्टम स्थान में गुरु और चतुर्थ या लग्न में शनि हो तो पेट पर चिह्न होता है। द्वितीय स्थान में शुक्र, अष्टम स्थान में सूर्य और

---

१ जनुषि लग्नगतो वसुधासुतो मदनगोऽपि गुरु कविरेव वा।
भवति तस्य शिरो व्रणलाञ्छित निगदित यवनेन महात्मना॥
भवति लग्नगते शितिनन्दने भृगुसुतेऽपि विधाविह जन्मिनाम्।
शिरसि चिह्नमुदाहृतमादिभिर्मुनिवरैर्द्विरसाब्दसमासत॥
भार्गवे जनुरङ्गस्थे चाष्टमे सिंहिकासुते।
मस्तके वामकर्णे वा चिह्नदर्शनमादिशेत॥
मदनसदनमध्ये सिंहिकानन्दने वा,
सुरपतिगुरुणा चेदङ्गराशौ युते नु।
प्रकथितमिह चिह्न चाष्टमे पापखेटे,
कविरपि गुरुरङ्ग वामबाहौ मुनीन्द्रै॥
लाभारिसहजे भौमे व्यये वा शुक्रसयुते।
वामपार्श्वे गत चिह्न विज्ञेय व्रणजं बुधै॥
सुतालये भाग्यनिकेतने वा कविर्यदा चाष्टमगौ ज्ञजीवौ।
शनौ चतुर्थे तनुभावगे वा तदा सचिह्न जठरं नरस्य॥
भावकुतूहल, बम्बई सन् १९२५ ई०, अध्याय २, श्लो० १६-२२

तृतीय में मंगल हो तो जातक के कटि प्रदेश में चिह्न होता है। चतुर्थ स्थान में राहु-शुक्र दोनो में-से एक ग्रह स्थित हो और लग्न में शनि या मंगल स्थित हो तो पैर के तलवे में चिह्न होता है। बारहवें भाव में बृहस्पति, नवम भाव में चन्द्रमा और तृतीय तथा एकादश में बुध हो तो गुदा स्थान मे चिह्न होता है।

जातक के शरीर मे तिल, मस्सा, चिह्न आदि का विचार लग्न राशि; लग्नस्थित द्रेष्काण राशि एवं शीर्षोदय राशि आदि के द्वारा भी किया जाता है।

जन्मसमय के वातावरण का परिज्ञान

जन्मसमय मे मेष, वृष लग्न हो तो घर के पूर्व भाग में शय्या, मिथुन हो तो घर के अग्निकोण में, कर्क, सिंह लग्न हो तो घर के दक्षिण भाग मे, कन्या लग्न हो तो घर के नैऋत्यकोण में, तुला, वृश्चिक लग्न हो तो घर के पश्चिम भाग में, धनु राशि का लग्न हो तो घर के वायुकोण में, मकर, कुम्भ लग्न हो तो घर के उत्तर भाग में एवं मीन राशि का लग्न हो तो घर के ईशान भाग में प्रसूतिका की शय्या जाननी चाहिए।

जो ग्रह सब से बलवान् हो अथवा १।४।७।१० में स्थित हो उस ग्रह की दिशा में सूतिका-गृह का द्वार ज्ञात करना चाहिए। रवि की पूर्व दिशा, चन्द्र की वायव्य, मंगल की दक्षिण, बुध की उत्तर, गुरु की ईशान, शुक्र की आग्नेय, शनि की पश्चिम और राहु की नैऋत्य दिशा है।

जन्मसमय लग्न में शीर्षोदय ३।५।६।७।८।११ राशियो का नवांश हो तो मस्तक की तरफ से जन्म, लग्न में उभयोदय राशि—मीन का नवांश हो तो प्रथम हाथ निकला होगा, और लग्न में पृष्ठोदय १।२।३।४।९।१० राशियो का नवांश हो तो पाँव की ओर से जन्म जानना चाहिए।

लग्न और चन्द्रमा के बीच में जितने ग्रह स्थित हो उतनी ही उपसूति-

काओ की संख्या जाननी चाहिए। मीन, मेष लग्न में जन्म हो तो दो; वृष, कुम्भ में जन्म हो तो चार; कर्क सिंह में हो तो पाँच, शेष लग्नो—मिथुन, कन्या, तुला, वृश्चिक, धनु और मकर लग्न हो तो तीन उपसूतिकाएँ जाननी चाहिए।

अरिष्ट विचार

उत्पत्ति के समय जातक के ग्रहारिष्ट, गण्डारिष्ट और पातको अरिष्ट का विचार करना चाहिए।

१—लग्न में चन्द्रमा, बारहवें में शनि, नौवें में सूर्य और अष्टम में मंगल हो तो अरिष्ट होता है।

२—लग्न में पापग्रह हो और चन्द्रमा पापग्रह के साथ स्थित हो तथा शुभग्रहों की दृष्टि लग्न और चन्द्रमा दोनो पर न हो तो अरिष्ट समझना चाहिए।

३—बारहवें भाव में क्षीण चन्द्रमा स्थित हो और लग्न एव अष्टम में पापग्रह स्थित हो तो बालक को अरिष्ट होता है।

४—क्षीण चन्द्रमा पर पापग्रह या राहु की दृष्टि हो तो बालक को अरिष्ट होता है।

५—चन्द्रमा ४।७।८ में स्थित हो और उस के दोनों ओर पापग्रह स्थित हो तो बालक को अरिष्ट होता है।

६—चन्द्रमा ६।८।१२ में हो और उस पर राहु की दृष्टि हो तो अरिष्ट होता है।

७—चन्द्रमा कर्क, वृश्चिक और मीन राशि का हो तथा राशि के अन्तिम नवांश में हो, शुभग्रहों को दृष्टि चन्द्रमा पर न हो एवं पचम स्थान पर पापग्रहों की दृष्टि हो अथवा पापग्रह स्थित हो तो बालक को अरिष्ट होता है।

८—मेष राशि का चन्द्रमा २३ अंश का अष्टम स्थान में हो तो २३ वर्ष के

भीतर जातक की मृत्यु होती है। वृष के २१ अंश का, मिथुन के २२ अंग का, कर्क के २२ अंग का, सिंह के २१ अंश का, कन्या के १ अंश का, तुला के ४ अंग का, वृश्चिक के २१ अंग का, धनु के १८ अंग का, मकर के २० अंग का, कुम्भ के २० अंग का एवं मीन के १० अंग का चन्द्रमा अरिष्ट करने वाला होता है।

९—पापग्रह से युक्त लग्न का स्वामी ७ वें स्थान में स्थित हो तो एक वर्ष तक परम अरिष्ट होता है।

१०—जन्मराशि का स्वामी पापग्रह से युक्त हो कर आठवें स्थान में हो तो अरिष्ट होता है।

११—शनि, सूर्य, मंगल आठवें अथवा बारहवें स्थान मे हो तो जातक को एक महीने तक परम अरिष्ट होता है।

१२—लग्न में राहु तथा छठे या आठवें भाव में चन्द्रमा हो तो जातक को अत्यन्त अरिष्ट होता है।

१३—लग्नेश आठवें भाव में पापग्रह से युत या दृष्ट हो तो चार महीने तक जातक को अरिष्ट होता है।

१४—शुभ तथा पापग्रह ३।६।९।१२ स्थानो में निर्बली हो कर स्थित हो तो ६ मास तक जातक को अरिष्ट होता है।

१५—पापग्रहो की राशियाँ १।५।८।१०।११ स्थानो में हो तथा सूर्य, चन्द्र, मंगल, पांचवें स्थान में हो तो जातक को ६ महीने का अरिष्ट होता है।

१६—पापग्रह छठे, आठवें स्थान में स्थित हो और अस्त पापग्रहो की दृष्टि भी हो तो एक वर्ष का अरिष्ट होता है।

१७—चन्द्र, बुध दोनो केन्द्र में स्थित हो और अस्त शनि या मंगल उन को देखते हो तो एक वर्ष के भीतर मृत्यु होती है।

१८—शनि, रवि और मंगल छठे, आठवें भाव में गये हो तो जातक को एक वर्ष तक अरिष्ट होता है।

१९—अष्टमेश लग्न में और लग्नेश अष्टम भाव में गया हो तो पाँच वर्ष तक अरिष्ट होता है।

२०—कर्क या सिंह राशि का शुक्र ६।८।१२ में स्थित हो तथा पाप-ग्रहो से देखा जाता हो तो छठे वर्ष में मृत्यु जानना ।

२१—लग्न में सूर्य, शनि और मंगल स्थित हों और क्षीण चन्द्रमा सातवें भाव में हो तो सातवें वर्ष में मृत्यु होती है ।

२२—सूर्य, चन्द्र और शनि इन तीनो ग्रहो का योग ६।८।१२ स्थानो में हो तो ९ वर्ष तक जातक को अरिष्ट रहता है ।

२३—चन्द्रमा सातवें भाव में और अष्टमेश लग्न में स्थित हो तो ९ वर्ष तक अरिष्ट रहता है । परन्तु इस योग में शनि की दृष्टि अष्टमेश पर आवश्यक है ।

२४—चन्द्रमा और लग्नेश ६।७।८।१२ स्थानों मे स्थित हो तो १२ वर्ष तक अरिष्ट रहता है ।

२५—चन्द्र और लग्नेश शनि एव सूर्य से युत हों तो १२ वर्ष तक अरिष्ट रहता है ।

गण्ड-अरिष्ट

आश्लेपा के अन्त और मघा के आदि के दोषयुक्त काल को रात्रिगण्ड, ज्येष्ठा और मूल के दोपयुक्त काल को दिवागण्ड एव रेवती और अश्विनी के दोपयुक्त काल को सन्ध्यागण्ड कहते हैं । अभिप्राय यह है कि आश्लेपा, ज्येष्ठा और रेवती नक्षत्र की अन्तिम चार घटियाँ तथा मघा, मूल और अश्विनी नक्षत्र के आदि की चार घटियाँ गण्डदोप युक्त मानी गयी हैं । इस समय में उत्पन्न होनेवाले वालको को अरिष्ट होता है । मतान्तर से ज्येष्ठा के अन्त की एक घटी और मूल के आदि की दो घटी को अभुक्त मूल कहा गया है । इन तीन घटियो के भीतर जन्म लेने वाले वालक को विशेप अरिष्ट होता है ।

यहाँ स्मरण रखने की वात यह है कि वालक का प्रात काल अथवा सन्ध्या के सन्धि समय मे जन्म हो तो सान्ध्यगण्ड विशेप कष्टदायक, रात्रि-

काल मे जन्म हो तो रात्रिगण्ड दोष-विशेष कष्टदायक एवं दिन में जन्म होने पर दिवागण्ड कष्टकारक होता है। सान्ध्यगण्ड बालक के लिए, रात्रि-गण्ड माता के लिए और दिवागण्ड पिता के लिए कष्टदायक होता है।

अरिष्टभंग योग

१—शुक्ल पक्ष में रात्रि का जन्म हो और छठे, आठवें स्थान में चन्द्रमा स्थित हो तो सर्वारिष्ट नाशक योग होता है।

२—शुभग्रहो की राशि और नवमाश २।७।९।१२।३।६।४ में हो तो अरिष्टनाशक योग होता है।

३—जन्मराशि का स्वामी १।४।७।१० स्थानो मे स्थित हो अथवा शुभग्रह केन्द्र में गये हो तो अरिष्टनाश होता है।

४—सभी ग्रह ३।५।६।७।८।११ राशियो मे हो तो अरिष्ट नाश होता है।

५—चन्द्रमा अपनी राशि, उच्चराशि तथा मित्र के गृह मे स्थित हो तो सर्वारिष्ट नाश करता है। -

६—चन्द्रमा से दसवें स्थान में गुरु, बारहवें में बुध, शुक्र और बार-हवें स्थान मे पापग्रह गये हो तो अरिष्टनाश होता है।

७—कर्क तथा मेष राशि का चन्द्रमा केन्द्र में स्थित हो और शुभ ग्रह से दृष्ट हो तो सर्वारिष्ट नाश करता है।

८—कर्क, मेष और वृष राशि लग्न हो तथा लग्न में राहु हो तो अरिष्ट भग होता है।

९—सभी ग्रह १।२।४।५।७।८।१०।११ स्थानो में गये हो तो अरिष्ट-नाश होता है।

१०—पूर्ण चन्द्रमा शुभग्रह की राशि का हो तो अरिष्टभंग होता है।

११—शुभग्रह के वर्ग में गया हुआ चन्द्रमा ६।८ स्थान मे स्थित हो तो सर्वारिष्टनाश होता है।

१२—चन्द्र और जन्म-लग्न को शुभग्रह देखते हो तो अरिष्ट भग होता है।

१३—शुभग्रह की राशि के नवांश में गया हुआ चन्द्रमा १।४।५।७।९। १० स्थानों में स्थित हो और शुक्र उस को देखता हो तो सर्वारिष्ट नाश होता है।

१४—बलवान् शुभग्रह १।४।७।१० स्थानो में स्थित हो और ग्यारहवें भाव में सूर्य हो तो सर्वारिष्ट नाश होता है।

१५—लग्नेश बलवान् हो और शुभग्रह उसे देखते हो तो अरिष्टनाश होता है।

१६—मगल, राहु और शनि ३।६।११ स्थानो में हो तो अरिष्टनाशक होते है।

१७—बृहस्पति १।४।७।१० स्थानों में हो या अपनी राशि ९।१२ में हो अथवा उच्च राशि में हो तो सर्वारिष्टनाशक होता है।

१८—सभी ग्रह १।३।५।७।९।११ राशियों में स्थित हों तो अरिष्ट-नाशक होते है।

१९—सभी ग्रह मित्रग्रहो की राशियों में स्थित हो तो अरिष्टनाश होता है।

२०—सभी ग्रह शुभग्रहों के वर्ग में या शुभग्रहों के नवांश में स्थित हो तो अरिष्टनाशक होते हैं।

जारज योग

१—१।४।७।१० स्थानो में कोई भी ग्रह नही हो, सभी ग्रह २।६। ८।१२ स्थान मे स्थित हो, केन्द्र के स्वामी का तृतीयेश के साथ योग हो, छठे या आठवें स्थान का स्वामी चन्द्र-मंगल से युक्त होकर चतुर्थ स्थान में स्थित हो, छठे और नौवें स्थान के स्वामी पापग्रहो से युक्त हो, द्वितीयेश, तृतीयेश, पंचमेश और षष्ठेश लग्न में स्थित हों; लग्न में पापग्रह, सातवें में

शुभग्रह और दसवें भाव मे शनि हो; लग्न मे चन्द्रमा, पंचम स्थान में शुक्र. और तीसरे स्थान में भौम हो, लग्न में सूर्य, चतुर्थ में राहु हो, लग्न में राहु, मगल और सप्तम स्थान में सूर्य, चन्द्रमा स्थित हो, सूर्य, चन्द्र दोनो एक राशि में स्थित हो और उन को गुरु नही देखता हो एव सप्तमेश धन स्थान मे पापग्रह से युक्त और भौम से दृष्ट हो तो जातक जारज होता है।

बधिर योग

१—शनि से चतुर्थ स्थान मे बुध हो और षष्ठेश ६।८।१२ वें भाव में स्थित हो।

२—पूर्ण चन्द्र और शुक्र ये दोनो शत्रुग्रह से युक्त हो।

३—रात्रि का जन्म हो, लग्न से छठे स्थान में बुध और दसवें स्थान में शुक्र हो।

४—बारहवें भाव में बुध, शुक्र दोनो हो।

५—३।५।९।११ भावो मे पापग्रह हो और शुभग्रहो की दृष्टि इन पर नही हो।

६—षष्ठेश ६।१२ वें स्थान में हो और शनि की दृष्टि न हो।

मूक योग

१—कर्क, वृश्चिक और मीन राशि मे गये हुए बुध को अमावस्या का चन्द्रमा देखता हो।

२—बुध और षष्ठेश दोनो एक साथ स्थित हो।

३—गुरु और षष्ठेश लग्न में स्थित हो।

४—वृश्चिक और मीन राशि में पापग्रह स्थित हो एवं किसी भी राशि के अन्तिम अंशो में व वृष राशि मे चन्द्र स्थित हो और पापग्रहो से दृष्ट हो तो जीवन-भर के लिए मूक तथा शुभग्रहो से दृष्ट हो तो पाँच वर्ष के उपरान्त बालक बोलता है।

५—क्रूरग्रह सन्धि में गये हों, चन्द्रमा पापग्रहो से युक्त हो तो भी गूँगा होता है।

६—शुक्लपक्ष का जन्म हो और चन्द्रमा, मंगल का योग लग्न में हो।

७—कर्क, वृश्चिक और मीन राशि में गया हुआ बुध, चन्द्र से दृष्ट हो, चौथे स्थान में सूर्य हो और छठे स्थान को पापग्रह देखते हो।

८—द्वितीय स्थान में पापग्रह हो और द्वितीयेश नीच या अस्तंगत हो कर पापग्रहों से दृष्ट हो एव रवि, बुध का योग सिंह राशि में किसी भी स्थान में हो।

९—सिंह राशि में रवि, बुध दोनों एक साथ स्थित हों तो जातक मूक होता है।

नेत्ररोगी योग

१—वक्रगतिस्थ ग्रह की राशि में छठे स्थान का स्वामी हो तो नेत्ररोगी होता है।

२—लग्नेश ३।६।१।८ राशियो में हो और बुध, मंगल देखते हो। लग्नेश तथा अष्टमेश छठे स्थान में हो तो बायें नेत्र में रोग होता है।

३—छठे और आठवें स्थान में शुक्र हो तो दक्षिण नेत्र में रोग होता है।

४—धनेश शुभग्रह से दृष्ट हो एव लग्नेश पापग्रह से युक्त हो तो सरोग नेत्र होते हैं।

५—दूसरे और बारहवें स्थान के स्वामी शनि, मगल और गुलिक से युक्त हो तो नेत्र में रोग होता है।

६—नेत्र स्थान २।१२ के स्वामी तथा नवांश का स्वामी पापग्रह की राशि के हो तो नेत्ररोग से पीडित होता है।

७—लग्न तथा आठवें स्थान में शुक्र हो और उस पर क्रूरग्रह की दृष्टि हो तो नेत्ररोग से पीडित होता है।

८—शयनावस्था में गया हुआ मंगल लग्न में हो तो नेत्र में पीड़ा होती है।

९—शुक्र से ६।८।१२ वें स्थान में नेत्र-स्थान का स्वामी हो तो नेत्ररोगी होता है।

१०—पापग्रह से दृष्ट सूर्य ५।९ मे हो तो निस्तेज नेत्र होते हैं।

११—चन्द्र से युक्त शुक्र ६।८।१२ वें स्थान में स्थित हो तो निशान्ध (रतौंधी) रोग से पीडित होता है।

१२—नेत्र स्थान (२।१२) के स्वामी शुक्र, चन्द्र से युक्त हो, लग्न में स्थित हो तो निशान्ध योग होता है।

१३—मंगल या चन्द्रमा लग्न में हो और शुक्र, गुरु उसे देखते हो या इन दोनों में कोई एक ग्रह देखता हो तो जातक काना होता है।

१४—सिंह राशि का चन्द्रमा सातवें स्थान में मगल से दृष्ट हो या कर्क राशि का रवि सातवें स्थान में मंगल से दृष्ट हो तो जातक काना होता है।

१५—चन्द्र और शुक्र का योग सातवें या बारहवें स्थान में हो तो बायी आँख का काना होता है।

१६—बारहवें भाव में मंगल हो तो वाम नेत्र में एवं दूसरे स्थान में शनि हो तो दक्षिण नेत्र में चोट लगती है।

१७—लग्नेश और धनेश ६।८।१२ वें भाव में हो और चन्द्र, सूर्य, सिंह राशि के लग्न में स्थित हो तथा शनि इन को देखता हो तो नेत्र ज्योतिहीन होते है।

१८—लग्नेश सूर्य, शुक्र से युत हो कर ६।८।१२ वें स्थान में गया हो, नेत्र स्थान (२।१२) के स्वामी और लग्नेश ये दोनो सूर्य, शुक्र से युत हो कर ६।८।१२ वें स्थान में हो तो जन्मान्ध जातक होता है।

१९—चन्द्र-मंगल का योग ६।८।१२ वें स्थान में हो तो गिरने से जातक अन्धा होता है। गुरु और चन्द्रमा का योग ६।८।१२ वें भाव में हो तो ३० वर्ष की आयु के पश्चात् अन्धा होता है।

२०—चन्द्र और सूर्य दोनो तीसरे स्थान में अथवा १।४।७।१०वें स्थान में हो या पापग्रह की राशि में गया हुआ मंगल १।४।७।१०वें स्थान में हो तो रोग से अन्धा होता है।

२१—मकर या कुम्भ का सूर्य ७वें स्थान में हो या शुभग्रह ६।८।१२वें स्थान में गये हो और उन को क्रूरग्रह देखते हो तो जातक अन्धा होता है।

२२—शुक्र और लग्नेश ये दोनो दूसरे और वारहवें स्थान के स्वामी से युक्त हो और ६।८।१२वें स्थान में स्थित हो तो जातक अन्धा होता है।

२३—चौथे, पाँचवें में पापग्रह हो या पापग्रह से दृष्ट चन्द्रमा ६।८।१२वें स्थान में हो तो जातक २५ वर्ष की आयु के वाद काना होता है।

२४—चन्द्र और सूर्य दोनो शुभग्रहो से अदृष्ट होते हुए वारहवे स्थान में स्थित हो या सिंह राशि का शनि या शुक्र लग्न में हो तो जातक मध्यावस्था में अन्धा होता है।

२५—शनि, चन्द्र, सूर्य ये तीनो क्रमश १२।२।८ में स्थित हो तो नेत्रहीन तथा छठे स्थान में चन्द्र, आठवें में रवि और मगल वारहवें में हो तो वात और कफ रोग से जातक अन्धा होता है।

सुख विचार—लग्नेश निर्वल हो कर ६।८।१२वें भाव में हो तो सुख की कमी तथा ६।८।१२वें भावो के स्वामो कमजोर हो कर लग्न में वैठे हो तो सुख की कमी समझना चाहिए। षष्ठेश और व्ययेश अपनो राशि में हों तो भी जातक को सुख का अभाव या अल्पसुख होता है। लग्नेश के निर्वल होने से शारीरिक सुखो का अभाव रहता है। लग्न मे क्रूरग्रह शनि और मंगल के रहने से शरीर रोगी रहता है।

साहस विचार—लग्नेश वलवान् हो या ३।६।११वें भावो में क्रूरग्रहो की राशियाँ हो तो जातक साहसी अन्यथा साहसहीन होता है।

नौकरी योग—व्ययेश १।२।४।५।९।१० भावो में से किसी भी भाव मे हो तो नौकरी योग होता है। इस योग के होने पर ३।६।११ भावो में सौम्य ग्रह—वलवान् चन्द्रमा, बुध, गुरु, शुक्र, केतु हो या इन ग्रहो की राशियाँ हो तो दीवानी महकमे की नौकरी का योग होता है। ३।६।११ भावो में क्रूर-ग्रहो की राशियाँ हो और इन भावो में से किसी भी भाव में स्वगृही ग्रह हो तो पुलिस अफसर का योग होता है। ३।६।११ भावो में से किन्ही भी दो भावो में क्रूरग्रहो की राशियाँ हों और शेष स्थानो में सौम्य ग्रहो की राशियाँ हो, तथा इन स्थानो में भी कोई ग्रह स्वगृही हो और लग्नेश वलवान् हो तो जज या न्यायाधीश का योग होता है। ३।६।११ भावो में क्रूर ग्रहो की राशियाँ हो और इन भावों में कोई ग्रह उच्च का हो तो मजिस्ट्रेट होने का योग होता है।

राज योग

जिस जन्मकुण्डली में तीन अथवा चार ग्रह अपने उच्च या मूल-त्रिकोण मे वली हो तो प्रतापशाली व्यक्ति मन्त्री या राज्यपाल होता है। जिस जातक के पाँच अथवा छह ग्रह उच्च या मूलत्रिकोण में हो तो वह दरिद्रकुलोत्पन्न होने पर भी राज्यशासन मे प्रमुख अधिकार प्राप्त करता है।

पापग्रह उच्च स्थान में हो अथवा ये हो ग्रह मूलत्रिकोण में हो तो व्यक्ति को शासन-द्वारा सम्मान प्राप्त होता है।

जिस व्यक्ति के जन्मसमय मेष लग्न में चन्द्रमा, मंगल और गुरु हो अथवा इन तीनो ग्रहो मे से दो ग्रह मेष लग्न में हो तो निश्चय ही वह व्यक्ति शासन में अधिकार प्राप्त करता है। मेष लग्न में उच्चराशि के ग्रहो द्वारा दृष्ट गुरु स्थित होने से शिक्षामन्त्री पद प्राप्त होता है। मेषलग्न में उच्च का सूर्य हो; दशम में मंगल हो और नवम भाव में गुरु स्थित हो तो व्यक्ति प्रभावक मन्त्री या राज्यपाल होता है।

गुरु[1] अपने उच्च (कर्क) में तथा मगल मेष में हो कर लग्न में स्थित हो अथवा मेप लग्न में ही मगल और गुरु दोनो हो तो व्यक्ति गृह-मन्त्री अथवा विदेशमन्त्री पद को प्राप्त करता है। मेप लग्न में जन्मग्रहण करने वाला व्यक्ति निर्बल ग्रहो के होने पर पुलिस अधिकारी होता है। यदि इस लग्न के व्यक्ति की कुण्डली में क्रूर ग्रह—शनि, रवि और मगल उच्च या मूलत्रिकोण के हो और गुरु नवम भाव में हो तो रक्षामन्त्री का पद प्राप्त होता है।

एकादश भाव में चन्द्रमा,[2] शुक्र और गुरु हो, मेप में मगल हो, मकर मे शनि हो और कन्या में बुध हो तो व्यक्ति को राजा के समान सुख प्राप्त होता है। उक्त प्रकार की ग्रहस्थिति में मेष या कन्या लग्न का होना आवश्यक है।

कर्क लग्न हो और उस में पूर्ण चन्द्रमा स्थित हो, सप्तम भाव में बुध हो, षष्ठ भाव में सूर्य हो, चतुर्थ में शुक्र, दशम में गुरु और तृतीय भाव में शनि-मंगल हो तो जातक शासनाधिकारी होता है। दशम भाव में मगल और गुरु एक साथ हो और पूर्ण चन्द्रमा कर्क राशि में अवस्थित हो तो जातक मण्डलाधिकारी या अन्य किसी पद को प्राप्त करता है।

जन्म-समय में वृष लग्न हो और उस में पूर्ण चन्द्रमा स्थित हो तथा कुम्भ में शनि, सिंह में सूर्य एवं वृश्चिक में गुरु हो तो अधिक सम्पत्ति,

---

१ स्वोच्चे गुरावनिजे क्रियगे विलग्ने, मेषोदये च सकुजे वचसामधीशे।
भूपो भवेदिह स यस्य विपक्षसैन्य तिष्ठेन्न जातु पुरत सचिवा वयस्या ॥
—सारावली, बनारस, सन् १९५३, राजयोगाध्याय, श्लो० ८

२ निशाभर्ता चाये भृगुतनयदेवेज्यसहित,
बुज प्राप्त स्वोच्चे मृगमुखगत सूर्यतनय ।
विलग्ने कन्याया शिशिरकरसूनुर्यदि भवेद्,
तदावश्य राजा भवति बहुविज्ञानकुशल ॥
—वही, श्लो० ९

वाहन एवं प्रभुता की उपलब्धि होती है। जन्मकुण्डली में उच्चराशि का चन्द्रमा और मंगल शासनाधिकारी बनाते हैं।

जन्मस्थान मे मकर लग्न हो[1] और लग्न में शनि स्थित हो तथा मीन में चन्द्रमा, मिथुन में मंगल, कन्या में बुध एवं धनु में गुरु स्थित हो तो जातक प्रतापशाली शासनाधिकारी होता है। यह उत्तम राजयोग है। मीन लग्न होने पर लग्नस्थान में चन्द्रमा, दशम में शनि और चतुर्थ में बुध के रहने से एम० एल० ए० का योग बनता है। यदि उक्त योग में दशम स्थान में गुरु हो और उस पर उच्चग्रह की दृष्टि हो तो एम० पी० का योग बनता है।

जातक को मीन लग्न[2] हो और लग्न में चन्द्रमा, मकर में मंगल, सिंह में सूर्य और कुम्भ में शनि स्थित हो तो वह उच्च शासनाधिकारी होता है। मकर लग्न में मंगल और सप्तम भाव में पूर्ण चन्द्रमा के रहने से जातक विद्वान् शासनाधिकारी होता है। यदि स्वोच्च स्थित[3] सूर्य चन्द्रमा के साथ लग्न मे स्थित हो तो जातक महनीय पद प्राप्त करता है। यह योग ३२ वर्ष की अवस्था के अनन्तर घटित होता है। उच्च राशि का सूर्य मगल के साथ रहने से जातक भूमि प्रबन्ध के कार्यो मे भाग लेता है।

---

१ मृगे मन्दे लग्ने कुमुदवनबन्धुश्च तिमिग-
स्तथा कन्या त्यक्त्वा बुधभवनसंस्थ कुतनय ।
स्थितो नार्या सौम्यो धनुषि सुरमन्त्री यदि भवेद्,
तदा जातो भूप सुरपतिसम प्राप्तमहिमा ॥
—सारावली, राजयोगाध्याय, श्लो० १२

२ उदयति मीने शशिनि नरेन्द्र सकलकलाढ्य क्षितिसुत उच्चे ।
मृगपतिसंस्थे दशशतरश्मौ घटधरगे स्याद्दिनकरपुत्रे ॥—वही, श्लो० १३

३ करोत्युत्कृष्टोच्चद्दिनकृदमृताधीशसहित'
स्थितस्ताद्दग्र्ूप सकलनयनानन्दजनकम् ।
अपूर्वो यद् स्मृत्वा नयनजलसिक्तोऽपि सतत
रिपुस्त्रीशोकाग्निर्ज्वलति हृदयेऽतीव सुतराम् ॥—वही, श्लो० १५

खाद्यमन्त्री या भूमिसुधार मन्त्री होने के लिए जन्म-कुण्डली में मंगल या शुक्र का उच्च होना या मूलत्रिकोण में स्थित रहना आवश्यक है।

तुला राशि में शुक्र, मेष राशि में मगल और कर्क राशि में गुरु स्थित हो तो राज योग होता है। इस योग के होने से प्रादेशिक शासन में जातक भाग लेता है और उस का यश सर्वत्र व्याप्त रहता है। मकर जन्मलग्न-वाला जातक तीन उच्चग्रहो के रहने से राजमान्य होता है।

धनु में चन्द्रमासहित गुरु हो, मगल मकर राशि में स्थित हो अथवा बुध अपने उच्च में स्थित हो कर लग्नगत हो तो जातक शासनाधिकारी या मन्त्री होता है। धनु के पूर्वार्ध में सूर्य और चन्द्रमा तथा स्वोच्चगत शनि लग्न में स्थित हो और मगल भी स्वोच्च में हो तो जातक महाप्रतापी अधिकारी होता है।

सब ग्रह बली हो कर[1] अपने-अपने उच्च में स्थित हो और अपने मित्र से दृष्ट हो तथा उन पर शत्रु की दृष्टि न हो तो जातक अत्यन्त प्रभाव-शाली मन्त्री होता है। चन्द्रमा परमोच्च में स्थित हो और उस पर शुक्र की दृष्टि हो तो जातक निर्वाचन में सर्वदा सफल होता है। इस योग के होने पर पाप ग्रहो का आपोक्लिम स्थान में रहना आवश्यक है।

जन्मलग्नेश और जन्मराशीश दोनों केन्द्र में हो तथा शुभग्रह और मित्र से दृष्ट हो, शत्रु और पापग्रहों की दृष्टि न हो तथा जन्मराशीश से नवम स्थान में चन्द्रमा स्थित हो तो राजयोग होता है। इस योग में जन्म लेने वाला व्यक्ति एम० एल० ए० या एम० पी० बनता है।

---

१ अत्युच्चस्था रुचिरवपुष सर्वं एव ग्रहेन्द्रा
मित्रैर्दृष्टा यदि रिपुदृशां गोचर न प्रयाता।
कुर्युर्नूनं प्रसभमरिभिर्गर्जितैर्वारणाग्र्यै
सेनाश्वौघैश्चलति चलितैर्यस्य भू पार्थिवेन्द्रम्॥—वही, श्लो० ३२

यदि पूर्ण चन्द्रमा[1] जलचर राशि के नवांश में चतुर्थ भाव में स्थित हो और शुभ-ग्रह अपनी राशि के लग्न में हो तथा केन्द्र स्थानो में पापग्रह न हो तो जातक शासनाधिकारी होता है। इस योग में जन्म ग्रहण करने वाला व्यक्ति गुप्तचर या राजदूत के पद पर प्रतिष्ठित होता है।

बुध अपने उच्च[2] में स्थित हो कर लग्न में हो और मीन राशि में गुरु एवं चन्द्रमा स्थित हो तथा मंगलसहित शनि मकर में हो और मिथुन में शुक्र हो तो जातक शासन के प्रबन्ध में भाग लेता है। उक्त योग के होने से निर्वाचन कार्य मे सर्वदा सफलता प्राप्त होती है। उक्त योग पचास वर्ष की अवस्था में ही अपना यथार्थ फल देता है।

मेष लग्न[3] हो, सिंह में सूर्यसहित गुरु, कुम्भ में शनि, वृष में चन्द्रमा, वृश्चिक में मंगल एव मिथुन में बुध स्थित हो तो राजयोग बनता है। इस प्रकार के योग के होने से व्यक्ति किसी आयोग का अध्यक्ष होता है।

गुरु, बुध और शुक्र ये तीनों शनि, रवि और मंगलसहित अपने-अपने स्थान या केन्द्र में हो और चन्द्रमा स्वोच्च में स्थित हो तो जातक इंजीनियर या इसी प्रकार का अन्य अधिकारी होता है। यह योग जितना प्रबल होता है, उस का फलादेश भी उतना ही अधिक प्राप्त होता है।

यदि शुक्र, गुरु और बुध को पूर्ण चन्द्रमा देखता हो, लग्नेश पूर्ण बली

---

१. उदकचरनवांशके सुखस्थ कमलरिपु सकलाभिरामभूर्त्ति'।
उदयति विहगे शुभे स्वलग्ने भवति नृपो यदि केन्द्रगा न पापा ॥
—सारावली, राज०, श्लो० २६

२ बुध स्वोच्चे लग्ने तिमियुगलगावीड्यशशिनौ,
मृगे मन्द सारो जितुमगृहगो दानवसुहृद्।
य एव कुर्यात्स क्षितिभृदहितध्वंसनिरतो,
निरालोकं लोक चलितगजसघातरजसा ॥ —वही, श्लो० २२

3 कार्मुके त्रिदशनायकमन्त्री भानुजो वणिजि चन्द्रसमेत।
मेषगस्तु तपनो यदि लग्ने भूपतिर्भवति सोऽतुलकीर्त्ति ॥ —वही, श्लो० २४

हो तथा द्विस्वभाव लग्न में वर्गोत्तम नवांश हो तो राज योग होता है। इस योग के होने से जातक सरकारी उच्चपद प्राप्त करता है।

वर्गोत्तम नवांश में तीन या चार ग्रह हो और शुभ ग्रह केन्द्र में स्थित हो तो जातक उच्चपद प्राप्त करता है। सेनापति होने का योग भी उक्त ग्रहो से बनता है। एक भी ग्रह अपने उच्च या वर्गोत्तम नवांश में हो तो व्यक्ति को राज कर्मचारी का पद प्राप्त होता है।

यदि समस्त ग्रह शीर्पोदय[१] राशियो में स्थित हो तथा पूर्ण चन्द्रमा कर्क राशि में शत्रु वर्ग से भिन्न वर्ग में शुभ ग्रह से दृष्ट लग्न मे स्थित हो तो व्यक्ति धन-वाहनयुक्त शासनाधिकारी होता है।

जन्मराशीश चन्द्रमा से उपचय—३, ६, १०, ११ में हो और शुभ राशि या शुभ नवांश में केन्द्रगत शुभग्रह हो तथा पापग्रह निर्बल हो तो प्रतापी शासनाधिकारी होता है। इसके समक्ष बड़े-बड़े प्रभावक व्यक्ति नतमस्तक होते है।

जिस ग्रह की उच्च राशि लग्न में हो, वह ग्रह यदि अपने नवांश या मित्र अथवा उच्च के नवांश में केन्द्रगत शुभग्रह से दृष्ट हो तो जन्मकुण्डली में राजयोग होता है। मकर के उत्तरार्द्ध में बलवान् शनि, सिंह में सूर्य, तुला में शुक्र, मेष में मंगल, कर्क में चन्द्रमा और कन्या में बुध हो तो राजयोग बनता है। इस योग के होने से जातक प्रभावशाली शासक होता है। राजनीति में उस की सर्वदा विजय होती है।

लग्नेश केन्द्र में अपने मित्रो से दृष्ट हो और शुभ ग्रह लग्न में हो तो जातक की कुण्डली में राजयोग होता है। इस योग के होने से न्यायाधीश

---

१ शीर्पोदयर्क्षेषु गता समस्ता नो चारिवर्गे स्वगृहे शशाङ्क।
सौम्येक्षितोऽन्यूनकलो विलग्ने दद्यान्महीं रत्नगजाश्वपूर्णाम्॥
—वही, श्लो० ३०

का पद प्राप्त होता है। वृष लग्न[1] हो और उस में गुरु तथा चन्द्रमा स्थित हो, बली लग्नेश त्रिकोण में हो तथा उस पर बलवान् रवि, शनि एवं मंगल की दृष्टि न हो तो सर्वदा चुनाव में विजय प्राप्त होती है। उक्त ग्रहवाले व्यक्ति को कभी भी कोई चुनाव में पराजित नही कर सकता है।

जन्म के समय में सब ग्रह अपनी राशि, अपने नवाश या उच्च नवाश में मित्रो से दृष्ट हो तथा चन्द्रमा पूर्ण बली हो तो जातक उच्च पदाधिकारी होता है। उक्त ग्रहयोग के होने से राजदूत का पद भी प्राप्त होता है।

वर्गोत्तम नवाशगत उच्च राशि स्थित पूर्ण चन्द्रमा को जो-जो शुभग्रह देखता है, उसकी महादशा या अन्तर्दशा में मन्त्रीपद प्राप्त होता है। यदि जन्मलग्नेश और जन्मराशीश बली हो कर केन्द्र में स्थित हो और जलचर राशिगत चन्द्रमा त्रिकोण में हो तो जातक राज्यपाल का पद प्राप्त करता है। जन्म समय में[2] सब ग्रह अपनी राशि में, मित्र के नवाश या मित्र की राशि में तथा अपने नवाश में स्थित हो तो जातक आयोगाध्यक्ष होता है। उक्त योग भी राजयोग है, इस के रहने से सम्मान, वैभव एवं धन प्राप्त होता है।

जन्मकुण्डली मे समस्त ग्रह अपने-अपने परमोच्च में हो और बुध अपने उच्च के नवाश में हो तो जातक चुनाव में विजयी होता है तथा उसे राज-नीति में यश एवं उच्चपद प्राप्त होता है। उक्त ग्रह के रहने से राष्ट्रपति

१, सुरपतिगुरु सेन्दुर्लग्ने वृषे समवस्थितो,
यदि बलयुतो लग्नेशश्च त्रिकोणगृह गत'।
रविशनिकुजैर्बीर्योपेतैर्न युक्तनिरीक्षितो,
भवति स नृप, कीर्त्या युक्तो हताखिलकण्टक'॥ —सा०, रा०, श्लो० ३६

२ स्वगृहे मित्रभागेषु स्वाशे वा मित्रराशिषु।
कुर्वन्ति च नर सूतौ सार्वभौम नराधिपम्॥
परमोच्चगता सर्वे स्वोच्चाशे यदि सोमज'।
त्रैलोक्याधिपतिं कुर्युर्देवदानववन्दितम्॥ —वही, पद्य ४३-४४

का पद भी प्राप्त होता है। चतुर्थ भाव में सप्तर्षि गत नक्षत्र, लग्न में गुरु, सप्तम में शुक्र, दशम में अगस्त्य नक्षत्र हों तो भी राष्ट्रपति का पद प्राप्त होता है।

पूर्ण चन्द्रमा अपने नवांश अथवा अपनी राशि या स्वोच्च राशि में हो तथा बृहस्पति केन्द्र में शुक्र से दृष्ट हो और लग्न में स्थित हो कर अपने नवांश को देखता हो तो राष्ट्रपति का पद प्राप्त होता है। पूर्ण चन्द्रमा पर सब ग्रहो की दृष्टि हो तो जातक दीर्घजीवी होता है और अधिक समय तक शासनाधिकार का उपभोग करता है।

उच्चाभिलाषी[1]—मीन के अन्तिम अंशस्थ सूर्य यदि त्रिकोण में हो, चन्द्रमा कर्क में हो तथा बृहस्पति भी यदि कर्क में हो तो जातक राज्यपाल या मन्त्री होता है। यदि छह ग्रह निर्मलकिरणयुक्त सबल हो कर अपने नवांश में स्थित हों तो मण्डलाधिकारी होने का योग होता है।

यदि समस्त शुभग्रह बलवान्, परिपूर्ण किरण हो कर लग्न में स्थित हो और पापग्रह अस्त हो कर उनके साथ न हों तो जातक प्रतिष्ठित पद प्राप्त करता है। इस योग के होने से सम्मान अत्यधिक प्राप्त होता है।

समस्त शुभ[2] ग्रह पणफर स्थान में हों और पापग्रह द्विस्वभाव राशि में हो तो जातक रक्षामन्त्री होता है। लग्नेश[3] लग्न में हो अथवा मित्र की राशि में मित्र से दृष्ट हो तो जातक राज्य में किसी उच्चपद को प्राप्त करता है। यदि उक्त योग में शुभ राशि लग्न में हो तो जातक को शिक्षा-मन्त्री का पद प्राप्त होता है।

---

१ उच्चाभिलाषी सविता त्रिकोणे स्वर्क्षे शशी जन्मनि यस्य जन्तो।
स शास्ति पृथ्वीं बहुरत्नपूर्णां बृहस्पति कर्कटके यदि स्यात॥
—सा०, रा०, श्लो० ४८

२, शुभपणफरगा शुभप्रदा उभयगृहे यदि पापसञ्चया।
स्वभुजहतरिपुर्महीपति सुरगुरुतुल्यमति प्रकीर्त्तित॥ —वही, श्लो० ५१

३ विलग्ननाथ खलु लग्नसस्थ सुहृद्गृहे मित्रदृशां पथि स्थित।
करोति नाथं पृथिवीतलस्य दुर्वारवैरिघ्नमहोदये शुभे॥ —वही, ५२

पूर्ण चन्द्रमा यदि मेष राशि के नवांश में स्थित हो और उस पर गुरु की दृष्टि हो, अन्य ग्रहों की दृष्टि न हो तथा कोई भी ग्रह बीच में न हो तो जातक शासनाधिकारी होता है। पूर्ण चन्द्रमा लग्न से ३, ६, १०, ११वें स्थानों में गुरु से दृष्ट हो अथवा चन्द्रराशीश १० या ७वें भाव में गुरु से दृष्ट हो तथा अन्य किसी भी ग्रह की दृष्टि न हो तो जातक की कुण्डली में राजयोग होता है। इस योग के होने से व्यक्ति राजनीति में सफलता प्राप्त करता है।

पूर्ण चन्द्रमा[1] उच्च में हो और उस के ऊपर शुभ ग्रहों की दृष्टि हो तो राजयोग होता है। पूर्ण चन्द्रमा सूर्य के नवांश में हो और समस्त शुभ-ग्रह केन्द्र में हों तथा पापग्रहों का योग न हो तो भी राजयोग होता है। चन्द्र, बुध और मंगल उच्चस्थान या अपने-अपने नवांश में हो तथा ये तृतीय और द्वादश भाव में स्थित हों और चन्द्रमासहित गुरु पंचम भाव में स्थित हो तो जातक प्रतापी मन्त्री होता है। कोई भी तीन ग्रह अपने उच्च, नवांश या स्वराशि में स्थित हों और उन पर शुभग्रह की दृष्टि हो तो जातक एम० एल० ए० होता है। तीन शुभग्रहों के उच्चराशिस्थ होने पर जातक को मन्त्रीपद प्राप्त होता है। गुरु और चन्द्रमा के उच्च होने पर शिक्षामन्त्री तथा मंगल, गुरु और चन्द्रमा इन तीनों के उच्च होने पर मुख्यमन्त्री का पद प्राप्त होता है। चार ग्रहों के उच्च होने पर केन्द्र या अन्य बड़ी सभा में उच्चपद प्राप्त होता है।

यदि जन्मसमय में सभी ग्रह योगकारक हों तो जातक राष्ट्रपति होता है। दो-तीन ग्रहों के योगकारक होने से राज्यपाल होने का योग आता है। एक ग्रह भी अपने पंचमांश में हो तो एम० एल० ए० का योग बनता है। वृष राशिस्थ चन्द्रमा को जन्मसमय में बृहस्पति देखता हो तो जातक समस्त

---

१ कुमुदगहनबन्धुं श्रेष्ठमंशं प्रपन्नं यदि बलसमुपेतं पश्यति व्योमचारी।
उदगभवनसंस्थं पापसङ्गो न चैव भवति मनुजनाथं सार्वभौमं सुदेहं।
—वही, श्लो० ५९

पृथिवी का शासक होता है और राजनीति में उसकी कीर्ति बढती है ।

अपने उच्च, त्रिकोण या स्वराशि में स्थित हो कर कोई भी ग्रह चन्द्रमा को देखता हो तो मन्त्रीपद प्राप्त करने में कठिनाई नही होती । उक्त योग राजयोग कहा जाता है और इस के रहने से व्यक्ति राजनीति में सफलता प्राप्त करता है ।

यदि चन्द्रमा अपनी राशि या द्रेष्काण में स्थित हो तो व्यक्ति मण्डल-पति होता है । शुभग्रहो के पूर्ण बलवान् होने पर यह योग अधिक शक्ति-शाली होता है । जन्मसमय में सूर्य अपने नवाश में और चन्द्रमा अपनी राशि में स्थिति हो तो जातक महादानी और उच्च पदाधिकारी होता है ।

लग्न में शनि और सप्तम भाव में नवोदित बृहस्पति हो और उस पर शुक्र की दृष्टि हो तो व्यक्ति मुखिया होता है । पचायत का प्रधान भी बनता है । शुक्र, रवि, चन्द्रमा तीनो एक स्थान में गुरु से दृष्ट हों तो व्यक्ति गाँव का मुखिया होता है और उस का सम्मान सर्वत्र किया जाता है ।

शुक्र, बुध और मंगल ये तीनो ग्रह लग्न में स्थित हो और चन्द्रमा से युक्त ग्रह सप्तम भाव में हो तथा उन पर शनि की दृष्टि हो तो जातक यशस्वी शासक बनता है । पूर्ण बली बृहस्पति मगल के नवाश में हो और उस पर मगल की ही दृष्टि हो तथा मेष स्थित सूर्य दशम भाव में स्थित हो तो जातक मन्त्रीपद प्राप्त करता है । भूमि का प्रबन्ध एव भूमि से आमदनी की व्यवस्था भी उक्त योगवाला करता है । इजीनियर बनने वाले योगों में भी उक्त योग की गणना की गयी है ।

शुक्र, चन्द्र और रवि तृतीय भाव में हों, मगल सप्तम भाव में स्थित हो गुरु नवम में स्थित हो और लग्न में सर्वोत्तम नवाश स्थित हो तो जातक मन्त्री होता है । यह योग गुरु की महादशा और मगल की अन्तर्दशा में घटित होता है । जन्मसमय में बुध, गुरु और शुक्र बली हो कर नवम भाव में स्थित हो और मित्रग्रहो की दृष्टि इन पर हो तो जातक उच्च शासनाधिकारी होता है । नवम भाव में तीन या चार उच्चग्रहो के

रहने से राजनीति में पूर्ण सफलता प्राप्त होती है। चन्द्रमा तृतीय या दशम भाव में स्थित हो और गुरु अपने उच्च में हो तो सर्वसम्पत्तियुक्त शासनाधिकार प्राप्त होता है।

उच्च का गुरु केन्द्रस्थान में और शुक्र दशम भाव में स्थित हो तो व्यक्ति राजनीति में सफलता प्राप्त करता है। चुनाव में उसे सर्वदा विजय मिलती है। पूर्ण चन्द्रमा कर्क में हो तथा बली, बुध, गुरु और शुक्र अपने नवांश में स्थित हो कर चतुर्थ भाव में हो और इन ग्रहों पर सूर्य की दृष्टि हो तो साधारण व्यक्ति भी मन्त्रीपद प्राप्त करता है। इस व्यक्ति के तेज एवं बौद्धिक प्रखरता के कारण बडे-बडे महानुभाव इस से प्रभावित रहते हैं और समस्त कार्यों में इसे सफलता प्राप्त होती है। मूलत्रिकोण स्थित सूर्य दशम भाव में हो और शुक्र, गुरु तथा चन्द्र स्वराशि में स्थिति हो कर तीसरे, छठे और ग्यारहवें भाव में स्थित हो तो जातक उच्चश्रेणी का राजनीति-विशारद होता है। उसे चुनाव में स्वय ही सफलता प्राप्त होती है।

बली सूर्य यदि गुरु के साथ अपने उच्च में स्थित हो कर दशम भाव में हो; शुक्र अपने नवांश में बली हो कर नवम भाव में स्थित हो, लग्न में शुभवर्ग या शुभग्रह स्थित हो और उन पर बुध की दृष्टि हो तो व्यक्ति चुनाव में विजय प्राप्त करता है। इस योग के होने से उसे मन्त्रीपद भी प्राप्त होता है। पूर्ण चन्द्रमा वृष में हो और उस को तुलाराशि स्थित शुक्र पूर्ण दृष्टि से देख रहा हो तथा बुध चतुर्थ भाव में स्थित हो तो जातक एम० एल० ए० होता है। मंगल अपने उच्च में हो और उस पर रवि, चन्द्र एवं गुरु की दृष्टि हो तो जातक उत्तम सुख प्राप्त करता है। उक्त योग के रहने से एम० पी० भी जातक होता है। मंगल उच्च राशि का दशम भाव में हो तो जातक तेजस्वी होता है। इस प्रकार के मंगल योग से भूमि व्यवस्थापक भी बनता है।

एक राशि के अन्तर से छह राशियों में समस्त ग्रह हों तो चक्रयोग होता है। इस में जन्म लेने वाला व्यक्ति मन्त्रीपद प्राप्त करता है। यदि

समस्त ग्रह १०।७।४।१ भावो में हो तो नगरयोग होता है। इस योग में उत्पन्न व्यक्ति निश्चयतः मन्त्रीपद प्राप्त करता है।

समस्त शुभग्रह १।४।७ में हो और मंगल, रवि तथा शनि ३।६।११ भाव में हो तो जातक को न्यायी योग होता है। इस योग में जन्म लेने वाला व्यक्ति चुनाव में सर्वदा विजयी होता है। समस्त शुभग्रह ९।११वें भाव में हो तो कलश नामक योग होता है। इस योगवाला व्यक्ति राज्य-पाल या राष्ट्रपति होता है।

यदि तीन ग्रह ३।५।११वें भाव में हों; दो ग्रह षष्ठ भाव में और शेष दो ग्रह सप्तम भाव में हो तो पूर्णकुम्भ नामक योग होता है। इस योग-वाला व्यक्ति उच्च शासनाधिकारी अथवा राजदूत होता है।

लग्न में बलवान् शुभग्रह स्थित हो तथा अन्य शुभग्रह १।२।९वें भाव में स्थित हो और शेष ग्रह ३।६।१०।११वें भाव में स्थित हों तो जातक प्रतिष्ठित पद प्राप्त करता है। स्वराशिस्थ बृहस्पति चतुर्थ भाव में और पूर्ण चन्द्रमा ९वें भाव में तथा शेष ग्रह १।३वें भाव में स्थित हो तो जातक बुद्धिमान्, धनी और वाहनो से युक्त होता है।

उच्चराशि का चन्द्रमा लग्न में, गुरु धन भाव में, शुक्र तुला में, बुध कन्या में, मगल मेष में और सूर्य सिंह राशि में हो तो जातक एम० एल० ए० होता है। चन्द्रमा और रवि दशम भाव में, शनि लग्न में, गुरु चतुर्थ में और शुक्र, बुध तथा मगल ११वें भाव में हो तो व्यक्ति अत्यन्त शक्ति-शाली मन्त्री होता है।

मकर से भिन्न लग्न में बृहस्पति हो तो व्यक्ति को मोटर आदि उत्तम सवारी की प्राप्ति होती है। लग्न में मंगल, दशम में शनि-रवि, सप्तम में गुरु, नवम में शुक्र, एकादश में बुध और चतुर्थ भाव में चन्द्रमा हों तो व्यक्ति यशस्वी शासक होता है। क्षीण चन्द्रमा भी उच्चस्थ हो तो व्यक्ति को राजनीति में प्रवीण बनाता है। पूर्ण चन्द्रमा उच्चराशि का होने पर व्यक्ति को उत्तम और प्रतिष्ठित पद प्राप्त होता है। अन्य ग्रह बलहीन

हों तो भी केवल चन्द्रमा के शक्तिशाली होने से व्यक्ति की शक्ति का विकास होता है।

गुरु और शुक्र अपने-अपने उच्च में स्थित होकर १।२।४।७।९।१०।११वें भाव में स्थित हो तो व्यक्ति राज्यपाल होता है। इस योग के रहने से जातक मुख्यमन्त्री का भी पद प्राप्त करता है।

शुभ ग्रह दिग्बल और स्थानबल से युक्त होकर केन्द्र में स्थित हो और उन पर पापग्रह की दृष्टि न हो तो जातक प्रतिष्ठित शासनाधिकारी होता है।

बलवान् गुरु लग्न में, शुक्लपक्ष की अष्टमी के अनन्तर का चन्द्रमा ११वें भाव में बुध से दृष्ट हो और चन्द्रमा से द्वितीय स्थान में सूर्य हो तो जातक मुख्यमन्त्री होता है। वाहन, धन एवं वैभव आदि विपुल सामग्री उसे प्राप्त होती है। उच्च का गुरु और चन्द्र मुख्यमन्त्री बनानेवाले योगों में सर्व प्रधान है।

मेष लग्न में रवि, चन्द्र और मंगल हो, वृष में शुक्र, शनि और बुध हो तथा धनुराशिस्थ गुरु नवम भाव में स्थित हो अथवा सूर्य पूर्ण बली होकर अपने परमोच्च में स्थित हो तो जातक यशस्वी और प्रतापी होता है। राजनीति में उस के दाँव-पेंच को समझनेवाले बहुत ही कम व्यक्ति होते हैं।

गुरु से दृष्ट रवि, चन्द्रमा से दृष्ट शुक्र, मंगल से दृष्ट शनि चर राशियों में स्थित हो तो जातक रक्षामन्त्री या गृहमन्त्री का पद प्राप्त करता है। कन्या लग्न में बुध, मीन में गुरु, तृतीय स्थान में बली मंगल, षष्ठ भाव में शनि और चतुर्थ स्थान में शुक्र स्थित हो तो जातक चुनाव में निश्चयतः सफलता प्राप्त करता है। सभी प्रकार के चुनावों में वह विजयी होता है।

मकर लग्न में शनि, सप्तम में सूर्य, अष्टम में शुक्र, वृश्चिक राशि में मंगल और कर्क राशि में चन्द्रमा स्थित हो तो जातक उच्च शासनाधिकार प्राप्त करता है। मकर में शनि, सप्तम में चन्द्र और गुरु, कन्या में बुध और शुक्र अथवा कन्या में स्थित बुध शुक्र-द्वारा दृष्ट हो तो जातक मण्डलाधिकारी होता है।

शनि, मंगल और रवि ३।६।११वें भाव में स्थित हो, सिंह का गुरु एकादश भाव में स्थित हो और उस पर शुभ ग्रहों की दृष्टि हो तो जातक शासनाधिकारी होता है।

जन्मसमय में चन्द्रमा कुम्भ के १५वें अंश में, गुरु धनु के २०वें अंश में, सूर्य या बुध सिंह के १५वें अंश में, चन्द्रमा मकर के ५वें अश में; गुरु कर्क के ५वे अश में, मंगल मेष के ७वें अंश या मिथुन के २१वें अश में स्थित हो तो जातक राजा के तुल्य प्रतापी होता है। यदि समस्त ग्रह चन्द्रमा से ३।६।१०।११वे भाव में स्थित हों तथा मगल से गुरु, चन्द्र और सूर्य क्रमश ३।५।९वें स्थान मे स्थित हो तो जातक कुबेर के तुल्य धनी होता है। गुरु से शनि, सूर्य और चन्द्रमा क्रमश २।४।१०वें स्थान में स्थित हों और शेष ग्रह ३।११वे भाव में हों तो निश्चयत. जातक को शासनाधिकार प्राप्त होता है।

रज्जु योग

सब ग्रह चर राशियो मे हो तो रज्जुयोग होता है। इस योग में उत्पन्न मनुष्य भ्रमणशील, सुन्दर, परदेश जाने में सुखी, क्रूर, दुष्टस्वभाव एवं स्थानान्तर मे उन्नति करने वाला होता है।

मुसल योग —

समस्त ग्रह स्थिर राशियो में हो तो मुसल योग होता है। इस योग में जन्म लेने वाला जातक मानी, ज्ञानी, धनी, राजमान्य, प्रसिद्ध, बहुत पुत्रवाला, एम० एल० ए० एवं शासनाधिकारी होता है।

नल योग

समस्त ग्रह द्विस्वभाव राशियो में हों तो नलयोग होता है। इस योग वाला जातक हीन या अधिक अगवाला, धनसग्रहकारी, अतिचतुर, राजनैतिक दाव-पेचो में प्रवीण एवं चुनाव में सफलता प्राप्त करता है।

माला योग

बुध, गुरु और शुक्र ४।७।१०वें स्थान में हो और शेष ग्रह इन स्थानो से भिन्न स्थानो मे हो तो माला योग होता है। इस योग के होने से जातक धनी, वस्त्राभूषण युक्त, भोजनादि से सुखी, अधिक स्त्रियों से प्रेम करने वाला एवं एम० पी० होता हैं। पंचायत के निर्वाचन में भी उसे पूर्ण सफलता मिलती है।

सर्प योग

रवि, शनि और मंगल ४।७।१०वे स्थान में हों और चन्द्र, गुरु, शुक्र और बुध इन स्थानो से भिन्न स्थानो मे स्थित हो तो सर्प योग होता है। इस योग के होने से जातक कुटिल, निर्धन, दु:खी, दीन, भिक्षाटन करने वाला, चन्दा माँगकर खा जाने वाला एवं सर्वत्र निन्दा प्राप्त करने वाला होता है।

गदा योग

समीपस्थ दो केन्द्र १।४ या ७।१० में समस्त ग्रह हो तो गदा नामक योग होता है। इस योगवाला जातक धनी, धर्मात्मा, शास्त्रज्ञ, संगीतप्रिय और पुलिस विभाग में नौकरी प्राप्त करता हैं। इस योगवाले जातक का भाग्योदय २८ वर्ष की अवस्था मे होता है।

शकट योग

लग्न और सप्तम मे समस्त ग्रह हो तो शकट योग होता है। इस योगवाला रोगी, मूर्ख, ड्रायवर, स्वार्थी एवं अपना काम निकालने में बहुत प्रवीण होता है।

पक्षी योग

चतुर्थ और दशम भाव में समस्त ग्रह हों तो विहग—पक्षी योग होता है। इस योग में जन्म लेनेवाला जातक राजदूत, गुप्तचर, भ्रमणशील,

ढीठ, कलहप्रिय एव सामान्यत. धनी होता है। शुभ ग्रह उक्त स्थानो में हो और पाप ग्रह ३।६।११वें स्थान में हो तो जातक न्यायाधीश और मण्डलाधिकारी होता है।

शृंगाटक योग

समस्त ग्रह १।५।९वें स्थान मे हो तो शृंगाटक योग होता है। इस योगवाला जातक सैनिक, योद्धा, कलहप्रिय, राज कर्मचारी, सुन्दर पत्नी-वाला एवं कर्मठ होता है। वीरता के कार्यों में इसे सफलता प्राप्त होती है। इस योगवाले का भाग्य २३ वर्ष की अवस्था से उदय हो जाता है।.

हल योग

समस्त ग्रह २।६।१०वें स्थान या ३।७।११वें स्थान अथवा ४।८।१२वें स्थान में हो तो हल योग होता है। इस योग में जन्म लेनेवाला जातक बहुभक्षी, दरिद्र, कृपक, दु खी, और भाई-बन्धुओ से युक्त होता है। कृपि-सम्बन्धी शिक्षा में इस जातक को विशेप सफलता प्राप्त होती है।

वज्र योग

समस्त शुभ ग्रह लग्न और सप्तम स्थान में स्थित हो अथवा समस्त पापग्रह चतुर्थ और दशम भाव में स्थित हो तो वज्र योग होता है। इस योगवाला बाल्य और वार्धक्य अवस्था में सुखी, शूर-वीर, सुन्दर, नि स्पृह, मन्द भाग्यवाला, पुलिस या सेना में नौकरी करनेवाला एव खल प्रकृति वाला होता है।

यव योग

समस्त पाप ग्रह लग्न और सप्तम भाव में हो अथवा समस्त शुभ ग्रह चतुर्थ और दशम भाव में हो तो यव योग होता है। इस योगवाला जातक व्रत-नियम-सुकर्म में तत्पर, मध्यावस्था में सुखी, धन-पुत्र से युक्त, दाता, स्थिरबुद्धि एवं चौबीस वर्ष की अवस्था से सुख-सम्पत्ति प्राप्त करने वाला होता है।

कमल योग

समस्त ग्रह १।४।७।१०वें स्थान में हों तो कमल योग होता है। इस योग का जातक धनी, गुणी, दीर्घायु, यशस्वी, सुकृत करने वाला, विजयी, मन्त्री या राज्यपाल होता है। कमल योग बहुत ही प्रभावक योग है। इस योग में जन्म लेने वाला व्यक्ति शासनाधिकारी अवश्य बनता है। यह सभी के ऊपर शासन करता है। बड़े-बड़े व्यक्ति उस से सलाह लेते हैं।

वापी योग

समस्त ग्रह केन्द्र स्थानों को छोड़ पणफर २।५।८।११वें स्थान तथा आपोक्लिम ३।६।९।१२वें भाव में हों तो वापी योग होता है। इस योग में जन्म लेनेवाला व्यक्ति धन-संग्रह में चतुर, सुखी, पुत्र-पौत्रादि से युक्त, कलाप्रिय और मण्डलाधिकारी होता है।

यूप योग

लग्न से लगातार चार स्थानों में सब ग्रह हों तो यूप योग होता है। इस योगवाला आत्मज्ञानी, यज्ञकर्त्ता, स्त्री से सुखी, बलवान्, व्रत-नियम को पालन करने वाला और विशिष्ट व्यक्तित्व से युक्त होता है। यूप योग में जन्म लेने वाला व्यक्ति पचायती होता है अर्थात् पंचायत के फैसले करने में उसे अधिक सफलता प्राप्त होती है। जिस स्थान पर आपसी विवाद उपस्थित होते हैं, उस स्थान पर वह उपस्थित हो यथार्थ निर्णय कर देने का प्रयास करता है।

शर योग

चतुर्थ स्थान से आगे के चार स्थानों में ग्रह स्थित हों तो शर योग होता है। इस योग वाला व्यक्ति जेल का निरीक्षक, शिकारी, कुत्सित कर्म करनेवाला, पुलिस अधिकारी एवं नीच कर्मरत दुराचारी होता है। सैनिक व्यक्तियों की जन्मपत्री में भी यह योग होता है।

शक्ति योग

सप्तम भाव से आगे के चार भावो में समस्त ग्रह हो तो शक्ति योग होता है। इस योग के होने से जातक धनहीन, निष्फल जीवन, दु खी, आलसी, दीर्घायु, दीर्घसूत्री, निर्दय और छोटा व्यापारी होता है। शक्ति-योग में जन्म लेने वाला व्यक्ति छोटे स्तर की नौकरी भी करता है।

दण्ड योग

दशम भाव से आगे के चार भावो में समस्त ग्रह हों तो दण्ड योग होता है। इस योग वाला व्यक्ति निर्धन, दु खो और सब प्रकार से नीच कर्म करने वाला होता है। इसे जीवन में कभी सफलता प्राप्त नहीं होती है।

नौका योग

लग्न से लगातार सात स्थानो में सातों ग्रह हो तो नौका योग होता है। इस योग में जन्म लेनेवाला व्यक्ति नौसेना का सैनिक, स्टीमर या जलीय जहाज का चालक, कप्तान, पनडुब्बी में प्रवीण और मोती-सीप आदि निकालने की कला में प्रवीण होता है। धनिक होता है, पर अपनी कजूस प्रकृति के कारण बदनाम रहता है।

कूट योग

चतुर्थ भाव से आगे के सात स्थानो में सभी ग्रह हो तो कूट योग होता है। इस योग में जन्म लेनेवाला व्यक्ति जेल कर्मचारी, धनहीन, शठ, क्रूर, पुल या भवन बनाने की कला में प्रवीण होता है।

छत्र योग

सप्तम भाव से आगे के सात स्थानो में समस्त ग्रह हो तो छत्र योग होता है। इस योगवाला व्यक्ति धनी, लोकप्रिय, राजकर्मचारी उच्चपदाधिकारी, सेवक, परिवार के व्यक्तियो का भरण-पोषण करने वाला एवं अपने कार्य में ईमानदार होता है।

चाप योग

दशम भाव से आगे के सात स्थानो में सभी ग्रह हो तो चाप योग होता है। इस योगवाला व्यक्ति जेलर, गुप्तचर, राजदूत, चोर, वन का अधिकारी, भाग्यहीन और झूठ बोलनेवाला होता है। इस योग का एक प्रभाव यह भी होता है कि पुलिस विभाग से अवश्य सम्बन्ध रहता है। तन्त्र-मन्त्र की सिद्धि भी इस योग वाले व्यक्ति को विशेष रूप से होती है।

चक्र योग

लग्न से आरम्भ कर एकान्तर से छह स्थानो में—प्रथम, तृतीय, पंचम, सप्तम, नवम और एकादश भाव में सभी ग्रह हो तो चक्र योग होता है। इस योग वाला जातक राष्ट्रपति या राज्यपाल होता है। चक्र योग राज-योग का ही एक रूप है, इस के होने से व्यक्ति राजनीति मे दक्ष होता है और उस का प्रभुत्व बीस वर्ष की अवस्था के पश्चात् बढने लगता है।

समुद्र योग

द्वितीय भाव से एकान्तर कर छह राशियो में २।४।६।८।१०।१२वें स्थान में समस्त ग्रह हो तो समुद्र योग होता है। इस योग के होने से जातक धनी, राजमान्य, भोगी, लोकप्रिय, पुत्रवान् और वैभवशाली होता है।

गोल योग

समस्त ग्रह एक राशि में हो तो गोल योग होता है। इस योगवाला बली, पुलिस या सेना में नौकरी करने वाला, दीन, मलीन, विद्या-ज्ञान शून्य एवं चालाकी से कार्य करने वाला होता है।

युग योग

दो राशियो मे समस्त ग्रह हो तो युगयोग होता है। इस योग वाला पाखण्डी, निर्धन, समाज से बाहर, माता-पिता के सुख से रहित, धर्महीन एवं अस्वस्थ रहता है।

शूल योग

तीन राशियों में समस्त ग्रह हो तो शूल योग होता है। यह योग जातक को तीक्ष्ण स्वभाव, आलसी, निर्धन, हिंसक, शूर, युद्ध में विजयी और राजकर्मचारी बनाता है।

केदार योग

चार राशियों में समस्त ग्रह हों तो केदार योग होता है। इस योग के होने से जातक उपकारी, कृषक, सुखी, सत्यवक्ता, धनवान् और भूमि तथा कृषि के सम्बन्ध में नये कार्य करने वाला होता है।

पाश योग

पाँच राशियो में समस्त ग्रह हों तो पाश योग होता है। इस योग के होने से जातक बहुत परिवार वाला, प्रपची, बन्धनभागी, कारागृह का अधिपति, गुप्तचर, पुलिस या सेना की नौकरी करने वाला होता है।

दाम योग

छह राशियो में समस्त ग्रह हों तो दाम योग होता है। इस योग के होने से जातक परोपकारी, परम ऐश्वर्यवान्, प्रसिद्ध, पुत्र-रत्नादि से पूर्ण होता है। दाम योग राजनीति में पूर्ण सफलता नही देता है।

वीणा योग

सात राशियों में समस्त ग्रह स्थित हो तो वीणा योग होता है। इस योग वाला जातक गीत, नृत्य, वाद्य से स्नेह करता है। धनी, नेता और राजनीति में सफल संचालक बनता है।

गजकेसरी योग

लग्न अथवा चन्द्रमा से यदि गुरु केन्द्र में हो और केवल शुभ ग्रहो से दृष्ट या युत हो तथा अस्त, नीच और शत्रु राशि में गुरु न हो तो गज-केसरी योग होता है। इस योग वाला जातक मुख्य मन्त्री बनता है।

अमलकीर्ति योग

लग्न या चन्द्रमा से दशम भाव में केवल शुभ ग्रह हो, तो अमलकीर्ति योग होता है। इस योग मे उत्पन्न मनुष्य राजमान्य, भोगी, दानी, बन्धुओ का प्रिय, परोपकारी, धर्मात्मा और गुणी होता है।

पर्वत योग

यदि सप्तम और अष्टम भाव में कोई ग्रह नही हो अथवा ग्रह हो भी तो कोई शुभ ग्रह हो तथा सब शुभ ग्रह केन्द्र में हो तो पर्वत नामक योग होता है। इस योग में उत्पन्न व्यक्ति भाग्यवान्, वक्ता, शास्त्रज्ञ, प्राध्यापक, हास्य-व्यग्य लेखक, यशस्वी, तेजस्वी और मुखिया होता है। मुख्यमन्त्री बनाने वाले योगो मे भी पर्वत योग की गणना है।

काहल योग

लग्नेश बली हो; सुखेश और बृहस्पति परस्पर केन्द्रगत हो अथवा सुखेश और दशमेश एक साथ उच्च या स्वराशि में हों तो काहल योग होता है। इस योग में उत्पन्न व्यक्ति बली, साहसी, धूर्त, चतुर और राजदूत होता है। काहल योग राजनैतिक अभ्युदय का भी सूचक है।

चामर योग

लग्नेश अपने उच्च मे हो कर केन्द्र में हो और उस पर गुरु की दृष्टि हो अथवा शुभ ग्रह लग्न, नवम, दशम और सप्तम भाव में हो तो चामर योग होता है। इस योग में जन्म लेने वाला राजमान्य, मन्त्री, दीर्घायु, पण्डित, वक्ता और समस्त कलाओ का ज्ञाता होता है।

शंख योग

लग्नेश बली हो और पंचमेश तथा षष्ठेश परस्पर केन्द्र में हो अथवा भाग्येश बली हो तथा लग्नेश और दशमेश चर राशि में हो तो शंख योग होता है। इस योग में उत्पन्न व्यक्ति दयालु, पुण्यात्मा, बुद्धिमान्, सुकर्मा

और चिरजीवी होता है। मन्त्री या मुख्यमन्त्री के पद भी इसे प्राप्त होते हैं।

भेरी योग

नवमेश वली हो और १।२।७।१२वें भाव मे सव ग्रह हो अथवा भाग्येश वली हो और शुक्र, गुरु और लग्नेश केन्द्र में हों तो भेरी योग होता है। इस योग के होने से व्यक्ति सुखी, उन्नतिशील, कीर्तिवान्, गुणी, आचारवान् और सभी प्रकार के अभ्युदयों को प्राप्त करने वाला होता है।

मृदंग योग

लग्नेश वली हो और अपने उच्च या स्वगृह में हो तथा अन्य ग्रह केन्द्र स्थानो में स्थित हों तो मृदग योग होता है। इस योग के होने से व्यक्ति शासनाधिकारी होता है।

श्रीनाथ योग

सप्तमेश दशम भाव में स्वोच्च का हो और दशमेश नवमेश से युक्त हो तो श्रीनाथ योग होता है। इस योग में जन्म लेने वाला व्यक्ति एम० एल० ए०, एम० पी० तथा मन्त्री बनता है।

शारद योग

दशमेश पचम में, वुध केन्द्र में और रवि अपनी राशि में हो अथवा चन्द्रमा से ९वें भाव में गुरु या वुध हो तथा मंगल एकादश भाव में स्थित हो तो शारद योग होता है। इस योग में जन्म लेने वाला धन, स्त्री-पुत्रादि से युक्त, सुखी, विद्वान्, राजमान्य और धर्मात्मा होता है।

मत्स्य योग

लग्न और नवम भाव में शुभ ग्रह तथा पंचम मे शुभ और अशुभ दोनो प्रकार के ग्रह और चतुर्थ, अष्टम में पापग्रह हों तो मत्स्य योग होता है।

कूर्म योग

शुभ ग्रह ५।६।७वें भाव में और पापग्रह १।३।११वें स्थान में अपने-अपने उच्च में हो तो कूर्मयोग होता है। इस योग में जन्म लेने वाला व्यक्ति राज्यपाल, मन्त्री, धीर, धर्मात्मा, मुखिया, गुणी, यशस्वी, उपकारी, सुखी और नेता होता है।

खड्ग योग

नवमेश द्वितीय में और द्वितीयेश नवम भाव में तथा लग्नेश केन्द्र या त्रिकोण में हो तो खड्ग योग होता है। इस योग में जन्म लेने वाला व्यक्ति बुद्धिमान्, शास्त्रज्ञ, कृतज्ञ, चतुर, धनी, वैभव-युक्त और शासनाधिकारी होता है।

लक्ष्मी योग

लग्नेश बलवान् हो और भाग्येश अपने मूलत्रिकोण, उच्च या स्वराशि में स्थित हो कर केन्द्रस्थ हो तो लक्ष्मी योग होता है। इस योग वाला जातक पराक्रमी, धनी, यशस्वी, मन्त्री, राज्यपाल एवं गुणी होता है।

कुसुम योग

स्थिर राशि लग्न में हो, शुक्र केन्द्र में हो और चन्द्रमा त्रिकोण में शुभ ग्रहों से युक्त हो तथा शनि दशम स्थान में हो तो कुसुम योग होता है। इस योग में उत्पन्न व्यक्ति सुखी, भोगी, विद्वान्, प्रभावशाली, मन्त्री, एम० पी०, एम० एल० ए० आदि होता है।

कलानिधि योग

बुध शुक्र से युत या दृष्ट गुरु २।५वें भाव में हो या बुध शुक्र की राशि में स्थित हो तो कलानिधि योग होता है। इस योग वाला गुणी, राजमान्य, सुखी, स्वस्थ, धनी और विद्वान् होता है।

कल्पद्रुम योग

लग्नेश तथा लग्नेश जिस राशि में हो उस राशि का स्वामी तथा वह जिस राशि में हो उस का स्वामी और उन के नवांशपति ये सब यदि केन्द्र, त्रिकोण या अपने-अपने उच्च में हो तो कल्पद्रुम योग होता है। इस योग में जन्म लेने वाला व्यक्ति ३२ वर्ष की अवस्था से जीवन के अन्तिम क्षण तक मन्त्री पद पर प्रतिष्ठित रहता है। सेनाध्यक्ष का पद भी कल्पद्रुम योग वाले व्यक्ति को प्राप्त होता है।

लग्नाधि योग

लग्न से ७।८वें स्थान में शुभग्रह हो और उन पर पापग्रह की दृष्टि या योग न हो तो लग्नाधि नामक योग होता है। इस योग वाला व्यक्ति महान् विद्वान्, महात्मा, सुखी और धन-सम्पत्ति युक्त होता है। राजनीति में भी यह व्यक्ति अद्भुत सफलता प्राप्त करता है। लग्नाधि योग के होने पर जातक को सासारिक सभी प्रकार के सुख और ऐश्वर्य प्राप्त होते हैं।

अधि योग

चन्द्रमा से ६।७।८वे भाव में समस्त शुभग्रह हो तो अधियोग होता है। इस योग में जन्म लेने वाला मन्त्री, सेनाध्यक्ष, राज्यपाल आदि पदो को प्राप्त करता है। अधियोग के होने से व्यक्ति अध्ययनशील होता है और वह अपनी बुद्धि तथा तेज के प्रभाव से समस्त व्यक्तियों को आकृष्ट करता है।

सुनफा योग

सूर्य को छोड कर चन्द्रमा से द्वितीय स्थान में कोई शुभ ग्रह हो तो सुनफा योग होता है। इस योग के होने से जातक सुखी होता है, उसे धन-धान्य-ऐश्वर्य आदि प्राप्त होते है।

अनफा योग

चन्द्रमा से द्वादश भाव में समस्त शुभग्रह हो तो अनफा योग होता है।

इस योग के होने पर व्यक्ति चुनाव-कार्यों में सफलता प्राप्त करता है। यह अपने भुजबल से धन, यश और प्रभुत्व का अर्जन करता है।

दुरधरा योग

चन्द्रमा से द्वितीय और द्वादश भाव में समस्त शुभग्रह हों तो दुरधरा योग होता है। इस योग के प्रभाव से जातक दानी, धनवाहनयुक्त, नौकर-चाकर से विभूषित, राजमान्य एवं प्रतिष्ठित होता है।

केमद्रुम योग

यदि चन्द्रमा के साथ में या उस से द्वितीय, द्वादश स्थान में तथा लग्न से केन्द्र में सूर्य को छोड़ कर अन्य कोई ग्रह नही हो तो केमद्रुम योग होता है। इस योग में जन्म लेने वाला व्यक्ति दरिद्र और निन्दित होता है।

महाराज योग

लग्नेश पंचम मे पंचमेश लग्न में हो, आत्मकारक और पुत्रकारक दोनो लग्न या पंचम में हो; अपने उच्च, राशि या नवाश में तथा शुभग्रह से दृष्ट हो तो महाराज योग होता है। इस योग में जन्म लेने वाला व्यक्ति निश्चयत. राज्यपाल या मुख्यमन्त्री होता है।

धन-सुख योग

दिन में जन्म होने पर चन्द्रमा अपने या अधिमित्र के नवांश मे स्थित हो और उसे गुरु देखता हो तो धन-सुख योग होता है। इसी प्रकार रात्रि मे जन्म होने पर चन्द्रमा को शुक्र देखता हो तो धन-सुख योग होता है। यह नामानुसार फल देता है।

द्वादश भावों में लग्नेश का फल

लग्नेश लग्न में हो तो जातक नीरोग, दीर्घायु, बलवान्, जमींदार, कृषक और परिश्रमी; द्वितीय मे हो तो धनवान्, लब्धप्रतिष्ठ, दीर्घजीवी, स्थूल, सत्कर्मनिरत, नायक, नेता और कृतज्ञ; तृतीय मे हो तो सद्बन्धु-

युत, उत्तम मित्रवान्, धार्मिक, दानी, शूर, बलवान्, समाज में आदर पाने वाला और साहसी, चौथे भाव में हो तो राजप्रिय, दीर्घजीवी, माता-पिता की भक्ति करने वाला, अल्पभोजी, पिता से धन पाने वाला, पुरुषार्थी और कार्यरत, पाँचवें भाव में हो तो सुन्दर पुत्र वाला, त्यागी, लब्धप्रतिष्ठ, धनिक, विनीत, विद्वान्, दीर्घायु और कर्तव्यनिष्ठ, छठे भाव में हो तो बलवान्, कृपण, धनवान्, शत्रुनाशक, नीरोग और सत्कार्यरत, सातवें भाव में हो तो तेजस्वी, शीलवान्, सुशीला, गुणवती एवं सुन्दरी भार्या का पति और भाग्यवान्; आठवें भाव में हो तो कृपण, धन-संग्रहकर्ता, दीर्घजीवी, लग्नेश यदि क्रूर ग्रह हो तो कटुवक्ता, क्षीणशरीरी तथा सौम्य ग्रह हो तो पुष्ट देह वाला और नीरोग, नौवें भाव में हो तो पुण्यवान्, पराक्रमी, तेजस्वी, स्वाभिमानी, सुशील, विनीत, धार्मिक, व्रती और लब्धप्रतिष्ठ, दसवें भाव में हो तो विद्वान्, सुशील, गुरुजन-सेवा में रत, राज्य से लाभ प्राप्त करने वाला और समाज-प्रसिद्ध; ग्यारहवें भाव में हो तो श्रेष्ठ, आजीविका वाला, सुखी, प्रसिद्ध, तेजस्वी, बली, परिश्रमी और साधारण धनी एवं बारहवें भाव में हो तो कठोर प्रकृति, व्यर्थ बकवाद करने वाला, प्रसन्नचित्त, धोखेबाज़, प्रवासी, रोगी और अविश्वासी होता है।

द्वितीय भाव विचार

इस भाव का विचार द्वितीयेश, द्वितीय भाव की राशि और इस स्थान पर दृष्टि रखने वाले ग्रहों के सम्बन्ध से करना चाहिए। द्वितीयेश शुभग्रह हो या द्वितीय भाव में शुभग्रह की राशि और उस में शुभग्रह बैठा हो तथा शुभग्रहों की द्वितीय भाव पर दृष्टि हो तो व्यक्ति धनी होता है। नीचे कुछ धनी योग दिये जाते हैं—

१—भाग्येश और लाभेश का योग २—भाग्येश और दशमेश का योग
३—भाग्येश और चतुर्थेश का योग ४—भाग्येश और पंचमेश का योग
५—भाग्येश और लग्नेश का योग ६—भाग्येश और धनेश का योग

७—दशमेश और लाभेश का योग ८—दशमेश और चतुर्थेश का योग
९—दशमेश और लग्नेश का योग १०—दशमेश और पंचमेश का योग
११—दशमेश और द्वितीयेश का योग १२—लाभेश और धनेश का योग
१३—लाभेश और चतुर्थेश का योग १४—लाभेश और लग्नेश का योग
१५—लाभेश और पंचमेश का योग १६—लग्नेश और धनेश का योग
१७—लग्नेश और चतुर्थेश का योग १८—लग्नेश और पंचमेश का योग
१९—धनेश और चतुर्थेश का योग २०—धनेश और पंचमेश का योग
२१—चतुर्थेश और पंचमेश का योग।

उपर्युक्त २१ योग वाले ग्रह २।४।५।७ भावो में हों तो पूर्ण फल, ८।१२ भावों में हों तो आधा फल और छठे भाव में हो तो चतुर्थांश फल देते हैं, अन्य स्थानो में निष्फल बताये गये हैं।

दारिद्र योग[1]

१—षष्ठेश और धनेश का योग २—षष्ठेश और लग्नेश का योग
३—षष्ठेश और चतुर्थेश का योग ४—व्ययेश और चतुर्थेश का योग
५—व्ययेश और धनेश का योग ६—व्ययेश और लग्नेश का योग
७—षष्ठेश और दशमेश का योग ८—व्ययेश और दशमेश का योग
९—षष्ठेश और पचमेश का योग १०—षष्ठेश और सप्तमेश का योग
११—व्ययेश और पचमेश का योग १२—व्ययेश और सप्तमेश का योग
१३—षष्ठेश और भाग्येश का योग १४—व्ययेश और भाग्येश का योग
१५—षष्ठेश और तृतीयेश का योग १६—व्ययेश और तृतीयेश का योग
१७—षष्ठेश और लाभेश का योग १८—व्ययेश और लाभेश का योग
१९—षष्ठेश और अष्टमेश का योग २०—व्ययेश और अष्टमेश का योग
२१—षष्ठेश और व्ययेश का योग

---

१ देखें—जातकतत्त्व और जातकपारिजात।

ये दारिद्र योग धनस्थान में हो तो पूर्ण फल, व्ययस्थान में हों तो पादोन ¾ फल और अन्य स्थानो में हो तो अर्द्ध फल देते हैं।

उपर्युक्त धनी और दरिद्र योगो का विचार करने से जितने जो-जो योग आवें उन्हें पृथक् लिख लेना चाहिए। यदि धनी योग कुण्डली मे अधिक हो और दरिद्र योग कम हों तो जातक धनवान् और दरिद्र योग अधिक तथा धनी योग कम हो तो जातक दरिद्री या अल्प धनी होता है। इन योगो में रहस्यपूर्ण बात यह है कि बलवान् धनी योग कम हों और निर्बल दारिद्र योग अधिक हो तो जातक धनी, एव दारिद्र योग बलवान् हो और उन की अपेक्षा निर्बल धना योग अधिक हो तो जातक धनी होते हुए भी कुछ समय के लिए दरिद्री-जैसा जीवन यापन करता है। धनी और निर्धनो का विचार करते समय देश, काल तथा जाति का विचार अवश्य कर लेना चाहिए। यदि किसी धनी घराने में पैदा हुए जातक की कुण्डली में धनी योग हो तो जातक लक्षाधीश या योग के बलाबलानुसार कोटयधीश होता है। यदि वही योग किसी साधारण घर के जन्मे व्यक्ति की कुण्डली में हो तो वह अपनी स्थिति के अनुसार धनी होता है।

जिसकी जन्मकुण्डली में दो बलवान् धनी योग हो वह सहस्राधिपति, तीन हों वह लक्षाधिपति, चार या पाँच हो वह कोटयधिपति होता है। इससे अधिक धनी योग होने पर जातक विपुल सम्पत्ति का स्वामी होता है।

धनी योगो से एक दरिद्री योग अधिक हो तो अल्पधनी, दो अधिक हो तो दरिद्री और तीन अधिक हों तो भिक्षुक या तत्सदृश होता है।

धनी योगो के अभाव में एक दरिद्री योग हो तो जातक दरिद्री, दो हो तो जीवन-भर धन के कष्ट से पीडित और तीन हो तो भिक्षुक होता है।

दारिद्र योगो के अभाव में एक धनी योग होने पर जातक खाता-पीता सुखी, दो धनी योगो के होने पर आश्रयदाता, लक्षाधीश एव तीन या इस से अधिक योगो के होने पर जातक बहुत बडा धनी होता है। परन्तु योगों के बलाबल का विचार कर लेना नितान्त आवश्यक है।

१—राहु लग्न, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, पचम, षष्ठ, अष्टम, नवम, एकादश और द्वादश भावा में से किसी भाव में स्थित हो एव मेष, वृष, मिथुन, कर्क, सिह, कन्या, वृश्चिक और मीन इन राशियो में से किसी भी राशि में स्थित हो तो जातक धनी होता है।

२—चन्द्र और गुरु एक साथ किसी भी स्थान में बैठे हो तो जातक धनी होता है। सूर्य, वुध एक साथ सप्तम भाव के अलावा अन्य स्थानो में हो तो जातक वडा व्यापारी होता है।

३—कारक ग्रहो की दशा में जन्म हुआ हो तो जातक जन्म से धनी अन्यथा निर्धन होता है। जब कारक ग्रह की दशा आती है, उस समय जातक अवश्य धनी होता है।

दिवालिया योग

१—अष्टमेश ४।५।९।१० स्थानो में हो और लग्नेश निर्वल हो तो जातक दिवालिया होता है। योगकारक ग्रह के ऊपर राहु एवं रवि की दृष्टि पडने से योग अधूरा रह जाता है।

२—लाभेश व्यय में हो या भाग्येश और दशमेश व्यय में हो तो दिवालिया होता है। यदि पचम में शनि तुलाराशि का हो तो भी यह योग वनता है।

३—द्वितोयेश ९।१०।११ भावो में हो तो दिवालिया योग होता है, परन्तु द्वितीयेश गुरु के दशम और मगल के एकादश भाव में रहने से यह योग खण्डित हो जाता है।

४—लग्नेश वक्री हो कर ६।८।१२वें भाव में स्थित हो तो भी जातक दिवालिया होता है।

जमींदारी योग

१—चतुर्थेश दशम में और दशमेश चतुर्थ में हो।

२—चतुर्थेश २ या ११वें भाव में हो। चतुर्थ स्थान की राशि चर हो और उस का स्वामी भी चर राशि में हो।

३—पचमेश लग्नेश, तृतीयेश, चतुर्थेश, षष्ठेश, सप्तमेश, नवमेश और द्वादशेश के साथ हो तो जमीदारी के साथ व्यापार भी जातक करता है।

४—चतुर्थेश, दशमेश और चन्द्रमा बलवान् हो और ये ग्रह परस्पर में मित्र हो तो जातक जमीदार होता है।

ससुराल से धन-प्राप्ति के योग

१—सप्तमेश और द्वितीयेश एक साथ हो और उन पर शुक्र की पूर्ण दृष्टि हो।

२—चतुर्थेश सप्तमस्थ हो और शुक्र चतुर्थस्थ हो तथा इन दोनो में मित्रता हो।

३—सप्तमेश और नवमेश आपस में सम्बद्ध हो तथा शुक्र के साथ हों।

४—बलवान् धनेश, सप्तमेश शुक्र से युत हो।

अकस्मात् धन-प्राप्ति के साधनों का विचार पचम भाव से किया जाता है। यदि पचम स्थान में चन्द्रमा बैठा हो और शुक्र की उस पर दृष्टि हो तो लाट्री से धन मिलता है। यदि द्वितीयेश और चतुर्थेश शुभग्रह की राशि में शुभग्रहो से युत या दृष्ट हो कर बैठे हो तो भूमि में गडी हुई सम्पत्ति मिलती है। एकादशेश और द्वितीयेश चतुर्थ स्थान में हों और चतुर्थेश शुभग्रह की राशि में शुभग्रह से युत या दृष्ट हो तो जातक को अकस्मात् धन मिलता है। यदि लग्नेश द्वितीय स्थान में और द्वितीयेश ग्यारहवें स्थान में हो तथा एकादशेश लग्न में हो तो इस योग के होने से जातक को भूगर्भ से सम्पत्ति मिलती है। लग्नेश शुभग्रह हो और धन स्थान में स्थित हो या धनेश आठवें स्थान में स्थित हो तो गडा हुआ धन मिलता है।

धनेश का द्वादश भावों में फल

धनेश लग्न में हो तो कृपण, व्यवसायी, कुकर्मरत, धनिक, विख्यात, सुखी, अतुलित ऐश्वर्यवान् और लब्धप्रतिष्ठ; द्वितीय भाव में हो तो धनवान्, धर्मात्मा, लोभी, चतुर, धनार्जन करने वाला, व्यापारी, यशस्वी और दानी; तृतीय भाव में हो तो व्यापारी, कलहकर्त्ता, कलाहीन, चोर, चंचल, अविनयी और ठग; चौथे भाव में हो तो पिता से लाभ करने वाला, सत्य-वादी, दयालु, दीर्घायु, मकान वाला, व्यापार में लाभ करने वाला और परिश्रमी, पाँचवें भाव में हो तो पुत्र-द्वारा धनार्जन करने वाला, सत्कार्य-निरत, प्रसिद्ध, कृपण और अन्तिम जीवन में दुःखी; छठे भाव में हो तो धन-संग्रह में तत्पर, शत्रुहन्ता, भू-लाभान्वित, कृषक, प्रसिद्ध और सेवा-कार्यरत; सातवें भाव में हो तो भोगविलासवती, धनसंग्रह करने वाली श्रेष्ठ रमणी का भर्ता, भाग्यवान्, स्त्री-प्रेमी और चपल, आठवें भाव में हो तो पाखण्डी, आत्मघाती, अत्यन्त भाग्यशाली, परोपकारी, भाग्य पर विश्वास करनेवाला और आलसी, नौवें भावमें हो तो दानी, प्रसिद्ध पुरुष, धर्मात्मा, मानी और विद्वान्; दसवें भाव में हो तो राजमान्य, धन लाभ करनेवाला, भाग्यशाली, देशमान्य और श्रेष्ठ आचार वाला; ग्यारहवें भाव में हो तो प्रसिद्ध व्यापारी, परम धनिक, प्रख्यात, विजयी, ऐश्वर्यवान् और भाग्य-शाली एवं बारहवें भाव में हो तो जातक निन्द्य ग्रामवासी, कृषक, अल्प-धनी, प्रवासी और निन्द्य साधनो-द्वारा आजीविका करने वाला होता है। उपर्युक्त भावो में जो धनेश का फल कहा गया है, वह शुभग्रह का है। यदि धनेश क्रूर ग्रह हो या पापी हो तो विपरीत फल समझना चाहिए। किन्तु क्रूर धनेश ३।६।११वें भावो में स्थित हो तो जातक श्रेष्ठ होता है।

व्यापार का विचार करने के लिए सप्तम भाव से सहायता लेनी चाहिए। वाणिज्य का कारक बुध है, अतएव बुध, सप्तम भाव और द्वितीय इन तीनो की स्थिति एवं बलाबलानुसार व्यापार के सम्बन्ध में फल समझना चाहिए। यदि बुध सप्तम में हो और सप्तमेश द्वितीय स्थान में हो या द्वितीयेश

बुध के साथ सप्तम भाव में हो तो जातकप्रसिद्ध व्यापारी होता है। बुध और शुक्र इन दोनो का योग द्वितीय या सप्तम में हो तथा इन ग्रहो पर शुभग्रहो की दृष्टि हो तो भी जातक व्यापारी होता हैं। यदि द्वितीयेश शुभग्रहो की राशि में स्थित हो तथा बुध या सप्तमेश से दृष्ट हो तो जातक व्यापारी होता है। जिस की जन्मकुण्डली में उच्च का बुध सप्तम में बैठा हो तथा द्वितीय भवन पर द्वितीयेश की दृष्टि हो अथवा गुरु पूर्णदृष्टि से द्वितीयेश को देखता हो तो जातक प्रसिद्ध व्यापारी होता है।

तृतीय भाव विचार

। तृतीय भाव से प्रधानत· भाई और वहनों का विचार किया जाता है; लेकिन ग्यारहवें भाव से वडे भाई और वडी वहन का एव तृतीय भाव से छोटे भाई और छोटी वहन का विचार होता हैं। मंगल भ्रातृकारक ग्रह है। भ्रातृ सुख के लिए निम्न योगो का विचार कर लेना आवश्यक हैं। (क) तृतीय स्थान में शुभग्रह रहने मे, (ख) तृतीय भाव पर शुभ ग्रह की दृष्टि होने से, (ग) तृतीयेश के वली होने से, (घ) तृतीय भाव के दोनो ओर द्वितीय और चतुर्थ में शुभग्रहों के रहने से, (ङ) तृतीयेश पर शुभग्रहों की दृष्टि रहने से, (च) तृतीयेश उच्च होने से और (छ) तृतोयेश के साथ शुभग्रहों के रहने से भाई-वहन का सुख होता है।

तृतीयेश या मंगल के युग्म—समसंख्यक वृप, कर्क, कन्या, वृश्चिक, मकर और मीन में रहने से कई भाई-वहनो का सुख होता है। यदि तृतीयेश और मंगल १२वें स्थान में हों, उस पर पापग्रहों की दृष्टि हो अथवा मंगल तृतीय स्थान में हो और उन पर पापग्रह की दृष्टि हो या पापग्रह तृतीय में हो तथा उस पर पापग्रहो की दृष्टि हो या तृतीयेश के आगे-पीछे पापग्रह हो या द्वितीय और चतुर्थ में पापग्रह हों तो भाई-वहन की मृत्यु होतो है। तृतोयेश या मंगल ३।६।१२वें भाव में हो और शुभग्रह से दृष्ट नही हो तो भाई का सुख नही होता है। तृतोयेश राहु या केतु के

साथ ६।८।१२वें भाव में हो तो भ्रातृ-सुख का अभाव होता है।

ग्यारहवें स्थान का स्वामी पापग्रह हो या उस भाव में पापग्रह बैठे हों और शुभग्रह से दृष्ट न हो तो बड़े भाई का सुख नहीं होता है। तृतीय स्थान में पापग्रह का रहना अच्छा है, पर भ्रातृ-सुख के लिए अच्छा नहीं है।

भ्रातृ-संख्या

१—द्वितीय तथा तृतीय स्थान में जितने ग्रह रहें; उतने अनुज और एकादश तथा द्वादश स्थान में जितने ग्रह हों उतने ज्येष्ठ भ्राता होते हैं। यदि इन स्थानों में ग्रह नहीं हों तो इन स्थानों पर जितने ग्रहों की दृष्टि हो उतने अग्रज और अनुजों का अनुमान करना। परन्तु स्वक्षेत्री ग्रहों के रहने से अथवा उन भावों पर अपने स्वामी की दृष्टि पड़ने से भ्रातृसंख्या में वृद्धि होती है।

२—भ्रातृसंख्या जानने की विधि यह भी है कि जितने ग्रह तृतीयेश के साथ हों, मंगल के साथ हों, तृतीयेश पर दृष्टि रखने वाले हों और तृतीयस्थ हों उतनी ही भ्रातृसंख्या होती है। यदि उपर्युक्त ग्रह शत्रुगृही, नीच और अस्तगत हों तो भाई अल्पायु होते हैं। यदि ये ग्रह मित्रगृही, उच्च या मूल त्रिकोण के हों तो दीर्घायु के होते हैं। अभिप्राय यह है कि भाई के सम्बन्ध में (१) तृतीय स्थान से, (२) तृतीयेश से, (३) मंगल से, (४) तृतीय से सम्बन्धित ग्रह से, (५) तृतीयस्थ के नवांश पति से, (६) मंगल के सम्बन्धी ग्रहों से, (७) तृतीयेश के साथ योग करने वाले ग्रहों से, (८) एकादशेश से, (९) एकादशस्थ ग्रह से तथा उस की स्थिति पर से, (१०) एकादश स्थान के नवांश से तथा उस नवांश के स्वामी की स्थिति पर से, (११) एकादशेश की स्थिति तथा उस के सम्बन्ध आदि पर से एवं (१२) एकादश और मंगल के सम्बन्ध तथा दृष्टि पर से विचार करना चाहिए।

यदि लग्नेश और तृतीयेश परस्पर मित्र हों तो भाई-बहनों का परस्पर प्रेम रहता है तथा लग्नेश और तृतीयेश शुभभावगत हों तो भी भाइयों में परस्पर प्रेम रहता है।

अन्य विशेष योग

१—लग्न और लग्नेश से ३।११ स्थानों में बुध, चन्द्र, मंगल और गुरु स्थित हों तो अधिक भाई तथा केतु स्थित हो तो वहनें अधिक होती हैं।

२—तृतीयेश शुभग्रह से युक्त १।४।७।१० स्थानों में हो तो भाइयों का सुख होता है।

३—तृतीयेश जितनी सख्यक राशि के नवाश में गया हो उतनी भाई-वहनों की सख्या होती है।

४—नवम भाव में जितने स्त्रीग्रह हो उतनी वहनें और जितने पुरुष-ग्रह हो उतने भाई होते हैं।

५—तृतीय भाव में गये हुए ग्रह के नवाश की सख्या जितनी हो उतने भाई-वहन जानने चाहिए।

६—तृतीयेश और मगल ६।८।१२ स्थानो में हो तो भ्रातृहीन समझना चाहिए।

७—तृतीय भाव में पापग्रह हो अथवा पापग्रह से दृष्ट हो तो भ्रातृ हानि करनेवाला योग होता हैं।

८—भ्रातृकारक ग्रह पापग्रहो के वीच में हो या तीसरे भाव पर पापग्रहो की पूर्ण दृष्टि हो तो भाई का अभाव-सूचक योग होता है।

आजीविका विचार

तृतीय स्थान से आजीविका का भी विचार किया जाता है। किसी-किसी का मत है कि लग्न, चन्द्रमा और सूर्य इन तीनो ग्रहो में से जो अधिक वलवान् हो, उस से दसवें स्थान के नवाशाधिपति के स्वरूप, गुण, धर्मानुसार आजीविका ज्ञात करनी चाहिए।

विचार करने पर दसवें स्थान का नवाशाधिपति सूर्य हो तो डाक्टरी,

वैद्यक से या दवाओं के व्यापार से एवं सोना, मोती, ऊनी वस्त्र, घी, गुड, चीनी आदि वस्तुओं के व्यापार से जातक आजीविका करता है। ज्योतिष में एक मत यह भी है कि घास, लकडी और अनाज का व्यापारी भी उपर्युक्त योग से जातक होता है। मुकद्दमा लडने में इस की अभिरुचि अधिक रहती है।

चन्द्र हो तो शंख, मोती, प्रवाल आदि पदार्थों के व्यापार से, मिट्टी के खिलौने, सीमेण्ट, चूना, बालू, ईंट आदि के व्यापार से; खेती, शराब की दूकान, तेल की दूकान एवं वस्त्र की दूकान से जीविका करता है।

मंगल हो तो मैनसिल, हरताल, सुरमा प्रभृति पदार्थों के व्यापार से; बन्दूक, तोप, तलवार के व्यापार से या सैनिक वृत्ति से; सुनार, लुहार, बढ़ई, खटीक आदि के पेशे द्वारा एवं बिजली के कारखाने में नौकरी कर के अथवा मशीनरी के कार्य-द्वारा जातक आजीविका उत्पन्न करता है।

बुध हो तो क्लर्क, लेखक, कवि, चित्रकार, जिल्दसाज, शिक्षक, ज्योतिषी, पुस्तक-विक्रेता, यन्त्रनिर्माणकर्त्ता, सम्पादक, संशोधक, अनुवादक और वकील के पेशे-द्वारा आजीविका जातक करता है। मतान्तर से साबुन, अगरबत्ती, पुष्पमालाएँ, कागज़ के खिलौने आदि बनाने के कार्यों-द्वारा जातक आजीविका अर्जन करता है।

गुरु हो तो शिक्षक, अनुष्ठान करने वाला, धर्मोपदेशक, प्रोफेसर, न्यायाधीश, वकील, बैरिस्टर और मुख्तार आदि के पेशे-द्वारा जातक आजीविका करता है। लवण, सुवर्ण एवं खनिज पदार्थों का व्यापारी भी हो सकता है। किसी-किसी का मत है कि हाथी, घोडो का व्यापार भी यह जातक करता है।

शुक्र हो तो चाँदी, लोहा, सोना, गाय, भैंस, हाथी, घोडा, दूध, दही, गुड, आलंकारिक वस्तुएँ, सुगन्धित चीजें एव हीरा, माणिक्य आदि मणियों के व्यापार से जातक जीविका करता है। मतान्तर से सिनेमा, नाटक आदि में

पार्ट खेलने और शराब के व्यापार से भी आजीविका जातक करता है।

शनि हो तो चपरासी, पोस्टमैन, हलकारा तथा जिन को रास्ते में चलना-फिरना पडे वैसा काम करने वाला, चोरी, हिंसा, नौकरी आदि-द्वारा पेशा करने वाला, प्रेस, खेती, बागवानी, मन्दिर में नौकरी और दूत का कार्य करना प्रभृति कामो से आजीविका करने वाला जातक होता है। कुछ लोग दशम स्थान की राशि के स्वभावानुसार आजीविका निर्णय करते हैं।

तृतीयेश का द्वादश भावों में फल

लग्न स्थान में तृतीयेश हो तो जातक वावदूक, लम्पट, सेवक, क्रूर-प्रकृति, स्वजनो से द्वेष करने वाला, अल्पधनी, भाइयो से अन्तिम अवस्था में शत्रुता करने वाला और झगडालू प्रकृति का, द्वितीय भाव में हो तो भिक्षुक, धनहीन, अल्पायु, बन्धु-विरोधी तथा द्वितीयेश शुभ ग्रह हो तो बलवान्, भाग्यवान्, देशमान्य और कुल में प्रसिद्ध, तृतीय भाव में हो तो सज्जनों से मित्रता करने वाला, धार्मिक, राज्य से लाभान्वित होने वाला तथा शुभ ग्रह तृतीयेश हो तो बन्धु-बान्धवों से सुखी, बलवान्, मान्य और क्रूर ग्रह हो तो भाइयो को कष्टदायक, सेवक, चतुर्थ भाव में हो तो काका को सुख देने वाला, माता-पिता के साथ विरोध करने वाला, अकीर्त्तिवान्, लालची और धननाश करने वाला, पाँचवें भाव में हो तो परोपकारी, दीर्घायु, सुपुत्रवान्, भाइयों के सुख से समन्वित, बुद्धिमान्, मित्रों की सहायता देने वाला और जाति में प्रमुख, छठे स्थान में हो तो बन्धु-विरोधी, नेत्ररोगी, जमीदार, भाइयों को सुखदायक और मान्य, सातवें भाव में तृतीयेश शुभ ग्रह हो तो अति रूपवती, सौभाग्यवती स्त्री का पति, स्त्री से सुखी, विलासी और भाग्यवान् तथा पापग्रह तृतीयेश हो तो व्यभिचारिणी स्त्री का पति और नीच कर्मरत; आठवें भाव में क्रूर ग्रह तृतीयेश हो तो भाइयो को कष्ट, मित्रो की हानि, बान्धवों से विरोध तथा शुभग्रह तृतीयेश

हो तो भाइयों से सामान्य सुख,मित्रो से प्रेम करने वाला और जाति में प्रतिष्ठा पाने वाला; नौवें भाव में क्रूर ग्रह तृतीयेश हो तो बन्धुजित्, मित्रो का द्वेषी, भाइयो-द्वारा अपमानित और साधारण जीवन व्यतीत करने वाला तथा शुभ ग्रह हो तो पुण्यात्मा, भाइयो से सम्मानित और मित्रों से मान्य; दसवें भाव में हो तो राजमान्य, भाग्यशाली, उत्तम बन्धु-बान्धवो से सहित और यशस्वी; ग्यारहवें भाव में हो तो श्रेष्ठ बन्धुवाला, राजप्रिय, सुखी, धनी और उद्योगशील एवं बारहवें भाव में हो तो मित्रो का विरोधी, बान्धवो से दूर रहने वाला, प्रवासी और विचित्र प्रकृति वाला होता है।

चतुर्थ भाव विचार

चतुर्थ भाव पर शुभ ग्रहों की दृष्टि होने से या इस स्थान में शुभग्रहो के रहने से मकान का सुख होता है। चतुर्थेश पुरुषग्रह बली हो तो पिता का पूर्ण सुख और निर्बल हो तो अल्पसुख तथा चतुर्थेश स्त्रीग्रह बली हो तो माता का सुख पूर्ण और निर्बल हो तो माता का सुख अल्प होता है। चन्द्रमा बली हो तथा लग्नेश को जितने शुभ ग्रह देखते हो तो जातक के उतने ही मित्र होते हैं। चतुर्थ स्थान पर चन्द्र, बुध और शुक्र की दृष्टि हो तो बाग-बगीचा; चतुर्थ स्थान बृहस्पति से युत या दृष्ट होने से मन्दिर; बुध से युत या दृष्ट होने पर रंगीन महल, मंगल से युत या दृष्ट होने से पक्का मकान और शनि से युत या दृष्ट होने से सीमेण्ट और लोहे युक्त मकान का सुख होता है।

लग्न में शुभ ग्रह हो तथा चतुर्थ और लग्न स्थान पर शुभ ग्रहों की दृष्टि हो तो जातक सुखी होता है। जन्मकुण्डली में पाँच ग्रह स्वराशियो के हों तो जातक परम सुखी होता है। लग्नेश और चतुर्थेश तथा लग्न और चतुर्थ पापग्रह से युत या दृष्ट हों तो जातक दु.खी अन्यथा सुखी होता है। पाँचवें में बुध, राहु और सूर्य, चौथे में भौम और आठवें में शनि हो तो जातक दु.खी होता है।

कतिपय सुख योग

१—चतुर्थेश को गुरु देखता हो। २—चतुर्थ स्थान में शुभग्रह की राशि तथा शुभग्रह स्थित हो। ३—चतुर्थेश शुभग्रहो के मध्य में स्थित हो। ४—बलवान् गुरु चतुर्थेश से युत हो। ५—चतुर्थेश शुभग्रह से युत हो कर १।४।७।१०।५।९ स्थानों में स्थित हो। ६—लग्नेश उच्च या स्वराशि में हो। ७—लग्नेश मित्रग्रह के द्रेष्काण में हो अथवा शुभग्रहो से दृष्ट या युत हो। ८—चन्द्रमा शुभग्रहो के मध्य में हो। ९—सुखेश शुभ-ग्रह की राशि के नवाश में हो और वह २।३।६।१०।११वें स्थान में स्थित हो तो जातक सुखी होता है।

दुःख योग

१—लग्न में पापग्रह हो। २—चतुर्थ स्थान में पापग्रह हो और गुरु अल्पबली हो। ३—चतुर्थेश पापग्रह से युत हो तो धनी व्यक्ति भी दु खी होता है। ४—चतुर्थेश पापग्रह के नवांश में सूर्य, मंगल से युत हो। ५—सूर्य, मगल नीच या पापग्रह की राशि के हो कर चतुर्थ में स्थित हो। ६—अष्टमेश ११वें भाव में गया हो। ७—लग्न में शनि, आठवें राहु, छठे स्थान में भौम स्थित हो। ८—पापग्रहो के मध्य में चन्द्रमा स्थित हो। ९—लग्नेश बारहवें स्थान में, पापग्रह दशवें स्थान में और चन्द्र मगल का योग किसी भी स्थान में हो तो जातक दु खी होता है।

इस भाव के विशेष योग

कारकाश कुण्डली में चतुर्थ स्थान में चन्द्र, शुक्र का योग हो, राहु, शनि का योग हो, केतु-मंगल का योग हो अथवा उच्च राशि का ग्रह स्थित हो तो श्रेष्ठ मकान जातक के पास होता है। कारकाश कुण्डली में चौथे स्थान में गुरु हो तो लकडी का मकान, सूर्य हो तो फूस की कुटिया एवं बुध हो तो साधारण स्वच्छ मकान जातक के पास होता है।

लग्नेश चतुर्थ भाव में और चतुर्थेश लग्न में गया हो तो जातक को गृहलाभ होता है। चतुर्थेश बलवान् हो कर १।४।७।१० स्थानो में शुभ ग्रह से दृष्ट या युत हो कर स्थित हो अथवा चतुर्थेश जिस राशि में गया हो उस राशि के स्वामी का नवांशाधिपति १।४।७।१० स्थानो में हो तो घर का लाभ होता है। धनेश और लाभेश चतुर्थ भाव में स्थित हो तथा चतुर्थेश लाभ भाव या दशम मे स्थित हो तो जातक को धन-सहित घर मिलता है।

लग्नेश और चतुर्थेश दोनो चतुर्थ भाव में शुभग्रहो से दृष्ट या युत हो तो घर का लाभ अकस्मात् होता है।

लग्नेश, धनेश और चतुर्थेश इन तीनो ग्रहो में जितने ग्रह १।४।५।७। ९।१० स्थानो में गये हो उतने ही घरो का स्वामी जातक होता है। उच्च, मूल त्रिकोणी और स्वक्षेत्रीय में क्रमश तिगुने, दूने और डेढ गुने समझने चाहिए।

जातक के गोद्—दत्तक जाने के योग

(क) कर्क या सिंह राशि में पापग्रह के होने से; (ख) चन्द्रमा या रवि को पापग्रहो से युत या दृष्ट होने से, (ग) चतुर्थ और दशम स्थान में पापग्रहो के जाने से; (घ) मेष, सिंह, धनु और मकर इन राशियो में किसी भी राशि के चतुर्थ या दशम भाव मे जाने से; (ङ) चन्द्रमा से चतुर्थ स्थान में पापग्रहो के रहने से, (च) रवि से नवम या दशम स्थानो में पापग्रहो के जाने से और (छ) चन्द्र अथवा रवि के शत्रु क्षेत्रीय ग्रहो से युत होने से जातक दत्तक—गोद जाता है।

किसी-किसी का मत है कि चतुर्थ से विद्या का और पंचम से बुद्धि का विचार करना चाहिए। विद्या और बुद्धि में घनिष्ठ सम्बन्ध है। दशम से विद्याजनित यश का तथा विश्वविद्यालयो की उच्च परीक्षाओ में उत्तीर्णता प्राप्त करने का विचार किया जाता है।

१—चन्द्र-लग्न एवं जन्मलग्न से पंचम स्थान का स्वामी बुध, गुरु

और शुक्र के साथ १।४।५।७।९।१० स्थानो में बैठा हो तो जातक विद्वान् होता है।

२—चतुर्थ स्थान में चतुर्थेश हो अथवा शुभग्रहों की दृष्टि हो या वहां शुभग्रह स्थित हो तो जातक विद्याविनयी होता है।

३—चतुर्थेश ६।८।१२ स्थानो में हो या पापग्रह के साथ हो या पाप-ग्रह से दृष्ट हो अथवा पापराशिगत हो तो विद्या का अभाव समझना चाहिए।

चतुर्थेश का द्वादश भावों मे फल

चतुर्थेश लग्न में हो तो जातक पितृभक्त, काका से वैर करने वाला, पिता के नाम से प्रसिद्धि पाने वाला, कुटुम्ब की ख्याति करने वाला और मान्य, द्वितीय में हो तो पिता के धन से वंचित, कुटुम्बविरोधी, झगडालू और अल्पसुखी, तीसरे स्थान में हो तो पिता को कष्ट देने वाला, माता से झगड़ा करने वाला, कुटुम्बियो के साथ रूखा व्यवहार करने वाला और अपनी सन्तान-द्वारा प्रसिद्धि पाने वाला, चौथे स्थान में हो तो राजा तथा पिता से सम्मान पाने वाला, पिता के धन का उपभोग करने वाला, स्वधर्मरत, कर्त्तव्यनिष्ठ, धन-धान्य से परिपूर्ण और सुखी, पाँचवें भाव में हो तो दीर्घायु, राजमान्य, पुत्रवान्, सुखी, विद्वान्, कुशाग्रवुद्धि और पिता-द्वारा अर्जित धन से आनन्द लेने वाला, छठे स्थान में हो तो धन संचयकर्त्ता, पराक्रमी, स्नेही तथा चतुर्थेश क्रूर ग्रह हो कर छठे स्थान में हो तो पिता से वैर करने वाला, पिता के धन का दुरुपयोग करने वाला और व्यसनी, सातवें भाव में क्रूरग्रह चतुर्थेश हो तो ससुर का विरोधी, ससुराल के सुख से वंचित तथा शुभग्रह चतुर्थेश हो तो ससुराल से धन-मान प्राप्त करने वाला और स्त्री-सुख से पूर्ण, आठवे भाव में क्रूर स्वभाव का चतुर्थेश हो तो रोगी, दरिद्री, दुष्कर्मकर्त्ता, अल्पायु, दुःखी तथा सौम्य ग्रह हो तो मध्यमायु, सामान्यतः स्वस्थ और उच्च विचार का; नौवें भाव में हो तो विद्वान्, सत्संगति में रहने वाला, पिता का परम भक्त, धर्मात्मा और तीर्थ स्थानों की यात्रा

करने वाला, दसवें स्थान में चतुर्थेश पापग्रह हो तो पिता जातक की माता को त्याग कर अन्य स्त्री से विवाह करने वाला तथा शुभग्रह हो तो पिता प्रथम स्त्री का बिना त्याग किये अन्य स्त्री से विवाह करने वाला; ग्यारहवें भाव में हो तो पिता की सेवा करने वाला, धनी, प्रवासी, लोकमान्य और आनन्दपूर्वक जीवन व्यतीत करने वाला एवं बारहवें भाव मे हो तो विदेश-वासी, माता-पिता का सामान्य सुख पाने वाला और गृह-सुख से वंचित अथवा जीवन में दो-तीन घरो का मालिक होता है। यदि चतुर्थेश क्रूर ग्रह हो कर ग्यारहवें और बारहवें भाव में स्थित हो तो जातक जारज—अन्य पिता से उत्पन्न हुआ होता है। बली, सौम्य ग्रह चतुर्थेश चौथे, पाँचवें और सातवें भाव में हो तो जातक जीवन में सब प्रकार से सुखी होता है।

पंचम भाव विचार

१—पंचम स्थान का स्वामी बुध, शुक्र से युत या दृष्ट हो, २—पंचमेश शुभग्रहों से घिरा हो, ३—बुध उच्चका हो, ४—बुध पंचम स्थान में हो, ५—पंचमेश जिस नवांश में हो उस का स्वामी केन्द्रगत हो और शुभग्रहो से दृष्ट हो तो जातक समझदार, बुद्धिमान् और विद्वान् होता है। पंचमेश जिस स्थान में हो उस स्थान के स्वामी पर शुभग्रह की दृष्टि हो अथवा दोनो तरफ़ शुभग्रह बैठे हो तो जातक सूक्ष्म बुद्धि वाला होता है। यदि लग्नेश नीच या पापयुक्त हो तो जातक की बुद्धि अच्छी नही होती है। पंचम स्थान में शनि और राहु हों और शुभग्रहो की पंचम पर दृष्टि न हो, पंचमेश पर पापग्रहो को दृष्टि हो और बुध द्वादश स्थान में हो तो जातक की स्मरण-शक्ति अच्छी नही होती है। पचमेश शुभ युत या दृष्ट हो अथवा पंचम स्थान शुभ युत या दृष्ट हो और बृहस्पति से पंचम स्थान का स्वामी १।४।५।७।९।१० स्थानो में हो तो स्मरण-शक्ति तीक्ष्ण होती है। गुरु १।४।५।७।९।१० स्थानो में हो, बुध पंचम भाव में हो, पंचमेश बलवान् हो कर १।४।५।७।९।१० स्थानों में हो तो जातक बुद्धिमान्

होता है। पचमेश १।४।७।१० स्थानो में हो तो जातक की स्मरण-शक्ति अत्यन्त प्रवल होती है।

१—दसवें भाव का स्वामी लग्न में या ग्यारहवें भाव का स्वामी ग्यारहवें भाव में हो तो जातक कवि होता है।

२—स्वगृही, वलवान्, मित्रगृही या उच्च राशि का पचमेश १।४।५।७।९।१० स्थानो में स्थित हो या पचमेश दसवें अथवा ग्यारहवें भाव में स्थित हो तो संस्कृतज्ञ विद्वान् होता है।
स्थित हो तो सस्कृतज्ञ विद्वान् होता है।

३—वुध शुक्र का योग द्वितीय,तृतीय भाव में हो, वुध १।४।५।७।९।१० स्थानों में हो, कर्क राशि का गुरु धन स्थान में हो, गुरु १।४।५।७।९।१० स्थानो में हो, धनेश सूर्य या मंगल हो और वह गुरु या शुक्र से दृष्ट हो, गुरु स्वराशि के नवाश में हो एव कारकाश कुण्डली में पाँचवें भाव में वुध या गुरु हो तो जातक फलित ज्योतिप का जानने वाला होता है।

४—कारकाश लग्न से द्वितीय, तृतीय और पचम भाव में केतु और गुरु स्थित हो, धनस्थान में चन्द्र और मगल का योग हो तथा वुध की दृष्टि हो, धनेश अपनी उच्च राशि में हो, गुरु लग्न और शनि आठवें भाव में हो, गुरु १।४।५।७।९।१० स्थानो में, शुक्र अपनी उच्च राशि और वुध धनेश हो या धन भाव में गया हो; द्वितीय स्थान में शुभग्रह से दृष्ट मगल हो एवं कारकाश कुण्डली में ४।५ स्थानो में वुध या गुरु हो तो जातक गणितज्ञ होता है। जिस व्यक्ति की जन्मपत्री में गणितज्ञ योग होता है वह ज्योतिपी, अकाउण्टेण्ट, इजीनियर, ओवरसीयर, मुनीम, खजानची, रेवेन्यूअफसर एव पैमाइश करने वाला होता है।

५—रवि से पचम स्थान में मगल, शुक्र, शनि और राहु इन चारो-में से कोई भी दो या तीन ग्रह स्थित हो, लग्न में चन्द्रमा स्थित हो, पंचम भाव और पचमेश पापग्रह से युक्त या दृष्ट हो तो जातक अँगरेजी भापा का जानकार होता है।

६—शनि से गुरु सातवें स्थान में हो या शनि गुरु से नवम, पंचम का सम्बन्ध हो या ये ग्रह मेष, तुला, मिथुन, कुम्भ और सिंह राशि के हों अथवा शनि-गुरु १-७, २-८, ३-९, ५-११ में हो तो जातक वकील, बैरिस्टर, प्रोफेसर एवं न्यायाधीश होता है।

७—कारकांश कुण्डली में पाँचवें भाव में पापग्रह से युत चन्द्र, गुरु स्थित हो तो नवीन ग्रन्थ लिखने वाला जातक होता है।

सन्तान विचार

सन्तान का विचार जन्मकुण्डली में पंचम स्थान और जन्मस्थ चन्द्रमा के पंचम स्थान से होता है। बृहस्पति सन्तानकारक ग्रह है।

१—पंचम भाव, पंचमाधिपति और बृहस्पति शुभग्रह-द्वारा दृष्ट अथवा युत रहने से सन्तानयोग होता है।

२—लग्नेश पाँचवें भाव में हो और बृहस्पति बलवान् हो तो सन्तान-योग होता है।

३—बलवान् बृहस्पति लग्नेश-द्वारा देखा जाता हो तो प्रबल सन्तान-योग होता है।

४—सन्तान स्थान पर मंगल और शुक्र की एक पाद, द्विपाद या त्रिपाद दृष्टि आवश्यक है।

५—केन्द्रत्रिकोणाधिपति शुभग्रह हो और उन में-से पचम में कोई ग्रह अवश्य हो तथा पंचमेश ६।८।१२वें भाव में न हो, पापयुक्त, अस्त एवं शत्रुराशिगत न हो तो सन्तान-सुख होता है।

६—पंचम स्थान में वृष, कर्क और तुला में-से कोई राशि हो, पंचम में शुक्र या चन्द्रमा स्थित हो अथवा इन की दृष्टि पंचम पर हो तो बहुपुत्र योग होता है।

७—लग्न या चन्द्रमा से पचम स्थान में शुभग्रह स्थित हो, पंचम स्थान शुभग्रहो से दृष्ट हो या पंचमेश से दृष्ट हो तो सन्तान योग होता है।

८—लग्नेश, पचमेश एक साथ हों या परस्पर दृष्ट हो अथवा दोनो स्वगृही, मित्रगृही या उच्च के हों तो प्रबल सन्तान योग होता है।

९—लग्नेश, पचमेश शुभग्रह के साथ होकर केन्द्रगत हो और द्वितीयेश बली हो तो सन्तानयोग होता है।

१०—लग्नेश और नवमेश दोनों सप्तमस्थ हो अथवा द्वितीयेश लग्नस्थ हो तो सन्तानयोग होता है।

११—पचमेश के नवांश का स्वामी शुभग्रह से युत और दृष्ट हो तो सन्तान योग होता है। लग्नेश और पचमेश १।४।७।१० स्थानों में शुभग्रह से युत या दृष्ट हो तो सन्तानयोग होता है।

१२—पंचमेश और गुरु वलवान् हों तथा लग्नेश पचम भाव में हो; सप्तमेश के नवांश का स्वामी, लग्नेश तथा धनेश और नवमेश इन तीनो से दृष्ट हो तो सन्तानप्राप्ति का योग होता है।

१३—पचम भाव में २।४।६।८।१०।१२ राशियाँ और इन्ही राशियो के नवांश शनि, बुध, शुक्र या चन्द्रमा से युत हो तो कन्याएँ अधिक तथा पचम भाव में १।३।५।७।९।११ राशियाँ तथा इन राशियो के नवांशाधिपति मंगल, शनि और शुक्र से दृष्ट हों तो पुत्र अधिक होते हैं।

१४—पंचमेश धन में अथवा आठवें भाव में गया हो तो कन्याएँ अधिक होती हैं।

१५—ग्यारहवें भाव में बुध, शुक्र या चन्द्रमा इन तीनो में से एक भी ग्रह गया हो तो कन्याएँ अधिक होती हैं।

१६—बुध, चन्द्र और शुक्र इन तीनों ग्रहों में-से एक भी ग्रह पाँचवें भाव में हो तो कन्याएँ अधिक होती हैं।

१७—पंचम भाव में मेष, वृष और कर्क राशि में केतु गया हो तो सन्तान की प्राप्ति होती है।

सन्तान प्रतिबन्धक योग

१—तृतीयेश और चन्द्रमा १।४।७।१०।५।९ स्थानों में हों तो सन्तान नही होती।

२—सिंह राशि में गये हुए शनि, मंगल पंचम भाव में स्थित हों और पंचमेश छठे भाव में गया हो तो सन्तान नही होती।

३—बुध और लग्नेश में दोनों लग्न के विना अन्य केन्द्र स्थानो में हो तो सन्तान का अभाव होता है।

४—५।८।१२वें भाव में पापग्रह गये हों तो वंशविच्छेदक योग होता है। लग्न में चन्द्रमा, गुरु का योग हो तथा सातवें भाव में शनि या मंगल हो तो सन्तान का अभावसूचक योग होता है।

५—पाँचवें भाव में चन्द्रमा तथा ८।१२वे भाव में सम्पूर्ण पापग्रह स्थित हो; सातवे भाव में बुध, शुक्र, चतुर्थ मे पापग्रह और पंचम भाव में गुरु स्थित हो तो सन्तान-प्रतिबन्धक योग होता है।

६—लग्न में पापग्रह, चतुर्थ में चन्द्रमा, पंचम में लग्नेश स्थित हो और पंचमेश अल्प बली हो तो वंशविच्छेदक योग होता है।

७—सातवें भाव मे शुक्र, दसवें भाव में चन्द्रमा और चतुर्थ भाव में तीन-चार पापग्रह स्थित हों तो सन्तान-प्रतिबन्धक योग होता है।

८—लग्न में मंगल, आठवे में शनि और पाँचवे भाव मे सूर्य हो तो वंशनाशक योग होता है।

विलम्ब से सन्तानप्राप्ति योग

१—लग्नेश, पंचमेश और नवमेश ये तीनों ग्रह शुभग्रह से युत होकर

६।८।१२ वें भाव में गये हों तो विलम्ब से सन्तान होती है ।

२—दशम भाव में सभी शुभग्रह और पचम भाव में सभी पापग्रह हों तो सन्तान-प्रतिबन्धक योग होता है, अत. विलम्ब से सन्तान होती है ।

३—पापग्रह अथवा गुरु चतुर्थ या पंचम भाव में गया हो और अष्टम भाव में चन्द्रमा हो तो तीस वर्ष की आयु में सन्तान होती है।

४—पापग्रह की राशि लग्न में पापग्रह युक्त हो, सूर्य निर्बल हो और मगल सम राशि (२।४।६।८।१०।१२) में स्थित हो तो तीस वर्ष की आयु के पश्चात् सन्तान होती है ।

५—कर्क राशि में गया हुआ चन्द्रमा पापग्रह से युक्त व दृष्ट हो और सूर्य को शनि देखता हो तो ६०वें वर्ष में पुत्र की प्राप्ति होती है। ग्यारहवें भाव में राहु हो तो वृद्धावस्था में पुत्र होता है ।

६—पचम में गुरु हो और पचमेश शुक्र से युक्त हो तो ३२ या ३३ वर्ष की अवस्था में पुत्र होता है ।

७—पचमेश और गुरु १।४।७।१० स्थानो में हो तो ३६ वर्ष की आयु में सन्तान होती है ।

८—नवम भाव में गुरु हो और गुरु से नौवें भाव में शुक्र लग्नेश से युत हो तो ४० वर्ष की अवस्था में पुत्र होता है ।

९—राहु, रवि और मगल ये तीनो पचम भाव में हों तो सन्तान-प्रतिबन्धक योग होता है ।

१०—पचमेश नीच राशि में हो, नवमेश लग्न में और बुध, केतु पचम भाव में गये हो तो कष्ट से पुत्र की प्राप्ति होती है ।

स्त्री की कुण्डली में निम्न योगो के होने से सन्तान का अभाव होता है।

१—सूर्य लग्न में और शनि सप्तम में हो। २—सूर्य और शनि सप्तम भाव में, चन्द्रमा दसवें भाव में स्थित हो तथा बृहस्पति से दोनो ग्रह अदृष्ट

हो। ३—षष्ठेश, रवि और शनि ये तीनों ग्रह षष्ठ स्थान में हों और चन्द्रमा सप्तम स्थान में हो तथा बुध से अदृष्ट हो। ४—शनि, मंगल छठे और चौथे स्थान में हो। ५—६।८।१२ भावों के स्वामी पंचम भाव में हो या पंचमेश ३।८।१२ भावो में हो, पंचमेश नीच या अस्तंगत हो तो सन्तान योग का अभाव पुरुष और स्त्री की कुण्डली में समझना चाहिए। ४।९।१०। १२ इन राशियो का वृहस्पति पंचम भाव में हो तो प्रायः सन्तान का अभाव समझना चाहिए। तृतीयेश १।२।३।५ भावो में से किसी भाव में हो तथा शुभग्रह से युत और दृष्ट न हो तो सन्तान का अभाव समझना चाहिए।

पंचमेश और द्वितीयेश निर्बल हो और पंचम स्थान पर पापग्रह की दृष्टि हो तो सन्तान का अभाव होता है। लग्नेश, सप्तनेश, पंचमेश और गुरु निर्बल हो तो सन्तान का अभाव रहता है। पंचम स्थान में पापग्रह हो और पंचमेश नीच हो तथा शुभग्रहो से अदृष्ट हो; वृहस्पति दो पापग्रहो के बीच में हो एवं पंचमेश जिस राशि में हो उस से ६।८।१२ भावों में पापग्रहो के रहने से सन्तान का अभाव होता है।

सन्तान-संख्या विचार

१—पंचम में जितने ग्रह हो और इस स्थान पर जितने ग्रहो की दृष्टि हो उतनी संख्या सन्तान को समझनो चाहिए। पुरुषग्रहो के योग दृष्टि से पुत्र और स्त्रीग्रहो के योग और दृष्टि से कन्या-संख्या का अनुमान करना चाहिए।

२—तुला तथा वृष राशि का चन्द्रमा ५।९ भावो में गया हो तो एक पुत्र होता है। पंचम में राहु या केतु हो तो एक पुत्र होता है।

३—पंचम में सूर्य शुभग्रह से दृष्ट हो तो तीन पुत्र होते हैं। पंचम मे विषम राशि का चन्द्र शुक्र के वर्ग में हो या चन्द्र, शुक्र से युत हो तो वहु-पुत्र होते हैं।

४—पंचमेश की किरण[1]-सख्या के समान सन्तान-संख्या जाननी चाहिए।

५—गुरु, चन्द्र और सूर्य इन तीनो ग्रहों के स्पष्ट राश्यादि जोडने पर जितनी राशिसख्या हो उतनी सन्तान-सख्या जानना। पंचम भाव से या पचमेश से शुक्र या चन्द्रमा जिस राशि में गया हो उस राशि पर्यन्त की सख्या के बीच में जितनी राशिसख्या हो उतनी सन्तान-सख्या जाननी चाहिए।

६—५वें भाव में गुरु हो, रवि स्वक्षेत्री हो, पंचमेश पंचम में हो तो पाँच सन्तानें होती हैं।

७—कुम्भ राशि का शनि पचम भाव में गया हो तो ५ पुत्र होते है। मकर राशि में ६ अश ४० कला के भीतर का शनि हो तो ३ पुत्र होते हैं। पचम भाव में मगल हो तो ३ पुत्र, गुरु हो तो ५ पुत्र, सूर्य, मगल दोनों हों तो ४ पुत्र, सूर्य, गुरु हो तो ६ सन्तानें, मंगल, गुरु हो तो ८ सन्तानें एव सूर्य, मगल, गुरु ये तीनो ग्रह हों तो ९ सन्तानें होती है। पचम भाव में चन्द्रमा गया हो तो ३ कन्याएँ, शुक्र हो तो ५ कन्याएँ और शनि गया हो तो ७ कन्याएँ होती हैं।

८—लग्न में राहु, ५ वें में गुरु और ९ वें में शनि हो तो ६ पुत्र; ९ वें में शनि और नवमेश पंचम में हो तो ७ पुत्र, गुरु ५।९ वें भाव में और धनेश १० वें भाव में तथा पचमेश बलवान् हो, उच्च राशि में गया हुआ पचमेश लग्नेश से युत हो और गुरु शुभग्रह से युत हो तो १० पुत्र,

---

१ सूर्य उच्च राशि का हो तो १०, चन्द्र हो तो ६, भौम ५, बुध ५, गुरु ७, शुक्र ८ और शनि की ५ किरणें होती है। उच्चबल का साधन कर पचमेश की किरणें निकाल लेनी चाहिए।

द्वितीयेश और पंचमेश का योग पंचम भाव में हो तो ६ पुत्र; परमोच्च राशि का गुरु हो, द्वितीयेश राहु से युत हो और नवमेश ९वें भाव में गया हो तो ९ पुत्र एव ५वें भाव में शनि हो तो दूसरा विवाह करने से सन्तान होती है।

९—कर्क राशि का चन्द्रमा पंचम भाव में गया हो तो अल्पसन्तान योग होता है। पंचमेश नीच का हो कर ६।८।१२वें भाव में स्थित हो और पापग्रह से युत हो तो काकवन्ध्या योग होता है; पंचमेश नीच का हो कर शनि से युत हो तो भी काकवन्ध्या योग होता है।

पंचमेश का द्वादश भावों से फल

पचमेश लग्न में हो तो जातक प्रसिद्ध पुत्र वाला, शास्त्रज्ञ, संगीत-विशारद, सुकर्मरत, विद्वान्, विचारक और चतुर; द्वितीय भाव में हो तो धनहीन, काव्यकला जानने वाला, कष्ट से भोजन प्राप्त करने वाला, आजीविका रहित और चालाक; तृतीय में हो तो मधुर-भाषी, प्रसिद्ध, पुत्रवान्, आश्रयदाता और नीतिज्ञ, चौथे मे हो तो गुरुजन-भक्त, माता-पिता की सेवा करने वाला, कुटुम्ब का संवर्द्धन करने वाला और सुन्दर सन्तान का पिता, पाँचवें भाव मे हो तो श्रेष्ठ सच्चरित्र पुत्रो का पिता, धनिक, लब्ध-प्रतिष्ठ, चतुर, विद्वान् और समाजमान्य, छठे भाव में हो तो पुत्रहीन, रोगी, धनहीन; शस्त्रप्रिय और दु.खी, सातवें भाव में हो तो सुन्दरी, सुशीला, सन्तानवती, मधुरभाषिणी भार्या का पति; आठवे भाव में हो तो कठोर वचन बोलने वाला, मन्दभागी, स्थान के कष्ट से दु खी और कष्ट भोगने वाला; नौवें भाव में हो तो विद्वान्, सगीतप्रिय, राजमान्य, सुन्दर, रसिक और सुबोध; दसवें भाव में हो तो राजमान्य, सत्कर्मरत, माता के सुख से सहित और ऐश्वर्यवान्; ग्यारहवें भाव में हो तो पुत्रवान्, कलाविद्, राजमान्य, सत्कर्मरत, गायक और धन-धान्य से परिपूर्ण एवं बारहवें भाव में हो तो पुत्रवान्, सुखी तथा क्रूर ग्रह पचमेश हो तो सन्तान-रहित, दु.खी और प्रवासी होता है।

षष्ठभाव विचार

छठे स्थान में पापग्रहो का रहना प्राय शुभ होता है। किन्तु इस स्थान में रहने वाले निर्बल पापग्रह शत्रुपीडा के सूचक हैं। षष्ठेश छठे भाव में हो तो स्वजाति के लोग ही शत्रु होते हैं। पचमेश ६।१२ भाव में हो और लग्नेश की दृष्टि हो तो शत्रुपीडा जातक को होती है।

१—चतुर्थेश और एकादशेश लग्नेश के शत्रु हो तो माता से वैर होता है। चतुर्थेश पापग्रह से युत या दृष्ट हो या चतुर्थेश लनेश से छठे भाव में स्थित हो अथवा चतुर्थेश छठे भाव में बैठा हो तो माता से जातक का वैर होता है।

२—लग्नेश और दशमेश की परस्पर शत्रुता हो, दशमेश लग्नेश से छठे स्थान में बैठा हो या दशमेश छठे भाव में स्थित हो तो जातक की पिता से अनबन रहती है। पचमेश ६।८।१२ भावो में हो तो जातक पिता से शत्रुता करता है।

३—लग्नेश और सप्तमेश दोनो आपस में शत्रु हों तो स्त्री से जातक की सदा खट-पट रहती है।

छठे स्थान में राहु, शनि और मगल में से कोई ग्रह हो और छठे स्थान पर शुभग्रहो की दृष्टि हो तो जातक विजयी और शत्रुनाशक होता है।

रोगविचार

यद्यपि लग्न स्थान से कुछ रोगो का विचार किया गया है, किन्तु छठे स्थान से भी कतिपय रोगो का विचार किया जाता है, अत कुछ योग नीचे दिये जाते हैं—

१—षष्ठेश सूर्य से युत १।८ भावों में हो तो मुख या मस्तक पर घाव निकलता है।

२—षष्ठेश चन्द्रमा से युत १।८ भावो में हो तो मुख या तालु पर व्रण होता है। मगल से युत होकर १।८ में हो तो कण्ठ में घाव, बुध से युत

होकर १।८ में हो तो हृदय में व्रण; गुरु से युत होकर १।८ में हो तो नाभि के नीचे व्रण, शुक्र से युत होकर १।८ में हो तो नेत्र के नीचे व्रण; शनि से युत होकर १।८ में हो तो पैर में व्रण एवं राहु और केतु से युत होकर १।८ में हो तो मुख पर घाव होता है।

३—बारहवें भाव में गुरु और चन्द्र का योग हो और बुध ३।६।१ भावो मे हो तो गुदा के समीप व्रण होता है।

४—मंगल और शनि का योग छठे या बारहवें भाव में हो और शुभग्रह न देखते हो तो गण्डमाला (कण्ठमाला) रोग होता है।

५—पापग्रह से युत या दृष्ट षष्ठेश जिस स्थान में हो उस स्थान के स्वामी की दशा में तथा उस राशि-द्वारा साकेतिक अंग में घाव जातक को होता है।

६—लग्नेश और रवि का योग ६।८।१२ भावो में-से कि किसी भाव में हो तो गलगण्ड दाहयुक्त; चन्द्रमा और लग्नेश ६।८।१२ भाव में हो तो जलोत्पन्न गलगण्ड, लग्नेश, षष्ठेश और चन्द्रमा में-से कोई भी ६।८।१२ भावो में-से किसी भी भाव में हो तो कफजनित गलगण्ड होता है।

७—लग्नेश और बुध का योग ६।८।१२वें भाव में हो तो पित्तरोगी; गुरु और लग्नेश का योग ६।८।१२वें भाव में हो तो वातरोगी एवं शुक्र और लग्नेश का योग ६।८।१२वे भाव मे हो तो जातक क्षयरोगी होता है। यहाँ स्मरण रखने की एक बात यह है कि इन योगो पर क्रूर ग्रहो की दृष्टि का होना आवश्यक है। क्रूर ग्रह की दृष्टि के अभाव में योग पूर्ण फल नही देते है।

८—मंगल और शनि लग्नस्थान या लग्नेश को देखते हो तो श्वास, क्षय, कास रोग, कर्क राशि में बुध स्थित हो तो कास, क्षय रोग; शनि युक्त चन्द्रमा की दृष्टि मंगल पर हो तो संग्रहणी रोग; चतुर्थ स्थान में गुरु, रवि और शनि ये तीनो ग्रह स्थित हो तो हृदयरोगी एवं लाभेश छठे स्थान में स्थित

हो तो अनेक रोगो से पीडित जातक होता है।

९—सूर्य, मंगल, शनि जिस स्थान में हो उस स्थानवाले अंग में रोग होता है तथा सूर्य, मगल और शनि से देखा गया भाव रोगाक्रान्त होता है।

१०—शुक्र के पापयुक्त, पापदृष्ट तथा पापराशि स्थित होने से वीर्य-सम्बन्धी रोग होते हैं।

११—मगल के पापयुक्त, पापदृष्ट तथा पापराशि स्थित होने से रक्त-सम्बन्धी रोग होते हैं।

१२—बुध के पापयुक्त, पापदृष्ट तथा पापराशि स्थित होने से कुष्ट रोग होता है।

१३—सूर्य के पापयुक्त, पादृष्ट तथा पापराशि स्थित होने से चर्मरोग होते हैं।

१४—चन्द्रमा के पापयुक्त, पापदृष्ट तथा पापराशि स्थित होने से मानसिक रोग होते है।

१५—गुरु के पापयुक्त, पापदृष्ट तथा पापराशि स्थित होने से मृगी, अपस्मार आदि रोग होते है। मतिविभ्रम भी इस योग के होने से देखा गया है।

१६—सूर्य, मगल और शुक्र का योग तथा अष्टमेश और लग्नेश का योग जातक को रोगी बनाता है।

१७—छठे स्थान पर शनि की पूर्ण दृष्टि हो तो जातक को राजयक्ष्मा होता है। चन्द्र और शनि एक साथ कर्क राशि में स्थित हों या छठे भाव में स्थित होकर बुध से दृष्ट हो तो जातक को कुष्ट रोग होता है।

षष्ठेश का द्वादश भावों में फल

षष्ठेश लग्न भाव में हो तो जातक नीरोग, कुटुम्ब को कष्ट देने वाला, शत्रुनाशक, निरुत्साही, निरुद्यमी, चंचल, धनी, अन्तिम अवस्था में आलसी पर मध्यम वय में परिश्रमी और अभिमानी, द्वितीय भाव में हो तो दुष्ट

बुद्धिवाला, चालाक, संग्रह करनेवाला, उत्तम स्थानवाला, प्रख्यात रोगी और अस्त-व्यस्त रहनेवाला; तृतीय भाव में हो तो कुटुम्बियों से मनमुटाव रखनेवाला, सग्राहक, द्वेषवृद्धि करनेवाला, स्वार्थी, अभिमानी, नीरोग और चतुर; चौथे भाव में हो तो पिता में द्वेष करनेवाला, नीच बुद्धि, अभिमानी, अभक्ष्य-भक्षक, और लालची; पाँचवें भाव में हो तो माता का भक्त, शत्रुओं से पीड़ित, साधारण रोगी, बवासीर और मस्तिष्क रोग से पीड़ित; छठे भाव में हो तो नीरोग, कृपण, शत्रुहन्ता अरिष्टनाशक, सुखी, साधारण धनी तथा क्रूर ग्रहों की दृष्टि हो तो नाना रोगों का शिकार, अभिमानी और कुटुम्बियों को शत्रु समझनेवाला, सातवें भाव में क्रूर ग्रह षष्ठेश हो तो भार्या कुरूपा, लड़ाकू, अभिमानिनी और व्यभिचारिणी होती है तथा शुभ-ग्रह षष्ठेश हो तो सन्तानहीन, रूपवती, गुणवती स्त्री का पति; आठवें भाव में हो तो स्त्री-मृत्यु के साधनों का ग्रहों के स्वरूपानुसार अनुमान करना चाहिए तथा जातक रोगी, अनेक व्याधियों से पीडित, दु.खी और शत्रुओं के द्वारा कष्ट पानेवाला, नौवें भाव में हो तो नीरोग, सम्माननीय, धर्मात्मा और मित्रों से युक्त; दसवें भाव में हो तो पिता से स्नेह करनेवाला पिता रोगी रहनेवाला, माता की सेवा करनेवाला, नीरोग, बलवान् ऐश्वर्यवान् और साहसी, किन्तु षष्ठेश क्रूर ग्रह हो तो इस के विपरीत फल मिलता है; ग्यारहवें भाव में हो तो शत्रुओं से कष्ट, पशुओं के व्यापार से लाभ और नीरोग तथा षष्ठेश क्रूर हो तो रोगी, शत्रुओं से दु.खी और अभिमानी एवं बारहवे भाव में हो तो रोगी, दुःखी और व्यापार से धनार्जन करनेवाला होता है।

सातवें भाव का विचार

सप्तम स्थान से विवाह का विचार प्रधानत किया जाता है। विवाह के प्रतिबन्धक योग निम्न हैं—

१—सप्तमेश शुभ युक्त न होकर ६।८।१२ भाव में हो अथवा नीच का

या अस्तगत हो तो विवाह नही होता है अथवा विधुर होता है ।

२—सप्तमेश बारहवें भाव में हो तथा लग्नेश और जन्मराशि का स्वामी सप्तम में हो तो विवाह नही होता ।

३—षष्ठेश, अष्टमेश तथा द्वादशेश सप्तम में हो तथा ये ग्रह शुभग्रह से युत या दृष्ट न हो अथवा सप्तमेश ६।८।१२वें भाव का स्वामी हो तो स्त्री-सुख जातक को नही होता है ।

४—यदि शुक्र और चन्द्रमा साथ होकर किसी भाव में बैठे हो और शनि एव भौम उन से सप्तम भाव में हो तो विवाह नही होता ।

५—लग्न, सप्तम और द्वादश भाव में पापग्रह बैठे हो और पंचमस्थ चन्द्रमा निर्बल हो तो विवाह नही होता ।

६—७।१२वें स्थान में दो-दो पापग्रह हो तथा पंचम में चन्द्रमा हो तो जातक का विवाह नहीं होता ।

७—सप्तम में शनि और चन्द्रमा के सप्तम भाव में रहने से जातक का विवाह नही होता; यदि विवाह होता भी है तो स्त्री वन्ध्या होती है ।

८—सप्तम भाव में पापग्रह के रहने से मनुष्य को स्त्रीसुख में बाधा होती है ।

९—शुक्र और बुध सप्तम में एक साथ हो तथा सप्तम पर पापग्रहों की दृष्टि हो तो विवाह नही होता; किन्तु शुभग्रहो की दृष्टि रहने से बडी आयु में विवाह होता है ।

१०—यदि लग्न से सप्तम भाव में केतु हो और शुक्र की दृष्टि उस पर हो तो स्त्रीसुख कम होता है ।

११—शुक्र मंगल ५।७।९वें भाव में हो तो विवाह नही होता ।

१२—लग्न में केतु हो तो, भार्यामरण तथा सप्तम में पापग्रह हो और सप्तम पर पापग्रहो की दृष्टि भी हो तो जातक को स्त्रीसुख कम होता है ।

विवाह योग

१—सप्तम भाव शुभयुत या दृष्ट होने से तथा सप्तमेश के वलवान् होने से विवाह होता है।

२—शुक्र स्वगृही या कन्या राशि का हो तो विवाह होता है।

३—सप्तमेश लग्न में हो या सप्तमेश शुभग्रह से युत होकर ११वें भाव में हो तो विवाह होता है।

४—जितने अधिक वलवान् ग्रह सप्तमेश से दृष्ट होकर सप्तम भाव में गये हो उतनी ही जल्दी विवाह होता है।

५—द्वितीयेश और सप्तमेश १।४।७।१०।५।९वें स्थान में हों तो विवाह होता है।

६—मंगल तथा रवि के नवांश में बुध, गुरु गये हो या सप्तम भाव मे गुरु का नवांश हो तो विवाह होता है।

७—लग्नेश लग्न में हो, लग्नेश सप्तम भाव में हो, सप्तमेश या लग्नेश द्वितीय भाव में हो तो विवाह योग होता है।

८—सप्तम और द्वितीय स्थान पर शुभग्रहो की दृष्टि हो तथा द्वितीयेश और सप्तमेश शुभ राशि में हो तो विवाह होता है।

९—लग्नेश दशम में हो और उस के साथ वलवान् बुध हो एवं सप्तमेश और चन्द्रमा तृतीय भाव में हों तो जातक का विवाह होता है।

१०—गुरु अपने मित्र के नवांश में हो तो विवाह होता है।

११—सप्तम में चन्द्रमा या शुक्र अथवा दोनो के रहने से विवाह होता है।

१२—यदि लग्न से सप्तम भाव में शुभग्रह हो या सप्तमेश शुभग्रह से युत होकर द्वितीय, सप्तम या अष्टम में हो तो जातक का विवाह होता है।

१३—विवाह प्रतिवन्धक योगो के न रहने पर विवाह होता है।

विवाह-स्त्रीसंख्या विचार

१—सप्तम में वृहस्पति और बुध के रहने से एक स्त्री होती है। सप्तम में

मगल या रवि हो तो एक स्त्री होती है ।

२—लग्नेश और सप्तमेश इन दोनो ही के लग्न या सप्तम में रहने से दो स्त्रियाँ होती है । यदि लग्नेश और सप्तमेश दोनो ही स्वगृही हो तो जातक का एक विवाह होता हैं ।

३—सप्तमेश और द्वितीयेश शुक्र के साथ अथवा पापग्रह के साथ हो कर ६।८।१२वें भाव में हो तो एक स्त्री को मृत्यु के वाद दूसरा विवाह होता है ।

४—यदि सप्तम या अष्टम स्थान में पापग्रह और मगल द्वादश भाव में हो तथा द्वादशेश अदृश्य चक्रार्ध में हो तो जातक का द्वितीय विवाह अवश्य होता है ।

५—लग्न, सप्तम स्थान और चन्द्रलग्न ये तीनो द्विस्वभाव राशि में हो तो जातक के दो विवाह होते हैं ।

६—लग्नेश, सप्तमेश और राशीश द्विस्वभाव राशि में हो तो दो विवाह होते हैं ।

७—लग्नेश द्वादश भाव में और द्वितीयेश पापग्रह के साथ कही भी हो तथा सप्तम स्थान में पापग्रह बैठा हो तो जातक की दो स्त्रियाँ होती हैं ।

८—शुक्र पापग्रह के साथ हो अथवा नीच का हो तो जातक के दो विवाह होते हैं ।

९—अष्टमेश १।७वें भाव में हो, लग्नेश लग्न में हो, लग्नेश छठे भाव में हो, सप्तमेश शुभ ग्रह से युत शत्रु या नीच राशि में गया हो एवं शुक्र नीच शत्रु अस्तंगत राशि का हो तो दो विवाह होते हैं ।

१०—धन स्थान में अनेक पापग्रह हों और धनेश भी पापग्रहो से दृष्ट हो तो तीन विवाह होते हैं ।

११—सप्तम भाव में वहुत पापग्रह हो तथा सप्तमेश पापग्रहों से युत हो तो तीन विवाह होते हैं ।

१२—वली चन्द्र और शुक्र एक साथ हों, वली शुक्र सप्तम भाव को

पूर्ण दृष्टि से देखता हो; लग्नेश उच्च का हो या लग्न भाव में उच्च का ग्रह एवं लग्नेश, द्वितीयेश और षष्ठेश ये तीनो ग्रह पापग्रहो से युक्त हो कर सप्तम भाव में स्थित हो तो जातक अनेक स्त्रियो के साथ विहार करने वाला होता है।

१३—सप्तमेश से तीसरे स्थान में चन्द्रमा, गुरु से दृष्ट हो, या सप्तमेश से तीसरे, सातवें भाव मे चन्द्रमा हो; सप्तमेश शनि हो; सप्तमेश और नवमेश बली हो कर ५-९वें भाव में स्थित हो एवं दशमेश से दृष्ट सप्तमेश १।४।५। ७।९।१०वें भाव में स्थित हो तो जातक अनेक स्त्रीभोगी होता है।

१४—७वें या १२वें भाव मे बुध हो तो वेश्यागामी होता है।

स्त्रीरोग विचार

१—लग्न स्थान में शनि, ·मंगल, बुध, केतु इन चारो में से किसी भी ग्रह के रहने से स्त्री रोगिणी रहती है।

२—सप्तमेश ८।१२वें भाव में हो तो भार्या रोगिणी रहती है।

३—सप्तमेश और द्वितीयेश दोनों पापग्रहो से युत हो कर २।१२वें भाव में हों तो स्त्री रोगिणी रहती है।

विवाह-समय विचार

१—बृहत्पाराशरकार ने बताया है कि सप्तमेश शुभग्रह की राशि में गया हो और शुक्र अपनी उच्च राशि में हो तो नौ वर्ष की अवस्था में विवाह होता है।

२—शुक्र धन स्थान में और सप्तमेश ग्यारहवें भाव में हो तो १० या १६ वर्ष की आयु में विवाह होता है।

३—लग्न में शुक्र और लग्नेश १०।११ राशि मे हो तो ११ वर्ष की आयु में विवाह होता है।

४—केन्द्र स्थान में शुक्र हो और शुक्र से सातवें शनि हो तो १२ या

१९ की अवस्था में विवाह होता है।

५—सातवें स्थान में चन्द्रमा हो और शुक्र से सातवें स्थान में शनि हो तो १८ वर्ष की आयु में विवाह होता है।

६—द्वितीयेश ११वें और एकादशेश २रे भाव में हो तो १३ वर्ष की आयु में विवाह होता है।

७—शुक्र द्वितीय स्थान में हो और द्वितीयेश तथा मंगल इन दोनों का योग हो तो २७वें वर्ष में विवाह होता है। मतान्वर से इस योग के रहने पर २२ या २३ वर्ष की आयु में विवाह होता है।

८—पचम भाव में शुक्र और चतुर्थ में राहु हो तो ३१वें या ३३वें वर्ष की आयु में विवाह होता है।

९—तृतीय भाव में शुक्र और ९वें भाव में सप्तमेश गया हो तो ३०वें या २७वें वर्ष में विवाह होता है।

१०—लग्नेश से शुक्र जितना नजदीक हो उतनी ही जल्दी विवाह होता है। शुक्र की स्थिति जिस राशि में हो उस राशि की दशा में विवाह होता है। अन्तर्दशा

११—सप्तमस्थ राशि की जो सख्या हो उस में आठ और जोड़ देने पर विवाह की वर्षसख्या आ जाती है। शुक्र, लग्न और चन्द्रमा से सप्तमाधिपति की सख्या में विवाह का योग आता है।

१२—लग्न, द्वितीय और सप्तम में शुभग्रह हो या इन स्थानो पर शुभग्रहों की दृष्टि हो तो छोटी अवस्था में विवाह होता है।

१३—लग्नेश और सप्तमेश को जोड कर जो राशि हो उस राशि में जब गोचर का गुरु पहुँचता है तब विवाह का योग होता है। अपनी जन्म-राशि के स्वामी और अष्टमेश को जोडने से जो राशि आवे, उस राशि में जब गोचर का गुरु पहुँचता है तब विवाह होता है।

१४—शुक्र और चन्द्रमा इन दोनो में से जो ग्रह वली हो उस की महादशा में विवाह होता है।

१५—यदि सप्तमेश शुक्र के साथ हो तो सप्तमेश की अन्तर्दशा में विवाह होता है। नवमेश, दशमेश और सप्तम भावस्थ ग्रह की अन्तर्दशा में विवाह होता है।

स्त्री-मृत्यु विचार

१—कोई पापग्रह सप्तम स्थान में हो, पंचमेश सप्तम स्थान में हो; अष्टमेश सप्तम स्थान में हो, गुरु सप्तम स्थान में हो एवं पाप ग्रह से युत शुक्र सप्तम में हो तो जातक की स्त्री का मरण उस की जीवित अवस्था में होता है।

२—स्त्री के जन्मनक्षत्र से पुरुष जन्मनक्षत्र तक तथा पुरुष के जन्म-नक्षत्र से स्त्री के जन्मनक्षत्र तक गिनने से जो संख्या आवे उस में अलग-अलग ७ से गुणा कर २८ का भाग देने से यदि प्रथम संख्या में अधिक शेष रहे तो स्त्री की मृत्यु पहले और द्वितीय संख्या में अधिक शेष रहे तो पुरुष की मृत्यु पहले होती है।

३—शुक्र के नवांश में या लग्न से सप्तम स्थान में शुक्र हो और सप्तमेश पंचम स्थान में हो तो जातक को स्त्रीमरण का दुःख सहन करना पड़ता है।

४—द्वितीयेश और सप्तमेश ६।८।१२वें भाव में हों तो स्त्रीमरण; छठे में मंगल, सप्तम में राहु और अष्टम में शनि हो तो भार्यामरण होता है।

५—शुक्र द्विस्वभाव राशि में हो और सप्तम में पापग्रह स्थित हो अथवा सप्तम पर पापग्रहों की दृष्टि हो तो जातक की स्त्री का मरण होता है।

सप्तमेश का द्वादश भावों में फल

सप्तमेश लग्न स्थान में हो तो जातक स्वस्त्री से प्रेम करने वाला, सदाचारी, परस्त्री रति से घृणा करने वाला, रूपवान्, स्त्री के वश में रहने वाला, सुपुत्रवान् और धर्मभीरु; द्वितीय भाव में हो तो सुखरहित, दुःखी,

ससुराल से धन प्राप्त करने वाला, स्त्री के सुख से रहित और रतिसुख के लिए सदा लालायित रहने वाला, तृतीय भाव में हो तो पुत्र से प्रेम करने वाला, रोगिणी भार्या का पति, दु खी, रोगी और कौटुम्बिक सुख से हीन; चौथे भाव में हो तो साधक, पिता से द्वेष करने वाला, चंचल, समाजसेवी और सुखी, पाँचवें भाव में हो तो सौभाग्ययुक्त, पुत्रवान्, हठी, दुष्ट विचार वाला, माता की सेवा करने वाला और दुष्ट प्रकृति का, छठे भाव में हो तो स्त्री से द्वेष करने वाला, रोगिणी भार्या का पति, स्त्री से हानि और कुटुम्ब से दु खी, सातवें भाव में हो तो दीर्घायु, शीलवान्, तेजस्वी, सुन्दर नारी का पति, सौभाग्यशाली, सुखी और कुटुम्ब से परिपूर्ण, आठवें भाव में हो तो वेश्यागामी, विवाह से वचित, वास्तविक रतिसुख से वंचित और रोगी, नौवें भाव में हो तो तेजस्वी, शिल्पी, स्त्रीसुख से परिपूर्ण, सुन्दर रमणी के साथ रमण करने वाला, धर्मात्मा और नीतिज्ञ, दसवें भाव में हो तो राजा से दण्ड पाने वाला, लम्पट, कामी, क्रूर और नीच कर्मरत, ग्यारहवें भाव में हो तो रूपवती, सुशीला रमणी का पति, गुणवान्, दयालु और धनिक एव बारहवें भाव में हो तो गृह और बन्धु से हीन, स्त्रीसुख-रहित या अल्प स्त्रीसुख पाने वाला होता है। यदि सप्तमेश क्रूर ग्रह हो तो उस का प्रत्येक भाव में अनिष्ट फल ज्ञात करना चाहिए।

अष्टम भाव विचार

अष्टम भाव से प्रधानत आयु का विचार किया जाता है। दीर्घायु के योग निम्न हैं—

१—पचम में चन्द्रमा, नौवें में गुरु और दसवें भाव में मगल हो तो दीर्घायु योग होता है।

२—अष्टमेश अपनी राशि में हो और शनि अष्टम में हो।

३—अष्टमेश, लग्नेश और दशमेश १।४।५।७।९।१०वें भाव में हों तो दीर्घायु होता है।

४—षष्ठेश और व्ययेश दोनो लग्न में हो, दशमेश केन्द्र में हो और लग्नेश केन्द्र में हो तो दीर्घायु योग होता है।

५—पापग्रह ३।६।११ और शुभग्रह १।४।५।७।९।१० स्थानो में हो तो दीर्घायु योग होता है।

६—लग्नेश बलवान् हो कर केन्द्र में हो तो दीर्घायु और सभी ग्रह तीसरे, चौथे तथा आठवें स्थान में हो तो जातक दीर्घायु होता है।

अल्पायु योग

१—वृश्चिक का सूर्य गुरु के साथ लग्न में हो और अष्टमेश केन्द्र में हो तो २२ वर्ष आयु होती है।

२—१।४।५।८ राशियो का शनि लग्न में हो, शुभग्रह ३।६।९।१२ में हो तो २६ या २७ वर्ष की आयु होती है।

३—अष्टमेश पापग्रह हो और गुरु या पापग्रह से दृष्ट हो; लग्नेश अष्टम भाव में हो तो २८ वर्ष की आयु होती है।

४—चन्द्र या शनियुक्त सूर्य आठवें भाव में हो तो २९ वर्ष की आयु, राशीश और अष्टमेश के मध्य में चन्द्र हो, व्यय भाव में गुरु हो तो २७ या ३० वर्ष की आयु होती है।

५—क्षीण चन्द्रमा हो, अष्टमेश पापयुक्त केन्द्र या अष्टम में हो; लग्न पापयुक्त निर्बल हो तो ३२ वर्ष की आयु होती है।

६—६।८।१२वें भावों में पापग्रह हो, लग्नेश निर्बल हो तथा शुभ-ग्रहो से युत और दृष्ट न हो तो जातक अल्पायु होता है।

७—सभी पापग्रह ३।६।९।१२ भावो में हो तो अल्पायु, लग्नेश और अष्टमेश ६ठे या ८वें भाव में हो तो अल्पायु होता है।

८—द्वितीयेश नवम भाव में, शनि सातवें और गुरु, शुक्र ग्यारहवे

भाव में हो तो अल्पायु योग होता है।

९—लग्नेश निर्बल हो तथा सभी पापग्रह १।४।५।७।९।१० स्थानो में हों और शुभग्रहो की दृष्टि भी नही हो तो अल्पायु योग होता है।

१०—शुक्र, गुरु लग्न में हो और पचम में मंगल पापग्रह से युत हो तथा सूर्यसहित लग्नेश लग्न में हो तो जातक अल्पायु होता है।

मध्यमायु योग

१—सभी पापग्रह २।५।८।११वें स्थान में हो या ३।४ स्थानो में हो तो मध्यमायु योग होता है।

२—लग्नेश निर्बल हो, गुरु १।४।७।१०।५।९ स्थानो में हो और पापग्रह ६।८।१२वें भाव में स्थित हों तो मध्यमायु योग होता है।

३—सभी शुभग्रह १।४।५।७।९।१० स्थानो में हों, शनि ६।८ स्थानों में हो और पापग्रह बलवान् होकर ७।८ स्थानो में हो तो जातक मध्यमायु होता है।

४—१।४।५।७।९।१० स्थानों में शुभ और पाप दोनो ही प्रकार के मिश्रित ग्रह हों तो मध्यमायु योग होता है।

५—दिन में जन्म हो और चन्द्रमा से आठवें स्थान में पापग्रह हों तो मध्यमायु योग होता है।

मृत्यु का निर्णय करने के लिए मारक का ज्ञान कर लेना आवश्यक है। ज्योतिष शास्त्र में लग्नेश, षष्ठेश, अष्टमेश, गुरु और शनि इन के सम्बन्ध से मारकेश का विचार किया गया है। अष्टमेश बली होकर ३।४।६।१०।१२ स्थानो में हो तो मारक होता है। लग्नेश से अष्टमेश बलवान् हो तो अष्टमेश की अन्तर्दशा मारक होती है। शनि षष्ठेश और अष्टमेश होकर लग्नेश को देखता हो तो लग्नेश भी मारक हो जाता है। अष्टमेश सप्तम भाव में बैठकर लग्न को देखता हो तो पापग्रह की दशा-अन्तर्दशा में वह

मारक होता है। मंगल की दशा में शनि तथा शनि की दशा में मंगल सदा जातक को रोगी बनाते हैं। अष्टमेश चतुर्थ स्थान में शत्रुक्षेत्री हो तो मारक बन जाता है।

पाराशर के मत से द्वितीय और सप्तम मारक स्थान हैं। तथा इन दोनों के स्वामी—द्वितीयेश, सप्तमेश, द्वितीय और सप्तम में रहने वाले पापग्रह एवं द्वितीयेश और सप्तमेश के साथ रहनेवाले पापग्रह मारकेश होते हैं। अभिप्राय यह है कि यदि द्वितीयेश पापग्रह हो तथा पापग्रह से दृष्ट हो तो प्रथम वही मारकेश होता है, पश्चात् सप्तमेश पापग्रह हो और पापग्रह से दृष्ट हो; अनन्तर द्वितीयेश में रहनेवाला पापग्रह, अनन्तर सप्तम में रहनेवाला पापग्रह, द्वितीयेश के साथ रहनेवाला पापग्रह और सप्तमेश के साथ रहनेवाला पापग्रह मारकेश होता है। शनि यदि मारकेश के साथ हो तो मारकेश को हटा कर स्वयं मारक बन जाता है। द्वादशेश भी पापग्रह होने पर मारक बन जाता है। पापग्रह षष्ठेश हो या पापराशि में षष्ठेश बैठा हो अथवा पापग्रह से दृष्ट हो तो षष्ठेश की दशा में भी मरण की सम्भावना होती है। मारकेश की दशा में षष्ठेश, अष्टमेश और द्वादशेश की अन्तर्दशा में मरण सम्भव होता है। यदि मारकेश अधिक बलवान् हो तो उस की दशा या अन्तर्दशा में मरण होता है। राहु या केतु १।७।८।१२वें भाव में हों अथवा मारकेश से ७वें भाव में हो या मारकेश के साथ हो तो मारक होते हैं। मकर और वृश्चिक लग्नवालों के लिए राहु मारक बताया गया है।

जैमिनी के मत से आयुविचार

लग्नेश-अष्टमेश, जन्मलग्न-चन्द्र एवं जन्मलग्न-होरालग्न इन तीनो के द्वारा आयु का विचार करना चाहिए। उपर्युक्त तीनो योगो वाले ग्रह अर्थात् लग्नेश और अष्टमेश, जन्मलग्न और चन्द्र, तथा जन्मलग्न और होरालग्न-द्वारा नीचे के चक्र से आयु का निर्णय करना चाहिए।

दीर्घायु	मध्यमायु	अल्पायु
चरराशि लग्नेश चरराशि-अष्टमेश	चरराशि-लग्नेश स्थिरराशि-अष्टमेश	चरराशि-लग्नेश द्विस्वभाव-अष्टमेश
स्थिरराशि-लग्नेश द्विस्वभाव-अष्टमेश	स्थिरराशि-लग्नेश चरराशि-अष्टमेश	स्थिरराशि-लग्नेश स्थिरराशि-अष्टमेश
द्विस्वभाव-लग्नेश स्थिरराशि-अष्टमेश	द्विस्वभाव-लग्नेश द्विस्वभाव-अष्टमेश	द्विस्वभाव लग्नेश चरराशि-अष्टमेश

इसी प्रकार लग्न-चन्द्र अथवा शनि चन्द्र, जन्मलग्न तथा होरालग्न पर-से आयु का विचार होता है। यदि तीनों प्रकार से अथवा दो प्रकार से एक ही प्रकार की आयु आये तो उसे ठीक समझना चाहिए। यदि तीनों प्रकार से भिन्न-भिन्न प्रकार की आयु आये तो जन्मलग्न और होरालग्न[1] पर से जो आयु निकले उसी को ग्रहण करना चाहिए।

विसंवाद होने पर लग्न या सप्तम में चन्द्रमा हो तो शनि और चन्द्रमा पर से आयु निकालना चाहिए। अन्यथा जन्मलग्न और होरालग्न पर से ही आयु सिद्ध करना चाहिए।

इस प्रकार आयु का योग निश्चित कर लेने पर भी यदि लग्नेश या अष्टमेश शनि हो तो कक्षा हानि अर्थात् दीर्घायु योग आया हो तो उस को मध्यमायु योग, मध्यमायु योग आया हो तो अल्पायु योग और अल्पायु योग आया हो तो हीनायु योग होता है, परन्तु शनि ७।१०।११ राशियो में से किसी भी राशि में हो तो कक्षा हानि नही होती है।

---

१ इष्टकालको २से गुणा कर पाँच का भाग देने से जो राश्यादि आवें उन में रविस्पष्ट को जोड देने पर होरालग्न होता है।

लग्न या सप्तम में गुरु हो अथवा केवल शुभग्रह से युत या दृष्ट गुरु हो तो कक्षा-वृद्धि अर्थात् अल्पायु में मध्यमायु, मध्यमायु में दीर्घायु और दीर्घायु में पूर्णायु होती है।

तीनो प्रकार से दीर्घायु आये तो १२० वर्ष, दो प्रकार से आये तो १०८ वर्ष तथा एक प्रकार से आये तो ९६ वर्ष होते हैं।

तीनो प्रकार से मध्यमायु में ८० वर्ष, दो प्रकार से मध्यमायु में ७२ वर्ष और एक प्रकार से मध्यमायु में ६४ वर्ष होते हैं।

तीनो प्रकार से अल्पायु में ३२ वर्ष, दो प्रकार से अल्पायु योग में ३६ वर्ष और एक प्रकार से अल्पायु हो तो ४० वर्ष होते हैं।

स्पष्टायु साधन का नियम

जिन ग्रहो पर से आयु जानना हो उन स्पष्ट ग्रहो की राशियो को छोड़ अंशादि का योग कर के, योगकारक ग्रहो की संख्या से भाग देकर जो अंशादि आयें, उन के अनुसार अंश, कला, विकला फल के कोष्ठक के नीचे जो वर्ष, मास और दिनादि हो उन्हें जोड़कर दीर्घायु हो तो ९६ में-से मध्यमायु हो तो ६४ में-से और अल्पायु हो तो ३२ में-से घटाने पर स्पष्टायु होती है।

मतान्तर से योगकारक ग्रहो के अंशादि जोडने से जो आये उस में योग-कारक ग्रहो की संख्या का भाग देने से जो लब्ध आये उस में तीन प्रकार से आयु आने पर ४० से, दो प्रकार से आने पर ३६ से और तीन प्रकार से आने पर ३२ से गुणाकर ३० का भाग देने पर लब्ध वर्षादि को पूर्वोक्त आयु खण्ड में-से घटाने पर स्पष्टायु होती है।

उदाहरण—द्वितीय अध्याय में दी गयी उदाहरण-कुण्डली ही यहाँ पर उदाहरण समझना चाहिए। यहाँ लग्नेश सूर्य है और अष्टमेश शुक्र है। सूर्य चर राशि में और अष्टमेश द्विस्वभाव राशि में है, अतः अल्पायु योग हुआ। द्वितीय प्रकार अर्थात् चन्द्र-शनि से विचार किया तो चन्द्रमा स्थिर राशि में और शनि द्विस्वभाव राशि में है अतः दीर्घायु योग हुआ।

इष्टकाल २३।२२ × २ = ४६।४४ ÷ ५ = ९।१०।४८ + रविस्पष्ट
०।१०। ७।३४ सूर्य स्पष्ट
९।१०।४८। ०
९।२०।५५।३४ स्पष्ट होरालग्न

इस उदाहरण में जन्मलग्न स्थिर और होरालग्न स्थिर राशि में है अत अल्पायु योग हुआ।

इस उदाहरण में दो प्रकार से अल्पायु योग आया है, अतएव अल्पायु समझनी चाहिए।

स्पष्टायु निकालने के लिए गणित क्रिया की—

लग्नेश सूर्य	०।१०। ७।३४	
अष्टमेश शुक्र	११।२३।२०।१०	राशियो को
होरालग्न	९।२०।५५।३४	जोड दिया
जन्मलग्न	४।२३।२५।२७	
	—।७७।४८।४५	

७७।४८।४५ ÷ ४ = १९।२७।११ इसे ३२ से गुणा किया और ३० का भाग दिया तो वर्षादि २३।४।३।४३ मिला। इसे अल्पायु के द्वितीय खण्ड में से घटाया—

३६।०।०। ०
२३।४।३।४३
१२।७।२६।१७ स्पष्टायु

आयुसाधन की दूसरी प्रक्रिया

जन्मकुण्डली के केन्द्रांक, त्रिकोणांक, केन्द्रस्थ ग्रहांक[1] और त्रिकोणस्थ

---

१ केन्द्र में सिर्फ चन्द्रमा है, सूर्य से चन्द्रमा दूसरी सख्या का है। अत २ अक लिया है, इसी प्रकार मगल से ३, बुध से ४, गुरु से ५, शुक्र से ६, शनि से ७, राहु से ८ और केतु से ९ अक लेते हैं।

ग्रहांक इन चारों संख्याओं को जोड़ कर योगफल को १२ से गुणा कर १० का भाग देने से जो वर्षादि लब्ध आयें उन में से १२ घटाने पर आयु प्रमाण निकलता है।

उदाहरण—दूसरे अध्याय में जो उदाहरण-कुण्डली लिखी गयी है उस की आयु—

केन्द्रांक ५ + ८ + ११ + २ = २६

त्रिकोणांक ९ + १ = १०

केन्द्रस्थग्रहांक २ = २

त्रिकोणस्थग्रहांक ४ + १ = ५

२६ + १० + २ + ५ = ४३ । $\frac{४३ \times १२}{१०} = \frac{५१६}{१०} = ५१\frac{६}{१०}$

$\frac{६}{१०} \times \frac{१२}{१} = \frac{७२}{१०} = ७\frac{२}{१०}$ । $\frac{२}{१०} \times \frac{३०}{१} = ६$

५१।७।६
१२।०।०

३९।७।६ आयुमान हुआ।

नक्षत्रायु

जन्मनक्षत्र की भुक्त घटियों को ४ से गुणा कर ३ का भाग देने से जो लब्ध आये उसे १०० वर्ष में-से घटाने से नक्षत्रायु आती है। उदाहरण—भुक्तनक्षत्र १२।१० है।

$१२।१० \times ४ = ४८।४० \div ३ = ४८\frac{४०}{६०} = ४८ + \frac{२}{३} = \frac{१४६}{३} \times \frac{१}{३} =$

$\frac{१४६}{९} = १६\frac{२}{९} \times १२ = \frac{८}{३} = २\frac{२}{३} \times \frac{३०}{}$

१६।२।२० को १०० वर्ष में-से घटाया

१००।०

१६।२।२०

८३।९।१० नक्षत्र स्पष्टायु हुई।

ग्रहरश्मियों द्वारा आयु साधन

सूर्य का रश्मि गुणाक १०, चन्द्र का ११, मगल का ५, बुध का ५, गुरु का ७, शुक्र का ८ और शनि का ५ रश्मि गुणाक है।

ग्रह में-से अपने-अपने उच्च को घटाना, शेष छह राशि से कम हो तो उसे १२ राशियो में-से घटाने पर जो शेष रहे उस की कला बना कर अपने गुणाक से गुणा करना चाहिए। जो गुणनफल आवे उस में २१६०० का भाग देने पर ग्रह की रश्मिज आयु आती है। इस विधि से समस्त ग्रहो को रश्मिज आयु का साधन कर लेना चाहिए। जो ग्रह स्वगृही, उच्चराशि, मित्रक्षेत्री और वक्री होने वाला हो उस के वर्षों को द्विगुणित कर लेना चाहिए। वक्री और अस्तंगत ग्रह के वर्षों का आधा करने पर ग्रह की आयु आती है। समस्त ग्रहों की आयु को जोड देने पर जातक की आयु आ जाती है। रश्मिज आयु में राहु और केतु की आयु नही निकाली गयी है।

लग्नायु साधन

जन्मकुण्डली में जिस-जिस स्थान में ग्रह स्थित हों, उस-उस स्थान में जो-जो राशि हो, उन सभी ग्रहस्थ राशियों के निम्न ध्रुवाको को जोड देने से लग्नायु होती है। ध्रुवाक—मेष १०, वृष ६, मिथुन २०, कर्क ५, सिह ८, कन्या २, तुला २०, वृश्चिक ६, धनु १०, मकर १४, कुम्भ ३ और मीन १० ध्रुवाक संख्यावाली हैं।

केन्द्रायु साधन

जन्मकुण्डली में चारो केन्द्रस्थानो (१।४।७।१०) की राशियों का

योग कर भौम और राहु जिस-जिस राशि में हो उन के अंको की संख्या का योग केन्द्रांक संख्या के योग में-से घटा देने पर जो शेष बचे उसे तीन से गुणा करने से केन्द्रायु होती है।

प्रकारान्तर से नक्षत्रायु

भयातको ९० में-से घटा कर जो शेष रहे उस को चार से गुणा कर तीन का भाग देने से लब्ध वर्षादि नक्षत्रायु होते हैं।

ग्रहयोगों पर से आयु विचार

१—शनि तुला के नवांश में हो और उस पर गुरु की दृष्टि हो तथा शनि, राहु बारहवे में हो और शनि वक्री हो तो १३ वर्ष की आयु होती है।

२—शनि कन्या के नवांश में हो और बुध से दृष्ट हो; राहु, सूर्य, मंगल, बुध और शनि ये पाँचों ग्रह या इन में-से कोई चार ग्रह अष्टम में हो एवं मंगल-राहु या शनि-राहु बारहवें स्थान में हो तो १४ वर्ष की आयु होती है।

३—शनि सिंह के नवांश में हो और राहु से दृष्ट हो तथा चौथे में चन्द्रमा और छठे में सूर्य हो तो १५ वर्ष की आयु होती है।

४—३ या ११वें भाव में शनि या ९वें में रवि और गुरु, शुक्र केन्द्र में नहीं हो; तथा शनि कर्क के नवांश में, केतु से दृष्ट हो तो १६ वर्ष की आयु होती है।

५—शनि मिथुन के नवांश में लग्नेश से दृष्ट हो; सूर्य वृश्चिक या कुम्भ राशि मे, शनि मेष में और गुरु मकर राशि में हो एवं कर्क या कुम्भ राशि में सूर्य, शनि और मेष राशि में गुरु, शुक्र स्थित हों तो १७ वर्ष की आयु होती है।

६—लग्नेश अष्टम में, अष्टमेश लग्न में हो; छठे स्थान में शनि, सूर्य और चन्द्रमा एकत्रित हो एवं पापग्रहो से दृष्ट चन्द्रमा ६।८।१२वे भाव में हो, लग्नेश अष्टम में पापग्रह दृष्ट या युत हो तो १८ से २० वर्ष तक आयु होती है।

७—लग्न में वृश्चिक राशि हो और उस में सूर्य, गुरु स्थित हों तथा अष्टमेश केन्द्र में हो, चन्द्रमा और राहु ७।८ वें भाव में हो, पापग्रह के साथ गुरु लग्न में हो, अष्टम स्थान ग्रहशून्य हो, अष्टमेश, द्वितीयेश और नवमेश एक साथ हो तथा लग्नेश अष्टम में हो तो २२ या २४ वर्ष को आयु होती है।

८—शनि द्विस्वभाव राशिगत होकर लग्न में हो और द्वादशेश तथा अष्टमेश निर्बल हो तो २५ वर्ष की आयु होती है।

९—लग्नेश निर्बल हो, अष्टमेश द्वितीय या तृतीय में हो, लग्नेश, अष्टमेश केन्द्रवर्ती हो तथा केन्द्र में और शुभग्रह नही हो तो जातक की ३० या ३२ वर्ष की आयु होती है।

१०—गुरु और शुक्र केन्द्र में हों और लग्नेश किसी पापग्रह के साथ आपोक्लिम में हो और जन्म सन्ध्या समय का हो तो ३६ वर्ष की आयु होती है।

११—अष्टमेश स्थिर राशि में स्थित होकर केन्द्र में हो और अष्टम स्थान पाप दृष्ट हो, अष्टमेश लग्न में हो और अष्टम स्थान में कोई शुभग्रह नही हो एव स्वक्षेत्री शुभग्रह की दृष्टि अष्टम स्थान पर पडती हो तो जातक की ४० वर्ष की आयु होती है।

१२—अष्टमेश लग्न में मगल के साथ हो अथवा अष्टमेश स्थिर राशि में स्थित होकर १।८।१२ स्थानो में-से किसी भी स्थान में स्थित हो तो जातक की ४२ वर्ष की आयु होती है।

१३—लग्न द्विस्वभाव राशि में हो, वृहस्पति केन्द्र में और शनि दसवें स्थान में हो, सूर्य और शुक्र मकर राशि में ३।६वें स्थान में हो और अष्टमेश केन्द्र में हो तो ४४ वर्ष की आयु होती है।

१४—जन्मराशीश पापग्रह के साथ अष्टम स्थान में हो और लग्नेश किसी पापग्रह के साथ छठे स्थान में हो तो ४५ वर्ष की आयु होती है।

१५—सभी पापग्रह केन्द्र में हो तो ४७ वर्ष की आयु होती है।

१६—बुध चौथे या दसवें स्थान में हो और चन्द्र लग्न अष्टम या द्वादश में हो और वृहस्पति शुक्र किसी भी स्थान में एकत्रित हो तो ५० वर्ष की आयु होती है।

१७—लग्न मीन राशि हो और शनि अन्य ग्रहो के साथ उस में स्थित हो तथा चन्द्रमा ८।१२ वें स्थान में हो, शुक्र और गुरु उच्च के हो एवं द्वादशेश और अष्टमेश उच्च के हो तो ५५ वर्ष की आयु होती है।

१८—तृतीयेश गुरु के साथ लग्न में हो, कोई भी पापग्रह कुम्भ राशि का होकर केन्द्र में हो, अष्टमेश लग्न में हो, लग्नेश द्वादश भाव में हो तथा अष्टम स्थान में पापग्रह हो; सूर्य शत्रुग्रह और मंगल के साथ लग्न मे हो, लग्नेश पापग्रह के साथ ६।८।१२वे भाव में हो एवं अष्टम स्थान शुभग्रह से रहित हो और लग्नेश पापग्रह के साथ ६।८।१२ वें स्थान में हो तो ६० वर्ष की आयु होती है।

१९—नीच का शनि केन्द्र या त्रिकोण में हो और रवि शुभग्रह के साथ १।४।७।१० स्थानो में किसी भी स्थान में हो तो ६५ वर्ष की आयु होती है।

२०—मंगल पाँचवें, सूर्य सातवें और शनि नीच राशि का हो तो ७० वर्ष की आयु होती है।

अष्टमेश का द्वादश भावों में फल

अष्टमेश लग्न स्थान में हो तो जातक सहनशील, दीर्घरोगी, राजा के द्वारा धन प्राप्त करने वाला, अशुभ कर्मरत और दुःखी, द्वितीय स्थान में हो तो अल्पायु, शत्रुओ से युत, नीचकर्मरत, अभिमानी और दु.ख प्राप्त करनेवाला, तृतीय भाव में हो तो बन्धुविरोधी, सहोदररहित, दुर्बल, रोगी, अल्पसुखी और विकलांगी, चौथे भाव में हो तो पिता से शत्रुता करनेवाला, अन्याय से पिता के धन का हरण करने वाला, पिता के लिए विभिन्न प्रकार के कष्ट देने वाला, चालाक, वावदूक और उग्र प्रकृतिवाला; पाँचवें भाव में हो तो सुतहीन, अल्प सन्ततिवाला, सन्तान के द्वारा सर्वदा कष्ट पाने-

कष्ट पाने वाला और मेधावी; छठे स्थान में हो तो रोगी, दु खी, जीवन में अनेक प्रकार के उतार-चढ़ाव देखने वाला, शत्रुओ से पीडा प्राप्त करने वाला तथा उन के द्वारा मृत्यु को प्राप्त होने वाला और सन्तप्त; सातवें भाव में हो तो दुष्ट कुलोत्पन्न स्त्री का पति, गुल्मरोगी, कष्ट पाने वाला, स्त्री के साथ निरन्तर कलह से दु खी रहने वाला और अल्पसुखी, आठवें भाव में हो तो व्यवसायी, नीरोग, व्याधिरहित, नीचों का नेता, नीचकर्म-रत और धूर्तों का सरदार, नौवें भाव में हो तो पापी, नीच, धर्मविमुख, अकेला रहने वाला, सज्जन तथा नीच अष्टमेश होने से ब्राह्मण की हत्या करने वाला और कुरूप, दसवें भाव में हो तो नीचकर्मरत, राजा की सेवा करने वाला, आलसी, क्रूर प्रकृति, जारज, नीच और मातृघातक, ग्यारहवें भाव में हो तो बाल्यावस्था में दु खी, पर अन्तिम तथा मध्यावस्था में सुखी, दीर्घायु, सत्कार्यरत तथा पापग्रह अष्टमेश ग्यारहवें में हो तो अल्पायु, नीचकर्मरत, हिंसक और दु खी एव बारहवें भाव में अष्टमेश क्रूर-ग्रह हो तो निकृष्ट, चोर, शठ, कुञ्जक, रोगी, दु खी और अनेक प्रकार के कष्ट पाने वाला होता है ।

अष्टमेश लग्न में और लग्नेश अष्टम में हो तथा द्वादश, द्वितीय और तृतीय स्थानों पर पापग्रहो की दृष्टि हो या पापग्रह इन स्थानो में हो तो जातक नाना व्याधियो से पीडित हो कर मृत्यु को प्राप्त करता है ।

नवम भाव विचार

नवम से भाग्य और धर्म-कर्म के सम्बन्ध में विचार किया जाता है । भाग्येश के बलवान् होने से जातक भाग्यशाली होता है। यदि भाग्य-भवन पर अनेक ग्रहों की दृष्टि हो तो भाग्योदय के समय अनेक व्यक्तियों की सहायता लेनी पडती है । भाग्येश ६।८।१२वे भाव में शत्रुगृह में बैठा हो तो भाग्य उत्तम नही होता है । भाग्यस्थान में लाभेश बैठा हो तो नौकरी का योग होता है । धनेश लाभ में गया हो और दशमेश से युत या दृष्ट हो तो भाग्यवान् होता है । लाभेश नौवें भाव में हो और दशमेश से युत या

दृष्ट हो तो भाग्यवान् होता है। नवमेश धन भाव में गया हो और दशमेश से युत या दृष्ट हो तो भाग्यवान् होता है। लाभेश नवम भाव में, धनेश लाभ भाव में, नवमेश धन भाव मे हो और दशमेश से युत या दृष्ट हो तो महाभाग्यवान् होता है। नवम भाव गुरु और शुक्र से युत, दृष्ट हो या भाग्येश गुरु, शुक्र से युत हो या लग्नेश और धनेश पंचम में स्थित हो अथवा नवम भाव में; नवमेश लग्न भाव मे गया हो तो जातक भाग्यवान् होता है।

भाग्योदय काल

सप्तमेश या शुक्र ३।६।१०।११।७वें स्थान में हो तो विवाह के वाद भाग्योदय होता है। भाग्येश रवि हो तो २२वें वर्ष में; चन्द्र हो तो २४वें वर्ष में; मंगल हो तो २८वें वर्ष में; बुध हो तो ३२वें वर्ष में; गुरु हो तो १६वें वर्ष में; शुक्र हो तो २५वें वर्ष में; शनि हो तो ३६वें वर्ष में और राहु हो तो ४२वें वर्ष मे भाग्योदय होता है।

इस भाव का विशेष फल

१—नवम भाव में गुरु या शुक्र स्थित हो तो मन्त्री, शासनकार्य में सहयोग या विचार परामर्श देने वाला, कौन्सिल का मेम्बर, पार्लमेण्ट-सेक्रेटरी और प्रधान न्यायाधीश का पेशकार होता है। पर इस योग में ध्यान देने की एक वात यह है कि यह फल गुरु या शुक्र के उच्च राशि में रहने पर ही घटता है। नवम भाव पर शुभग्रह की दृष्टि भी अपेक्षित है।

२— नवमस्थ गुरु को सूर्य देखता हो तो राजा के समान, धारासभाओं का सदस्य, जनता का प्रतिनिधि, चन्द्र देखता हो तो विलासी, सुन्दरदेही; मंगल देखता हो तो काचन, हिरण्य आदि मूल्यवान् धातुओं वाला; बुध देखता हो तो धनी; शुक्र देखता हो तो पशु, धनधान्य आदि सम्पत्ति से युक्त; शनि देखता हो तो चल-अचल नाना प्रकार की सम्पत्ति का स्वामी होता है।

३—गुरु को सूर्य-मंगल देखते हो तो ऐश्वर्य, रत्न, स्वर्ण आदि सम्पत्ति से युक्त, साहसी, धीरवीर, पराक्रमी और बडे परिवार वाला होता है, सूर्य-बुध देखते हो तो सुन्दर, भाग्यवान्, सुन्दर स्त्री का पति, धनी, कवि, लेखक, संशोधक, सम्पादक और विद्वान् होता है, सूर्य-शुक्र देखते हो तो उद्यमी, कलाविद्, यशस्वी, सुरुचिसम्पन्न, सुखी और नम्र होता है; सूर्य-शनि नवमस्थ गुरु को देखते हों तो नेता, प्रतिनिधि, कोषाध्यक्ष, प्रख्यात, मजिस्ट्रेट, न्यायाधीश और संग्रहकर्त्ता होता है; चन्द्र-मंगल देखते हो तो सेनापति, कीर्तिवान्, धारासभा का सदस्य, मन्त्री, सुखी, भाग्यवान्, चतुर और मान्य, चन्द्र-बुध देखते हो तो उत्तम सुख प्राप्त करने वाला, तेजस्वी, क्षमावान्, विद्वान्, कवि, कहानीकार और संगीतप्रिय, चन्द्र-शुक्र देखते हो तो धनिक, कर्त्तव्यपरायण, सन्तानहीन और कुटुम्ब से दुःखी, चन्द्र-शनि देखते हों तो अभिमानी, प्रवासी, मध्यावस्था में सुखी, अन्तिम जीवन में दुःखी और कष्ट प्राप्त करने वाला, मंगल-बुध देखते हो तो चतुर, सुशील, गायक, भूमिपति, विद्या-द्वारा यशोपार्जन करने वाला, प्रतिज्ञा पूर्ण करने वाला और मान्य, मंगल-शुक्र देखते हो तो धनिक, विद्वान्, विदेश जाने वाला, तेजस्वी, सात्त्विक, चतुर, लब्धप्रतिष्ठ और शासन करने वाला; मंगल-शनि देखते हों तो नीच, पिशुन, द्वेषी, विदेश यात्रा करने वाला, नीच प्रकृति, धन-धान्य से परिपूर्ण होता है ।

भाग्येश का द्वादश भावों में फल

भाग्येश लग्न में हो तो जातक धर्मात्मा, श्रद्धालु, पराक्रमी, कृपण, राज-कार्य करने वाला, बुद्धिमान्, विद्वान्, कोमल प्रकृति का और श्रेष्ठ कार्यों में अभिरुचि रखने वाला, द्वितीय भाव में हो तो शीलवान्, प्रख्यात, सत्यप्रिय, दानी, धर्मात्मा, धनिक, ऐश्वर्यवान् और मान्य, तृतीय भाव में हो तो बन्धुओं से प्रेम करने वाला, अनाथों का आश्रयदाता और कुटुम्बियों को सब प्रकार से सहायता देने वाला, चौथे भाव में हो तो पिता का भक्त,

विद्वान्, कीर्त्तिवान्, सत्कार्यरत, दानी, मित्रवर्ग को सुख देने वाला, उद्योगी, तेजस्वी और चपल; पाँचवें भाव में हो तो पुण्यात्मा, देव-द्विज और गुरु की सेवा में तत्पर रहने वाला, सुपुत्रवान्, सन्तान-द्वारा यश प्राप्त करने वाला और माता की सेवा मे सर्वदा प्रस्तुत रहने वाला; छठे भाव में हो तो शत्रुओ से पीड़ित, भीरु, पापी, नीच, शोकोन, निद्रालु, मूर्ख और धूर्त; सातवें भाव में हो तो सुन्दर, सत्यवती, सुशीला, धनवती तथा मधुरभाषिणी नारी का पति, विलासी, रतिकर्म में प्रवीण और सुन्दर; आठवें भाव में हो तो दुष्ट, हिंसक, कुटुम्बियो से विरोध करने वाला, निर्दयी, विचित्र स्वभाव का और दुराचारी; नौवें भाव में हो तो स्नेही, कुटुम्ब को वृद्धि करने वाला, भाग्यवान्, धनिक, दानी, श्रद्धालु, सेवापरायण, सज्जन, व्यापार-द्वारा धनार्जन करने वाला और प्रख्यात; दसवें भाव में हो तो ऐश्वर्यवान्, राजमान्य, सुखी, विलासी, कठिन से-कठिन कार्य में भी सफलता प्राप्त करने वाला, लब्धप्रतिष्ठ, शासनकार्य में भाग लेने वाला, धारासभाओं का सदस्य और उच्च पद पर रहने वाला; ग्यारहवें भाव में हो तो दीर्घायु, धर्मपरायण, धनिक, प्रेमी, व्यापार-द्वारा लाभ प्राप्त करने वाला, राजमान्य, पुण्यात्मा, यशस्वी और स्व-परकार्यरत एवं बारहवें भाव में हो तो विदेश में मान्य, सुन्दर, विद्वान्, कलाविज्ञ, चतुर, सेवा-द्वारा ख्याति प्राप्त करने वाला और किसी महान् कार्य में सफलता प्राप्त करने वाला होता है। यदि भाग्येश क्रूर ग्रह हो तो जातक दुर्बुद्धि और नीचकार्यरत होता है।

दशम भाव विचार

दशम भाव पर शुभग्रहों की दृष्टि हो तो मनुष्य व्यापारी होता है। (क) दसवें भाव में बुध स्थित हो, (ख) दशमेश और लग्नेश एक राशि में हों, (ग) लग्नेश दशम भाव में गया हो, (घ) दशमेश १।४।५।७।९।१० में हो तथा शुभग्रहों से दृष्ट हो, (ङ) दशमेश अपनी राशि में हो तथा शुभग्रह की दृष्टि हो तो जातक व्यापारी होता है।

१—६।८।१२वें भाव में पापग्रहो से दृष्ट बुध, गुरु और शुक्र हों तो जातक को किसी भी काम में सफलता नही मिलती है। दशमेश ६।८।१२ वें भाव में हो तो मन चंचल रहने से काम ठीक नही होता।

२—दशमेश ग्यारहवें भाव में हो और एकादशेश दशम भाव में हो अथवा नवमेश दशम में और दशमेश नवम भाव में हो तो जातक श्रीमान्, प्रतापी, शासक और लोकमान्य होता है।

३—१।४।७।१० में रवि हो; चन्द्रमा १।४।५।७।९।१०वें स्थान में हो, १।४थे भाव में गुरु हो तो राजयोग होता है।

४—अष्टमेश छठे और षष्ठेश आठवे भाव में हो अथवा अष्टमेश और षष्ठेश ये दोनो ग्रह १।४।७।१० में स्थित हो या छठे में गुरु और ग्यारहवें में चन्द्रमा तथा लाभेश शुभग्रह की राशि और शुभग्रह के नवाश में स्थित हो तो जातक प्रतापी होता है।

५—बली शुभग्रह ग्यारहवें भाव में हो और किसी अन्य शुभग्रह के द्वारा देखा भी जाता हो अथवा द्वितीय स्थान में चन्द्र, गुरु और शुक्र गये हो तो जातक श्रीमान् होता है।

६—पचम स्थान में गुरु और दशम स्थान में चन्द्रमा हो तो जातक राजा, बुद्धिमान् या तपस्वी होता हैं।

पितृसुख योग

१—(क) दशमेश शुभग्रह हो और वह शुभग्रह से युत या दृष्ट हो, (ख) दशमेश गुरु, शुक्र से युत हो, (ग) नवमेश परमोच्च का हो, (घ) चन्द्र-कुण्डली में केन्द्रस्थान में शुक्र हो, एव (ङ) दशमेश शुभग्रहों के मध्य में हो तो जातक को पिता का सुख अधिक होता है।

२—(क) सूर्य, मगल दसवें या नौवें भाव में हों, (ख) पापग्रह से युत सूर्य सातवें भाव में हो, (ग) सातवें में सूर्य, दसवें स्थान में मंगल और बारहवें स्थान में राहु हो, (घ) चतुर्थेश ६।८।१२वें भाव में हो, (ङ) दशमेश

रवि, मंगल से युक्त हो; एवं (च) दशम भाव में दशमेश को शत्रुराशि का ग्रह हो तो जातक के पिता को शीघ्र मृत्यु होती है। जातक अपने पिता का बहुत कम सुख प्राप्त करता है।

३—(क) कर्क राशि में राहु, मंगल और शनि हों, (ख) चतुर्थ स्थान में क्रूर ग्रह हो, (ग) चतुर्थेश क्रूर ग्रहो से दृष्ट या युत हो; (घ) दशम स्थान में समराशिगत हो और उस राशि का स्वामी क्रूर ग्रह हो, (ङ) चन्द्रमा पापग्रह के साथ हो तथा चन्द्रमा से चतुर्थ शनि और राहु हों तो जातक को माता का सुख कम मिलता है, अर्थात् छोटी ही अवस्था में माता की मृत्यु हो जाती है।

दशमेश का द्वादश भावों में फल

दशमेश लग्न में हो तो जातक पिता से स्नेह करने वाला, बाल्यावस्था में दु खी, माता से द्वेष करने वाला, अन्तिम अवस्था में सुखी, धनिक, पुत्रवान् और देशमान्य; द्वितीय स्थान में हो तो अल्पसुखी, जागीरदार, माता से द्वेष करने वाला और परिश्रम से जी चुराने वाला, तृतीय स्थान में हो तो कुटुम्बियो से विरोध करने वाला, मामा के द्वारा सहायता प्राप्त करने वाला और प्रत्येक कार्य में असफलता प्राप्त करने वाला, चौथे स्थान में हो तो सुखी, कुटुम्बियों की सेवा करने वाला, राजमान्य, शासन में भाग लेने वाला, पंच, प्रमुख, सबका प्रिय और ऐश्वर्यवान्; पाँचवें भाव में हो तो शुभ कार्य करने वाला, पाखण्डी, राजा से धन प्राप्त करने वाला, विलासी, माता को सर्व-प्रकार से सुख देने वाला और सुखी; छठे भाव में दशमेश पापग्रह होकर स्थित हो तो बाल्यावस्था में दु खी, मध्यावस्था में सुखी, माता से द्वेष करने वाला, भाग्यरहित, सामान्य धनिक और शत्रु-द्वारा हानि प्राप्त करने वाला; सातवें में हो तो सुन्दर रूपवती और पुत्र वाली रमणी का भर्त्ता, कौटुम्बिक सुख से परिपूर्ण, भोगी, ससुराल से सुख प्राप्त करने वाला और सुखी; आठवें भाव में हो तो क्रूर, तस्कर, पाखण्डी, धूर्त, मिथ्याभाषी,

अल्पायु, माता को सन्ताप देने वाला, कष्टों से दुःखित और नीचकर्मरत, नौवे भाव में हो तो बन्धु-बान्धव समन्वित, मित्रो के सुख से परिपूर्ण, अच्छे स्वभाववाला, धर्मात्मा और लोकप्रिय, दसवें भाव में हो तो पिता को सुख देने वाला, माता के कुटुम्ब को प्रसन्न रखने वाला, मातुल की सेवा करने वाला, राजमान्य, मुखिया, धनी, चतुर, लेखक और कार्यकुशल, ग्यारहवें भाव में हो तो माता-पिता को सम्मानित करने वाला, धनिक, उद्योगी और व्यापार में अत्यन्त निपुण, एव वारहवे भाव में हो तो राज-कार्य में प्रेम रखने वाला, मान्य, शासन के कार्यों में सुधार करने वाला, स्वाभिमानी और प्रवासी होता है।

एकादश भाव विचार

लाभ भाव में शुभग्रह हो तो न्यायमार्ग से धन का लाभ और पापग्रह हों तो अन्याय मार्ग से धन का लाभ होता है तथा शुभ और अशुभ दोनों प्रकार के ग्रह लाभ भाव में हो तो न्याय, अन्याय मिश्रित मार्ग से धन आता है।

लाभ भाव पर शुभग्रहों की दृष्टि हो तो लाभ और पापग्रहो को दृष्टि हो तो हानि होती है। लाभेश १।४।५।७।९।१० भावो में हो तो धन का बहुत लाभ होता है।

लाभेश शुभग्रह से सम्बन्ध करता हो तो लाभ होता है।

यद्यपि ससुराल से धन प्राप्त करने के दो-तीन योग पहले भी लिखे गये हैं, किन्तु ग्यारहवें भाव के विचार में इन योगो पर कुछ विचार कर लेना आवश्यक है। निम्न योग अनुभवसिद्ध है—

१—सप्तम और चतुर्थ स्थान का स्वामी एक ही ग्रह हो तथा वह ग्रह इन्ही दोनो भावो में-से किसी भाव में हो।

२—जायेश कुटुम्ब[1] स्थान में और कुटुम्बेश जाया[2] स्थान में हो।

---

१ चौथा स्थान। २ सप्तम स्थान।

३—जायेश[1] और कुटुम्वेश दोनों ग्रह सप्तम में अथवा कुटुम्ब स्थान में एकत्र स्थित हों।

४—जायेश और कुटुम्वेश दोनो ग्रह १।४।५।७।९।१०।११वें भाव में हों या चन्द्र से ७वें अथवा चतुर्थ स्थान में एकत्रित हों।

बहुलाभ योग—लाभेश शुभग्रह होकर दशम में और दशमेश नवम भाव में हो या लाभेश नवम भाव में हो और नवमेश लाभ में हो तो जातक को प्रचुर सम्पत्ति का लाभ होता है।

द्वादश भावों में लाभेश का फल

लाभेश लग्न में हो तो जातक अल्पायु, रोगी, बलवान्, पराक्रमी, दानी, सत्यकार्यरत, धनिक, ऐश्वर्यवान्, लोभी, समय पर कार्य करने की सूझ से अनभिज्ञ और हठी, दूसरे भाव में हो तो भोगी, साधारणतया धनी, रोगी, रत्न, सोना और चाँदी के आभूषण धारण करने वाला और आधि-व्याधिग्रस्त; तीसरे भाव में हो तो बन्धु-बान्धव से युक्त, लक्ष्मीवान्, सर्व-प्रिय और कुल में ख्याति प्राप्त करने वाला; चौथे भाव मे हो तो दीर्घायु, समय की गति को पहचानने वाला, धर्मरत, धनधान्य का लाभ प्राप्त करने वाला और ऐश्वर्यवान्; पाँचवें भाव में हो तो पुत्रवान्, गुणवान्, अल्प लाभ प्राप्त करने वाला, मध्यावस्था में आर्थिक संकट से दु:खी और पिता से प्रेम करने वाला, छठे भाव में हो तो रोगी, शत्रुओ से पीड़ित, पशुओ का व्यापार करने वाला और प्रवासी; सातवें भाव में हो तो तेजस्वी, पराक्रम-शाली, सम्पत्तिवान्, दीर्घायु, पत्नी से प्रेम करने वाला, सब प्रकार के कौटुम्बिक सुखो को प्राप्त करने वाला और रति कर्म में प्रवीण; आठवें भाव में हो तो अल्पायु, रोगी, दुःखी, जीविकाहीन, आलसी, निस्तेज और अर्द्धमृतक समान, नौवें भाव मे हो तो ज्ञानवान्, शास्त्रज्ञ, धर्मात्मा, ख्यातिवान् और श्रद्धालु; दसवें भाव में हो तो माता का भक्त, पुण्यात्मा, पिता से द्वेष करने-

१. सप्तम स्थानेश।

वाला, दीर्घायु, धनिक, उद्योगी, समाज-मान्य, सत्कार्यरत, राष्ट्रीय कार्यों में प्रमुख भाग लेनेवाला, देश की उन्नति में अपने जीवन और प्राणो का उत्सर्ग करनेवाला, देश में प्रतिनिधित्व प्राप्त करनेवाला और अमर कीर्त्ति को स्थापित करने वाला, ग्यारहवें भाव में हो तो दीर्घायु, पुत्रवान्, सुकर्मरत, सुशील, हँसमुख, मिलनसार, साधारण धनिक एवं बारहवें भाव में हो तो चचल, भोगी, रोगी, बाल्यावस्था में दु खी, मध्यावस्था में साधारण दु खी किन्तु अन्तिमावस्था में आधि-व्याधियों से पीड़ित, अभिमानी, अवसर आने पर दान देनेवाला और सदा चिन्तित रहनेवाला होता है।

बारहवें भाव का विचार

द्वादश भाव में शुभग्रह स्थित हो तो सन्मार्ग में धन व्यय; अशुभग्रह स्थित हो तो असत्कार्यों में धन व्यय एव शुभ और पाप दोनो ही प्रकार के ग्रह हों तो सद्-असद् दोनों ही प्रकार के कार्यों में धन व्यय होता है। रवि, राहु और शुक्र ये तीनो बारहवें भाव में हों तो राजकार्य में तथा गुरु बारहवें भाव में हो तो टैक्स और व्याज देने में धन व्यय होता है। बारहवें भाव में शनि, मगल हों तो भाई के द्वारा धन खर्च और क्षीण चन्द्र एव रवि हों तो राज-दण्ड में धन खर्च होता है।

यद्यपि जातक के व्यवसायके बारे में पहले लिखा जा चुका है किन्तु द्वादश भाव की सहायता से भी व्यवसाय का निर्णय करना चाहिए। चर राशिगत ग्रहों की संख्या अधिक हो तो जातक किसी स्वतन्त्र व्यवसाय का करने वाला, स्थिर राशिगत ग्रहों की संख्या अधिक हो तो डॉक्टर, वकील एव स्थायी व्यवसाय वाला तथा द्विस्वभाव राशिगत ग्रहो की सख्या अधिक हो तो जातक अध्यापक, प्रोफेसर, मास्टर, किरानी, अढतिया आदि का पेशा करता है।

राशि और ग्रहो के तत्त्व प्रथम भाव के विचार में लिखे गये है। उन के अनुसार निम्न प्रकार विचार किया जाता है—

(१) बली ग्रह (२) बली ग्रह की राशि (३) लग्न और (४) दशम राशि इन चारों में यदि अग्नि तत्त्व की विशेषता हो तो बुद्धि और मानसिक क्रियाओं में चमत्कारपूर्ण कार्य; पृथ्वी तत्त्व की विशेषता हो तो शारीरिक श्रमसाध्य कार्य एवं जल तत्त्व की विशेषता हो तो जातक का व्यवसाय बदला करता है।

द्वादश भावों में द्वादशेश का फल

व्ययेश लग्न में हो तो जातक विदेश भ्रमण करनेवाला, मधुरभाषी; धन खर्च करने वाला, रूपवान्, कुसंगति में रहनेवाला, झगडालू, नाना प्रकार के उपद्रवों को करनेवाला और पुंसत्व शक्ति से हीन या अल्प पुंसत्व शक्तिवाला; द्वितीय भाव में हो तो कृपण, कठोर, कटुभाषी, रोगी, निर्धन और दु.खी, तीसरे भाव में हो तो भ्रातृहीन या अल्प भाइयोंवाला, प्रवासी, रोगी, अल्पधनी, व्यवसायी, परिश्रमी और वाचाल, चौथे भाव में हो तो रोगी, श्रेष्ठ कार्यरत, पुत्र से कष्ट प्राप्त करने वाला, दुःखी, आर्थिक संकट से परिपूर्ण और जीवन में प्रायः असफल रहने वाला; पाँचवें भाव में पापग्रह व्ययेश हो तो पुत्रहीन; पुत्रसुख से वंचित, दु खी तथा शुभग्रह व्ययेश हो तो पुत्रसुख से अन्वित, सत्कार्यरत और अल्पसन्तति, सुख को प्राप्त करने वाला; छठे भाव में पापग्रह व्ययेश हो तो कृपण, दुष्ट, नीच-कार्यरत, अल्पायु तथा शुभग्रह व्ययेश हो तो मध्यमायु, लाभान्वित, साधारणतया सुखी और अन्तिम जीवन में कष्ट प्राप्त करने वाला; सातवें भाव में हो तो दुश्चरित्र, चतुर, अविवेकी, परस्त्रीरत तथा क्रूरग्रह सप्तमेश हो तो अपनी स्त्री से मृत्यु प्राप्त करने वाला या किसी वेश्या के जाल में फँस कर मृत्यु को प्राप्त करने वाला और व्यसनी; आठवें भाव में हो तो पाखण्डी, धूर्त, धनरहित और नीचकार्यरत; नौवें भाव में हो तो तीर्थयात्रा करने वाला, चंचल, आलसी, दानी, धनार्जन करने वाला और मतिहीन; दसवें भाव में हो तो परस्त्री से पराङ्मुख, सुन्दर सन्तान-

वाला, पवित्र, धनिक, जीवन को सफलतापूर्वक व्यतीत करने वाला और माता के साथ द्वेष करने वाला, ग्यारहवें भाव में हो तो दीर्घजीवी, प्रमुख, दानी, सत्यवादी, सुकुमार, प्रसिद्ध, श्रेष्ठकार्यरत, मान्य, सेवावृत्ति के मर्म को जानने वाला और परिश्रमी एव बारहवें भाव में हो तो ऐश्वर्यवान्, ग्रामीण, कृपण, पशु-सम्पत्ति वाला, जमीदार या मामूली जागीर का स्वामी और स्वकार्यरत होता है।

द्वादश लग्नों का फल

मेष लग्न में जन्म लेनेवाला जातक दुर्बल, अभिमानी, अधिक बोलनेवाला, बुद्धिमान्, तेज स्वभाव वाला, रजोगुणी, चंचल, स्त्रियो से द्वेष रखने वाला, धर्मात्मा, कम सन्तान वाला, कुलदीपक, उदारवृत्ति तथा १।३ ६।८।१५।२१।३६।४०।४५।५६।६३ इन वर्षो में शारीरिक कष्ट, धनहानि और १६।२०।२८।३४।४१।४८।५१ इन वर्षो में भाग्यवृद्धि, धनलाभ, वाहन सुख आदि को प्राप्त करने वाला, वृष में जन्म हो तो जातक गौरवर्ण, स्त्रियो का-सा स्वभाव, मधुरभाषी, शौकीन, उदारवृत्ति, रजोगुणी, ऐश्वर्यवान्, अच्छी सगति में बैठने वाला, पुत्र से रहित, लम्बे दाँत और कुंचित केश वाला, पूर्णायु और ३६ वर्ष की आयु के पश्चात् दु ख भोगने वाला, मिथुन लग्न में जन्म हो तो गेहुँआ रग, हास्यरस में प्रवीण, गायनवाद्य-रसिक, स्त्रियों की अभिलाषा करनेवाला, विषयासक्त, गोल चेहरेवाला, शिल्पज्ञ, चतुर, परोपकारी, कवि, गणितज्ञ, तीर्थयात्रा करनेवाला, प्रथम अवस्था में सुखी, मध्य में दु खी और अन्तिम अवस्था में सुख भोगनेवाला, ३२-३५ वर्ष की अवस्था में भाग्योदय को प्राप्त करनेवाला, मध्यमायु और नाना प्रकार के सुखो को प्राप्त करनेवाला, कर्क लग्न में जन्म हो तो ह्रस्वकाय, कुटिल स्वभाव, स्थूल शरीर, स्त्रियो के वशीभूत रहनेवाला, धनिक, जलाशय से प्रेम करने वाला, मित्रद्रोही, शत्रुओं से पीडित, कन्या सन्तति वाला, व्यापारी, सुन्दर नेत्रवाला, अपने स्थान को छोड कर अन्य स्थान में

वास करनेवाला, १६ या १७ वर्ष की अवस्था में भाग्योदय को प्राप्त होने वाला और व्यसनी; सिंह लग्न में जन्म हो तो पराक्रमी, बड़े हाथ-पैर-वाला, चौड़े हृदयवाला, ताम्रवर्ण, पतली कमरवाला, तेज स्वभाव का, क्रोधी, वेदान्त विद्या को जानने वाला, घोड़े की सवारी से प्रेम करनेवाला, रजोगुणी, अस्त्र चलाने में निपुण, उदारवृत्ति, साधु-सेवा में संलग्न, प्रथमावस्था में सुखी, मध्यमावस्था में दुःखी, अन्तिमावस्था में पूर्ण सुखी तथा २१ या २८ वर्ष की अवस्था में भाग्योदय को प्राप्त करनेवाला; कन्या लग्न में जन्म हो तो जनाने स्वभाव का, शृंगारप्रिय, बड़े नेत्रवाला, स्थूल तथा सामान्य शरीर का, अल्प और प्रियभाषी, स्त्री के वश में रहने वाला, भ्रातृद्रोही, चतुर, गणितज्ञ, कन्या सन्तति उत्पन्न करनेवाला, धर्म में रुचि रखनेवाला, प्रवासी, गम्भीर स्वभाववाला, अपने मन की बात किसी से भी नहीं कहनेवाला, बाल्यावस्था में सुखी, मध्यावस्था में सामान्य और अन्त्यावस्था में दुःखी रहनेवाला और २३-२४ से ३६ वर्ष की अवस्था पर्यन्त भाग्योदय-द्वारा धन-ऐश्वर्य को बढ़ानेवाला; तुला लग्न में जन्म हो तो गौरवर्ण, सतोगुणी, परोपकारी, शिथिल गात्र, देवता, तीर्थ में प्रीति करनेवाला, मोटी नासिकावाला, व्यापारी, ज्योतिषी, प्रिय वचन बोलनेवाला, लोभरहित, भ्रमणशील, कुटुम्ब से अलग रहनेवाला, स्त्रियों का द्रोही, वीर्य-विकार से युक्त, प्रथमावस्था में दुःखी, मध्यमावस्था में सुखी, अन्तिमावस्था में सामान्य, मध्यमायु और ३१ या ३२ वर्ष की अवस्था में भाग्यवृद्धि को प्राप्त करनेवाला; वृश्चिक लग्न में जन्म हो तो ह्रस्वकाय, स्थूल शरीर, गोल नेत्र, चौड़ी छातीवाला, निन्दक, सेवाकर्म करनेवाला; कपटी, पाखण्डी, भ्राताओं से द्रोह करनेवाला, कटु स्वभाव, झूठ बोलने वाला, भिक्षावृत्ति, तमोगुणी, पराये मन की बात जानने वाला, ज्योतिषी, दयारहित, प्रथमावस्था में दुःखी, मध्यमावस्था में सुखी, पूर्णायुष और २० या २४ वर्ष की अवस्था में भाग्योदय को प्राप्त होनेवाला; धनु लग्न में जन्म हो तो सतोगुणी, अच्छे स्वभाववाला, बड़े दाँतवाला, धनिक, ऐश्वर्यवान्, विद्वान्, कवि, लेखक, प्रतिभावान्, व्यापारी, यात्रा

करने वाला, महात्माओ की सेवा करने वाला, पिंगलवर्ण, पराक्रमी, अल्प सन्तानवाला, प्रेम के वश में रहने वाला, प्रथमावस्था में सुख भोगने वाला, मध्यावस्था में सामान्य, अन्त में धन-ऐश्वर्य से परिपूर्ण और २२ या २३ वर्ष की अवस्था में धनलाभ प्राप्त करने वाला, मकर लग्न में जन्म हो तो मनुष्य तमोगुणी, सुन्दर नेत्र वाला, पाखण्डी, आलसी, खर्चीला, भीरु, अपने धर्म से विमुख रहने वाला, स्त्रियों में आसक्ति रखने वाला, कवि, निर्लज्ज, प्रथमावस्था में सामान्य, मध्य में दुःखी, पूर्णायु और अन्त में ३२ वर्ष की आयु के पश्चात् सुख भोगने वाला; कुम्भ लग्न में जन्म हो तो रजोगुणी, मोटी गरदन वाला, अभिमानी, ईर्ष्यालु, द्वेषयुक्त, गजे सिरवाला, ऊँचे शरीर वाला, पर-स्त्रियों की अभिलाषा करने वाला, प्रथमावस्था में दु खी, मध्यमावस्था में सुखी, अन्तिम अवस्था में धन, पुत्र, भूमि प्रभृति के सुखो को भोगने वाला, भ्रातृद्रोही और २४ या २५ वर्ष की अवस्था में भाग्योदय को प्राप्त करने वाला एवं मीन लग्न में जन्म हो तो सतोगुणी, बडे नेत्र वाला, ठोढी में गड्ढा, सामान्य शरीर वाला, प्रेमी, स्त्री के वशीभूत रहने वाला, विशाल मस्तिष्क वाला, ज्यादा सन्तान पैदा करने वाला, रोगी, आलसी, विषयासक्त, अकस्मात् हानि उठाने वाला, प्रथमावस्था में सामान्य, मध्य में दु खी और अन्त में सुख भोगने वाला तथा २१-२२ वर्ष की आयु में भाग्यवृद्धि करने वाला होता है।

होराफल

द्वितीय अध्याय में होरा का साधन किया गया है। अतएव होरा-कुण्डली बनाकर देखना चाहिए कि होरालग्न सूर्य-राशि हो और सूर्य उसी में स्थित हो तो जातक रजोगुणी, उच्चपदाभिलाषी, गुरु और शुक्र होरा-लग्न में सूर्य के साथ हों तो सम्पत्तिवान्, सुखी, मान्य, उच्चपदारूढ, शासक, नेता, शीलवान्, राजमान्य तथा होरेश लग्न में पापग्रह से युक्त हो तो नीच प्रकृति वाला, दुश्शील, सम्पत्तिरहित, कुलके विरुद्ध आचरण करने वाला और नीच कर्मरत होता है। यदि चन्द्रमा की राशि होरा लग्न में

हो और होरेश चन्द्रमा उस में स्थित हो तो जातक शान्त स्वभाव वाला, मातृभक्त, लज्जालु, व्यवसायी, कृषिकर्म में अभिरुचि करने वाला, अल्प लाभ में सन्तोष करने वाला, तथा शुभग्रह गुरु शुक्र आदि भी होरालग्न में चन्द्रमा के साथ हों तो जातक भक्ति-श्रद्धा-सदाचारयुक्त आचरण करने वाला, शीलवान्, धनिक, सन्तानवान्, सुखी और चन्द्रमा के साथ पापग्रह हो तो विपरीत आचरण वाला, निर्धन, दुःखी तथा नीच कार्यों से प्रेम करने वाला होता है।

सप्तमांश चक्र का फल विचार

सप्तमांश लग्न से केवल सन्तान का विचार करना चाहिए। सप्तमांश लग्न का स्वामी पुरुषग्रह हो तो जातक को पुत्र उत्पन्न होते हैं और सप्तमांश लग्न का स्वामी स्त्रीग्रह हो तो जातक को कन्याएँ अधिक उत्पन्न होती हैं। सप्तमांश लग्न का स्वामी पापग्रह हो, पापग्रह के साथ हो या पापग्रह की राशि में हो तो सन्तान नीच कर्म करने वाली होती है और सप्तमांश लग्न का स्वामी स्वराशि का शुभग्रह से युक्त वा दृष्ट हो या शुभग्रह की राशि में स्थित हो तो सन्तान शुभाचरण करने वाली, सुन्दर, सुशील और गुणी होती है।

सप्तमांश लग्न का स्वामी सप्तमांश लग्न से ६ या ८वें स्थान में पाप ग्रह से युक्त या दृष्ट हो तो जातक सन्तानहीन होता है।

नवमांश कुण्डली के फल का विचार

नवमांश लग्न से स्त्रीभाव का विचार किया जाता है। इस से स्त्री का आचरण, स्वभाव, चेष्टा प्रभृति को देखना चाहिए। नवमांश लग्न का स्वामी मंगल हो तो स्त्री क्रूर स्वभाव की, कुलटा, लड़ाकू; सूर्य हो तो पतिव्रता, उग्रस्वभाव की; चन्द्रमा हो तो शीतलस्वभाव की, गौरवर्ण और मिलनसार प्रकृति की; बुध हो तो चतुर, चित्रकार, सुन्दर आकृति, शिल्प विद्या में निपुण; गुरु हो तो पीत वर्ण, ज्ञानवती, शुभाचरणवाली, पतिव्रता, सौम्य स्वभाव, व्रत-तीर्थ करने वाली; शुक्र हो तो चतुर, शृंगारप्रिय,

विलासी, कामक्रीडा में प्रवीण, गौरवर्ण, व्यभिचारिणी और शनि हो तो, क्रूर स्वभाव वाली, कुल के विरुद्ध आचरण करने वाली, श्यामवर्ण, नीच संगति में रत, पति से विरोध करने वाली होती है। नवमांश लग्न का स्वामी राहु, केतु के साथ हो तो दुराचारिणी, कुटिला, दुष्टा, नवमांश लग्न का स्वामी शुभग्रह हो और स्वराशिस्थ केन्द्र त्रिकोण में हो तो जातक को स्त्री का पूर्ण सुख मिलता है तथा नवमांश लग्न का स्वामी भाग्येश के साथ २।११ वें भाव में उच्च का होकर स्थित हो तो स्त्रियों से अनेक प्रकार का लाभ तथा ससुराल के धन का स्वामी होता है। नवमांश लग्न का स्वामी पापग्रहों से युक्त या दृष्ट ६।८।१२वें भाव में स्थित हो तो जातक को स्त्री का सुख नहीं होता है। यह जितने पापग्रहों से युक्त या दृष्ट हो उतनी ही स्त्रियों का नाश करने वाला होता है।

द्वादशांश कुण्डली के फल का विचार

द्वादशांश लग्न पर से माता-पिता के सुख-दुःख का विचार किया जाता है। यदि द्वादशांश लग्न का स्वामी शुभग्रह हो तो जातक के माता-पिता का शुभाचरण और पापग्रह हो तो व्यभिचारयुक्त आचरण होता है। द्वादशांश लग्न का स्वामी पुरुषग्रह अपनी राशि, मित्र की राशि या उच्च की राशि में स्थित होकर १।४।५।७।९।१०वें स्थानों में स्थित हो तो जातक को पिता का पूर्ण सुख और नीच राशि, शत्रुराशि या पाप ग्रह की राशि में स्थित हो या ६।८।१२वें भाव में बैठा हो तो पिता का अल्प सुख होता है। द्वादशांश लग्न का स्वामी स्त्रीग्रह सौम्य हो और स्वराशि, मित्रराशि या उच्च की राशि में स्थित होकर १।४।५।७।९।१० भावों में स्थित हो तो जातक को माता का सुख होता है। यदि स्त्रीग्रह पापयुक्त या पापदृष्ट होकर ६।८।१२ वें भाव में हो तो माता का सुख नहीं होता।

चन्द्रकुण्डली फल विचार

चन्द्रकुण्डली से जन्मकुण्डली के समान फल का विचार करना चाहिए।

यदि चन्द्र लग्नेश उच्च राशि, स्वराशि, या मित्रराशि में स्थित होकर १।४।५।७।९।१०वें भाव में स्थित हो तो जातक चतुर, धनिक, कार्यकुशल ख्यातिवान्, धन-धान्य समन्वित होता है तथा चन्द्र लग्नेश पापदृष्ट या पापयुत होकर ६।८।१२वें भाव में स्थित हो तो जातक को नाना प्रकार के कष्ट सहन करने पड़ते हैं। चन्द्र-लग्नेश शुभग्रहों से युत होकर जन्म-लग्नेश से इत्थशाल करता हो तो जातक ऐश्वर्यवान्, पराक्रमी और सहन-शील होता है। चन्द्र लग्न से चौथे मंगल, दसवे गुरु और ग्यारहवें शुक्र हो तो जातक राजमान्य, नेता, प्रतिनिधि और धारासभा का मेम्बर होता है। चन्द्र लग्न से बुध चौथे, शुक्र पाँचवें गुरु नौवें और मंगल दसवें स्थान में हो तो जातक राजा, मन्त्री, जागीरदार, जमीदार, शासक या उच्च पदासीन होने वाला होता है, चन्द्र लग्नेश चन्द्रलग्न से नवम स्थान के स्वामी का मित्र होकर चन्द्रलग्न से दसवें भाव में स्थित हो तो जातक तपस्वी, महात्मा, शासक या पूज्य नेता होता है। चन्द्रलग्नेश का ३।६वें भाव में रहना रोगसूचक है।

विंशोत्तरी दशा फल विचार

दशा के द्वारा प्रत्येक ग्रह की फल-प्राप्ति का समय जाना जाता है। सभी ग्रह अपनी दशा, अन्तर्दशा, प्रत्यन्तर्दशा और सूक्ष्म दशाकाल में फल देते हैं। जो ग्रह[1] उच्चराशि, मित्रराशि या अपनी राशि में रहता है वह अपनी दशा में अच्छा फल और जो नीचराशि, शत्रुराशि और अस्तंगत हो वे अपनी दशा में धन-हानि, रोग, अवनति आदि फलो को करते हैं।

रवि दशाफल[2]—सूर्य की दशा में परदेशगमन, राजा से धन लाभ, व्या-

---

१. ग्रहवीर्यानुसारेण फलं ज्ञेयं दशासु च।
आद्यद्रेष्काणगे खेटे दशारम्भे फलं वदेत॥
दशामध्ये फल वाच्य मध्यद्रेष्काणगे खगे।
अन्ते फल तृतीयस्थे व्यस्तं खेटे च वक्रगे॥
—बृहत्पाराशरहोरा, दशाफल अ० श्लो० ३-४।

२ देखें, बृहत्पाराशरहोरा, दशाफल अध्याय श्लोक ७-१५।

पार से आमदनी, ख्यातिलाभ, धर्म में अभिरुचि, यदि सूर्य नीच राशि में पापयुक्त या दृष्ट हो तो ऋणी, व्याधिपीडित, प्रियजनों के वियोगजन्य कष्ट को सहने वाला, राजा से भय और कलह आदि अशुभ फल होता है। सूर्य यदि मेषराशि का हो तो नेत्र रोग, धनहानि, राजा से भय, नाना प्रकार के कष्ट; वृष राशिगत हो तो स्त्री-पुत्र के सुख से हीन, हृदय और नेत्र का रोगी, मित्रो से विरोध, मिथुन राशि में हो तो अन्न-धन युक्त, शास्त्र-काव्य से आनन्द, विलास, कर्क में हो तो राजसम्मान, धनप्राप्ति, माता-पिता बन्धु-वर्ग से पृथक्ता, वातजन्यरोग, सिंह में हो तो राजमान्य, उच्च पदासीन, प्रसन्न, कन्या में हो तो कन्यारत्न की प्राप्ति, धर्म में अभिरुचि, तुला में हो तो स्त्री-पुत्र की चिन्ता, परदेशगमन, वृश्चिक में हो तो प्रताप की वृद्धि, विष-अग्नि से पीडा, धन में हो तो राजासे प्रतिष्ठा-प्राप्ति, विद्या की प्राप्ति, मकर में हो तो स्त्री-पुत्र धन आदि की चिन्ता, त्रिदोष रोगी, परकार्यों से प्रेम, कुम्भ में हो तो पिशुनता, हृदयरोग, अल्पधन, कुटुम्बियों से विरोध और मीन राशि में हो तो रविदशा काल में वाहन लाभ, प्रतिष्ठा की वृद्धि, धन-मान की प्राप्ति, विषमज्वर आदि फलो की प्राप्ति होती है।

चन्द्र दशाफल[1]—पूर्ण, उच्च का और शुभग्रह युत चन्द्रमा हो तो उस की दशा में अनेक प्रकार से सम्मान, मन्त्री, धारासभा का सदस्य, विद्या, धन आदि प्राप्त करने वाला होता है। नीच या शत्रुराशि में रहने पर चन्द्रमा की दशा में कलह, क्रूरता, सिर में दर्द, धननाश आदि फल होता है। चन्द्रमा मेषराशि में हो तो उस की दशा में स्त्रीसुख, विदेश से प्रीति, कलह, सिररोग, वृष में हो तो धन-वाहन लाभ, स्त्री से प्रेम, माता की मृत्यु, पिता-को कष्ट; मिथुन में हो तो देशान्तरगमन, सम्पत्ति-लाभ, कर्क में हो तो गुप्त-रोग, धन-धान्य की वृद्धि, कलाप्रेम; सिंह में हो तो बुद्धिमान्, सम्मान्य, धनलाभ, कन्या में हो तो विदेशगमन,स्त्रीप्राप्ति, काव्यप्रेम, अर्थलाभ, तुला में

---

१ वही, श्लो० १५-२६।

हो तो विरोध, चिन्ता, अपमान, व्यापार से धनलाभ, मर्म स्थान में रोग; वृश्चिक में हो तो चिन्ता, रोग, साधारण धन-लाभ, धर्महानि, धनु में हो तो सवारी का लाभ, धननाश; मकर में हो तो सुख, पुत्र-स्त्री-धन की प्राप्ति, उन्माद या वायु रोग से कष्ट, कुम्भ में हो तो व्यसन, ऋण, नाभि से ऊपर तथा नीचे पीड़ा, दाँत-नेत्र में रोग और मीन में हो तो चन्द्रमा की दशा में अर्थागम, धनसंग्रह, पुत्रलाभ, शत्रुनाश आदि फलों की प्राप्ति होती है।

भौम दशा फल[1]—मंगल उच्च, स्वस्थान या मूलत्रिकोणगत हो तो उस की दशा में यशलाभ, स्त्री-पुत्र का सुख, साहस, धनलाभ आदि फल प्राप्त होते हैं। मंगल मेष राशि में हो तो उस की दशा में धनलाभ, ख्याति, अग्निपीड़ा; वृष में हो तो रोग, अन्य से धनलाभ, परोपकाररत; मिथुन में हो तो विदेशवासी, कुटिल, अधिक खर्च, पित्त-वायु से कष्ट, कान में कष्ट, कर्क में हो तो धनयुक्त, क्लेश, स्त्री-पुत्र आदि से दूर निवास, सिंह में हो तो शासनलाभ, शस्त्राग्निपीड़ा, धनव्यय; कन्या में हो तो पुत्र, भूमि, धन, अन्न से परिपूर्ण; तुला में हो तो स्त्री-धन से हीन, उत्सव-रहित, झंझट अधिक, क्लेश, वृश्चिक में हो तो अन्न-धन से परिपूर्ण, अग्नि-शस्त्र से पीड़ा; धनु में हो तो राजमान्य, जय-लाभ, धनागम, मकर में हो तो अधिकार-प्राप्ति, स्वर्ण-रत्नलाभ, कार्यसिद्धि, कुम्भ में हो तो आचार का अभाव, दरिद्रता, रोग, व्यय अधिक, चिन्ता और मीन में हो तो ऋण, चिन्ता, विसूचिकारोग, खुजली, पीडा आदि फल प्राप्त होते हैं।

बुध दशाफल[2]—उच्च, स्वराशिगत और बलवान् बुध की दशा में विद्या, विज्ञान, शिल्पकृषि कर्म में उन्नति, धनलाभ, स्त्री-पुत्र को सुख, कफ-वात-पित्त की पीडा होती है। मेष राशि में बुध की दशा में धनहानि, छल-कपटयुक्त व्यवहार के लिए प्रवृत्ति; वृष राशि में हो तो धन, यशलाभ, स्त्रीपुत्र की चिन्ता, विष से कष्ट; मिथुन में हो तो अल्पलाभ, साधारण कष्ट

१ विशेष के लिए देखें—बृहत्पाराशरहोरा, दशाफलाध्याय, श्लोक २७-३३।
२ वही, श्लो० ६१-७०।

माता को सुख, कर्क में हो तो धनार्जन, काव्यसृजन योग्य प्रतिभा की जागृति, विदेशगमन, सिंह में हो तो ज्ञान, यश, धननाश, कन्या में हो तो ग्रन्थों का निर्माण, प्रतिभा का विकास, धन-ऐश्वर्य लाभ, वृश्चिक में हो तो कामपीडा, अनाचार, अधिक खर्च, धनु में हो तो मन्त्री, शासन की प्राप्ति, नेतागिरी, मकर में हो तो नीचों से मित्रता, धनहानि, अल्पलाभ, कुम्भ में हो तो बन्धुओं को कष्ट, दरिद्रता, रोग, दुर्बलता और मीन राशि में हो तो बुध की दशा में खाँसी, विष-अग्नि-शस्त्र से पीडा, अल्पहानि, नाना प्रकार की अड़चनें आदि फलों की प्राप्ति होती है।[1]

गुरु दशाफल[2]—गुरु की दशा में ज्ञानलाभ, धन वस्त्र-वाहन-लाभ, कण्ठ रोग, गुल्मरोग, प्लीहा रोग आदि फल प्राप्त होते हैं। मेष राशि में गुरु हो तो उस की दशा में अफ़सरी, विद्या, स्त्री, धन, पुत्र, सम्मान आदि का लाभ, वृष में हो तो रोग, विदेश में निवास, धनहानि, मिथुन में हो तो विरोध, क्लेश, धननाश, कर्क में हो तो राज्य से लाभ, ऐश्वर्यलाभ, ख्यातिलाभ, मित्रता, उच्चपद, सेवावृत्ति, सिंह में हो तो राजा से मान, पुत्र-स्त्री-बन्धु-लाभ, हर्ष, धन-धान्य पूर्ण, कन्या में हो तो रानी के आश्रय से धनलाभ, शासन में योग दान देना, भ्रमण, विवाद, कलह, तुला में हो तो फोडा-फुन्सी, विवेक का अभाव, अपमान, दासता; वृश्चिक में हो तो पुत्रलाभ, नीरोगता, धनलाभ, पूर्व ऋण का अदा होना; धनु राशि में हो तो सेनापति, मन्त्री, सदस्य, उच्च पदासीन, अल्पलाभ, मकर में हो तो आर्थिक कष्ट, गुह्यस्थानों में रोग, कुम्भ में हो तो राजा से सम्मान, धारा-सभा का सदस्य, विद्या-धनलाभ, आर्थिक साधारण सुख और मीन में हो तो विद्या, धन, स्त्री, पुत्र, प्रसन्नता, सुख आदि को प्राप्त करता है।

शुक्र दशाफल—शुक्र की दशा में रत्न, वस्त्र आभूषण सम्मान, नवीन कार्यारम्भ, मदनपीडा, वाहनसुख आदि फल मिलते हैं। मेष राशि

---

१ वही श्लो० ४४-५१।

२ वही, श्लोक० ७८-८६।

में शुक्र हो तो मन में चंचलता, विदेश भ्रमण, उद्वेग, व्यसन प्रेम, धनहानि; वृष में हो तो विद्यालाभ, धन, कन्या सुख की प्राप्ति; मिथुन में हो तो काव्य प्रेम, प्रसन्नता, धनलाभ, परदेशगमन, व्यवसाय में उन्नति; कर्क में हो तो उद्यम से धनलाभ, आभूषणलाभ, स्त्रियों से विशेष प्रेम; सिंह में हो तो साधारण आर्थिक कष्ट, स्त्री-द्वारा धनलाभ, पुत्रहानि, पशुओं से लाभ; कन्या में हो तो आर्थिक कष्ट, दु खी, परदेशगमन, स्त्री-पुत्र से विरोध, तुला में हो तो ख्यातिलाभ, भ्रमण, अपमान, वृश्चिक में हो तो प्रताप, क्लेश, धनलाभ, सुख, चिन्ता; धनु में हो तो काव्यप्रेम, प्रतिभा का विकास, राज्य से सम्मान लाभ, पुत्रों से स्नेह, मकर में हो तो चिन्ता, कष्ट, वात-कफ के रोग, कुम्भ में हो तो व्यसन, रोग, कष्ट, धनहानि और मीन में हो तो राजा से धनलाभ, व्यापार से लाभ, कारोबार की वृद्धि, नेतागिरी आदि फलों की प्राप्ति होती है।

शनि दशाफल[1]—बलवान् शनि की दशा में जातक को धन, जन, सवारी, प्रताप, भ्रमण, कीर्त्ति, रोग आदि फल प्राप्त होते हैं। मेष राशि में शनि हो तो शनि की दशा में स्वतन्त्रता, प्रवास, मर्मस्थान में रोग, चर्मरोग, बन्धु-बान्धव से वियोग; वृष में हो तो निरुद्यम, वायुपीड़ा, कलह, वमन, दस्त के रोग, राजा से सम्मान, विजयलाभ; मिथुन मे हो तो ऋण, कष्ट, चिन्ता, परतन्त्रता, कर्क मे हो तो नेत्र-कान के रोग, बन्धुवियोग, विपत्ति, दरिद्रता; सिंह में हो तो रोग, कलह, आर्थिक कष्ट; कन्या में हो तो मकान का निर्माण करना, भूमिलाभ, सुखी होना, तुला में हो तो धन-धान्य का लाभ, विजय-लाभ, विलास, भोगोपभोग वस्तुओं की प्राप्ति, वृश्चिक में हो तो भ्रमण, कृपणता, नीच संगति, साधारण आर्थिक कष्ट, धनु में हो तो राजा से सम्मान, जनता में ख्याति, आनन्द, प्रसन्नता, यशलाभ; मकर में हो तो आर्थिक संकट, विश्वासघात, बुरे व्यक्तियों का

---

१. बृहत्पाराशरहोरा, दशाफलाध्याय, श्लोक० ५२-६०।

साथ, कुम्भ में हो तो पुत्र, धन, स्त्री का लाभ, सुखलाभ, कीर्त्ति, विजय और मीन में हो तो अधिकार-प्राप्ति, सुख, सम्मान, उन्नति आदि फलो की प्राप्ति होती है।

राहु दशाफल[1]— मेष राशि में राहु हो तो उस की दशा में अर्थ-लाभ, साधारण सफलता, घरेलू झगडे, भाई से विरोध; वृष में हो तो राज्य से लाभ, अधिकारप्राप्ति, कष्टसहिष्णुता, सफलता, मिथुन में हो तो दशा के प्रारम्भ में कष्ट, मध्य में सुख, कर्क में हो तो अर्थलाभ, पुत्रलाभ नवीन कार्य करना, धन सचित करना; सिंह में हो तो प्रेम, ईर्ष्या, रोग, सम्मान, कार्यों में सफलता, कन्या में हो तो मध्यवर्ग के लोगो से लाभ, व्यापार से लाभ, व्यसनों से हानि, नीच कार्यों से प्रेम, सन्तोष, तुला राशि का हो तो झंझट, अचानक कष्ट, बन्धु-बान्धवों से क्लेश, धनलाभ, यश और प्रतिष्ठा की वृद्धि, वृश्चिक राशि का राहु हो तो आर्थिक कष्ट, शत्रुओं से हानि, नीचकार्यरत, धनु का हो तो यशलाभ, धारासभाओं में प्रतिष्ठा, उच्चपद-प्राप्ति, मकर का राहु हो तो सिर में रोग, वातरोग, आर्थिक संकट, कुम्भ का हो तो धनलाभ, व्यापार से साधारण लाभ, विजय और मीन का हो तो विरोध, झगडा, अल्पलाभ, रोग आदि बातें होती है।

केतु दशाफल[2]—मेष में केतु हो तो धनलाभ, यश, स्वास्थ्य, वृष में हो तो कष्ट, हानि, पीडा, चिन्ता, अल्पलाभ, मिथुन में हो तो कीर्त्ति, बन्धुओं से विरोध, रोग, पीडा, कर्क में हो तो अल्पसुख, कल्याण, मित्रता, पुत्रलाभ, स्त्री-लाभ, सिंह में हो तो अल्पसुख, धनलाभ, कन्या में हो तो नीरोग, प्रसिद्ध, सत्कार्यों से प्रेम, नवीन काम करने की रुचि, तुला में हो तो व्यसनों में रुचि, कार्यहानि, अल्पलाभ; वृश्चिक में हो तो धन-सम्मान, पुत्र-स्त्रीलाभ, कफ रोग, बन्धनजन्य कष्ट, धनु में हो तो सिर में रोग, नेत्रपीडा, भय, झगडे, मकर में हो तो हानि, साधारण व्यापारो से लाभ,

---

१ वही, श्लो० ७१-७७।

२ वही, श्लो० ४४-५१।

नवीन कार्यों में असफलता; कुम्भ में हो तो आर्थिक संकट, पीड़ा, चिन्ता, बन्धु-बान्धवों का वियोग और मीन में हो तो साधारण लाभ, अकस्मात् धनप्राप्ति, लोक में ख्याति, विद्या लाभ, कीर्त्तिलाभ आदि बातें होती हैं। दशाफल का विचार करते समय ग्रह किस भाव का स्वामी है और उस का सम्बन्ध कैसे ग्रहों से है, इस का ध्यान रखना आवश्यक है।

भावेशों के अनुसार विंशोत्तरी दशा का फल

१—लग्नेश की दशा में शारीरिक सुख और धनागम होता है, परन्तु स्त्रीकष्ट भी देखा जाता है।

२—धनेश की दशा में धनलाभ, पर शारीरिक कष्ट भी होता है। यदि धनेश पापग्रह से युत हो तो मृत्यु भी हो जाती है।

३—तृतीयेश की दशा कष्टकारक, चिन्ताजनक और साधारण आमदनी करनेवाली होती है।

४—चतुर्थेश की दशा में घर, वाहन, भूमि आदि के लाभ के साथ माता, मित्रादि और स्वयं अपने को शारीरिक सुख होता है। चतुर्थेश बलवान्, शुभग्रहों से दृष्ट हो तो इस की दशा में नया मकान जातक बनवाता है। लाभेश और चतुर्थेश दोनों दशम या चतुर्थ में हों तो इस ग्रह की दशा में मिल या बड़ा कारोबार जातक करता है। लेकिन इस दशाकाल में पिता को कष्ट रहता है। विद्यालाभ, विश्वविद्यालयों की बड़ी डिग्रियाँ इस के काल में प्राप्त होती हैं। यदि जातक को यह दशा अपने विद्यार्थी-काल में नहीं मिले तो अन्य समय में इस के काल में विद्याविषयक उन्नति तथा विद्या-द्वारा यश की प्राप्ति होती है।

५—पंचमेश की दशा में विद्याप्राप्ति, धनलाभ, सम्मानवृद्धि, सुबुद्धि, माता की मृत्यु या माता को पीड़ा होती है। यदि पंचमेश पुरुषग्रह हो तो पुत्र और स्त्रीग्रह हो तो कन्या सन्तान की प्राप्ति का भी योग रहता है, किन्तु सन्तान योग पर इस विचार में दृष्टि रखना आवश्यक है।

६—षष्ठेश की दशा में रोगवृद्धि, शत्रुभय और सन्तान को कष्ट होता है।

७—सप्तमेश की दशा में शोक, शारीरिक कष्ट, आर्थिक कष्ट और अवनति होती है। सप्तमेश पापग्रह हो तो इस की दशा में स्त्री को अधिक कष्ट और शुभग्रह हो तो साधारण कष्ट होता है।

८—अष्टमेश की दशा में मृत्युभय, स्त्री-मृत्यु एवं विवाह आदि कार्य होते हैं। अष्टमेश पापग्रह हो और द्वितीय में बैठा हो तो निश्चय मृत्यु होती है।

९—नवमेश की दशा में तीर्थयात्रा, भाग्योदय, दान, पुण्य, विद्या-द्वारा उन्नति, भाग्यवृद्धि, सम्मान, राज्य से लाभ और किसी महान् कार्य में पूर्ण सफलता प्राप्त करने वाला होता हैं।

१०—दशमेश की दशा में राजाश्रय की प्राप्ति, धनलाभ, सम्मान-और सुखोदय होता है। माता के लिए यह दशा कष्टकारक है।

११—एकादशेश की दशा में धनलाभ, ख्याति, व्यापार से प्रचुर लाभ एव पिता की मृत्यु होती है। यह दशा साधारणत शुभ फलदायक होती है। यदि एकादशेश पर क्रूरग्रह की दृष्टि हो तो यह रोगोत्पादक भी होती है।

१२—द्वादशेश की दशा में जनहानि, शारीरिक कष्ट, चिन्ताएँ, व्याधियाँ और कुटुम्बियो को कष्ट होता हैं।

ग्रहो की दशा का फल सम्पूर्ण दशाकाल में एक-सा नही होता है, किन्तु प्रथम द्रेष्काण में ग्रह हो तो दशा के प्रारम्भ में, द्वितीय द्रेष्काण में हो तो दशा के मध्य में और तृतीय द्रेष्काण में ग्रह हो तो दशा के अन्त में फल की प्राप्ति होती है। वक्रीग्रह हो तो विपरीत अर्थात् तृतीय द्रेष्काण में हो तो प्रारम्भ में, द्वितीय में हो तो मध्य में और प्रथम द्रेष्काण में हो तो अन्त में फल समझना चाहिए।

वक्रीग्रह की दशा का फल—वक्रीग्रह की दशा में स्थान, धन और सुख का नाश होता है; परदेशगमन की हानि होती है।

मार्गीग्रह की दशा का फल—मार्गीग्रह की दशा में सम्मान, सुख, धन, यश की वृद्धि, लाभ, नेतागिरी और उद्योग की प्राप्ति होती है। यदि मार्गीग्रह ६।८।१२वें भाव में हो तो अभीष्ट सिद्धि में बाधा आती है।

नीच और शत्रुक्षेत्री ग्रह की दशा का फल—नीच और शत्रुग्रह की दशा में परदेश में निवास, वियोग, शत्रुओ से हानि, व्यापार से हानि, दुराग्रह, रोग, विवाद और नाना प्रकार की विपत्तियाँ आती हैं। यदि ये ग्रह सौम्य ग्रहो से युत या दृष्ट हों तो बुरा फल कुछ न्यून रूप में मिलता है।

अन्तर्दशा फल

१—पापग्रह की महादशा में पापग्रह की अन्तर्दशा जनहानि, शत्रुभय और कष्ट देने वाली होती है।

२—जिस ग्रह की महादशा हो उस से छठे या आठवें स्थान में स्थित ग्रहो की अन्तर्दशा स्थानच्युति, भयानक रोग, मृत्युतुल्य कष्ट या मृत्यु देने वाली होती है।

३—पापग्रह की महादशा में शुभग्रह की अन्तर्दशा हो तो उस अन्तर्दशा का पहला आधा भाग कष्टदायक और आखिरी आधा भाग सुखदायक होता है।

४—शुभग्रह की महादशा में शुभग्रह की अन्तर्दशा धनागम, सम्मान-वृद्धि, सुखोदय और शारीरिक सुख प्रदान करती है।

५—शुभग्रह की महादशा में पापग्रह की अन्तर्दशा हो तो अन्तर्दशा का पूर्वार्द्ध सुखदायक और उत्तरार्द्ध कष्टकारक होता है।

६—पापग्रह की महादशा में अपने शत्रुग्रह से युक्त पापग्रह की अन्तर्दशा हो तो विपत्ति आती है।

७—शनिक्षेत्र में चन्द्रमा हो तो उस की महादशा में सप्तमेश की महादशा परम कष्टदायक होती है।

८—शनि में चन्द्रमा और चन्द्रमा में शनि का दशाकाल आर्थिक रूप से कष्टकारक होता है।

९—बृहस्पति में शनि और शनिमें बृहस्पतिकी दशा खराब होती है।

१०—मगलमें शनि और शनिमें मगल की दशा रोगकारक होती है।

११—शनि में सूर्य और सूर्य में शनि की दशा गुरुजनों के लिए कष्टदायक तथा अपने लिए चिन्ताकारक होती है।

१२—राहु और केतु की दशा प्रायः अशुभ होती है, किन्तु जब राहु ३।६।११वें भाव में हो तो उस की दशा अच्छा फल देती है।

सूर्य को महादशा मे सभी ग्रहों की अन्तर्दशा का फल

सूर्य में सूर्य—सूर्य उच्च का हो और १।४।५।७।९।१०वें स्थान में हो तो उस की अन्तर्दशा में धनलाभ, राजसम्मान, विवाह, कार्यसिद्धि, रोग और यश-प्राप्ति होता है। यदि सूर्य द्वितीयेश या सप्तमेश हो तो अल्पमृत्यु भी हो सकती है।

सूर्य में चन्द्रमा—लग्न, केन्द्र और त्रिकोण में हो तो इस दशाकाल में धनवृद्धि, घर, खेत और वाहन की वृद्धि होती है। चन्द्रमा उच्च अथवा स्वक्षेत्री हो तो स्त्रीसुख, धनप्राप्ति, पुत्रलाभ और राजा से समागम होता है। क्षीण या पापग्रह से युक्त हो तो धन-धान्य का नाश, स्त्री-पुरुषों को कष्ट, भृत्यनाश, विरोध और राजविरोध होता है। ६।८।१२वें स्थान में हो तो जल से भय, मानसिक चिन्ता, बन्धन, रोग, पीडा, मूत्रकृच्छ्र और स्थानभ्रंश होता है। महादशा के स्वामी से १।४।५।७।९।१०वें भाव में हो तो सन्तोष, स्त्री-पुत्र की वृद्धि, राज्य से लाभ, विवाह, धनलाभ और सुख होता है। महादशा के स्वामी से २।८।१२वें भाव में हो तो धननाश, कष्ट, रोग और झझट होता है।

सूर्य में मंगल—उच्च और स्वक्षेत्री मंगल हो या १।४।५।७।९।१०वें स्थान में हो तो इस दशाकाल में भूमिलाभ, धनप्राप्ति, मकान की प्राप्ति, सेनापति, पराक्रमवृद्धि, शासन से सम्बन्ध और भाइयों की वृद्धि होती है। दशेश से मंगल ६।८।१२वें भाव में हो या पापग्रह से युक्त हो तो धनहानि, चिन्ता, कष्ट, भाइयों से विरोध, जेल, क्रूरबुद्धि आदि बातें होती हैं।

सूर्य में राहु—१।४।५।७।९।१०वें भाव में राहु हो तो इस दशाकाल में धननाश, सर्प काटने का भय, चोरी, स्त्री-पुत्रों को कष्ट होता है। यदि राहु ३।६।१०।११वें स्थान में हो तो राजमान, धनलाभ, भाग्यवृद्धि, स्त्री-पुत्रों को कष्ट होता है। दशा के स्वामी से राहु ६।८।१२वें हो तो बन्धन, स्थाननाश, कारागृहवास, क्षय, अतिसार आदि रोग, सर्प या घाव का भय होता है। यदि राहु द्वितीय और सप्तम स्थानों का स्वामी हो तो अल्पमृत्यु होती है।

सूर्य में गुरु—गुरु उच्च या स्वराशि का १।४।५।७।९।१०वें स्थान में हो तो इस दशाकाल मे विवाह, अधिकार-प्राप्ति, बड़े पुरुषों के दर्शन, धन-धान्य-पुत्र का लाभ होता है। गुरु नौवें या दसवें भाव का स्वामी हो तो सुख मिलता है। यदि दायेश—दशा के स्वामी से गुरु ६।८।१२वें स्थान में हो या नीच राशि अथवा पापग्रहों से युक्त हो तो राजकोप, स्त्री-पुत्र को कष्ट, रोग, धननाश, शरीरनाश और मानसिक चिन्ताएँ रहती हैं।

सूर्य में शनि—१।४।५।७।९।१०वें भाव में शनि हो तो इस दशाकाल में शत्रुनाश, कल्याण, विवाह, पुत्रलाभ, धनप्राप्ति होती है। दायेश—दशा के स्वामी से शनि ६।८।१२वें भाव में नीच या पापग्रह से युक्त हो तो धननाश, पापकर्मरत, वातरोग, कलह, नाना रोग होते हैं। यदि द्वितीयेश और सप्तमेश शनि हो तो अल्पमृत्यु होती है।

सूर्य में बुध—स्वराशि या उच्च राशि का बुध १।४।५।७।९।१०वें स्थान में हो तो इस दशाकाल में उत्साह बढ़ाने वाली, सुखदायक और

धनलाभ करने वाली दशा होती है। यदि शुभ राशि में हो तो पुत्रलाभ, विवाह, सम्मान आदि मिलते हैं। दायेश से ६।८।१२ वें भाव में हो तो पीडा, आर्थिक सकट और राजभय आदि होते हैं। द्वितीयेश और सप्तमेश बुध हो तो ज्वर, अर्श रोग आदि होते हैं।

सूर्य में केतु—इस दशा में देहपीडा, धननाश, मन में व्यथा, आपसी झगडे, राजकोप आदि बातें होती हैं। दायेश से केतु ६।८।१२वें भाव में हो तो दांत रोग, मूत्रकृच्छ्र, स्थानभ्रंश, शत्रुपीडा, पिता का मरण, परदेश गमन आदि फल होते है। केतु ३।६।१०।११वें भाव में हो तो सुखदायक होता है। द्वितीयेश और सप्तमेश केतु हो तो अल्पमृत्यु का योग करता है।

सूर्य में शुक्र—उच्च या मित्र के वर्ग में शुक्र हो अथवा १।४।५।७। ९।१० स्थानों में-से किसी में हो तो इस दशाकाल में सम्पत्ति लाभ, राज-लाभ, यशलाभ और नाना प्रकार के सुख होते हैं। यदि दायेश से ६।८।१२ वें स्थान में हो तो राजकोप, चित्त में क्लेश, स्त्री-पुत्र-धन का नाश होता है। यदि शुक्र लग्न से ६।८वें भाव में हो तो अल्पमृत्यु होती है।

चन्द्र की महादशा मे सभी ग्रहों की अन्तर्दशा का फल

चन्द्र में चन्द्र—चन्द्रमा उच्च का या स्वक्षेत्री हो या १।५।९।११वें स्थान में हो अथवा भाग्येश से युत हो तो इस दशाकाल में धन-धान्य की प्राप्ति, यशलाभ, राजसम्मान, कन्यासन्तान का लाभ, विवाह आदि फल मिलते हैं। पापयुक्त चन्द्रमा हो, नीच का हो, या ६।८वें स्थान में हो तो धन का नाश, स्थानच्युत, आलस, सन्ताप, राज्य से विरोध, माता को कष्ट, कारागृहवास और भार्या का नाश होता है। यदि द्वितीयेश और सप्त-मेश चन्द्रमा हो तो अल्पायु का भय होता है।

चन्द्र में मगल—१।४।५।७।९।१०वें स्थान में मगल हो तो इस दशाकाल में सौभाग्य, वृद्धि, राज से सन्मान, घर-क्षेत्र की वृद्धि, विजयी

होता है। उच्च और स्वक्षेत्री हो तो कार्यलाभ, सुख प्राप्ति और धनलाभ होता है। यदि ६।८।१२वें स्थान में पापयुक्त हो अथवा दायेश से शुभ स्थान में हो तो घर-क्षेत्र आदि को हानि पहुँचाता है, बान्धवों से वियोग और नाना प्रकार के कष्ट होते हैं।

चन्द्र में राहु—१।४।५।७।९।१०वें स्थान में राहु हो तो इस दशा-काल में शत्रुपीड़ा, भय, चोर-सर्प-राजभय, बान्धवों का नाश, मित्र को हानि, अपमान, दु:ख, सन्ताप होता है। यदि शुभग्रह की दृष्टि या ३।६। १०।११वें स्थान में राहु हो तो कार्यसिद्धि होती है। दायेश से ६।८।१२ वें स्थान में हो तो स्थानभ्रंश, दु:ख, पुत्र का क्लेश, भय, स्त्री को कष्ट होता है। दायेश से केन्द्र स्थान में हो तो शुभ होता है।

चन्द्र में गुरु—लग्न से गुरु १।४।५।७।९।१० में हो; उच्च या स्वराशि में हो तो इस दशाकाल में शासन से सम्मान, धनप्राप्ति, पुत्रलाभ होता है। यदि ६।८।१२वें भाव में हो या नीच, अस्त अथवा शत्रुक्षेत्री हो तो अशुभ फल की प्राप्ति, गुरुजन तथा पुत्र का नाश, स्थानच्युति, दु:ख और कलहादि होते हैं। दायेश स १।४।५।७।९।१०।२ में हो तो धैर्य, पराक्रम, विवाह धनलाभ आदि फल होते हैं। यदि दायेश से ६।८।१२वें स्थान में हो तो जातक अल्पायु होता है।

चन्द्र में शनि—१।४।५।७।९।१०।११ में शनि हो; स्वक्षेत्री हो या उच्च का हो, शुभग्रह से युत या दृष्ट हो तो इस दशाकाल में पुत्र, मित्र और धन की प्राप्ति, व्यवसाय में लाभ, घर और खेत आदि की वृद्धि होती है। यदि ६।८।१२वें स्थान में हो, नीच का हो अथवा धन स्थान में हो तो पुण्यतीर्थ में स्नान, कष्ट, शस्त्रपीड़ा होती है।

चन्द्र में बुध—१।४।५।७।९।१०।११वें स्थान में बुध हो या उच्च का हो तो इस दशा में राजा से आदर, विद्यालाभ, ज्ञानवृद्धि, धन की प्राप्ति, सन्तान प्राप्ति, सन्तोष, व्यवसाय-द्वारा प्रचुर लाभ, विवाह

आदि फल मिलते हैं। यदि दायेश से बुध २।११ वें स्थान में हो तो निश्चय विवाह, धारासभा के सदस्य, आरोग्य या सुख की प्राप्ति होती है। यदि बुध दायेश से ६।८।१२ वें स्थान में नीच का हो तो बाधा, कष्ट, भूमि का नाश, कारागृहवास, स्त्री-पुत्र को कष्ट होता है। यदि बुध द्वितीयेश और सप्तमेश हो तो ज्वर से कष्ट होता है।

चन्द्र में केतु—३।१।४।५।७।९।१०।११ वें स्थान में केतु हो तो इस दशाकाल में धन का लाभ, सुखप्राप्ति, स्त्री-पुत्र से सुख होता है। यदि दायेश से केतु केन्द्र, लाभ और त्रिकोण में हो तो अल्पसुख मिलता है, धन की प्राप्ति होती है। यदि पापग्रह से दृष्ट अथवा युत हो या दायेश से ६।८।१२ वें स्थान में हो तो कलह होता है। द्वितीयेश और सप्तमेश हो तो आरोग्य में हानि होती है।

चन्द्र में शुक्र—केन्द्र, लाभ, त्रिकोण में शुक्र हो या उच्च का हो, स्वक्षेत्री हो तो इस दशाकाल में राजशासन में अधिकार, ख्याति, मन्त्री या अफसर, स्त्री-पुत्र आदि की वृद्धि, नवीन घर का निर्माण, सुख, रमणीय स्त्री का लाभ, आरोग्य आदि फल प्राप्त होते हैं। यदि दायेश से शुक्र युत हो तो देह में सुख, अच्छी ख्याति, सुख-सम्पत्ति, घर-खेत आदि की वृद्धि होती है। यदि नीच का हो, अस्तगत हो, पापग्रह से युत या दृष्ट हो तो भूमि, पुत्र, मित्र, पत्नी आदि का नाश, राज से हानि होती है। यदि धनस्थान में हो, अपने उच्च का हो अथवा स्वक्षेत्री हो तो निधिलाभ होता है। दायेश से ६।८।१२ वें स्थान में हो, पापयुक्त हो तो परदेश में रहने से दुःख होता है। द्वितीयेश और सप्तमेश हो तो अल्पायु का भय होता है।

चन्द्र में सूर्य—सूर्य उच्च का हो, स्वक्षेत्री हो या १।४।५।७।९।१० वें स्थान में हो तो इस दशा में राजसम्मान, धनलाभ, घर में सुख, ग्राम, भूमि आदि का लाभ, सन्तानप्राप्ति होती है। यदि दायेश से ६।८।१२ वें स्थान में हो, पापयुत हो तो सर्प, राजा एवं चोर से भय, ज्वर रोग,

परदेशगमन और पीड़ा होती है। सूर्य द्वितीयेश और सप्तमेश हो तो ज्वरबाधा होती है।

मंगल की महादशा में सभी ग्रहों की अन्तर्दशा का फल

मंगल में मंगल—मंगल १।४।५।७।९।१० में हो, लग्नेश से युत हो तो इस की दशा में वैभवप्राप्ति, धनलाभ, पुत्रप्राप्ति, सुखप्राप्ति होती है। यदि अपने उच्च का हो अथवा स्वक्षेत्री हो तो घर या खेत की वृद्धि तथा धनलाभ होता है। यदि ६।८।१२ वें स्थान में पापग्रह से युत या दृष्ट हो तो मूत्रकृच्छ्र रोग, घाव, फोड़ा-फुन्सी, सर्प और चोर से पीड़ा, राजा से भय होता है। द्वितीयेश और सप्तमेश हो तो शारीरिक कष्ट होते हैं।

मंगल में राहु—राहु उच्च, मूलत्रिकोणी और शुभग्रह से दृष्ट या युत हो या १।४।५।७।९।१० वें स्थान में हो तो इस दशाकाल में राजा से सम्मान, घर, खेत का लाभ, स्त्री-पुत्र का लाभ, व्यवसाय में सफलता, परदेशगमन आदि फल होते हैं। यदि पापग्रह से युक्त ६।८।१२वें स्थान में राहु हो तो चोर, सर्प, राजा से कष्ट, वात, पित्त और क्षयरोग, जेल आदि फल होते हैं। यदि धन स्थान में राहु हो तो धन का नाश होता है। द्वितीयेश और सप्तमेश राहु हो तो अल्पमृत्यु का भय होता है।

मंगल में गुरु—१।४।५।७।९।१०।११।१२ स्थान में गुरु हो, उच्च का हो तो इस दशा काल में यशलाभ, देश में मान्य, धन-धान्य की वृद्धि, शासन में अधिकार, स्त्री-पुत्र लाभ होता है। यदि दायेश १।४।५।७।९।१०।११ वें स्थान में हो तो घर, खेत आदि की वृद्धि, आरोग्यलाभ, यशप्राप्ति, व्यापार में लाभ, उद्यम करने से फल प्राप्ति, स्त्री-पुत्र का ऐश्वर्य, राजा से आदर की प्राप्ति होती है; ६।८।१२वें स्थान में नीच का गुरु हो, अस्तंगत हो, पापग्रह से युत या दृष्ट हो तो चोर और सर्प से पीड़ा, पित्त-विकार, उन्मत्तता, भ्रातृनाश होता है।

मगल में शनि—शनि स्वक्षेत्री, मूलत्रिकोणी, उच्च का या १।४।५।७।९।१०वें स्थान में हो तो इस दशा में राजसुख, यशवृद्धि, पुत्र-पौत्र की वृद्धि होती है। नीच का, शत्रु क्षेत्री हो या ६।८।१२वें भाव में हो तो धन-धान्य का नाश, जेल, रोग, चिन्ता होती है। सप्तमेश और द्वितीयेश हो तो मृत्यु अथवा ६।८।१२वें भाव में पापदृष्ट हो तो मृत्यु होती है।

मंगल में बुध—बुध १।४।५।७।९।१० में हो तो इस दशाकाल में सुन्दर कन्या सन्तति वाला, धर्म में रुचि, यशलाभ, न्याय से प्रेम होता है तथा सुन्दर पदार्थ खाने को मिलते हैं। नीच या अस्तगत अथवा ६।८।१२वें भाव में हो तो हृदयरोग, मानहानि, पैरो में वेड़ी का पडना, बान्धवो का नाश, स्त्रीमरण, पुत्रमरण और नाना कष्ट होते हैं। बुध दायेश से पापयुक्त हो कर ६।८।१२वें स्थान में हो तो मानहानि होती है और यह द्वितीयेश और सप्तमेश हो तो महाव्याधि होती है।

मगल में केतु—केतु १।४।५।७।९।१०।११वें स्थान में शुभग्रह से युत या दृष्ट हो तो इस दशाकाल में धन, भूमि, पुत्र का लाभ, यश की वृद्धि, सेनापति का पद, सम्मान आदि मिलते हैं। दायेश से ६।८।१२वें भाव में पापयुक्त हो तो व्याधि, भय, अविश्वास, पुत्र-स्त्री को कष्ट होता है।

मगल में शुक्र—शुक्र १।४।५।७।९।१०वें भाव में हो, उच्च, मूल-त्रिकोणी अथवा स्वराशि का हो तो इस दशाकाल में राजलाभ, आभूषण-प्राप्ति और सुखप्राप्ति होती है। यदि लग्नेश से युत हो तो पुत्र-स्त्री आदि की वृद्धि, ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है। यदि शुक्र दायेश से १।२।४।५।७।९।१०।११वें स्थान में हो तो लक्ष्मी की प्राप्ति, सन्तानलाभ, सुखप्राप्ति, गीत, नृत्य आदि का होना, तीर्थयात्रा का होना आदि फल होते हैं। यदि शुक्र कर्मेश से युक्त हो तो तालाव, धर्मशाला, कुआँ आदि वनवाने का परोप-कारी काम करता है। दायेश से ६।८।१२वें भाव में हो तो कष्ट, झझटें, सन्तानचिन्ता, धननाश, मिथ्यापवाद, कलह आदि फल मिलते हैं।

मंगल में सूर्य—सूर्य उच्च, स्वराशि या मूलत्रिकोणी सूर्य १।४।५।७। ९।१०वें स्थान में हो तो इस दशाकाल में वाहनलाभ, यशप्राप्ति, पुत्रलाभ, धन-धान्य लाभ होता है। दायेश से ६।८।१२वें भाव में पापग्रह से युत या दृष्ट हो तो पीड़ा, सन्ताप, कष्ट, व्याधि, धननाश, कार्यबाधा आदि बातें होती हैं।

मंगल में चन्द्र—चन्द्र उच्च, मूलत्रिकोणी, स्वराशि या शुभग्रह युत हो तो इस दशाकाल में राजलाभ, मन्त्रिपद, सम्मान, उत्सवों का होना, विवाह, स्त्री-पुत्रों को सुख, माता-पिता से सुख, मनोरथसिद्धि आदि फल मिलते हैं। नीच, शत्रु राशि या अस्तंगत हो कर दायेश से ६।८।१२वें स्थान में हो तो स्त्री-पुत्र को हानि, कष्ट, पशु-धान्य का नाश, चोरभय प्रभृति फल होते हैं। द्वितीयेश या सप्तमेश चन्द्रमा हो तो अकालमरण होता है।

राहु की महादशा में सभी ग्रहों की अन्तर्दशा का फल

राहु में राहु—कर्क, वृष, वृश्चिक, कन्या और धनुराशि का राहु हो तो उस की दशा में सम्मान, शासनलाभ, व्यापार में लाभ होता है। राहु ३।६।११वें भाव में हो, शुभग्रह से युत या दृष्ट हो, उच्च का हो तो इस दशा में राज्यशासन में उच्चपद, उत्साह, कल्याण एवं पुत्रलाभ होता है। ६।८।१२वें भाव में पापग्रह से युत या दृष्ट हो तो कष्ट, हानि, बन्धुओं का वियोग, झंझटें, चिन्ताएँ आदि फल होते हैं। ७वें भाव में हो तो रोग होते हैं।

राहु में गुरु—१।४।५।७।९।१०वें स्थान में स्वगृही, मूलत्रिकोणी या उच्च का हो तो इस दशाकाल में शत्रुनाश, पूजा, सम्मान, धनलाभ, सवारी, मोटर, पुत्र आदि की प्राप्ति होती है। नीच, अस्तंगत या शत्रु-राशि में हो कर ६।८।१२वें भाव में हो तो धनहीन, कष्ट, विघ्न-बाधाओं का बाहुल्य, स्त्री-पुत्रों को पीडा आदि फल होते हैं।

राहु में शनि—शनि १।४।५।७।९।१०।११वें भाव में उच्च या मूलत्रिकोणी हो तो उस की दशा में उत्सव, लाभ, सम्मान, बड़े कार्य,

धर्मशाला, तालाब का निर्माण आदि बातें होती हैं। नीच, शत्रुक्षेत्री हो कर ६।८।१२वें भाव में हो तो स्त्री-पुत्र का मरण, लडाई और नाना कष्टो की प्राप्ति होती है। द्वितीयेश या सप्तमेश शनि हो तो अकालमरण होता है।

राहु में बुध—राहु १।४।५।७।९।१०वें स्थान में स्वक्षेत्री, उच्च का, बलवान् हो तो इस दशाकाल में कल्याण, व्यापार से धन प्राप्ति, विद्या-प्राप्ति, यशलाभ और विवाहोत्सव आदि होते हैं। ६।८।१२वें स्थान में शनैश्चर की राशि से युत या दृष्ट हो या दायेश से ६।८।१२वे स्थान में हो तो हानि, कलह, संकट, राजकोप, पुत्र का वियोग होता है। द्वितीयेश और सप्तमेश बुध हो तो अकालमरण होता है।

राहु में केतु—इस दशाकाल में वातज्वर, भ्रमण और दुःख होता है। यदि शुभग्रह से केतु युत हो तो धन की प्राप्ति, सम्मान, भूमिलाभ और सुख होता है। १।४।५।७।९।१०।८।१२वें स्थान में केतु हो तो उस की दशा महान् कष्ट देने वाली होती है।

राहु में शुक्र—१।४।५।७।९।१०।११वें स्थान में शुक्र हो तो उस की दशा में पुत्रोत्सव, राजसम्मान, वैभव प्राप्ति, विवाह आदि उत्सव होते हैं। ६।८।१२वें भाव में शुक्र नीच का, शत्रुक्षेत्री, शनि या मंगल से युत हो तो रोग, कलह, वियोग, बन्धुहानि, स्त्री को पीडा, शूल रोग आदि फल होते हैं। दायेश से ६।८।१२वें स्थान में शुक्र हो तो अचानक विपत्ति, झूठे दोष, प्रमेह रोग आदि फल होते हैं। द्वितीयेश और सप्तमेश शुक्र हो तो अकालमरण भी इस की दशा में होता है।

राहु में सूर्य—सूर्य स्वक्षेत्री, उच्च का ५।९।११वें भाव में हो तो धन-धान्य की वृद्धि, कीर्त्ति, परदेश गमन, राजाश्रय से धन प्राप्ति होती है। दायेश से सूर्य ६।८।१२वें भाव में नीच का हो तो ज्वर, अतिसार, कलह, राजद्वेष, अग्निपीडा आदि फल मिलते हैं।

राहु में चन्द्र—बलवान् चन्द्रमा १।४।५।७।९।१०।११वें भाव में हो

तो इस दशाकाल में सुख-समृद्धि होती है। दायेश से ६।८।१२वें भाव में हो तो नाना प्रकार के कष्ट, धन हानि, विवाद, मुक़दमा आदि से कष्ट होता है।

राहु में मंगल—१।४।५।७।९।१०।११वें भाव में मंगल हो तो उस की दशा में घर, खेत की वृद्धि, सन्तान सुख, शारीरिक कष्ट, अकस्मात् किसी प्रकार की विपत्ति, नौकरी में परिवर्तन एवं उच्च पद की प्राप्ति होती है। दायेश से मगल ६।८।१२वें स्थान में पापयुक्त हो तो स्त्री-पुत्र की हानि, सहोदर भाई को पीड़ा और अनेक प्रकार की झंझटें आती हैं।

गुरु की महादशा में सभी ग्रहों की अन्तर्दशा का फल

गुरु में गुरु—गुरु उच्च और स्वक्षेत्री हो कर केन्द्रगत हो तो इस दशा में वस्त्र, मोटर, आभूषण, नवीन सुन्दर मकान आदि की प्राप्ति होती है। यदि गुरु भाग्येश और कर्मेश से युक्त हो तो स्त्री, पुत्र, धन लाभ होता है। नीच राशि का बृहस्पति हो या ६।८।१२वें भाव में स्थित हो तो दु.ख, कलह, हानि, कष्ट और पुत्र-स्त्री का वियोग होता है। प्रायः देखा जाता है कि गुरु में गुरु का अन्तर अच्छा नही बीतता है।

गुरु में शनि—शनि उच्च, स्वक्षेत्री, मूलत्रिकोणी हो या १।४।५.७। ९।१०।११वें भाव में स्थित हो तो इस दशा में भूमि, धन, सवारी, पुत्र आदि का लाभ, पश्चिम दिशा में यात्रा और बड़े पुरुषों से मिलना होता है। नीच, अस्तंगत या शत्रुक्षेत्री शनि हो या ६।८।१२ वें भाव में हो तो ज्वर-बाधा, मानसिक दुःख, स्त्री को कष्ट, सम्पत्ति की क्षति होती है। दायेश से ६।८।१२वे भाव में हो तो नाना प्रकार से कष्ट होता है। द्वितीयेश और सप्तमेश हो तो शारीरिक कष्ट या अकालमरण होता है।

गुरु में बुध—बुध स्वराशि, उच्च या मूलत्रिकोणी हो अथवा १।४। ५।७।९।१०।११वें भाव में बलवान् हो कर स्थित हो तो इस दशा में धारा-सभाओ का सदस्य, मन्त्री, अफ़सर, सुख, धन लाभ, पुत्र लाभ होता है। ६।८।१२वें भाव में हो या दायेश से ६।८।१२वें भाव में हो तो नाना प्रकार

के कष्ट, रोग, भार्यामरण आदि फल होते हैं। द्वितीयेश और सप्तमेश बुध हो तो इस की दशा में महान् कष्ट या अकालमरण होता है।

गुरु में केतु—यदि शुभग्रह से केतु युक्त हो तो इस दशा में सुख प्रदान करता है। दायेश से ६।८।१२ वें स्थान में पापयुक्त हो तो राजकोप, बन्धन, धननाश, रोग आदि फल होते हैं। दायेश से ४।५।९।१० वें स्थान में हो तो अभीष्ट लाभ, उद्यम से लाभ, पशुलाभ होता है।

गुरु में शुक्र—बलवान् शुक्र केन्द्रेश से युक्त हो कर ५।११वें भाव में हो तो इस दशा में सुख, कल्याण, धनलाभ, धर्मशाला, तालाब, कुआँ आदि का निर्माण, पुत्रलाभ, स्त्रीलाभ, नवीन कार्य आदि फल मिलते हैं। शुक्र दायेश से या लग्न से ६।८।१२ वें स्थान में हो तो कष्ट, कलह, बन्धन, चिन्ता आदि फल होते हैं। द्वितीयेश और सप्तमेश हो तो अकालमरण भी होता है।

गुरु में सूर्य—सूर्य उच्च का स्वक्षेत्री हो कर १।४।५।७।९।१०।११वें भाव में हो तो इस दशा में सम्मानप्राप्ति, तत्काल लाभ, सवारी की प्राप्ति, पुत्रप्राप्ति आदि फल होते हैं। लग्नेश या दायेश से सूर्य ६।८।१२ वें स्थान में हो तो सिर में रोग, ज्वरपीडा, पापकर्म, बन्धु वियोग आदि फल मिलते हैं। सूर्य द्वितीयेश और सप्तमेश हो तो यह समय महाकष्टकारक होता है।

गुरु में चन्द्र—बलवान् चन्द्रमा १।४।५।७।९।१०।११ वें भाव में हो तो इस दशा में सत्कार्य, सम्मान, कीर्त्ति, पुत्र-पौत्र की वृद्धि होती है। लग्नेश या दायेश से (दशापति) ६।८।१२ वें स्थान में चन्द्रमा हो तो अपमान, खेद, स्थानच्युति, मातुलवियोग, माता को दुःख आदि फल होते हैं। द्वितीयेश हो तो महाकष्ट होता है।

गुरु में भौम—उच्च या स्वगृही मंगल १।४।५।७।९।१० वें भाव में हो तो इस दशा में भूमिलाभ, मिलों का निर्माण और कार्यसिद्धि होती है। दायेश से केन्द्र स्थान में शुभग्रह से युत या दृष्ट हो तो तीर्थयात्रा, विद्वत्ता से

भूमिलाभ; नवीन कार्यों-द्वारा यश लाभ होता है। दायेश से भौम ६।८। १२ वें भाव में पापग्रह से युत या दृष्ट हो तो धन-धान्य और घर का नाश होता है।

गुरु में राहु—उच्च, स्वक्षेत्री या मूलत्रिकोणी राहु ३।६।११ वें भाव में हो तो इस दशा में ख्याति, सम्मान, विद्यालाभ, दूरदेशगमन, सम्पत्ति और कल्याण की प्राप्ति होती है। दायेश से ६।८।१२ वें भाव में राहु हो तो कष्ट, भय, व्याकुलता, कलह, रोग, दु:स्वप्न, शारीरिक कष्ट, अल्पलाभ आदि फल प्राप्त होते हैं।

शनि महादशा में सभी ग्रहोंकी अन्तर्दशा का फल

शनि में शनि—स्वराशि, उच्च और मूलत्रिकोण का शनि हो अथवा १।४।५।७।९।१०।११ वें भाव में स्थित हो तो इस दशा में सम्मान, ख्याति, शासन-प्राप्ति, उच्चपद की प्राप्ति, विदेशीय भाषाओं का ज्ञान, स्त्री-पुत्र की वृद्धि होती है। नीच या पापयुक्त होकर शनि ६।८।१२ वें भाव में हो तो रक्तस्राव, अतिसार, गुल्मरोग होता है। द्वितीयेश और सप्तमेश शनि हो तो मृत्यु भी इस दशाकाल में सम्भव होती है।

शनि में बुध—१।४।५।७।९।१० वें स्थान में बुध हो तो इस दशा में सम्मान, कीर्त्ति, विद्या, धन, देहसुख आदि की प्राप्ति है। इस दशा में नवीन व्यापार आरम्भ करने से प्रचुर धन लाभ किया जा सकता है। दायेश से ६।८।१२ वें भाव में बुध हो तो अल्पसुख, बुद्धि से कार्यसिद्धि, बड़े लोगों का समागम, अल्पमृत्यु, भय, शीतज्वर, अतिसार आदि रोग होते हैं।

शनि में केतु—शुभग्रह से युत या दृष्ट केतु हो तो इस दशा में स्थानभ्रंश, क्लेश, धनहानि, स्त्री-पुत्र का मरण होता है। लग्नेश से युत या दायेश से ६।८।१२ वें केतु हो तो सुख मिलता है।

शनि में शुक्र—उच्च का या स्वक्षेत्री शुक्र १।४।५।७।९।१०।११ वें

भाव में शुभग्रह से युत या दृष्ट हो तो इस दशा में आरोग्यलाभ, धन-प्राप्ति, कल्याण, आदर, उन्नति, जीवन में सुख की प्राप्ति होती है। शत्रुक्षेत्री नीच या अस्तंगत शुक्र ६।८।१२ वे स्थान में हो तो स्त्रीमरण, स्थानभ्रंश, पद-परिवर्तन, अल्पलाभ होता है। शुक्र दायेश से ६।८।१२ वें भाव में हो तो ज्वर, पीडा, पायरिया रोग, वृक्ष से पतन, सन्ताप, विरोध और झगडे होते हैं।

शनि में सूर्य—उच्च का, स्वराशि का या भाग्येश से युत १।४।५।७। ९।१०।११ वें स्थान में सूर्य हो तो इस दशा में घर में दही-दूध की प्रचुरता, पुत्र की प्राप्ति, कल्याण, पदवृद्धि, जीवन में परिवर्तन, यश की प्राप्ति होती है। सूर्य लग्न या दायेश से ६।८।१२ वें भाव में हो तो हृदय में रोग, मानहानि, स्थानभ्रंश, दुःख, पश्चात्ताप होता है। द्वितीयेश और सप्तमेश होने पर महान् कष्ट होता है।

शनि में चन्द्रमा—चन्द्रमा गुरु से दृष्ट हो, अपने उच्च का हो, स्वक्षेत्री हो, १।४।५।७।९।१०।११ वें भाव में हो तो इस दशा में सौभाग्य वृद्धि, माता-पिता को सुख, कारोबार में बढती होती है। क्षीण चन्द्रमा हो या पापग्रह से युत चन्द्रमा हो तो धननाश, माता-पिता का वियोग, सन्तान को कष्ट, धन का खर्च और रोग होते हैं।

शनि में भौम—बलवान् भौम १।४।५।७।९।१०।११वें भाव में हो या लग्नेश से युत हो तो इस दशा में सुख, धनलाभ, राजप्रीति, सम्पत्तिलाभ, नये घर का निर्माण, मिल या नवीन कारखानो का स्थापन आदि फल मिलते हैं। नीच का मंगल हो या अस्तगत हो तो परदेशगमन, धनहानि, कारागृह का दण्ड आदि फल मिलते हैं। द्वितीयेश या सप्तमेश होने से मगल की दशा में अकालमरण भी हो सकता है।

शनि में राहु—इस दशा में कलह, चित्त में क्लेश, पीड़ा, चिन्ता, द्वेष, धननाश, परदेशगमन, मित्रो से कलह आदि फल होते हैं। उच्चक्षेत्री या

स्वगृही राहु लाभस्थान में हो तो धनलाभ, सम्पत्ति की प्राप्ति और अन्य प्रकार के समस्त सुख होते हैं।

शनि में गुरु—बलवान् गुरु शुभग्रहो से युत हो कर १।४।५।७।९। १०।११ वें भाव में हो तो इस दशा में मनोरथसिद्धि, सम्मानप्राप्ति, पुत्रलाभ, नवीन कार्यो के करने की प्रेरणा होती है। ६।८।१२ वें स्थान में नीच अस्तंगत या पापग्रह से युत हो कर स्थित हो तो कुष्ठरोग, परदेशगमन, कार्यहानि, धन धान्य का नाश होता है। दायेश से ६।८।१२ वें स्थानो में निर्बल गुरु हो तो भाइयों से द्वेष, धनलाभ, पुत्र का नाश और राजदण्ड भोगना पडता है।

बुध की महादशा में सभी ग्रहों की अन्तर्दशा का फल

बुध में बुध—इस दशा में लाभ, सुख, विद्या, कीर्त्ति, वैभव की प्राप्ति होती है। नीच या उग्र ग्रह से युक्त हो कर बुध ६।८।१२ वें स्थान में हो तो भय, क्लेश, कलह, रोग, शोक, हानि आदि फल होते हैं। बुध द्वितीयेश या सप्तमेश हो तो किसी सम्बन्धी की मृत्यु इस दशा में होती है।

बुधमें केतु—लग्नेश या दायेश से केतु युक्त हो तो इस दशा में अल्प-लाभ, शारीरिक सुख, विद्या और यश का लाभ होता है। दायेश से ६।८। १२वे भाव में पापग्रह युत हो तो जातक को नाना प्रकार का कष्ट सहन करना पड़ता है।

बुध में शुक्र—इस दशा में धन, सम्पत्ति का लाभ, विद्या-द्वारा ख्याति, धन का संचय, व्यवसाय में लाभ, समृद्धि आदि फल होते हैं। दायेश से शुक्र ६।८।१२वें स्थानो में हो तो नाना प्रकार की झंझटें, अल्पलाभ, भार्याकष्ट, बन्धुवियोग, मन में सन्ताप होता है। द्वितीयेश या सप्तमेश शुक्र हो तो मृत्यु भी इस की दशा में हो सकती है।

बुध में सूर्य—उच्चका सूर्य हो तो सुख, मंगल युत हो तो इस दशा में

भूमिलाभ। लग्नेश से युत या दृष्ट हो तो धनप्राप्ति, भूमिलाभ होता है। दायेश से सूर्य ६।८।१२वें स्थान में मगल राहु से युत हो तो चोर, अग्नि या शस्त्र से पीडा, पित्तजन्य रोग, सन्ताप होते है। सूर्य द्वितीयेश या सप्तमेश हो तो अकालमरण भी इस दशा में होता है।

बुध में चन्द्रमा—उच्च, स्वराशि और शुभग्रहो से युत चन्द्रमा हो तो इस दशा में सुख, कन्यालाभ, धनप्राप्ति, नौकरी में तरक्की होती है। निर्वल चन्द्रमा दायेश से ६।८।१२वें भाव में हो तो धननाश, बुरे कार्य, राजदण्ड, छल-कपट द्वारा धन हरण आदि फल होते हैं।

बुध में भौम—उच्च, स्वराशि और शुभग्रहो से युत होने पर इस दशा मे मकान, भूमि, खेत की प्राप्ति, पुस्तको के निर्माण द्वारा यश, कविता में अभिरुचि होती हैं। मंगल नीचका, अस्तगत या शत्रुक्षेत्री हो तो चोर से भय, स्थानभ्रंश, पुत्र-मित्रों से विरोध होता है। द्वितीयेश या सप्तमेश मगल हो तो इस दशा में अकाल मरण होता है।

बुध में राहु—राहु ६।८।१२वें स्थान में हो तो रोग, धननाश, वातज्वर होता हैं। ३।६।१०।११वें भाव में हो तो सम्मान, राजा से लाभ, अल्प धनलाभ, व्यापार में वृद्धि और कीर्ति होती है।

बुध में गुरु—उच्च, स्वराशि या शुभग्रहो से युत गुरु १।४।५।७।९। १०वें स्थान में हो तो इस दशा में प्रतिष्ठा, ग्रन्थ निर्माण, उत्सव, धनलाभ आदि फल मिलते है। गुरु दायेश से ६।८।१२वें भाव में हो तो हानि, अपमान तथा शनि, मगल से युत हो तो कलह, पीडा, माता की मृत्यु, झगडा, धननाश, शारीरिक कष्ट आदि फल होते हैं।

बुध में शनि—उच्च, स्वराशि या मूलत्रिकोण का शनि हो तो इस दशा में कल्याण की वृद्धि, लाभ, राजसम्मान, वडप्पन आदि फल प्राप्त होते हैं। दायेश से शनि ६।८।१२वें भाव में हो तो वन्धुनाश, दुःखप्राप्ति, कष्ट, परदेशगमन होता है। शनि द्वितीयेश या सप्तमेश हो कर द्वितीय या तृतीय में हो तो इस दशा में मृत्यु होती है।

केतु की महादशा में सभी ग्रहों की अन्तर्दशा का फल

केतु में केतु—केतु केन्द्र, त्रिकोण और लाभ भाव में हो तो इस दशा में भूमि, धन-धान्य, चतुष्पद आदि का लाभ, स्त्री-पुत्र से सुख मिलता है। नीच या अस्तंगत हो या ६।८।१२वें स्थान में हो तो रोग, अपमान, धन-धान्य का नाश, स्त्री-पुत्र को पीड़ा, मन चंचल होता है। द्वितीयेश या सप्तमेश के साथ सम्बन्ध हो तो महाकष्ट होता है।

केतु में शुक्र—शुक्र उच्च, स्वराशि का हो या १।४।५।७।९।१०।११वें भाव में या दायेश से युक्त हो तो इस दशा में राजप्रीति, सौभाग्य, धनलाभ होता है। यदि भाग्येश और कर्मेश से युक्त हो तो राजा से धनलाभ, सम्मान, सुख और उन्नति होती है। दायेश से ६।८।१२वें भाव में हो या पापयुक्त हो कर इन स्थानो में हो तो मानहानि, धन कष्ट, स्त्री से झगडा, पुत्रो को कष्ट और अवनति होती है।

केतु में सूर्य—सूर्य स्वक्षेत्री, उच्च का हो या १।४।५।७।९।१०।११वें भाव में हो तो इस दशा में प्रारम्भ में सर्वसुख, मध्य में कुछ कष्ट होता है। नीच, अस्तंगत या पापग्रह से युक्त ६।८।१२वें भाव मे हो तो राजदण्ड, कष्ट, पीड़ा, माता-पिता का वियोग, विदेश गमन होता है। सूर्य द्वितीयेश हो तो कष्ट कारक होता है।

केतु में चन्द्रमा—चन्द्रमा उच्चका, स्वराशिका हो तो इस दशा में राज्य से सुख, धन लाभ, कन्या सन्तान की प्राप्ति, कल्याण, भूमिलाभ, उद्योग-में सफलता, धनसंग्रह, पुत्र से सुख आदि फल होते है। नीच का क्षीण चन्द्रमा ६।८।११वें भाव में हो तो भय, रोग, चिन्ता और मुकद्दमा के झंझट में फँसना पडता है।

केतु में भौम—भौम उच्चका, स्वराशिका या १।४।५।७।९।१०।११वें भाव में हो तो इस दशा में भूमि लाभ, विजय, पुत्र लाभ, व्यापार में वृद्धि होती है। दायेश से भौम केन्द्र, त्रिकोण स्थान में हो तो देश में सम्मान,

कीर्त्ति, वड़प्पन आदि फल मिलते हैं। दायेश से २।६।८।१२वें स्थान में हो तो परदेशगमन, अवनति, कारोबार में हानि, मृत्यु, पागल, प्रमेह या अन्य जननेन्द्रिय-सम्बन्धी रोग होते हैं।

केतु में राहु—राहु उच्च का, स्वराशि या मित्रक्षेत्री हो तो इस दशा में धन-धान्य का लाभ, सुख, भूमि का लाभ, नौकरी में तरक्क़ी होती है। ७।८।१२वें स्थान में पापग्रह से युत या दृष्ट हो तो धन हानि, नौकरी में गडवडी, प्रमेह, नेत्ररोग होते हैं। राहु द्वितीयेश या सन्तमेश हो तो शीत-ज्वर, कलह, शूल रोग होते हैं।

केतु में गुरु—१।४।५।७।९।१०।११वें भाव में गुरु हो तो इस दशा में विद्यालाभ, कीर्तिलाभ, सम्मान, रक्तविकार, परदेशगमन, पुत्रप्राप्ति, स्थानभ्रंश, शान्तिलाभ होता है। गुरु, नीच, अस्तगत हो कर दायेश से ६।८।१२वें भाव में हो तो धन-धान्य का नाश, आचार की शिथिलता, स्त्री-वियोग और अनेक प्रकार के कष्ट होते हैं।

केतु में शनि—८।१२वे भाव में शनि हो तो इस दशा में कष्ट, चित्त में सन्ताप, धननाश और भय होता है। उच्च या मूलत्रिकोणी शनि ३।६।११वें भाव में स्थित हो तो जातक को साधारणत सुख, मनोरथ-सिद्धि, सम्मान प्राप्ति होती है। शनि दायेश से ६।८।१२वें भाव में हो तो इस दशा में मृत्यु, भयंकर रोग, धनहानि होती है।

केतु में बुध—१।४।५।७।९।१०वें भाव में बलवान् बुध हो तो इस दशा में ऐश्वर्य प्राप्ति, चतुराई, यशलाभ और सत्सगति की प्राप्ति होती है। दायेश से ६।८।१२वें भाव में नीच वा अस्तगत हो तो खर्च अधिक, बन्धन, द्वेष, झगडा होता है तथा अपना घर छोड कर अन्यत्र निवास करना पडता है।

शुक्र की महादशा मे सभी ग्रहों की अन्तर्दशा का फल

शुक्र में शुक्र—१।४।५।७।९।१०वें भाव में बली शुक्र बैठा हो तो

इस दशा में धनप्राप्ति, श्रेष्ठ कार्यों में रत, पुत्र की प्राप्ति, कल्याण, सम्मान, अकस्मात् धन प्राप्ति, नये घर का निर्माण आदि फल होते हैं। दायेश से ६।८।१२वें भाव में नीच या अस्तंगत राहु हो तो कष्ट, मृत्यु, रोग, राजा से भय और आर्थिक कष्ट आदि फल होते हैं। शुक्र स्वराशि या उच्च का हो कर १।४।५वे भाव में हो तो जातक अनेक नवीन ग्रन्थो का निर्माण इस की दशा में करता है।

शुक्र में सूर्य—इस दशा में कलह, सन्ताप, दारिद्रय आदि होते हैं। यदि सूर्य उच्च या स्वराशि का हो अथवा दायेश से १।४।५।७।९।१०वें भाव में हो तो धनलाभ, सम्मान, शासन की प्राप्ति, माता-पिता से सुख, भाई से लाभ होता है। दायेश से ६।८।१२वें भाव में हो तो पीड़ा, चिन्ता, कष्ट, रोग आदि होते हैं।

शुक्र में चन्द्रमा—चन्द्रमा उच्च का, स्वराशि का या मित्र वर्ग का हो तो जातक को उस दशा में स्त्री को सुख, धन लाभ, पुत्री की प्राप्ति, उन्नति, उच्चपद का लाभ आदि फल प्राप्त होते हैं। यदि चन्द्रमा दायेश से ६।८।१२वें भाव मे हो तो नाना प्रकार के कष्ट भोगने पड़ते हैं।

शुक्र में भौम—१।४।५।७।९।१०।११वें भाव में बलवान् भौम स्थित हो तो इस दशा में मनोरथ सिद्धि, धन-लाभ, स्थानभ्रंश, कलह आदि फल प्राप्त होते हैं। यदि दायेश से ६।८।१२वें भाव में भौम हो तो जातक को रोग, कष्ट, धननाश, खेत की हानि और मकान की हानि भी इस दशा में सहनी पड़ती है।

शुक्र में राहु—१।४।५।७।९।१०।११वें भाव में राहु बलवान् हो तो इस दशा में कार्यसिद्धि, व्यापार में लाभ, सुख, धन-ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है। दायेश से ७।८।१२वें भाव में हो तो नाना प्रकार के कष्ट होते हैं।

शुक्र मे गुरु—बलवान् गुरु १।४।५।७।९।१०वें भाव में हो तो इस दशा में पुत्रलाभ, कृषि से धनप्राप्ति, यशप्राप्ति, माता-पिता का सुख और इष्ट बन्धुओं का समागम होता है। ६।८।१२वें भाव में हो तो कष्ट, चोरभय,

पीडा एवं हानि होती है।

शुक्र में शनि—इस दशा में क्लेश, आलस्य, व्यापार में हानि, अधिक व्यय होता है। लग्नेश या दायेश से शनि ६।८।१२ वें स्थान में हो तो स्त्री को पीडा, उद्योग में हानि होती है। द्वितीयेश या सप्तमेश शनि हो तो बीमारी या अकाल मृत्यु होती है।

शुक्र में बुध—बलवान् बुध १।४।५।७।९।१०वें भाव में हो, लग्नेश, चतुर्थेश या पचमेश से युक्त हो तो इस दशा में साहित्यिक कार्यों-द्वारा धन, कीर्त्ति लाभ, सन्मार्ग से धनागम, बडे कार्यों में अधिक सफलता मिलती है। यदि दायेश से ६।८।१२वें भाव में बुध हो तो अपकीर्त्ति, अल्पलाभ, कुटुम्बियों से झगडा आदि फल प्राप्त होते हैं।

शुक्र में केतु—इस दशा में कलह, बन्धुनाश, शत्रुपीडा, भय, धननाश होता है। दायेश से ६।८।१२ वें भाव में पापग्रह से युक्त केतु हो तो सिर में रोग, घाव, फोडे-फुन्सी और बन्धुवियोग आदि फल प्राप्त होते हैं। उच्च का केतु ३।६।११वें भाव में हो तो धनागम, सम्मान और सुख की प्राप्ति होती है।

स्त्रीजातक——

यद्यपि पहले जितना फल पुरुष जातक के लिए बताया गया है, उसी को स्त्रीजातक के सम्बन्ध में समझ लेना चाहिए। किन्तु जो योग पुरुष की कुण्डली में स्त्री के सूचक थे, वे स्त्री की कुण्डली में पुरुष—पति की उन्नति-अवनति, स्वभाव, गुण के सूचक हैं।

स्त्रियों की कुण्डली में लग्न या चन्द्रमा से उन की शारीरिक स्थिति, पचम से सन्तान, सप्तम से सौभाग्य और अष्टम से पति की मृत्यु के सम्बन्ध में विचार करना चाहिए।

लग्न और चन्द्रमा १।३।५।७।९।११ वी राशि में स्थित हो तो पुरुष की आकृति वाली, परपुरुषरत, दुराचारिणी और लग्न तथा चन्द्रमा २।४।६।८।१०।१२ राशि में हों तो सुन्दरी, शीलवती, पतिव्रता स्त्री होती

है। यदि लग्न और चन्द्रमा १।३।५।७।९।११ वी राशि में हो तथा शुभग्रह की दृष्टि उन पर हो तो स्त्री मिश्रित स्वभाव की पापग्रह दृष्ट या युत हों तो नारी दुष्ट स्वभाव की, व्यभिचारिणी; समराशियो में लग्न, चन्द्रमा हो और उन पर क्रूर ग्रहो की दृष्टि हो तो स्त्री मध्यम स्वभाव की होती है। नारी की कुण्डली में उस के स्वभाव का निर्णय करने के लिए अशुभ, शुभग्रहों की दृष्टि का मिलान कर लेना आवश्यक है।

स्त्री की कुण्डली में २।४।६।८।१०।१२ राशियों में मंगल, बुध, गुरु और शुक्र हो तो वह नारी विदुषी, साध्वी, विख्यात और गुणवती होती है।

सप्तम भाव में शनि पापग्रहो से दृष्ट हो वो स्त्री आजन्म अविवाहित रहती है। सप्तमेश पापयुत या दुष्ट हो तथा सप्तम में पापग्रह हों तो यह योग विशेष बलवान् होता है। यदि सप्तमेश शनि के साथ हो तो बड़ी आयु में विवाह करने वाली होती है।

वैधव्य योग

१—सप्तम भाव में मंगल हो तथा सप्तम भाव पर पापग्रहो की दृष्टि हो तो बालविधवा योग होता है।

२—लग्न या चन्द्रमा से सप्तम या अष्टम भाव में तीन-चार पापग्रह हो तो स्त्री विधवा होती है।

३—मंगल की राशि में स्थिर राहु पापग्रह से युत हो कर ८ या १२वें भाव में हो तो विधवा होती है।

४—लग्न और सप्तम भाव में पापग्रह हो तो विवाह के सात-आठ वर्ष बाद विधवा होती है। चन्द्रमा से ७वें, ८वें और १२वें भाव में शनि, मंगल दोनो हो तथा वे पापग्रहों के दृष्ट हों तो स्त्री विवाह के बाद जल्दी ही विधवा होती है।

५—क्षीणचन्द्रमा, नीच या अस्तंगत राशि, चन्द्रमा छठे या आठवे भाव मे हो तो जल्दी विधवा होने का योग होता है।

६—षष्ठेश और अष्टमेश ६।१२वें भाव में पापग्रहयुत या दृष्ट हों तो वैधव्य योग होता है।

७—अष्टमेश सप्तम भाव में और सप्तमेश अष्टम भाव में हो तथा दोनों या एक स्थान पापग्रहों से दृष्ट हो तो वैधव्य योग होता है।

८—चन्द्रमा से सातवें भाव में मंगल, शनि, राहु और सूर्य इन चारों में से कोई दो ग्रह हों तो स्त्री विधवा होती है।

सप्तम स्थान में प्रत्येक ग्रह का फल

सूर्य—सप्तम स्थान में सूर्य हो तो नारी दुष्ट स्वभाव, पति-प्रेम से वंचित और कर्कशा होती है।

चन्द्रमा—सप्तम में चन्द्रमा हो तो कोमल स्वभाव की, लज्जाशील तथा उच्च का चन्द्रमा हो तो वस्त्र, आभूषणवाली, धनिक और सुन्दरी होती है।

मंगल—सप्तम में मंगल हो तो नारी सौभाग्यहीन, कुकर्मरत तथा कर्क या सिंह राशि में शनैश्चर के साथ मंगल हो तो व्यभिचारिणी, वेश्या, धनी और बुरे स्वभाव की होती है।

बुध—सप्तम में बुध हो तो नारी आभूषणवाली, विदुषी, सौभाग्यशालिनी और पति की प्यारी होती है। उच्च राशि का बुध हो तो लेखिका, सुन्दर पतिवाली, धनी और नाना प्रकार के ऐश्वर्य को भोगने वाली होती है।

गुरु—सप्तम स्थान में गुरु हो तो नारी पतिव्रता, धनी, गुणवती और सुखी होती है। चन्द्रमा कर्क राशि में और गुरु सप्तम में हो तो नारी साक्षात् रतिस्वरूपा होती है। उस के समान सुन्दरी कम ही नारियाँ लोक में मिल सकेंगी।

शुक्र—सप्तम में शुक्र हो तो नारी का पति श्रेष्ठ, गुणवान्, धनी, वीर, कामकला में प्रवीण होता है तथा वह नारी स्वयं रसिका और सुन्दर वस्त्राभूषणों वाली होती है।

शनि—सप्तम में शनि हो तो उस नारी का पति रोगी, दरिद्र, व्यसनी, निर्बल होता है। यदि उच्च का शनि हो तो पति धनिक, गुण-

वान्, शीलवान् और कामकला का विज्ञ मिलता है। शनि पर राहु या मंगल की दृष्टि हो तो विधवा होती है।

राहु—सप्तम स्थान में राहु हो तो नारी अपने कुल को दोष लगाने वाली, दुःखी, पतिसुख से वंचित तथा राहु उच्च का हो तो सुन्दर और स्वस्थ पति मिलता है।

अल्पापत्या या अनपत्या योग

१—चन्द्रमा वृष, कन्या, सिंह और वृश्चिक इन राशियो में से किसी राशि में स्थित हो तो अल्पसन्तान वाली नारी होती है।

२—पंचम भाव में धनु या मीन राशि हो, गुरु पंचम भाव में स्थित हो या पंचम भाव पर क्रूर ग्रहो की दृष्टि हो तो सन्तान नही होती।

३—सप्तम भाव में पापग्रह की राशि हो अथवा सप्तम भाव पापग्रह से दृष्ट हो तो नारी को सन्तान नही होती अथवा कम सन्तान होती है। मंगल पंचम भाव में हो और राहु सप्तम में हो तो सन्तान का अभाव होता है। पंचमेश के नवमांश में शनि या गुरु स्थित हो तो भी सन्तान नहीं होती है।

४—सप्तम स्थान में सूर्य या राहु हो अथवा अष्टम स्थान में शुक्र या गुरु हो तो सन्तान जीवित नही रहती।

५—सप्तम स्थान में चन्द्रमा या बुध हो तो कन्याओं को जन्म देने वाली नारी होती है। यदि नारी की कुण्डली में पंचम स्थान में गुरु या शुक्र हो तो वहुत पुत्रो को प्रजनन करती है।

६—पंचम भाव में सूर्य हो तो एक पुत्र, मंगल हो तो तीन पुत्र, गुरु हो तो पाँच पुत्र होते हैं। पंचम में चन्द्रमा के रहने से दो कन्याएँ, बुध के रहने से चार और शुक्र के रहने से सात कन्याएँ होती हैं।

७—नवम स्थान में शुक्र हो तो छह कन्याएँ, सप्तम में राहु हो तो सन्तानाभाव या दो कन्याएँ होती हैं।

८—जिन नारियो की जन्मराशि वृष, सिंह, कन्या और वृश्चिक हो तो उन के पुत्र कम होते है, किन्तु इन्ही राशियो में शुभग्रह स्थित हों तो सन्तान सुन्दर उत्पन्न होती हैं।

९—पचम स्थान में तीन पापग्रह हो या पंचम पर तीन पापग्रहों की दृष्टि हो और पचमेश शत्रुराशि में हो तो नारी बांझ होती है।

१०—अष्टम स्थान में चन्द्रमा और बुध हों तो काकवन्ध्या योग होता है। यदि अष्टम में बुध, गुरु और शुक्र हो तो गर्भनाश होता है या सन्तान हो कर मर जाती है।

११—सप्तम स्थान में मगल हो और उस पर शनि की दृष्टि हो, अथवा शनि, मगल दोनो ही सप्तम स्थान में हो तो गर्भपात होता है या बहुत ही कम सन्तान उत्पन्न होती है।

प्रवासी पतियोग—जन्मलग्न चर राशि में हो तो नारी का पति प्रवासी होता है। चर राशियो में लग्नेश और तृतीयेश हों तो भी पति प्रवासी होता है।

पति के गुण-दोष द्योतक योग

१—सप्तम भाव में २।७ राशि हो तथा शुक्र का नवमाश हो तो पति भाग्यवान् होता है।

२—सप्तम में सूर्य की राशि या सूर्य का नवमाश हो तो मन्द रति करने वाला, विद्वान्, लेखक, विचारक अफ़सर पति होता है।

३—सप्तम भाव में चन्द्रमा हो या चन्द्रमा का नवमाश हो तो कामी, कोमल स्वभाव का, दयालु, विद्वान्, रसिक, धनी, व्यापारी पति होता है।

४—सप्तम में मंगल की राशि या मंगल का नवमाश हो तो क्रोधी, जमीनदार, कृषक, धनी, हिंसक, व्यसनी और नीच प्रकृति का व्यक्ति पति होता है।

५—सप्तम भाव में बुध की राशि या बुध का नवमाश हो तो विद्वान्,

शोधक, इतिहासज्ञ, कवि, लेखक-सम्पादक, मजिस्ट्रेट, धनी, रतिज्ञ, कामी मायावी और चतुर पति होता है।

६—सप्तम भाव में गुरु की राशि या गुरु का नवमांश हो तो गुण-वान्, विशेषज्ञ, त्यागी, पत्नीभक्त, सेवापरायण, मन्त्री, न्यायाधीश, लोभी, चिड़चिड़ा, धर्मात्मा और प्राचीन परम्परा का पोषक पति होता है।

७—सप्तम में शनि की राशि या शनि का नवमांश हो तो मूर्ख, व्यसनी, क्रोधी, आलसी, साधारण धनी और चिड़चिडे स्वभाव का पति होता है।

चतुर्थ अध्याय

ताजिक (वर्षफल-निर्माण-विधि)

वर्षपत्र बनाने की प्रक्रिया ताजिक शास्त्र में बतलायी गयी है। इस शास्त्र का प्रचार भारत में यवनो के सम्पर्क से हुआ है। प्राचीन भारतवर्ष में वर्षपत्र जातक ग्रन्थो के आधार पर विंशोत्तरी, अष्टोत्तरी आदि दशाओं के समय-विभागानुसार बनाया जाता था। जातक अंग के विकास-क्रम पर ध्यान देने से ज्ञात होगा कि पहले-पहल जो ग्रह जन्मकुण्डली के जिस भावस्थान में पड जाता था उसी के शुभाशुभ फल के अनुसार उस भाव का फल माना जाता था। अन्य ग्रहो के सम्बन्ध का विचार करना आदि-काल की अन्तिम शताब्दियों तक आवश्यक नहीं था, परन्तु पूर्व मध्यकाल में इस सिद्धान्त में विकास हुआ और ग्रहो की शत्रुता, मित्रता, सबलत्व, निर्बलत्व, स्वामित्व एव दृष्टि की अपेक्षा से फलाफल का विचार किया जाने लगा। विकसित हो कर आगे यही प्रक्रिया दशा के रूप को प्राप्त हुई। इस में १२० वर्ष या १०८ वर्ष की परमायु मान कर नवग्रहो का विभाजन किया गया है। तात्पर्य यह है कि मनुष्य के जीवन काल में जन्म नक्षत्र के अनुसार जिस ग्रह की दशा होती है, उसी की अपेक्षा से सुख-दु.ख आदि फल मिलते हैं। यद्यपि दशाधिपति के फल में मित्र, शत्रु और समग्रह के घर में रहने के कारण फल में न्यूनाधिकता हो जाती है, पर दशाधिपति निश्चित समय की मर्यादा पर्यन्त वही रहता है।

यवनो को उपर्युक्त जातक शास्त्र की प्रक्रिया उपयुक्त न जँची और उन्होंने एक नयी प्रणाली निकाली, जिस में एक-एक वर्ष का पृथक्-पृथक् फल निकाला गया और प्रत्येक वर्ष में नव ग्रहो को फल देने का अधिकार देते हुए भी एक प्रधान ग्रह को वर्षेश बतलाया। तत्कालीन भारतीय

ज्योतिर्विदो ने इस नयी प्रणाली का स्वागत किया और इसे अपने ढांचे में ढाल कर वर्षपत्र-विषयक अनेक ग्रन्थो की रचना भारतीय ज्योतिष की भित्ति पर की। इन आचार्यों ने वर्ष प्रवेश समय की कुण्डली में बारह भावो में स्थित नवग्रहों के फल का विवेचन जातक शास्त्र के अनुसार किया तथा ग्रहों के जन्मपत्री विषयक गणित का उपयोग भी कुछ हेर-फेर के साथ बतलाया तथा निम्न पाँच ग्रहो में-से किसी एक बली ग्रह को वर्ष का स्वामी निर्धारित करने की प्रक्रिया घोषित की—(१) जन्मकुण्डली की लग्न-राशि का स्वामी, (२) वर्ष प्रवेश काल की लग्न-राशि का स्वामी, (३) वर्ष का मुन्थेश, (४) त्रिराशिप एवं (५) वर्षप्रवेश दिन में हो तो वर्ष-कुण्डली की सूर्याधिष्ठित राशि का स्वामी और रात में वर्ष प्रवेश हो तो वर्ष-कुण्डली की चन्द्राधिष्ठित राशि का स्वामी।

वर्षकुण्डली बनाने के लिए सर्वप्रथम वर्षेष्ट काल का साधन करना चाहिए। ज्योतिष ग्रन्थो में बताया है कि अभीष्ट संवत् में-से जन्म संवत् को घटाने से गतवर्ष आते हैं। गतवर्ष की संख्या जितनी हो उस में उस का चौथाई भाग एक स्थान में जोड दे और दूसरी जगह गतवर्ष संख्या को २१ से गुणा करे, गुणनफल में ४० का भाग देने से जो घट्यात्मक लब्धि आवे उस में जन्म समय के वार आदि इष्टकाल को जोड़ कर ७ का भाग देने पर शेष तुल्य वार आदि वर्षेष्ट काल होता है।

उदाहरण—जन्म सं० १९६९ में कार्त्तिक मास, शुक्ल पक्ष, १२ तिथि, गुरुवार को इष्टकाल १० घटी २२ पल पर हुआ है। इस दिन सूर्य स्पष्ट ७।५।४१।४१ है। इस जन्मपत्री वाले का वर्षपत्र बनाना है अतः—

२००३ वर्तमान संवत् में से
१९६९ जन्म संवत् को घटाया
 ३४ गतवर्ष हुए, इन का चौथाई भाग = ३०

$$३४ \div ४ = ८\frac{२}{४} = ८\frac{१}{२} \times \frac{६०}{१} = ८।३०$$ गत वर्ष का चतुर्थांश

३४ गतवर्ष + ८।३० गतवर्ष का चतुर्थांश = ४२।३०
दूसरे स्थान में—३४ × २१ = ७१४ ÷ ४० = १७।५१

४२।३० और १७।५१ को जोडा तो =

४२।४७।५१

५।१०।२२ जन्म समय के वारादि

४७।५८।३ – ७ = ६ लब्धि, ५।५८।३ शेष। यहाँ लब्धि को छोड़ शेष मात्र को वर्षप्रवेशकालीन वारादि इष्टकाल समझना चाहिए, अर्थात् वृहस्पतिवार को ५८ घटी ३ पल इष्टकाल पर वर्षप्रवेश हुआ माना जायेगा।

सारिणी-द्वारा वर्षप्रवेशकालीन वारादि इष्टकाल निकालने की विधि आगे वाली वर्ष-सारिणी में से गतवर्ष के नीचे लिखे गये वारादि को लेकर उस में जन्मसमय के वारादि को जोड देना चाहिए। यदि वार स्थान में ७ से अधिक आवे तो उस में ७ का भाग दे कर शेष को वार स्थान में ग्रहण करना चाहिए।

उदाहरण—गतवर्ष सख्या ३४ है, इस के नीचे ०।४७।५१।० लिखा है, इस में जन्म समय की वारादि सख्या ५।१०।१२ को जोड दिया तो—

०।४७।५१।०
५।१०।१२।०
५।५८। ३ अर्थात् वृहस्पतिवार को ५८ घटी ३ पल इष्टकाल पर वर्षप्रवेश हुआ माना जायेगा।

अन्य उदाहरण—२००३ वर्तमान सवत् में से
१९७२ जन्म सवत् को घटाया
३१ गतवर्ष सख्या हुई; इस के नीचे वर्षप्रवेश सारिणी में ४।१।३६।३० लिखा है, इस में जन्म समय को वारादि संख्या को जोड दिया तो—

४। १ ।३६।३० सारिणी के वारादि
५।५२।४१।५३ जन्म के वारादि

९।५४।१८।२३ यहाँ वार स्थान में ७ से अधिक होने के कारण ७ का भाग दिया तो शेष २।५४।१८।१३ वर्षप्रवेशकालीन वारादि इष्ट हुआ, अर्थात् सोमवार को ५४ घटी १८ पल २३ विपल पर वर्षप्रवेश माना जायेगा।

वर्षप्रवेशसारिणी

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६
१	२	३	५	६	०	१	३	४	५	६	१	२	३	४	६
१५	३१	४६	२	१७	३३	४८	४	१९	३५	५०	६	२१	३७	५२	८
३१	३	३४	६	३७	९	४०	१२	४३	१५	४६	१८	४९	२१	५२	२४
३०	०	३०	०	३०	०	३०	०	३०	०	३०	०	३०	०	३०	०

१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४	२५	२६	२७	२८	२९	३०	३१	३२
०	१	२	४	५	६	०	२	३	४	५	०	१	२	४	५
२३	३९	५४	१०	२६	४१	५७	१२	२८	४३	५९	१४	३०	४५	१	१६
५५	२७	५८	३०	१	३३	४	३६	७	३९	१०	४२	१३	४५	१६	४८
३०	०	३०	०	३०	०	३०	०	३०	०	३०	०	३०	०	३०	०

३३	३४	३५	३६	३७	३८	३९	४०	४१	४२	४३	४४	४५	४६	४७	४८
६	०	२	३	४	५	०	१	२	३	५	६	०	१	३	४
३२	४७	३	१८	३४	४९	५	२१	३६	५२	७	२३	३८	५४	९	२२
१९	५१	२२	५४	२४	५७	२८	०	३१	३	३४	६	३७	९	४०	१५
०	०	३०	०	३०	०	३०	०	३०	०	३०	०	३०	०	३०	०

४९	५०	५१	५२	५३	५४	५५	५६	५७	५८	५९	६०	६१	६२	६३	६४
५	६	१	२	३	४	६	०	०	३	४	५	६	१	२	३
४०	५६	११	२७	४२	५८	१३	२९	४४	०	१५	३१	४७	२	१८	३३
४३	१५	४६	१८	४९	२१	५२	२४	५५	२७	५८	३०	१	३३	४	३६
३०	०	३०	०	३०	०	३०	०	३०	०	३०	०	३०	०	३०	०

६५	६६	६७	६८	६९	७०	७१	७२	७३	७४	७५	७६	७७	७८	७९	८०
४	६	०	१	२	४	५	६	०	२	३	४	५	०	१	२
४९	४	२०	३५	५१	६	२२	३७	५३	८	२४	३९	५५	१०	२६	४२
७	३९	१०	४२	१३	४५	१६	४८	१९	५१	२२	५४	२५	५७	२८	०
३०	०	३०	०	३०	०	३०	०	३०	०	३०	०	३०	०	३०	०

८१	८२	८३	८४	८५	८६	८७	८८	८९	९०	९१	९२	९३	९४	९५	९६
३	५	६	०	१	३	४	५	०	१	२	३	५	६	०	१
५७	१३	२८	४४	५९	१५	३०	४६	१	१७	३२	४८	३	१९	३४	५०
३१	३	३४	६	३७	९	४०	१२	४३	१५	४६	१८	४९	२१	५२	२४
३०	०	३०	०	३०	०	३०	०	३०	०	३०	०	३०	०	३०	०

वर्षप्रवेश की तिथि का साधन

गतवर्ष की संख्या को ११ से गुणा कर के दो स्थानो में रखें। प्रथम स्थान की राशि में १७० का भाग देने से जो लब्धि आवे उसे द्वितीय स्थान की राशि में जोड दें। इस योगफल में जन्मकालिक तिथि को शुक्ल-पक्ष की प्रतिपदा से गिनने पर जो सख्या हो उसे भी जोड कर ३० का भाग दें। जो शेष बचे, शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा से गिनने पर उस संख्यक तिथि में वर्षप्रवेश जानना चाहिए। पहले निकाले गये वार में यह तिथि प्राय मिल जाती है, लेकिन कभी-कभी एक तिथि का अन्तर भी पड जाता है। जब-जब अन्तर आवे उस समय वार को ही प्रधान मान कर उस वार की तिथि को ग्रहण करना चाहिए।

उदाहरण—गतवर्ष संख्या ३४ है। ३४ × ११ = ३७४

३७४ – १७० = २ लब्धि ३९४ + २ = ३७६, इस में जन्म तिथि की

और शेप ३४ संख्या अभीष्ट उदाहरण के अनुसार शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा से गिनकर १२ जोड दी।

अत· ३७६ + १२ = ३८८ ÷ ३० = १२ लब्धि, शेष २८। शुक्लपक्ष की प्रतिपदा से २८ संख्या तक तिथि गणना की तो यह संख्या—२८वी संख्या कृष्णपक्ष की त्रयोदशी को आयी। अतः वर्षप्रवेश प्रस्तुत उदाहरण का मार्गशीर्ष वदी १३ बृहस्पतिवार को ५८ घटी ३ पल इष्टकाल पर माना जायेगा।

वर्षप्रवेश के तिथि, नक्षत्र, वार आदि जानने की एक सरल विधि

ज्योतिषशास्त्र में वर्षप्रवेशकालीन तिथि, वार निकालने का एक सरल नियम यह भी बताया गया है कि, जन्मकाल का सूर्य और वर्षप्रवेश-काल की सूर्य राशि, अंशादि में समान होता है। जिस दिन उस सवत् में जन्मकालीन सूर्य के राशि, अंशादि मिल जायें, उसी दिन उतने ही मिश्र-मानकालिक इष्टकाल पर वर्षप्रवेश समझना चाहिए। प्रस्तुत उदाहरण में जन्मकालीन सूर्य ७।५।४१।४१ है, यह मार्गशीर्ष कृष्ण १३ गुरुवार की रात को ५८।३ इष्टकाल पर मिल जाता है, अतः इसी दिन वर्षप्रवेश माना जायेगा।

वर्षकुण्डली का जन्मकुण्डली के लग्न के समान ही बनाया जाता है। यहाँ पर लग्नसारिणी के अनुसार लग्न का उदाहरण दिखलाया जा रहा है—

५८।३ वर्षप्रवेश का इष्टकाल
४०।४३।१६ सारिणी में प्राप्त सूर्यफल
___
३८।४६।१६ योगफल

इस योगफल को पुनः लग्नसारिणी में देखा तो ६।२३ का फल ३८।३६।२३ और ६।२४ का ३८।४७।५२ मिला। अभीष्ट योगफल ३८।४६।१६ है; अत· इसे २३ और २४ अश के मध्य का समझना चाहिए। कला, विकला को निकालने के लिए प्रक्रिया को—

३८।४७।५२, २४ अंश के फल में से
३८।३६।२३, २३ अंश के फल को घटाया

११।२९ सजातीय संख्या बनायी।
६०

६६० + २९ = ६८९

३८।४६।१६, अभीष्ट योगफल में से
३८।३६।२३, २३ अंश के फल को घटाया

९।५३ सजातीय संख्या बनायी
६०

५४० + ५३ = ५९३

यहाँ अनुपात किया कि ६८९ प्रतिविकला में ६० कला फल मिलता है तो ५९३ प्रतिविकला में क्या ?

$$\frac{५९३ \times ६०}{६८९} = \frac{३५५८०}{६८९} = ५१\frac{४४१}{६८९} \times \frac{६०}{१}$$

$३८\frac{२७८}{६८९}$ अर्थात् ५१ कला ३८ विकला। इस प्रकार वर्षप्रवेश का लग्न ६।२३।५१।३८ हुआ।

वर्षप्रवेशकालीन इष्टकाल पर से ग्रहस्पष्ट जन्मकुण्डली के गणित के समान ही कर लेने चाहिए। नीचे गणित कर केवल ग्रहस्पष्ट चक्र लिखा जा रहा है।

वर्षप्रवेशकालीन ग्रहस्पष्ट चक्र

सू०	च०	म०	बु०	बृ०	शु०	श०	रा०	के०	ग्र०
७	६	७	७	६	६	३	१	७	राशि
५	१६	१७	०	२३	८	१२	२२	२२	अंश
४१	१२	२	३९	१०	४७	७	५३	५३	कला
४१	५१	३५	५६	२९	३९	३०	२८	२८	विकला
६०	७४५	४३	४१	३	४	०	३	३	कलाविकलात्मक गति
४९	३६	२२	२०	१८	३३	५५	११	११	
		व०		व०	व०				
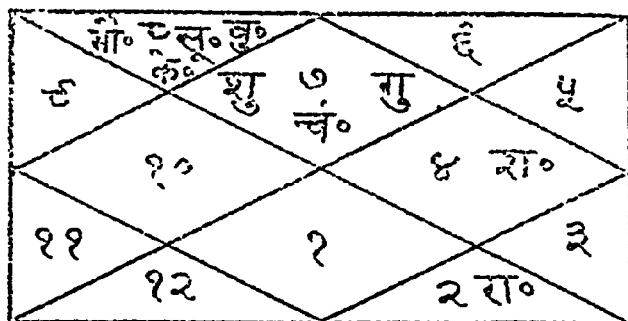
वर्षकुण्डली

वर्षकुण्डली के अन्य गणित, द्वादश भाव चक्र, चलित चक्र आदि का साधन जन्मकुण्डली के गणित के समान करना चाहिए। वर्षपत्र के लिखने की विधि भी जन्मपत्र के लिखने के समान ही है। सिर्फ़ गताब्द और प्रवेशाब्द अधिक लिखे जाते हैं तथा जन्म के स्थान पर वर्षप्रवेश लिखा जाता है।

मुन्था-साधन

नव ग्रहों के समान ताजिक शास्त्र में मुन्था भी एक ग्रह माना गया है। इस की वार्षिक गति १ राशि, मासिक २॥ अंश और दैनिक ५ कला है। गणित-द्वारा इस का साधन करने के लिए गत वर्ष-संख्या में १ जोड़ कर १२ का भाग देना चाहिए। जन्मलग्न राशि से शेष संख्या तक गिनने पर मुन्था की राशि आती है। मुन्थालग्न स्पष्ट करने की यह प्रक्रिया है कि स्पष्ट जन्मलग्न में गत वर्ष-संख्या को जोड़ कर १२ का भाग देने पर शेष तुल्य स्पष्ट मुन्था का लग्न आता है।

उदाहरण—गत वर्ष-संख्या ३४ + १ = ३५ ÷ १२ = २ लब्धि और शेष ११ आया। अभीष्ट कुण्डली की लग्नराशि मकर है, अतएव मकर से आगे ११ राशियों की गणना करने पर वृश्चिक राशि मुन्था की आयी।

मुन्था साधन का अन्य नियम

जन्मलग्न में गतवर्ष की संख्या को जोड कर १२ का भाग देने से शेष तुल्य मुन्थालग्न होता है।

उदाहरण—९।३।१०।० जन्मलग्न
३४।०।०।० गतवर्ष सख्या
४३।३।१०।० योगफल सख्या

४३।३।१०।० ÷ १२ = २ लब्धि और शेष ७।३।१०।० अर्थात् वृश्चिक राशि मुन्थालग्न हुई—

मुन्थाकुण्डली चक्र
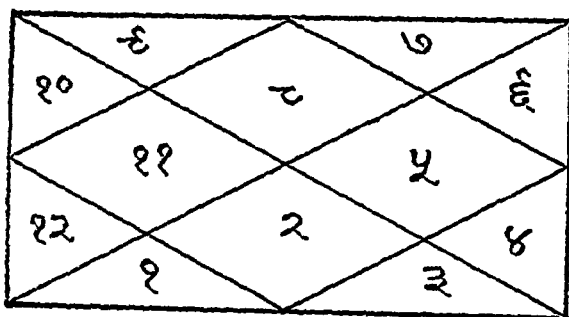
भावस्पष्ट—इस गणित की विधि जन्मकुण्डली के गणित में विस्तार से प्रतिपादित की गयी है। यहाँ पर सिर्फ 'लग्न से दशम भावसाधन सारिणी' द्वारा वर्षलग्न के राशि, अंशो का फल ले कर दशम भाव का साधन किया जा रहा है। वर्षलग्न ६।२३।५१।३८ है, इस का फल उक्त सारिणी में ३।२७।१५।५६ दशम भाव का लग्न मिला।

३।२७।१५।५६ दशम भाव

६।०।०।०

९।२७।१५।५६ चतुर्थ भाव में से

६।२३।५१।३८ लग्न को घटाया

३।३।२४।१८ ÷ ६ =

६)३।३।२४।१८(०

०

३ × ३० = ९० + ३ =

६)९३(१५

६

३३

३०

३ × ६० = १८० + २४ =

६)२०४(३४

१८

२४

२४

० × ६० = ० × १८ =

६)१८(३

१८

×

०।१५।३४।३ षष्ठांश हुआ
६।२३।५१।३८ लग्न में
१५।३४। ३ पष्ठाश को जोडा

७। ९।२५।४१ लग्न की सन्धि में
१५।३४। ३ पष्ठाश को जोड़ा

७।२४।५९।४४ द्वितीय भाव में
१५।३४। ३ षष्ठाश को जोडा

८।१०।३३।४७ द्वितीय भाव की सन्धि में
१५।३४।३ षष्ठाश को जोडा

८।२६।७।५० तृतीय भाव में
१५।३४।३ षष्ठाश को जोडा

९।११।४१।५३ तृतीय भाव की सन्धि में
१५।३४। ३ पष्ठाश को जोडा

९।२७।१५।५६ चतुर्थ भाव
३०।०।० में-से
१५।३४।३ पष्ठाश को घटाया

१४।२५।५७ शेष
९।२७।१५।५६ चतुर्थ भाव में
१४।२५।५७ शेप को जोडा

१०।११।४१।५३ चतुर्थ भाव की सन्धि में
१४।२५।५७ शेष को जोडा

१०।२६।७।५० पंचम भाव
१०।२६।७।५० पचम भाव में

१४।२५।५७ शेष को जोड़ा

११।१०।३३।४७ पंचम भाव की सन्धि में
१४।२५।५७ शेष को जोड़ा

११।२४।५९।४४ षष्ठ भाव में
१४।२५।५७ शेष को जोड़ा

०।९।२५।४१ षष्ठ भाव की सन्धि में
१४।२५।५७ शेष को जोड़ा

०।२३।५१।३८ सप्तम भाव

लग्न में छह राशि जोड़ने पर भी सप्तम भाव आता है। यदि उपर्युक्त गणित-द्वारा साधित सप्तम भाव, इस छह राशि के योग वाले सप्तम भाव से मिल जाये तो अपना गणित शुद्ध समझना चाहिए।

६।२३।५१।३८
६।० ।० ।०

०।२३।५१।३८ यह सप्तम भाव पहले वाले गणित से मिल गया, अतः गणित क्रिया शुद्ध है।

७।९।२५।४१ लग्न सन्धि में
६।०। ०। ० जोड़ा
१।९।२५।४१ सप्तम भाव सन्धि
७।२४।५९।४४ द्वितीय भाव में
६। ०। ०। ० जोड़ा

१।२४।५९।४४ अष्टम भाव
८।१०।३३।४७ द्वितीय भाव की सन्धि
६। ०। ०। ० जोड़ा

२।१०।३३।४७ अष्टम भाव की सन्धि

८।२६।७।५० तृतीय भाव में
६। ०। ०। ० जोडा

२।२६।७।५० नवम भाव
९।११।४१।५३ तृतीय भाव की सन्धि में
६। ०। ०। ०

३।११।४१।५३ नवम भाव की सन्धि
९।२७।१५।५६ चतुर्थ भाव में
६। ०। ०। ०

३।२७।१५।५६ दशम भाव। यह दशम भाव पहले वाले दशम भाव से मिल जाये तो गणित शुद्ध समझना चाहिए, अन्यथा अशुद्ध।

१०।११।४१।५३ चतुर्थ भाव की सन्धि में
६ । ०। ०।० जोडा

४।११।४१।५३ दशम भाव की सन्धि
१०।२६।७।५० पचम भाव में
६। ०। ०।० जोडा

४।२६।७।५० एकादश भाव
११।१०।३३।४७ पचम भाव की सन्धि में
६। ०। ०। ० जोडा

५।१०।३३।४७ एकादश भाव की सन्धि
११।२४।५९।४४ षष्ठ भाव में
६ । ०। ०। ० जोडा

५।२४।५९।४४ द्वादश भाव
०।९।२५।४१ षष्ठ भाव की सन्धि में
६। ० । ० । ०। जोडा

६।९।२५।४१ द्वादश भाव की सन्धि

द्वादश भाव स्पष्ट चक्र

ल०	सं०	ध०	सं०	स०	सं०	सु०	सं०	पु०	सं०	रि०	सं०	भा०
६	७	७	८	८	९	९	१०	१०	११	११	०	राश्यादयः
१३	९	२४	१०	२६	११	२७	११	२६	१०	२४	९	
५१	२५	५९	३३	७	४१	१५	४१	७	३३	५९	२५	
३८	४१	४४	४७	५०	५३	५६	५३	५०	४७	४४	४१	
स्त्री.	सं०	आ	सं०	ध०	स०	क०	सं०	ला०	स०	व्य०	स०	भा०
०	१	१	२	२	३	३	४	४	५	५	६	राश्यादयः
२३	९	२४	१०	२६	११	२७	११	२६	१०	२४	९	
५१	२५	५९	३३	७	४१	१५	४१	७	३३	५९	२५	
३८	४१	४४	४७	५०	५३	५६	५३	५०	४७	४४	४१	

ताजिक मित्रादि-संज्ञा

प्रत्येक ग्रह अपने भाव से ३, ५, ९ और ११वें भाव को मित्र दृष्टि से, २, ६, ८ और १२वें भाव को समदृष्टि से एवं १, ४, ७ और १०वें भाव को शत्रु दृष्टि से देखता है। अभिप्राय यह है कि जो ग्रह जहाँ पर हो उस के ३, ५, ९ और ११वें स्थान में रहने वाले ग्रह मित्र २, ६, ८ और १२वें स्थान में रहने वाले ग्रह सम एवं १, ४, ७ और १०वें भाव में रहने वाले ग्रह शत्रु होते हैं। यह विचार वर्षकुण्डली से किया जाता है।

पंचवर्ग

वर्षपत्र में पंचवर्ग का गणित लिखा जाता है। इस के पंचवर्गों में गृह, उच्च, हद्दा, द्रेष्काण और नवांश ये पाँच गिनाये गये हैं। इन में गृह, द्रेष्काण एवं नवांश साधन की विधि पहले लिखी जा चुकी है। यहाँ पर हद्दा साधन का प्रकार लिखा जाता है।

हद्दा-साधन

मेष के ६ अंश तक गुरु, ७ से १२ अंश तक शुक्र, १३ से २० अंश तक बुध, २१ से २५ अंश तक भौम और २६ से ३० अंश तक शनि हद्देश होता है। वृष के ८ अंश तक शुक्र, ९ से १४ अंश तक बुध, १५ से २२ अंश तक गुरु, २३ से २७ अंश तक शनि और २८ से ३० अंश तक मंगल हद्देश होता है। मिथुन के ६ अंश तक बुध, ७ से १२ अंश तक शुक्र, १३ से १७ अंश तक गुरु, १८ से २४ अंश तक मंगल और २५ से ३० अंश तक शनि हद्देश होता है। कर्क के ७ अंश तक मंगल, ८ से १३ अंश तक शुक्र, १४ से १९ अंश तक बुध, २० से २६ अंश तक गुरु और २७ से ३० अंश तक शनि हद्देश होता है। सिंह के ६ अंश तक गुरु, ७ से ११ अंश तक शुक्र, १२ से १८ अंश तक शनि, १९ से २४ अंश तक मंगल हद्देश होता है। कन्या के ७ अंश तक बुध, ८ से १७ अंश तक शुक्र, १८ से २१ अंश तक गुरु, २२ से २८ अंश तक मंगल और २९ से ३० अंश तक शनि हद्देश होता है। तुला के ६ अंश तक शनि, ७ से १४ अंश तक बुध, १५ से २१ अंश तक गुरु, २२ से २८ अंश तक शुक्र और २९ से ३० अंश तक मंगल हद्देश होता है। वृश्चिक के ७ अंश तक मंगल, ८ से ११ अंश तक शुक्र, १२ से १९ अंश तक बुध, २० से २४ अंश तक गुरु और २५ से ३० अंश तक शनि हद्देश होता है। धनु के १२ अंश तक गुरु, १३ से १७ अंश तक शुक्र, १८ से २१ अंश तक बुध, २२ से २६ अंश तक मंगल और २७ से ३० अंश तक शनि हद्देश होता है। मकर के ७ अंश तक बुध, ८ से १४ अंश तक गुरु, १५ से २२ अंश तक शुक्र, २३ से २६ अंश तक शनि और २७ से ३० अंश तक मंगल हद्देश होता है। कुम्भ के ७ अंश तक शुक्र, ८ से १३ अंश तक बुध, १४ से २० अंश तक गुरु, २१ से २५ अंश तक मंगल और २६ से ३० अंश तक शनि हद्देश होता है। मीन के १२ अंश तक शुक्र १३ से १६ अंश तक गुरु, १७ से १९ अंश तक बुध, २० से २८ अंश तक मंगल और २९ से ३० अंश तक शनि हद्देश होता है।

मेषादि राशियों के हद्देश

मेष	वृष	मिथुन	कर्क	सिंह	कन्या	तुला	वृश्चिक	धनु	मकर	कुम्भ	मीन	राशियाँ
गु० ६	शु० ८	बु० ६	मं० ७	गु० ६	बु० ७	श० ६	म० ७	गु० १२	बु० ७	शु० ७	शु० १२	सग्रहांक
शु० ६	बु० ६	शु० ६	शु० ६	शु० ५	शु० १०	बु० ८	शु० ४	शु० ५	गु० ७	बु० ६	गु० ४	सग्रहांक
बु० ८	गु० ८	गु० ५	बु० ६	श० ७	गु० ४	गु० ७	बु० ८	बु० ४	शु० ८	गु० ७	बु० ३	सग्रहांक
म० ५	श० ५	मं० ७	गु० ७	बु० ६	मं० ७	शु० ७	गु० ५	म० ५	श० ४	मं० ५	म० ९	सग्रहांक
श० ५	म० ३	श० ६	श० ४	म० ६	श० २	मं० २	श० ६	श० ४	मं० ४	श० ५	श० २	सग्रहांक

वर्षकालीन स्पष्टग्रहों से प्रत्येक ग्रह का हद्दा अवगत कर नव ग्रहो का हद्दाचक्र बना लेना चाहिए।

उदाहरण—सूर्य ७।५ है—अर्थात् वृश्चिक राशि के ५ अंश का है, अत मंगल के हद्दा में माना जायेगा। चन्द्रमा ६।१६—अर्थात् तुला राशि के १६ अंश है तथा तुला राशि के १६वें अंश से २१वें अंश तक गुरु का हद्दा होता है, अत चन्द्रमा गुरु के हद्दा में समझा जायेगा। मंगल ७।१७—अर्थात् वृश्चिक राशि के १७ अश है तथा वृश्चिक के १२वें अश से १९वें अश तक वुध का हद्दा होता है अत मंगल वुध के हद्दा में समझा जायेगा। इसी प्रकार वुध मगल के हद्दा में, गुरु शुक्र के हद्दा में, शुक्र वुध के हद्दा में, शनि शुक्र के हद्दा में, राहु शनि के हद्दा में और केतु गुरु के हद्दा में माना जायेगा। प्रस्तुत उदाहरण का हद्देशचक्र निम्नप्रकार है—

सूर्य	चन्द्र	भौम	वुध	गुरु	शुक्र	शनि	राहु	केतु	ग्रह
मगल	गुरु	वुध	मगल	शुक्र	वुध	शुक्र	शनि	गुरु	हद्देश

उच्चवल साधन

द्वितीय अध्याय में उच्चवल साधन की जो प्रक्रिया वतायी गयी है, उस से प्रत्येक ग्रह का उच्चवल निकाल लेना चाहिए। जो कलात्मक उच्चवल आये उस में तीन का भाग देने से ताजिक का उच्चवल आ जाता है। उदाहरण में पहले सूर्य का उच्चवल ५९।२९ आया है। अतएव—५९।२९ ÷ ३ = १९।५० यह वर्षपत्र के लिए उच्चवल हुआ।

सारणी-द्वारा उच्चवल साधन

जिस ग्रह का उच्चवल साधन करना हो उस की उच्चवल साधन-

सारणी में राशि के सामने और अंश के नीचे जो फल लिखा हो उसे ग्रहण कर लेना चाहिए। कला, विकला के फल के लिए आगे और पीछे के अंशों का अन्तर करने से जो आये, उस से कला, विकला को गुणा कर ६० का भाग देने से कला, विकला का फल आ जाता है; दोनों फलों का योग करने से उच्चवल हो जाता है।

उदाहरण—वर्षप्रवेशकालीन सूर्य ७।५।४१।४१ है, सूर्य उच्चवल साधन सारणी में सात राशि के सामने और पांच अंश के नीचे २।४६ दिया है, कला विकला का फल निकालने के लिए पांच अंश और छह अंश वाले कोष्ठक का अन्तर किया—२।५३

२।४६

०।७

४१।४१ × ७ = २८७। २८७ ÷ ६० = ४।५१

४।५१ विकलात्मक फल। २।४६ प्रथम फल में

४।५१ द्वितीय फल जोड़ा

२।५०।५१

अर्थात् २।५०।५१ सूर्य का उच्चवल।

चन्द्रमा—६।१६।१२।५१ है, चन्द्र उच्चवल सारणी में ६ राशि के सामने और १६ अंश के नीचे १।५३ है

१।५३—१६ अंश का फल

१।४६—१५ अंश का फल

०। ७

१२।५१। × ७ = ८४।३५७ ÷ ६० = १।२९,

१।५३

  १।२९

१।५४।२९ चन्द्र उच्चवल

मगल—७।१७।२।३५ है। मंगल उच्चवल सारणी में ७ राशि और १७ अश के नीचे १२।६ है।

१२।१३—१८ अश का फल

१२। ६—१७ अश का फल

 ०। ७   २।३५ × ७ = १४।२४५ ÷ ६० = ०।१८

१२।१३

  ०।१८

१२।१३।१८ मंगल का उच्चवल

इसी प्रकार बुध का उच्चवल १४।५७, गुरु का ८।२, शुक्र का १।१८, शनि का ९।७ है।

पञ्चवर्गी वल साधन

अपनी राशि में जो ग्रह हो उस का ३० विश्वावल, जो अपने उच्च में हो उस का २० विश्वावल, जो अपने हद्दा में हो उस का १५ विश्वावल, जो अपने द्रेष्काण में हो उस का १० विश्वावल और जो अपने नवमाश में हो उस का ५ विश्वावल होता है। इन पांचो अधिकारियों के वलो को जोड कर चार का भाग देने से विश्वावल या विशोपकवल निकलता है।

यदि कोई ग्रह अपनी राशि, अपने उच्च, अपने हद्दा, अपने द्रेष्काण

और अपने नवमांश में न पड़ा हो तो उस के बल का विचार निम्न प्रकार करना चाहिए।

जो ग्रह अपने मित्र के घर में हो वह तीन चौथाई बलवान्, समराशि में हो तो आधा बलवान् एवं शत्रुराशि में हो तो चौथाई बलवान् होता है। यह बलसाधन की प्रक्रिया गृह, हद्दा, उच्च, नवमांश और द्रेष्काण में एक-सी होती है।

बल बोधक चक्र

पतथ.	स्व०	मि०	सम	शत्रु
गृहेश	३० ०	२२ ३०	१५ ०	७ ३०
हद्देश	१५ ०	११ १५	७ ३०	३ ४५
द्रेष्काणेश	१० ०	७ ३०	५ ०	२ ३०
नवमांशेश	५ ०	३ ४५	२ ३०	१ १५

सूर्य मंगल के गृह में है और मंगल उस का शत्रु है, अतः सूर्य का गृहबल ७।३० हुआ। चन्द्रमा वर्षकुण्डली में शुक्र के गृह में है, शुक्र चन्द्रमा का शत्रु है, अत चन्द्रमा का गृहबल ७।३० हुआ। मंगल स्वगृही है, अत॰ मंगल का ३०।० हुआ। बुध मगल के गृह में है और मगल बुध का शत्रु है, अतः शत्रुगृही होने से बुध का गृहबल ७।३० हुआ। इसी प्रकार गुरु का ७।३०, शुक्र का ७।३० और शनि का ७।३० हुआ। उच्चबल—पहले साधन किया है।

सभी ग्रहो की उच्चबल साधन-सारणी आगे दी जाती है।

सूर्य-उच्चबल सारणी

अंश	०	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३
मेष ०	१८ ५३	१९ ००	१९ ६	१९ १३	१९ २०	१९ २६	१९ ३३	१९ ४०	१९ ४६	१९ ५३	२० ००	१९ ५३	१९ ४६	१९ ४०
वृष १	१७ ४६	१७ ४०	१७ ३३	१७ २६	१७ २०	१७ १३	१७ ६	१७ ००	१६ ५३	१६ ४६	१६ ४०	१६ ३३	१६ २६	१६ २०
मिथुन २	१४ २६	१४ २०	१४ १३	१४ ६	१४ ००	१३ ५३	१३ ४६	१३ ४०	१३ ३३	१३ २६	१३ २०	१३ १३	१३ ०६	१३ ००
कर्क ३	११ ६	११ ००	१० ५३	१० ४६	१० ४०	१० ३३	१० २६	१० २०	१० १३	१० ६	१० ००	९ ५३	९ ४६	९ ४०
सिंह ४	७ ४६	७ ४०	७ ३३	७ २६	७ २०	७ १३	७ ६	७ ००	६ ५३	६ ४६	६ ४०	६ ३३	६ २६	६ २०
कन्या ५	४ २६	४ २०	४ १३	४ ६	४ ००	३ ५३	३ ४६	३ ४०	३ ३३	३ २६	३ २०	३ १३	३ ६	३ ००

(परमोच्च ०।१०)

१४	१५	१६	१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४	२५	२६	२७	२८	२९	अं०
१९ ३३	१९ २६	१९ २०	१९ १३	१९ ६	१९ ००	१८ ५३	१८ ४६	१८ ४०	१८ ३३	१८ २६	१८ २०	१८ १३	१८ ६	१८ ००	१७ ५३	मे० ०
१६ १३	१६ ०६	१६ ००	१५ ५३	१५ ४६	१५ ४०	१५ ३३	१५ २६	१५ २०	१५ १३	१५ ०६	१५ ००	१४ ५३	१४ ४६	१४ ४०	१४ ३३	वृ० १
१२ ५३	१२ ४६	१२ ४०	१२ ३३	१२ २६	१२ २०	१२ १३	१२ ०६	१२ ००	११ ५३	११ ४६	११ ४०	११ ३३	११ २६	११ २०	११ १३	मि. २
९ ३३	९ २६	९ २०	९ १३	९ ६	९ ००	८ ५३	८ ४६	८ ४०	८ ३३	८ २६	८ २०	८ १३	८ ६	८ ००	७ ५३	क० ३
६ १३	६ ६	६ ००	५ ५३	५ ४६	५ ४०	५ ३३	५ २६	५ २०	५ १३	५ ६	५ ००	४ ५३	४ ४६	४ ४०	४ ३३	सिं. ४
२ ५३	२ ४६	२ ४०	२ ३३	२ २६	२ २०	२ १३	२ ६	२ ००	१ ५३	१ ४६	१ ४०	१ ३३	१ २६	१ २०	१ १३	कं० ५

सूर्य-उच्चबल सारणी

अश	०	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३
तु० ६	१ ६	१ ००	० ५३	० ४६	० ४०	० ३३	० २६	० २०	० १३	० ६	०० ०	० ६	० १३	० २०
वृ० ७	२ १३	२ २०	२ २६	२ ३३	२ ४०	२ ४६	२ ५३	३ ००	३ ६	३ १३	३ २०	३ २६	३ ३३	३ ४०
ध० ८	५ ३३	५ ४०	५ ४६	५ ५३	६ ००	६ ६	६ १३	६ २०	६ २६	६ ३३	६ ४०	६ ४६	६ ५३	७ ००
म० ९	८ ५३	९ ००	९ ६	९ १३	९ २०	९ २६	९ ३३	९ ४०	९ ४६	९ ५३	१० ००	१० ६	१० १३	१० २०
कु १०	१२ १३	१२ २०	१२ २६	१२ ३३	१२ ४०	१२ ४६	१२ ५३	१३ ००	१३ ६	१३ १३	१३ २०	१३ २६	१३ ३३	१३ ४०
मी ११	१५ ३३	१५ ४०	१५ ४६	१५ ५३	१६ ०	१६ ६	१६ १३	१६ २०	१६ २६	१६ ३३	१६ ४०	१६ ४६	१६ ५३	१७ ००

(परमोच्च ०।१०)

१४	१५	१६	१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४	२५	२६	२७	२८	२९	अं०
० २६	० ३३	० ४०	० ४६	० ५३	१ ००	१ ६	१ १३	१ २०	१ २६	१ ३३	१ ४०	१ ४६	१ ५३	२ ००	२ ६	तु० ६
३ ४६	३ ५३	४ ००	४ ६	४ १३	४ २०	४ २६	४ ३३	४ ४०	४ ४६	४ ५३	५ ००	५ ६	५ १३	५ २०	५ २६	वृ० ७
७ ६	७ १३	७ २०	७ २६	७ ३३	७ ४०	७ ४६	७ ५३	८ ००	८ ६	८ १३	८ २०	८ २६	८ ३३	८ ४०	८ ४६	ध० ८
१० २६	१० ३३	१० ४०	१० ४६	१० ५३	११ ००	११ ६	११ १३	११ २०	११ २६	११ ३३	११ ४०	११ ४६	११ ५३	१२ ००	१२ ६	म० ९
१३ ४६	१३ ५३	१४ ०	१४ ६	१४ १३	१४ २०	१४ २६	१४ ३३	१४ ४०	१४ ४६	१४ ५३	१५ ००	१५ ६	१५ १३	१५ २०	१५ २६	कुं० १०
१७ ६	१७ १३	१७ २०	१७ २६	१७ ३३	१७ ४०	१७ ४६	१७ ५३	१८ ००	१८ ६	१८ १३	१८ २०	१८ २६	१८ ३३	१८ ४०	१८ ४६	मी० ११

चन्द्र-उच्चबल सारणी

अंश	०	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३
मे ०	१६ २०	१६ २६	१६ ३३	१६ ४०	१६ ४६	१६ ५३	१७ ०	१७ ६	१७ १३	१७ २०	१७ २६	१७ ३३	१७ ४०	१७ ४६
वृ १	१९ ४०	१९ ४६	१९ ५३	२० ०	१९ ५३	१९ ४६	१९ ४०	१९ ३३	१९ २६	१९ २०	१९ १३	१९ ६	१९ ०	१८ ५३
मि २	१७ ०	१६ ५३	१६ ४६	१६ ४०	१६ ३३	१६ २६	१६ २०	१६ १३	१६ ६	१६ ०	१५ ५३	१५ ४६	१५ ४०	१५ ३३
क. ३	१३ ४०	१३ ३३	१३ २६	१३ २०	१३ १३	१३ ६	१३ ०	१२ ५३	१२ ४६	१२ ४०	१२ ३३	१२ २६	१२ २०	१२ १३
सिं ४	१० २०	१० १३	१० ६	१० ०	९ ५३	९ ४६	९ ४०	९ ३३	९ २६	९ २०	९ १३	९ ६	९ ०	८ ५३
क ५	७ ०	६ ५३	६ ४६	६ ४०	६ ३३	६ २६	६ २०	६ १३	६ ६	६ ०	५ ५३	५ ४६	५ ४०	५ ३३

(परमोच्च ११३)

१४	१५	१६	१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४	२५	२६	२७	२८	२९	सं.
१७ ५३	१८ ०	१८ ६	१८ १३	१८ २०	१८ २६	१८ ३३	१८ ४०	१८ ४६	१८ ५३	१९ ०	१९ ६	१९ १३	१९ २०	१९ २६	१९ ३३	मे ०
१८ ४६	१८ ४०	१८ ३३	१८ २६	१८ २०	१८ १३	१८ ६	१८ ०	१७ ५३	१७ ४६	१७ ४०	१७ ३३	१७ २६	१७ २०	१७ १३	१७ ६	वृ १
१५ २६	१५ २०	१५ १३	१५ ६	१५ ०	१४ ५३	१४ ४६	१४ ४०	१४ ३३	१४ २६	१४ २०	१४ १३	१४ ६	१४ ०	१३ ५३	१३ ४६	मि २
१२ ६	१२ ०	११ ५३	११ ४६	११ ४०	११ ३३	११ २६	११ २०	११ १३	११ ६	११ ०	१० ५३	१० ४६	१० ४०	१० ३३	१० २६	क ३
८ ४६	८ ४०	८ ३३	८ २६	८ २०	८ १३	८ ६	८ ०	७ ५३	७ ४६	७ ४०	७ ३३	७ २६	७ २०	७ १३	७ ६	सिं ४
५ २६	५ २०	५ १३	५ ६	५ ०	४ ५३	४ ४६	४ ४०	४ ३३	४ २६	४ २०	४ १३	४ ६	४ ०	३ ५३	३ ४६	क ५

चन्द्र-उच्चबल सारणी

अंश	०	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३
तु. ६	३ ४०	३ ३३	३ २६	३ २०	३ १३	३ ६	३ ०	२ ५३	२ ४६	२ ४०	२ ३३	२ २६	२ २०	२ १३
वृ ७	० २०	० १३	० ६	० ०	० ६	० १३	० २०	० २६	० ३३	० ४०	० ४६	० ५३	१ ०	१ ६
ध. ८	३ ०	३ ६	३ १३	३ २०	३ २६	३ ३३	३ ४०	३ ४६	३ ५३	४ ०	४ ६	४ १३	४ २०	४ २६
म ९	६ २०	६ २६	६ ३३	६ ४०	६ ४६	६ ५३	७ ०	७ ६	७ १३	७ २०	७ २६	७ ३३	७ ४०	७ ४६
कु. १०	९ ४०	९ ४६	९ ५३	१० ०	१० ६	१० १३	१० २०	१० २६	१० ३३	१० ४०	१० ४६	१० ५३	११ ०	११ ६
मी ११	१३ ०	१३ ६	१३ १३	१३ २०	१३ २६	१३ ३३	१३ ४०	१३ ४६	१३ ५३	१४ ०	१४ ६	१४ १३	१४ २०	१४ २६

(परमोच्च १।३)

१४	१५	१६	१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४	२५	२६	२७	२८	२९	अं
२ ६	२ ०	१ ५३	१ ४६	१ ४०	१ ३३	१ २६	१ २०	१ १३	१ ६	१ ०	० ५३	० ४६	० ४०	० ३३	० २६	तु ६
१ १३	१ २०	१ २६	१ ३३	१ ४०	१ ४६	१ ५३	२ ०	२ ६	२ १३	२ २०	२ २६	२ ३३	२ ४०	२ ४६	२ ५३	वृ. ७
४ ३३	४ ४०	४ ४६	४ ५३	५ ०	५ ६	५ १३	५ २०	५ २६	५ ३३	५ ४०	५ ४६	५ ५३	६ ०	६ ६	६ १३	ध ८
७ ५३	८ ०	८ ६	८ १३	८ २०	८ २६	८ ३३	८ ४०	८ ४६	८ ५३	९ ०	९ ६	९ १३	९ २०	९ २६	९ ३३	म ९
११ १३	११ २०	११ २६	११ ३३	११ ४०	११ ४६	११ ५३	१२ ०	१२ ६	१२ १३	१२ २०	१२ २६	१२ ३३	१२ ४०	१२ ४६	१२ ५३	कुं १०
१४ ३३	१४ ४०	१४ ४६	१४ ५३	१५ ०	१५ ६	१५ १३	१५ २०	१५ २६	१५ ३३	१५ ४०	१५ ४६	१५ ५३	१६ ०	१६ ६	१६ १३	मी ११

भौम-उच्चबल सारणी

अंश	०	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३
मेष ०	१३ ६	१३ ०	१२ ५३	१२ ४६	१२ ४०	१२ ३३	१२ २६	१२ २०	१२ १३	१२ ६	१२ ०	११ ५३	११ ४६	११ ४०
वृष १	९ ४६	९ ४०	९ ३३	९ २६	९ २०	९ १३	९ ६	९ ०	८ ५३	८ ४६	८ ४०	८ ३३	८ २६	८ २०
मिथुन २	६ २६	६ २०	६ १३	६ ६	६ ०	५ ५३	५ ४६	५ ४०	५ ३३	५ २५	५ २०	५ १३	५ ६	५ ०
कर्क ३	३ ६	३ ०	२ ५३	२ ४६	२ ४०	२ ३३	२ २६	२ २०	२ १३	२ ६	२ ०	१ ५३	१ ४६	१ ४०
सिंह ४	० १३	० २०	० २६	० ३३	० ४०	० ४६	० ५३	१ ०	१ ६	१ १३	१ २०	१ २६	१ ३३	१ ४०
कन्या ५	३ ३३	३ ४०	३ ४६	३ ५३	४ ०	४ ६	४ १३	४ २०	४ २६	४ ३३	४ ४०	४ ४६	४ ५३	५ ०

(परमोच्च १।२८)

१४	१५	१६	१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४	२५	२६	२७	२८	२९	अं०
११ ३३	११ २६	११ २०	११ १३	११ ६	११ ०	१० ५३	१० ४६	१० ४०	१० ३३	१० २६	१० २०	१० १३	१० ६	१० ०	९ ५३	मे. ०
८ १३	८ ६	८ ०	७ ५३	७ ४६	७ ४०	७ ३३	७ २६	७ २०	७ १३	७ ६	७ ०	६ ५३	६ ४६	६ ४०	६ ३३	वृ० १
४ ५३	४ ४६	४ ४०	४ ३३	४ २६	४ २०	४ १३	४ ६	४ ०	३ ५३	३ ४६	३ ४०	३ ३३	३ २६	३ २०	३ १३	मि. २
१ ३३	१ २६	१ २०	१ १३	१ ६	१ ०	० ५३	० ४६	० ४०	० ३३	० २६	० २०	० १३	० ६	० ०	० ६	क ३
१ ४६	१ ५३	२ ०	२ ६	२ १३	२ २०	२ २६	२ ३३	२ ४०	२ ४६	२ ५३	३ ०	३ ६	३ १३	३ २०	३ २६	सि. ४
५ ६	५ १३	५ २०	५ २६	५ ३३	५ ४०	५ ४६	५ ५३	६ ०	६ ६	६ १३	६ २०	६ २६	६ ३३	६ ४०	६ ४६	क ५

भौम-उच्चबल सारणी

अंश	०	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३
तु०	६	७	७	७	७	७	७	७	७	७	८	८	८	८
६	५३	०	६	१३	२०	२६	३३	४०	४६	५३	०	६	१३	२०
वृ०	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०	११	११	११	११	११	११	११
७	१३	२०	२६	३३	४०	४६	५३	०	६	१३	२०	२६	३३	४०
ध०	१३	१३	१३	१३	१४	१४	१४	१४	१४	१४	१४	१४	१४	१५
८	३३	४०	४६	५३	०	६	१३	२०	२६	३३	४०	४६	५३	०
म०	१६	१७	१७	१७	१७	१७	१७	१७	१७	१७	१८	१८	१८	१८
९	५३	०	६	१३	२०	२६	३३	४०	४६	५३	०	६	१३	२०
कु०	१९	१९	१९	१९	१९	१९	१९	१९	१८	१८	१८	१८	१८	१८
१०	४६	४०	३३	२६	२०	१३	६	०	५३	४६	४०	३३	२६	२०
मी	१६	१६	१६	१६	१६	१५	१५	१५	१५	१५	१५	१५	१५	१५
११	२६	२०	१३	६	०	५३	४६	४०	३३	२६	२०	१३	६	०

(परमोच्च ९।२८)

१४	१५	१६	१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४	२५	२६	२७	२८	२९	अं०
८ २६	८ ३३	८ ४०	८ ४६	८ ५३	९ ०	९ ६	९ १३	९ २०	९ २६	९ ३३	९ ४०	९ ४६	९ ५३	१० ०	१० ६	तु० ६
११ ४६	११ ५३	१२ ०	१२ ६	१२ १३	१२ २०	१२ २६	१२ ३३	१२ ४०	१२ ४६	१२ ५३	१३ ०	१३ ६	१३ १३	१३ २०	१३ २६	वृ० ७
१५ ६	१५ १३	१५ २०	१५ २६	१५ ३३	१५ ४०	१५ ४६	१५ ५३	१६ ०	१६ ६	१६ १३	१६ २०	१६ २६	१६ ३३	१६ ४०	१६ ४६	ध० ८
१८ २६	१८ ३३	१८ ४०	१८ ४६	१८ ५३	१९ ०	१९ ६	१९ १३	१९ २०	१९ २६	१९ ३३	१९ ४०	१९ ४६	१९ ५३	२० ०	१९ ५३	म० ९
१८ १३	१८ ६	१८ ०	१७ ५३	१७ ४६	१७ ४०	१७ ३३	१७ २६	१७ २०	१७ १३	१७ ६	१७ ०	१६ ५३	१६ ४६	१६ ४०	१६ ३३	कुं. १०
१४ ५३	१४ ४६	१४ ४०	१४ ३३	१४ २६	१४ २०	१४ १३	१४ ६	१४ ०	१३ ५३	१३ ४६	१३ ४०	१३ ३३	१३ २६	१३ २०	१३ १३	मी ११

बुध-उच्चबल सारणी

अंश	०	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३
मे ०	१ ४०	१ ४६	१ ५३	२ ०	२ ६	२ १३	२ २०	२ २६	२ ३३	२ ४०	२ ४६	२ ५३	३ ०	३ ६
वृ. १	५ ०	५ ६	५ १३	५ २०	५ २६	५ ३३	५ ४०	५ ४६	५ ५३	६ ०	६ ६	६ १३	६ २०	६ २६
मि २	८ २०	८ २६	८ ३३	८ ४०	८ ४६	८ ५३	९ ०	९ ६	९ १३	९ २०	९ २६	९ ३३	९ ४०	९ ४६
क ३	११ ४०	११ ४६	११ ५३	१२ ०	१२ ६	१२ १३	१२ २०	१२ २६	१२ ३३	१२ ४०	१२ ४६	१२ ५३	१३ ०	१३ ६
सिं ४	१५ ०	१५ ६	१५ १३	१५ २०	१५ २६	१५ ३३	१५ ४०	१५ ४६	१५ ५३	१६ ०	१६ ६	१६ १३	१६ २०	१६ २६
क ५	१८ २०	१८ २६	१८ ३३	१८ ४०	१८ ४६	१८ ५३	१९ ०	१९ ६	१९ १३	१९ २०	१९ २६	१९ ३३	१९ ४०	१९ ४६

(परमोच्च १।५५)

१४	१५	१६	१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४	२५	२६	२७	२८	२९	अं.
३ १३	३ २०	३ २६	३ ३३	३ ४०	३ ४६	३ ५३	४ ०	४ ६	४ १३	४ २०	४ २६	४ ३३	४ ४०	४ ४६	४ ५३	मे. ०
६ ३३	६ ४०	६ ४६	६ ५३	७ ०	७ ६	७ १३	७ २०	७ २६	७ ३३	७ ४०	७ ४६	७ ५३	८ ०	८ ६	८ १३	वृ० १
९ ५३	१० ०	१० ६	१० १३	१० २०	१० ३३	१० ४०	१० ४६	१० ५३	११ ०	११ ६	११ १३	११ २०	११ २६	११ ३३	११ ४०	मि. २
१३ १३	१३ २०	१३ २६	१३ ३३	१३ ४०	१३ ४६	१३ ५३	१४ ०	१४ ६	१४ १३	१४ २०	१४ २६	१४ ३३	१४ ४०	१४ ४६	१४ ५३	क. ३
१६ ३३	१६ ४०	१६ ४६	१६ ५३	१७ ०	१७ ६	१७ १३	१७ २०	१७ २६	१७ ३३	१७ ४०	१७ ४६	१७ ५३	१८ ०	१८ ६	१८ १३	सिं ४
१९ ५३	२० ०	१९ ५३	१९ ४६	१९ ४०	१९ ३३	१९ २६	१९ २०	१९ १३	१९ ६	१९ ०	१८ ५३	१८ ४६	१८ ४०	१८ ३३	१८ २६	क. ५

बुध-उच्चबल सारणी

अंश	०	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३
तु ६	१८ २०	१८ १३	१८ ६	१८ ०	१७ ५३	१७ ४६	१७ ४०	१७ ३३	१७ २६	१७ २०	१७ १३	१७ ६	१७ ०	१६ ५३
वृ. ७	१५ ०	१४ ५३	१४ ४६	१४ ४०	१४ ३३	१४ २६	१४ २०	१४ १३	१४ ६	१४ ०	१३ ५३	१३ ४६	१३ ४०	१३ ३३
ध ८	११ ४०	११ ३३	११ २६	११ २०	११ १३	११ ६	११ ०	१० ५३	१० ४६	१० ४०	१० ३३	१० २६	१० २०	१० १३
म ९	८ २०	८ १३	८ ६	८ ०	७ ५३	७ ४६	७ ४०	७ ३३	७ २६	७ २०	७ १३	७ ६	७ ०	६ ५३
कु १०	५ ०	४ ५३	४ ४६	४ ४०	४ ३३	४ २६	४ २०	४ १३	४ ६	४ ०	३ ५३	३ ४६	३ ४०	३ ३३
मी ११	१ ४०	१ ३३	१ २६	१ २०	१ १३	१ ६	१ ०	० ५३	० ४६	० ४०	० ३३	० २६	० २०	० १३

(परमोच्च ५।१५)

१४	१५	१६	१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४	२५	२६	२७	२८	२९	अं.
१६ ४६	१६ ४०	१६ ३३	१६ २६	१६ २०	१६ १३	१६ ६	१६ ०	१५ ५३	१५ ४६	१५ ४०	१५ ३३	१५ २६	१५ २०	१५ १३	१५ ६	तु० ६
१३ २६	१३ २०	१३ १३	१३ ६	१३ ०	१२ ५३	१२ ४६	१२ ४०	१२ ३३	१२ २६	१२ २०	१२ १३	१२ ६	१२ ०	११ ५३	११ ४६	वृ. ७
१० ६	१० ०	९ ५३	९ ४६	९ ४०	९ ३३	९ २६	९ २०	९ १३	९ ६	९ ०	८ ५३	८ ४६	८ ४०	८ ३३	८ २६	ध० ८
६ ४६	६ ४०	६ ३३	६ २६	६ २०	६ १३	६ ६	६ ०	५ ५३	५ ४६	५ ४०	५ ३३	५ २६	५ २०	५ १३	५ ६	म० ९
३ २६	३ २०	३ १३	३ ६	३ ०	२ ५३	२ ४६	२ ४०	२ ३३	२ २६	२ २०	२ १३	२ ६	२ ०	१ ५३	१ ४६	कुं. १०
० ६	० ०	० ६	० १३	० २०	० २६	० ३३	० ४०	० ४६	० ५३	१ ०	१ ६	१ १३	१ २०	१ २६	१ ३३	मी. ११

गुरु-उच्चबल सारणी

अश	०	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३
मे० ०	९ २६	९ ३३	९ ४०	९ ४६	९ ५३	१० ०	१० ६	१० १३	१० २०	१० २६	१० ३३	१० ४०	१० ४६	१० ५३
वृ १	१२ ४६	१२ ५३	१३ ०	१३ ६	१३ १३	१३ २०	१२ २६	१३ ३३	१३ ४०	१३ ४६	१३ ५३	१४ ०	१४ ६	१४ १३
मि० २	१६ ६	१६ १३	१६ २०	१६ २६	१६ ३३	१६ ४०	१६ ४६	१६ ५३	१७ ०	१७ ६	१७ १३	१७ २०	१७ २६	१७ ३३
क० ३	१९ २६	१९ ३३	१९ ४०	१९ ४६	१९ ५३	२० ०	१९ ५३	१९ ४६	१९ ४०	१९ ३३	१९ २६	१९ २०	१९ १३	१९ ६
सिं० ४	१७ १३	१७ ६	१७ ०	१६ ५३	१६ ४६	१६ ४०	१६ ३३	१६ २६	१६ २०	१६ १३	१६ ६	१६ ०	१५ ५३	१५ ४६
क० ५	१३ ५३	१३ ४६	१३ ४०	१३ ३३	१३ २६	१३ २०	१३ १३	१३ ६	१३ ०	१२ ५३	१२ ४६	१२ ४०	१२ ३३	१२ २६

(परमोच्च ३।५)

१४	१५	१६	१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४	२५	२६	२७	२८	२९	अं.
११ ०	११ ६	११ १३	११ २०	११ २६	११ ३३	११ ४०	११ ४६	११ ५३	१२ ०	१२ ६	१२ १३	१२ २०	१२ २६	१२ ३३	१२ ४०	मे० ०
१४ २०	१४ २६	१४ ३३	१४ ४०	१४ ४६	१४ ५३	१५ ०	१५ ६	१५ १३	१५ २०	१५ २६	१५ ३३	१५ ४०	१५ ४६	१५ ५३	१६ ०	वृ. १
१७ ४०	१७ ४६	१७ ५३	१८ ०	१८ ६	१८ १३	१८ २०	१८ २६	१८ ३३	१८ ४०	१८ ४६	१८ ५३	१९ ०	१९ ६	१९ १३	१९ २०	मि. २
१९ ०	१८ ५३	१८ ४६	१८ ४०	१८ ३३	१८ २६	१८ २०	१८ १३	१८ ६	१८ ०	१७ ५३	१७ ४६	१७ ४०	१७ ३३	१७ २६	१७ २०	क० ३
१५ ४०	१५ ३३	१५ २६	१५ २०	१५ १३	१५ ६	१५ ०	१४ ५३	१४ ४६	१४ ४०	१४ ३३	१४ २६	१४ २०	१४ १३	१४ ६	१४ ०	सिं. ४
१२ २०	१२ १३	१२ ६	१२ ०	११ ५३	११ ४६	११ ४०	११ ३३	११ २६	११ २०	११ १३	११ ६	११ ०	१० ५३	१० ४६	१० ४०	क ५

गुरु-उच्चबल सारणी

अंश	०	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३
तु० ६	१० ३३	१० २६	१० २०	१० १३	१० ६	१० ०	९ ५३	९ ४६	९ ४०	९ ३३	९ २६	९ २०	९ १३	९ ६
वृ ७	७ १३	७ ६	७ ०	६ ५३	६ ४६	६ ४०	६ ३३	६ २६	६ २०	६ १३	६ ६	६ ०	५ ५३	५ ४६
ध० ८	३ ५३	३ ४६	३ ४०	३ ३३	३ २६	२ २०	३ १३	३ ६	३ ०	२ ५३	२ ४६	२ ४०	२ ३३	२ २६
म० ९	० ३३	० २६	० २०	० १३	० ६	० ०	० ६	० १३	० २०	० २६	० ३३	० ४०	० ४६	० ५३
कुं १०	२ ४६	२ ५३	३ ०	३ ६	३ १३	३ २०	३ २६	३ ३३	३ ४०	३ ४६	३ ५३	४ ०	४ ६	४ १३
मी ११	६ ६	६ १३	६ २०	६ २६	६ ३३	६ ४०	६ ४६	६ ५३	७ ०	७ ६	७ १३	७ २०	७ २६	७ ३३

(परमोच्च ३।५)

१४	१५	१६	१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४	२५	२६	२७	२८	२९	अं.
९ ०	८ ५३	८ ४६	८ ४०	८ ३३	८ २६	८ २०	८ १३	८ ६	८ ०	७ ५३	७ ४६	७ ४०	७ ३३	७ २६	७ २०	तु. ६
५ ४०	५ ३३	५ २६	५ २०	५ १३	५ ६	५ ०	४ ५३	४ ४६	४ ४०	४ ३३	४ २६	४ २०	४ १३	४ ६	४ ०	वृ० ७
२ २०	२ १३	२ ६	२ ०	१ ५३	१ ४६	१ ४०	१ ३३	१ २६	१ २०	१ १३	१ ६	१ ०	० ५३	० ४६	० ४०	ध ८
१ ०	१ ६	१ १३	१ २०	१ २६	१ ३३	१ ४०	१ ४६	१ ५३	२ ०	२ ६	२ १३	२ २०	२ २६	२ ३३	२ ४०	म ९
४ २०	४ २६	४ ३३	४ ४०	४ ४६	४ ५३	५ ०	५ ६	५ १३	५ २०	५ २६	५ ३३	५ ४०	५ ४६	५ ५३	६ ०	कुं. १०
७ ४०	७ ४६	७ ५३	८ ०	८ ६	८ १३	८ २०	८ २६	८ ३३	८ ४०	८ ४६	८ ५३	९ ०	९ ६	९ १३	९ २०	मी ११

शुक्र-उच्चबल सारणी

अंश	०	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३
मे ०	१९ ४०	१९ ३३	१९ २६	१९ २०	१९ १३	१९ ६	१९ ०	१८ ५३	१८ ४६	१८ ४०	१८ ३३	१८ २६	१८ २०	१८ १३
वृ. १	१६ २०	१६ १३	१६ ६	१६ ०	१५ ५३	१५ ४६	१५ ४०	१५ ३३	१५ २६	१५ २०	१५ १३	१५ ६	१५ ०	१४ ५३
मि २	१३ ०	१२ ५३	१२ ४६	१२ ४०	१२ ३३	१२ २६	१२ २०	१२ १३	१२ ६	१२ ०	११ ५३	११ ४६	११ ४०	११ ३३
क ३	९ ४०	९ ३३	९ २६	९ २०	९ १३	९ ६	९ ०	८ ५३	८ ४६	८ ४०	८ ३३	८ २६	८ २०	८ १३
सिं ४	६ २०	६ १३	६ ६	६ ०	५ ५३	५ ४६	५ ४०	५ ३३	५ २६	५ २०	५ १३	५ ६	५ ०	४ ५३
क ५	३ ०	२ ५३	२ ४६	२ ४०	२ ३३	२ २६	२ २०	२ ३	२ ६	२ ०	१ ५३	१ ४६	१ ४०	१ ३३

(परमोच्च ११।२७)

१४	१५	१६	१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४	२५	२६	२७	२८	२९	अं.
१८ ६	१८ ०	१७ ५३	१७ ४६	१७ ४०	१७ ३३	१७ २६	१७ २०	१७ १३	१७ ६	१७ ०	१६ ५३	१६ ४६	१६ ४०	१६ ३३	१६ २६	मे. ०
१४ ४६	१४ ४०	१४ ३३	१४ २६	१४ २०	१४ १३	१४ ६	१४ ०	१३ ५३	१३ ४६	१३ ४०	१३ ३३	१३ २६	१३ २०	१३ १३	१३ ६	वृ. १
११ २६	११ २०	११ १३	११ ६	११ ०	१० ५३	१० ४६	१० ४०	१० ३३	१० २६	१० २०	१० १३	१० ६	१० ०	९ ५३	९ ४६	मि. २
८ ६	८ ०	७ ५३	७ ४६	७ ४०	७ ३३	७ २६	७ २०	७ १३	७ ६	७ ०	६ ५३	६ ४६	६ ४०	६ ३३	८ २६	क. ३
४ ४६	४ ४०	४ ३३	४ २६	४ २०	४ १३	४ ६	४ ०	३ ५३	३ ४६	३ ४०	३ ३३	३ २६	३ २०	३ १३	३ ६	सिं. ४
१ २६	१ २०	१ १३	१ ६	१ ०	० ५३	० ४६	० ४०	० ३३	० २६	० २०	० १३	० ६	० ०	० ६	० १३	क. ५

शुक्र-उच्चवल सारणी

अश	०	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३
तु. ६	० २०	० २६	० ३३	० ४०	० ४६	० ५३	१ ०	१ ६	१ १३	१ २०	१ २६	१ ३३	१ ४०	१ ४६
वृ ७	३ ४०	३ ४६	३ ५३	४ ०	४ ६	४ १३	४ २०	४ २६	४ ३३	४ ४०	४ ४६	४ ५३	५ ०	५ ६
ध ८	७ ०	७ ६	७ १३	७ २०	७ २६	७ ३३	७ ४०	७ ४६	७ ५३	८ ०	८ ६	८ १३	८ २०	८ २६
म ९	१० २०	१० २६	१० ३३	१० ४०	१० ४६	१० ५३	११ ०	११ ६	११ १३	११ २०	११ २६	११ ३३	११ ४०	११ ४६
कु १०	१३ ४०	१३ ४६	१३ ५३	१४ ०	१४ ६	१४ १३	१४ २०	१४ २६	१४ ३३	१४ ४०	१४ ४६	१४ ५३	१५ ०	१५ ६
मी. ११	१७ ०	१७ ६	१७ १३	१७ २०	१७ २६	१७ ३३	१७ ४०	१७ ४६	१७ ५३	१८ ०	१८ ६	१८ १३	१८ २०	१८ २६

(परमोच्च ११।२७)

१४	१५	१६	१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४	२५	२६	२७	२८	२९	अं.
१ ५३	२ ०	२ ६	२ १३	२ २०	२ २६	२ ३३	२ ४०	२ ४६	२ ५३	३ ०	३ ६	३ १३	३ २०	३ २६	३ ३३	तु० ६
५ १३	५ २०	५ २६	५ ३३	५ ४०	५ ४६	५ ५३	६ ०	६ ६	६ १३	६ २०	६ २६	६ ३३	६ ४०	६ ४६	६ ५३	वृ० ७
८ ३३	८ ४०	८ ४६	८ ५३	९ ०	९ ६	९ १३	९ २०	९ २६	९ ३३	९ ४०	९ ४६	९ ५३	१० ०	१० ६	१० १३	ध० ८
११ ५३	१२ ०	१२ ६	१२ १३	१२ २०	१२ २६	१२ ३३	१२ ४०	१२ ४६	१२ ५३	१३ ०	१३ ६	१३ १३	१३ २०	१३ २६	१३ ३३	म० ९
१५ १३	१५ २०	१५ २६	१५ ३३	१५ ४०	१५ ४६	१५ ५३	१६ ०	१६ ६	१६ १३	१६ २०	१६ २६	१६ ३३	१६ ४०	१६ ४६	१६ ५३	कुं० १०
१८ ३३	१८ ४०	१८ ४६	१८ ५३	१९ ०	१९ ६	१९ १३	१९ २०	१९ २६	१९ ३३	१९ ४०	१९ ४६	१९ ५३	२० ०	१९ ५३	१९ ४६	मी. ११

शनि-उच्चबल सारणी

अंश	०	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३
मेष ०	२ १३	२ ६	२ ०	१ ५३	१ ४६	१ ४०	१ ३३	१ २६	१ २०	१ १३	१ ६	० ०	० ५३	० ४६
वृष १	१ ६	१ १३	१ २०	१ २६	१ ३३	१ ४०	१ ४६	१ ५३	२ ०	२ ६	२ १३	२ २०	२ २६	२ ३३
मिथुन २	४ २६	४ ३३	४ ४०	४ ४६	४ ५३	५ ०	५ ६	५ १३	५ २०	५ २६	५ ३३	५ ४०	५ ४६	५ ५३
कर्क ३	७ ४६	७ ५३	८ ०	८ ६	८ १३	८ २०	८ २६	८ ३३	८ ४०	८ ४६	८ ५३	९ ०	९ ६	९ १३
सिंह ४	११ ६	११ १३	११ २०	११ २६	११ ३३	११ ४०	११ ४६	११ ५३	१२ ०	१२ ६	१२ १३	१२ २०	१२ २६	१२ ३३
कन्या ५	१४ २६	१४ ३३	१४ ४०	१४ ४६	१४ ५३	१५ ०	१५ ६	१५ १३	१५ २०	१५ २६	१५ ३३	१५ ४०	१५ ४६	१५ ५३

(परमोच्च ६।२२।०)

१४	१५	१६	१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४	२५	२६	२७	२८	२९	अं०
० ४०	० ३३	० २६	० २०	० १३	० ६	० ०	० ६	० १३	० २०	० २६	० ३३	० ४०	० ४६	० ५३	१ ०	मे० ०
२ ४०	२ ४६	२ ५३	३ ०	३ ६	३ १३	३ २०	३ २६	३ ३३	३ ४०	३ ४६	३ ५३	४ ०	४ ६	४ १३	४ २०	वृ० १
६ ०	६ ६	६ १३	६ २०	६ २६	६ ३३	६ ४०	६ ४६	६ ५३	७ ०	७ ६	७ १३	७ २०	७ २६	७ ३३	७ ४०	मि० २
९ २०	९ २६	९ ३३	९ ४०	९ ४६	९ ५३	१० ०	१० ६	१० १३	१० २०	१० २६	१० ३३	१० ४०	१० ४६	१० ५३	११ ०	क० ३
१२ ४०	१२ ४६	१२ ५३	१३ ०	१३ ६	१३ १३	१३ २०	१३ २६	१३ ३३	१३ ४०	१३ ४६	१३ ५३	१४ ०	१४ ६	१४ १३	१४ २०	सिं० ४
१६ ०	१६ ६	१६ १३	१६ २०	१६ २६	१६ ३३	१६ ४०	१६ ४६	१६ ५३	१७ ०	१७ ६	१७ १३	१७ २०	१७ २६	१७ ३३	१७ ४०	कं० ५

शनि-उच्चबल सारणी

अंश	०	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३
तु० ६	१७ ४६	१७ ५३	१८ ०	१८ ६	१८ १३	१८ २०	१८ २६	१८ ३३	१८ ४०	१८ ४६	१८ ५३	१९ ०	१९ ६	१९ १३
वृ० ७	१८ ५३	१८ ४६	१८ ४०	१८ ३३	१८ २६	१८ २०	१८ १३	१८ ६	१८ ०	१७ ५३	१७ ४६	१७ ४०	१७ ३३	१७ २६
ध० ८	१५ ३३	१५ २६	१५ २०	१५ १३	१५ ६	१५ ०	१४ ५३	१४ ४६	१४ ४०	१४ ३३	१४ २६	१४ २०	१४ १३	१४ ६
म० ९	१२ १३	१२ ६	१२ ०	११ ५३	११ ४६	११ ४०	११ ३३	११ २६	११ २०	११ १३	११ ६	११ ०	१० ५३	१० ४६
कुं १०	८ ५३	८ ४६	८ ४०	८ ३३	८ २६	८ २०	८ १३	८ ६	८ ०	७ ५३	७ ४६	७ ४०	७ ३३	७ २६
मी. ११	५ ३३	५ २६	५ २०	५ १३	५ ६	५ ०	४ ५३	४ ४६	४ ४०	४ ३३	४ २६	४ २०	४ १३	४ ६

(परमोच्च क्षार२२।०)

१४	१५	१६	१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४	२५	२६	२७	२८	२९	अं०
१९ २०	१९ २६	१९ ३३	१९ ४०	१९ ४६	१९ ५३	२० ०	१९ ५३	१९ ४६	१९ ४०	१९ ३३	१९ २६	१९ २०	१९ १३	१९ ६	१९ ०	तु० ६
१७ २०	१७ १३	१७ ६	१७ ०	१६ ५३	१६ ४६	१६ ४०	१६ ३३	१६ २६	१६ २०	१६ १३	१६ ६	१६ ०	१५ ५३	१५ ४६	१५ ४०	वृ० ७
१४ ०	१३ ५३	१३ ४६	१३ ४०	१३ ३३	१३ २६	१३ २०	१३ १३	१३ ६	१३ ०	१२ ५३	१२ ४६	१२ ४०	१२ ३३	१२ २६	१२ २०	ध० ८
१० ४०	१० ३३	१० २६	१० २०	१० १३	१० ६	१० ०	९ ५३	९ ४६	९ ४०	९ ३३	९ २६	९ २०	९ १३	९ ६	९ ०	म० ९
७ २०	७ १३	७ ६	७ ०	६ ५३	६ ४६	६ ४०	६ ३३	६ २६	६ २०	६ १३	६ ६	६ ०	५ ५३	५ ४६	५ ४०	कुं० १०
४ ०	३ ५३	३ ४६	३ ४०	३ ३३	३ २६	३ २०	३ १३	३ ६	३ ०	२ ५३	२ ४६	२ ४०	२ ३३	२ २६	२ २०	मी० ११

हद्दावल—सूर्य मगल के हद्दा में हैं और सूर्य का मंगल शत्रु हैं, अत. शत्रु के हद्दा में होने के कारण सूर्य का हद्दावल ३।४५ हुआ। चन्द्रमा गुरु के हद्दा में है और गुरु चन्द्रमा का शत्रु है, अत. शत्रु के हद्दा में होने के कारण चन्द्रमा का हद्दावल ३।४५ हुआ। मंगल वुध के हद्दा में है और वुध मंगल का शत्रु है अत भौम का हद्दावल ३।४५ हुआ। इसी प्रकार वुध का हद्दावल ३।४५, गुरु का ३।४५, शुक्र का ३।४५ और शनि का ३।४५ हुआ।

द्रेष्काण—द्वितीय अध्याय में वतायी गयी विधि से द्रेष्काण ला कर तव विचार करना चाहिए। यहाँ सूर्य भौम के द्रेष्काण में है अत. उस का २।३० वल हुआ। चन्द्रमा शनि के द्रेष्काण में है अत २।३० वल हुआ। मगल गुरु के द्रेष्काण में है अत समगृही द्रेष्काण होने के कारण ५।० वल हुआ। वुध मगल के द्रेष्काण में है अत उस का २।३० वल हुआ। इसी प्रकार गुरु का द्रेष्काणवल ५।०, शुक्र का १०।० और शनि का ७।३० हैं।

नवमाश वल—द्वितीय अध्याय में वतायी गयी विधि से सूर्य अपने ही नवमाश में है अत उस का नवमाशवल ५।० हुआ। चन्द्रमा शनि के नवमाश में है और शनि चन्द्रमा का शत्रु है, अत. शत्रुगृही नवमाश होने से इस का नवमाशवल १।१५ हुआ। मगल गुरु के नवमाश में है और गुरु मंगल का सम है अत इस का वल २।३० हुआ। इसी प्रकार वुध का नवमाश वल २।३०, गुरु का २।३०, शुक्र का १।१५ और शनि का १।१५ हुआ।

वलीग्रह का निर्णय

जिस ग्रह का विंशोपकवल ११ से २० अंश तक हो वह पूर्णवली, जिसका ६ से १० अंश तक हो वह मध्यवली, जिसका १ से ५ अंश तक हो वह अल्पवली और जिसका विंशोपक वल शून्य हो वह निर्वल कहलाता है। कहीं-कहीं ५ अंश से कम विंशोपक वाले ग्रह को ही निर्वल माना है। स्वयं का अनुभव भी यही है कि ५ अंश से कम विंशोपक वाला ग्रह निर्वल होता है।

पंचाधिकारी

जन्मलग्नेश, वर्षलग्नेश, मुन्थाधिप, त्रिराशिपति और दिन में वर्षप्रवेश हो तो सूर्यराशिपति तथा रात्रि में वर्षप्रवेश हो तो चन्द्रराशिपति ये पाँच ग्रह वर्षपत्रिका में विशेषाधिकारी माने जाते है।

त्रिराशिपति विचार

नीचे चक्र में से दिन में वर्षप्रवेश हो तो वर्षलग्न की राशि के अनुसार दिवा त्रिराशिपति और रात्रि में वर्षप्रवेश हो तो रात्रि का त्रिराशिपति ग्रहण करना चाहिए।

त्रिराशिपति चक्र

राशि	मे०	वृ०	मि.	क०	सि.	क०	तु०	वृ०	ध०	म०	कुं.	मी०
दिवा त्रिराशिपति	सू०	शु०	श०	शु०	गु०	चं०	बु०	मं०	श०	मं०	गु०	चं०
रात्रि त्रिराशिपति	गु०	चं०	बु०	मं०	सू०	शु०	श०	शु०	श०	मं०	गु०	चं०

उदाहरण कुण्डली के पंचाधिकारी निम्न प्रकार हैं

जन्मलग्नेश	वर्षलग्नेश	मुन्थेश	त्रिराशीश	चन्द्रराशीश
भौम	शुक्र	भौम	भौम	शुक्र
१३	५	१३	७	५
२२	५७	२२	१६	५७
०	०	०	५	०
पूर्णवली	अल्पबली	पूर्णवली	मध्यबली	अल्पबली

उदाहरण-कुण्डली का पचवर्गी बलचक्र निम्न प्रकार हुआ—

सू०	च०	भौम	बुध	गुरु	शुक्र	शनि	ग्रह
७ ३०	७ ३०	३० ०	७ ३०	७ ३०	७ ३०	७ ३०	गृहबल
२ ५०	१ ५४	१२ १३	१४ ५७	८ २	१ १८	९ ७	उच्चबल
३ ४५	३ ४५	३ ४५	३ ४५	३ ४५	३ ४५	३ ४५	हद्दाबल
२ ३०	२ ३०	५ ०	२ ३०	५ ०	१० ०	७ ३०	द्रेष्काणबल
५ ०	१ १५	२ ३०	२ ३०	२ ३०	१ १५	१ १५	नवमांशबल
२१ ३५	१६ ५४	५३ २८	३१ १२	२६ ४७	२३ ४८	२९ ७	योगबल
५ २३ ४५	४ १३ ३०	१३ २२ ०	७ ४८ ०	६ ४१ ४५	५ ५७ ०	७ १६ ४५	विश्वाबल

ताजिक शास्त्रानुसार ग्रहों की दृष्टि

ताजिक में ग्रहो की दृष्टि प्रत्यक्षस्नेहा, गुप्तस्नेहा, गुप्तवैरा और प्रत्यक्ष-वैरा, इस प्रकार चार तरह की होती है। वर्षकुण्डली में ग्रह जहाँ रहता है उस से नवें और पाँचवें स्थान में स्थित ग्रह को प्रत्यक्षस्नेहा ४५ कला वाली दृष्टि से देखता है। यह दृष्टि सम्पूर्ण कार्यों में सिद्धि देने वाली, मेलापक संज्ञा वाली बतायी गयी है।

कोई ग्रह अपने स्थान से तीसरे और ग्यारहवें स्थान में स्थित ग्रह को गुप्तस्नेहा दृष्टि से देखता है। तीसरे भाव की दृष्टि ४० कला वाली और ११वें भाव की दृष्टि १० कला वाली होती है। यह दृष्टि कार्यसिद्धि करने वाली और स्नेहवर्द्धिनी बतायी गयी है।

चौथे और दसवें भाव में गुप्तवैरा एवं १५ कला वाली दृष्टि होती है। पहले और सातवें भाव में प्रत्यक्षवैरा एवं ६० कलावाली दृष्टि होती है। ये दोनो ही दृष्टियाँ क्षुत संज्ञक कार्य नाश करने वाली वतायी गयी हैं।

विशेष—दृश्य, द्रष्टा का अन्तर द्वादशांश (वारह भाग) से अधिक न हो तो दृष्टियों का फल ठीक घटता है, अन्यथा नहीं घटता।

वलवती दृष्टि

वाम भागस्थ—छठे से वारहवें भाग तक रहने वाले ग्रह की दक्षिण भागस्थ—लग्न से छठे भाग तक स्थित ग्रह के ऊपर वलवती दृष्टि होती है। दक्षिण भागस्थ ग्रह की वाम भागस्थ ग्रह के ऊपर निर्वल दृष्टि होती है।

विशेष दृष्टि

द्रष्टा ग्रह के दीप्तांशों के मध्य में ही दृश्य ग्रह आगे व पीछे स्थित हो तो विशेष दृष्टि का फल होता है और दीप्तांशों से अधिक दृश्य ग्रह आगे-पीछे स्थित हो तो मध्यम दृष्टि का फल होता है।

दीप्तांश

सूर्य के १५ अंश, चन्द्र के १२ अंश, मंगल के ८ अंश, वुध के ७ अंश, गुरु के ९ अंश, शुक्र के ७ अंश और शनि के ९ अंश दीप्तांश होते हैं।

उदाहरण—वर्षकुण्डली में सूर्य, मंगल और वुध की शनि के ऊपर प्रत्यक्षस्नेही दृष्टि है। सूर्य वर्षकालीन स्पष्टग्रह में वृश्चिक राशि के पाँच अंश का आया है और शनि कर्क राशि के वारह अंश का आया है। अंशों के मान में सूर्य से शनि ७ अंश आगे है। सूर्य के दीप्तांश १५ हैं, अत शनि सूर्य के दीप्तांश से भीतर हुआ अतएव सूर्य की दृष्टि का पूर्ण फल समझना चाहिए।

मंगल का स्पष्टमान ७।१७ और शनि का ३।१२ है। दोनो के अंशों में ५ का अन्तर है। मंगल के दीप्तांश ८ है, अतएव दृश्यग्रह दीप्तांश के

भीतर होने से पूर्ण फलवाली दृष्टि मानी जायेगी। इसी प्रकार अन्य ग्रहो की दृष्टि भी समझ लेना चाहिए।

वर्षेश का निर्णय

वर्ष के पंच अधिकारियों में जो ग्रह बलवान् होकर लग्न को देखता हो वही वर्षेश होता है। यदि पंचाधिकारियों में कई ग्रहो का बल समान हो तो जो लग्न को देखता है, वही ग्रह वर्षेश होता है।

पंचाधिकारियो की लग्न पर समान दृष्टि हो और बल भी बराबर हो अथवा पाँचो निर्बली हो तो मुन्थेश ही वर्षेश होता है। यदि पाँचों की ही दृष्टि लग्न पर न हो तो उन में जो अधिक बली होता है वही वर्षेश होता है।

कई आचार्यों का मत है कि पचाधिकारियो की दृष्टि एवं बल समान हो तो समयाधिपति—दिन में वर्षप्रवेश हो तो सूर्यराशीश और रात में वर्षप्रवेश हो तो चन्द्रराशीश वर्षेश होता है।

चन्द्रवर्षेश का निर्णय

ताजिक शास्त्र के आचार्यों ने चन्द्रमा को वर्षेश होना नही माना है। उन का अभिमत है कि कोमल प्रकृति जलीय चन्द्र अनुशासन का कार्य नहीं कर सकता है। दूसरी बात यह भी है कि चन्द्रमा मन का स्वामी है, और शासन मन से नही होता है, उस के लिए शारीरिक बल की भी आवश्यकता होती है। इसी लिए इस शास्त्र के वेत्ताओं ने चन्द्रमा को वर्षेश स्वीकार नही किया है।

यदि पूर्वोक्त नियमों के अनुसार चन्द्रमा वर्षेश आता हो तो वह जिस ग्रह के साथ इत्यशाल योग करता है, वही ग्रह वर्षेश होता है, यदि चन्द्र किसी ग्रह के साथ इत्यशाल नहीं करता हो तो वर्षकुण्डली का चन्द्र राशीश ही वर्षेश होता है। उदाहरण—पूर्वोक्त उदाहरण में वर्षकुण्डली के पचाधिकारियों में सब से बली मंगल आया है, मंगल की लग्न पर दृष्टि भी है अतएव मंगल ही वर्षेश होगा।

हर्षबल साधन

ग्रहो के हर्षस्थान चार प्रकार के होते है।

१—वर्ष लग्न से सूर्य ९वें, चन्द्र ३रे, मंगल ६ठे, बुध लग्न में, गुरु ११वें, शुक्र ५वे और शनि १२वें स्थान में हो तो ये ग्रह हर्षित होते हैं।

२—स्वगृह और स्वोच्च में हर्षित होते हैं।

३—वर्ष लग्न से १।२।३।७।८।९वें भावो में[1] स्त्रीग्रह और ४।५।६।१०।११।१२वें भावो में पुरुषग्रह हर्षित होते है।

४—पुरुषग्रह—रवि, मंगल, गुरु दिन में और स्त्रीग्रह तथा नपुसक ग्रह—शुक्र, चन्द्र, बुध, शनि रात में वर्षप्रवेश होने पर हर्षित होते हैं।

जहाँ हर्षबल प्राप्त हो वहाँ ५ विश्वात्मक बल होता है।

उदाहरण—प्रस्तुत वर्ष कुण्डली में प्रथम प्रकार का हर्षबल किसी ग्रह का नही है। द्वितीय प्रकार का हर्षबल स्वगृही होने से शुक्र और मंगल का है। तृतीय प्रकार का हर्षबल शुक्र चन्द्र बुध का है, और चतुर्थ प्रकार का रात में वर्षप्रवेश होने के कारण चन्द्र, बुध, शुक्र और शनि इन चारो ग्रहो का है।

हर्षबल चक्र

सू०	च०	भौ०	बु०	गु०	शु०	श०	ग्रह
०	०	०	०	०	०	०	प्रथम
०	०	५	०	०	५	०	द्वितीय
०	५	०	५	०	५	०	तृतीय
०	५	०	५	०	५	५	चतुर्थ
०	१०	५	१०	०	१५	५	ऐक्य

१. यहाँ स्त्रीग्रहों में शुक्र, बुध, शनि और चन्द्र इन चारों को ग्रहण किया है।

जिस ग्रह का हर्षबल ५ विश्वा हो वह अल्पबली, १० विश्वा हो वह मध्यबली, १५ विश्वा हो वह पूर्णबली और शून्य विश्वा हो वह निर्बल माना जाता है। हर्षित ग्रह अपनी दशा में अच्छा फल देता है।

षोडश योगों का फल-सहित लक्षण

ताजिक शास्त्र में लग्न के स्वामी को लग्नेश और शेष भावो के स्वामियो को कार्येश कहा गया है। इन दोनों के योग से षोडश योग बनते हैं।

१. इक्कबाल—केन्द्र और पणफर में सभी ग्रह हो तो इक्कबाल योग होता है, इस योग के होने से जातक की उन्नति होती है, उसे यश, धन और सन्तान की प्राप्ति होती है।

२. इन्दुवार—आपोक्लिम में सभी ग्रह हो तो इन्दुवार योग होता हैं। इस के होने से सामान्य सुख की प्राप्ति होती है।

३. इत्थशाल—इस योग के इत्थशाल, पूर्ण इत्थशाल और भविष्यत् इत्थशाल ये तीन भेद हैं।

(क) लग्नेश तथा कार्येश दोनों में जो ग्रह मन्दगति हो वह शीघ्रगति ग्रह से अधिक अश पर हो तथा दोनो की परस्पर दृष्टि हो तो इत्थशाल योग होता है और दोनो में दीप्ताश तुल्य अन्तर हो तो मुन्यशिल योग होता हैं।

(ख) लग्नेश और कार्येश में मन्दगति ग्रह से शीघ्रगति ग्रह १ विकला से ३० विकला तक न्यून हो तो पूर्ण इत्थशाल योग होता है।

(ग) मन्दगति[1] ग्रह जिस राशि में हो उस से पिछली राशि में शीघ्रगति ग्रह उस मन्दगति ग्रह से दीप्ताश तुल्य अन्तर पर हो।

जैसे चन्द्रमा ३।२८ और बुध ४।१० है। यहाँ पर चन्द्रमा शीघ्रगति ग्रह है, जो कि मन्दगति ग्रह बुध से एक राशि पीछे है। चन्द्रमा से मन्दगति ग्रह बुध चन्द्रमा के दीप्ताश तुल्य आगे है अत यह भविष्यत् इत्थशाल योग हुआ।

---

१ चन्द्र, बुध, शुक्र, सूर्य, भौम, गुरु और शनि उत्तरोत्तर मन्दगति हैं।

लग्नेश से ज़िन-जिन भावों के स्वामियो का इत्थशाल योग हो उन-उन भावसम्बन्धी लाभ होता है। लग्नेश, कार्येश परस्पर मित्र हो तो सुखपूर्वक अन्यथा कठिनाई से लाभ होता है। इस योग में लग्नेश तथा कार्येश की दृष्टि लग्न तथा कार्यभाव पर होना नितान्त आवश्यक है।

४. ईशराफ—मन्दगति ग्रह से शीघ्रगति ग्रह अधिक से अधिक एक अंश आगे हो तो ईशराफ योग होता है। यह योग शुभग्रह से हो तो शान्ति, सुख अन्यथा क्लेश होता है।

५. नक्त—लग्नेश तथा कार्येश में जो शीघ्रगति ग्रह हो वह थोडे अंश पर और मन्दगति ग्रह अधिक अंश पर हो या दोनो की परस्पर दृष्टि न हो तथा अन्य कोई शीघ्रगति दोनो के मध्य में किसी अंश पर स्थित होकर अन्योन्यदृष्टि हो तो नक्त योग होता है।

६. यमय—लग्नेश कार्येश में जो शीघ्रगति ग्रह हो वह थोडे अंश पर और मन्दगति ग्रह अधिक अंश पर हो तथा दोनो की आपस में दृष्टि न हो और मध्यवर्ती कोई मन्दगति ग्रह दीप्तांश तुल्यांश तुल्य अन्तर से देखता हो तो यमय योग होता है।

नक्त और यमय योग जिस वर्षकुण्डली में पडते है उस वर्षकुण्डली वाला व्यक्ति अन्य लोगों की सहायता से अपने कार्य को सफल करता है।

७. मणऊ—लग्नेश और कार्येश में जो शीघ्रगति ग्रह हो उस से हीनाधिक अंशपर शनि या मंगल स्थित हो तथा उस शीघ्रगति ग्रह को शत्रु दृष्टि से देखते हो तो मणऊ योग होता है। इस योग के होने से व्यक्ति को वर्ष-भर में हानि, अपमान आदि सहन करने पडते हैं।

८. कंबूल—लग्नेश और कार्येश का इत्थशाल या मुत्थशिल हो तथा इन में से एक से या दोनो से चन्द्रमा इत्थशाल अथवा मुत्थशिल योग करे तो कंबूल योग होता है। इस कंबूल योग के उत्तम, मध्यम, अधम आदि कई भेद है।

उत्तमोत्तम कंबूल—चन्द्रमा उच्च का या स्वगृह का हो और लग्नेश

और कार्येश भी इसी प्रकार स्थिति में हो अथवा दोनो में से एक स्वगृही, उच्च का हो, जिस से कि चन्द्रमा इत्थशाल करता हो तो उत्तमोत्तम कबूल योग होता है।

मध्यमोत्तम कंबूल योग—चन्द्रमा स्वहद्दा, स्वद्रेष्काण अथवा स्व-नवाश में हो और लग्नेश, कार्येश उच्च के या स्वगृही हो तो यह मध्यमोत्तम कबूल योग कार्यसाधक होता है। इस योग के होने से वर्ष पर्यन्त व्यक्ति के समस्त कार्य बिना विघ्न-बाधाओ के अच्छी तरह होते हैं।

उत्तम कबूल—चन्द्र अधिकार-रहित हो और लग्नेश, कार्येश स्वगृही या उच्च के हो तो उत्तम कंबूल योग होता है। इस योग के होने से दूसरे की प्रेरणा या दूसरे की सहायता से कार्य सिद्ध होते हैं।

अधमोत्तम कंबूल—चन्द्रमा नीच या शत्रुराशि का और लग्नेश, कार्येश उच्च के या स्वगृही हो तो अधमोत्तम कंबूल योग होता है। इस योग के होने से असन्तोष से कार्यसिद्धि होती है।

अधमाधम कंबूल—चन्द्रमा लग्नेश, और कार्येश नीच या शत्रु के क्षेत्र में हो और इत्थशाल या मुत्थशिल योग करते हो तो अधमाधम कबूल योग होता है। इस के होने से महाकष्ट और विपत्ति होती है।

लग्नेश और कार्येश के अधिकार-परिवर्त्तन से कंबूल योग के और भी कई भेद होते हैं। इन सब योगों का फल प्रायः अनिष्टकारक है।

९. गैरिकंबूल—लग्नेश और कार्येश का इत्थशाल योग हो और शून्य मार्ग गत चन्द्रमा राशि के अन्तिम २९वें अश में स्थित हो—आगे की राशि में जाने वाला हो और उस से अग्रिम राशि में स्वगृही या उच्च का लग्नेश, अथवा कार्येश स्थित हो, जिस से चन्द्रमा मुत्थशील योग करे तो गैरिकबूल योग होता है। इस योग के होने से अन्य की सहायता से कार्य सफल होता है।

१० खल्लासर—लग्नेश कार्येश का, इत्थशाल योग हो और चन्द्रमा

शून्य मार्ग में स्थित हो तो खल्लासर योग होता है। इस योग के रहने से कंबूल योग नष्ट हो जाता है।

११. रद्द—जो ग्रह अस्त, नीच, शत्रुगृही, वक्री, हीनकान्ति, बलहीन हो कर इत्थशाल योग करता हो तथा यह कार्येश रूप में केन्द्र में स्थित हो अथवा वक्री हो कर आपोक्लिम में से केन्द्र में जाता हो तो रद्द योग होता है। यह कार्यनाशक है।

१२. दुष्फालिकुथ—मन्दगति ग्रह स्वोच्च, स्वगृह आदि के अधिकार[1] में हो और अधिकार-रहित शीघ्रगति ग्रह से इत्थशाल योग करे तो दुष्फालिकुथ योग होता है।

१३. दुत्थोत्थदिवीर—लग्नेश, कार्येश दोनो रद्दयोग में हो और दोनो में से एक किसी अन्य दूसरे स्वगृह आदि अधिकारवान् ग्रह से मुत्थशिल योग करे तो दुत्थोत्थदिवीर योग होता है।

१४. तम्बीर—लग्नेश से कार्येश का इत्थशाल योग न हो और इन में से कोई एक बलवान् मार्गी ग्रह राशि के अन्तिम अंश में हो और इस के दीप्तांशवर्ती अग्रिम राशि में कोई स्वगृही या उच्च राशि में स्थित हो तो तम्बीर नाम का योग होता है।

१५. कुत्थयोग—लग्न में स्थित ग्रह बलवान् होता है, इन से २।३।४। ५।७।९।१०।११वे स्थान में स्थित ग्रह उत्तरोत्तर हीनबल होते हैं। इसी प्रकार, स्वक्षेत्र, स्वोच्च, स्वहद्दा, स्वद्रेष्काण, स्वनवमांश में स्थित, हर्षित आदि अधिकारसम्पन्न ग्रह उत्तरोत्तर बली होते हैं। इन ग्रहों के सम्बन्ध को कुत्थयोग[1] कहते हैं।

१६. दुरफ्फ—६।८।१२वें भाव में स्थित ग्रह; वक्री होने वाला, वक्री, शत्रुगृही नीच, पापग्रह से युत, कान्तिहीन, अस्त, बलहीन ग्रह; इसी

---

१. जो ग्रह स्वक्षेत्र, स्वोच्च आदि शुभ या अशुभ कोई भी अधिकार में न हो और न किसी ग्रह की दृष्टि हो तो वह शून्य मार्गगत कहलाता है।

प्रकार के अन्य निर्वल ग्रह से मुत्थशिल योग करता हो तो दुरफ्फ योग होता है। इस योग का फल अनिष्टकारक होता है।

सहम साधन

ताजिक शास्त्र में पुण्यादि[1] ५० सहमो का साधन किया गया है। यहाँ कुछ आवश्यक सहमो का गणित लिखा जाता है।

सहम संस्कार

जिस में घटाया जाये उसे शुद्धाश्रय और जो घटाया जाये उसे शोध्य कहते हैं। यदि इन दोनो के मध्य में लग्न न हो तो एक राशि जोड देना चाहिए और मध्य में लग्न हो तो एक राशि नही जोडना चाहिए।

उदाहरण—चन्द्रमा कन्या राशि का, सूर्य मकर राशि का और लग्न मेष राशि का है। यहाँ कन्या और मकर के बीच में लग्न की राशि नही है, अतः एक जोडा जायेगा।

पुण्यसहम का साधन

दिन में वर्षप्रवेश हो तो चन्द्रमा में से सूर्य को घटाये और रात में वर्षप्रवेश हो तो सूर्य में से चन्द्रमा को घटा कर शेष में लग्न जोड कर पूर्वोक्त सहम सस्कार करने पर पुण्य सहम होता है।

उदाहरण—प्रस्तुत वर्षकुण्डली का वर्षप्रवेश रात को हुआ हैं अतएव

७।५।४१।४१ सूर्य में	०।१८।२८।५० शेष में
६।१६।१२।५१ चन्द्रमा को घटाया	६।२३।५१।३८ लग्न को जोडा
०।१८।२८।५० शेष	७।१२।२०।२८
	पुण्य सहम हुआ

यहाँ लग्न शोध्य और शुद्धाश्रय के बीच में है क्योकि चन्द्रमा तुला

---

१ देखें, ताजिक नीलकण्ठी, पृ० १२५।

का और सूर्य वृश्चिक का है तथा लग्न तुला का है जो दोनों के मध्य में पड़ता है, अतएव एक राशि जोडने की आवश्यकता नही है।

गुरु और विद्या सहम

दिन में वर्षप्रवेश हो तो सूर्य में से चन्द्रमा को घटाये और रात में वर्षप्रवेश हो तो चन्द्रमा में से सूर्य को घटा कर लग्न जोड़ देने से विद्या और गुरु सहम होते हैं। सहम संस्कार यहाँ पर भी अवश्य करना चाहिए।

उदाहरण—

६।१६।१२।५१ } चन्द्रमा में सूर्य को घटाया जा रहा है, क्योंकि
७। ५।४१।४१ } वर्षप्रवेश रात में हुआ है।

११।१०।३१।१० शेष में

६।२३।५१।३८ लग्न को जोड़ा

६।४।२२।४८ गुरु और विद्या सहम

यहाँ पर सैक (एक-सहित) नही किया गया, क्योंकि लग्न चन्द्रमा और सूर्य के बीच में है।

यश सहम

रात में वर्षप्रवेश हो तो पुण्य सहम में से गुरु सहम को घटाये और दिन में वर्षप्रवेश हो तो गुरु सहम में से पुण्य सहम को घटा कर शेष में लग्न जोड़ना चाहिए तथा पूर्वोक्त सहम संस्कार भी करना चाहिए।

मित्र सहम

दिन में वर्षप्रवेश हो तो गुरु सहम में से पुण्य सहम को घटावे, रात में वर्षप्रवेश हो तो पुण्य सहम में से गुरु सहम को घटा कर शेष में शुक्र को जोड़ संस्कार करने से मित्र सहम होता है।

आशा सहम

दिन में वर्षप्रवेश हो तो शनि में से शुक्र को घटाये और रात में वर्ष-

प्रवेश हो तो शुक्र में से शनि को घटा कर शेष में लग्न को जोड सैकता (एक-सहित) करने से आशा सहम होता है।

राज सहम (पिता सहम)

दिन में वर्षप्रवेश हो तो शनि में से सूर्य को घटाये और रात में वर्ष-प्रवेश हो तो सूर्य में से शनि को घटा कर लग्न को जोड़ पूर्वोक्त सैकता करने से राज सहम होता है। इस का दूसरा नाम पिता सहम भी है।

माता सहम

दिन में वर्षप्रवेश हो तो चन्द्र में से शुक्र को घटाये और रात में वर्ष-प्रवेश हो तो शुक्र में से चन्द्र को घटा कर शेष में लग्न को जोड सैकता करने से माता सहम होता है।

कर्म सहम

दिन में वर्षप्रवेश हो तो भौम में से बुध को घटाये और रात में वर्ष-प्रवेश हो तो बुध में से मगल को घटा कर शेष में लग्न को जोड पूर्वंवत् सैकता करने से कर्म सहम होता है।

प्रसूति सहम

रात में वर्षप्रवेश हो तो बुध में से बृहस्पति को घटाये और दिन में वर्षप्रवेश हो तो गुरु में से बुध को घटा कर शेप में लग्न को जोड पूर्ववत् सैकता करने से प्रसूति सहम होता है।

शत्रु सहम

दिन में वर्षप्रवेश हो तो भौम में से शनि को घटाये और रात में वर्षप्रवेश हो तो शनि में से भौम को घटा कर शेष में लग्न को जोड पूर्व-वत् सैकता करने से शत्रु सहम होता है।

बन्धन सहम

दिन में वर्षप्रवेश हो तो पुण्य सहम में से शनि को घटाये और रात में वर्षप्रवेश हो तो शनि में से पुण्य सहम को घटा कर अवशेष में लग्न को जोड कर पूर्ववत् सैक करने से बन्धन सहम होता है।

भ्रातृ सहम[1]

गुरु में से शनि को घटा कर शेष लग्न को जोड कर सैकता करने से भ्रातृसहम होता है।

पुत्र सहम

गुरु में से चन्द्र को घटा कर अवशेष में लग्न को जोड़ कर पूर्ववत् सैकता करने से पुत्र सहम होता है।

विवाह सहम

शुक्र से शनि को घटा कर शेष में लग्न को जोड़ कर पूर्ववत् सैकता कर देने से विवाह सहम होता है।

व्यापार सहम

मंगल में से बुध को घटा कर शेष में लग्न को जोड़ कर पूर्ववत् सैकता करने से व्यापार सहम होता है।

रोग सहम

लग्न में से चन्द्र को घटा कर शेष में लग्न को जोड़ कर पूर्वोक्त सैकता करने से रोग सहम होता है। रोग सहम में सर्वदा एक जोड़ा जाता है।

---

१ यहाँ से दिन-रात के वर्षप्रवेश के सहम साधन में भेद नहीं है।

मृत्यु सहम

अष्टम भाव में से चन्द्र को घटाकर शेष में शनि को जोड कर सैंकता करने से मृत्यु सहम होता है।

यात्रा सहम

नवम भाव में-से नवमेश को घटा कर शेष में लग्न को जोड कर सैंकता करने से यात्रा सहम होता है।

धन सहम

धन भाव में से लग्नेश को घटाकर अवशेष में लग्न को जोड कर सैंकता कर देने पर अर्थ सहम होता है।

विशेष—इस प्रकार सहमों का साधन कर वर्षकुण्डली में जिस स्थान में जिस सहम की राशि हो उस राशि में उस सहम को रख देना चाहिए। इस प्रकार सहम कुण्डली वन जायेगी।

विंशोत्तरी मुद्दादशा

अश्विनी से जन्म नक्षत्र तक गिनने से जो संख्या हो उस में गतवर्षों को जोड देना चाहिए। योगफल में से २ घटा कर अवशेष में ९ का भाग देने से १ आदि शेष में क्रमश सूर्य, चन्द्र, भौम, राहु, गुरु, शनि, बुध, केतु और शुक्र की दशा होती हैं।

विंशोत्तरी दशा के वर्षों को ३ से गुणा करने से विंशोत्तरी मुद्दादशा के दिन होते हैं।

उदाहरण—सूर्य ६ × ३ = १८ दिन, चन्द्रमा १० × ३ = ३० दिन अर्थात् १ मास, भौम ७ × ३ = २१ दिन, राहु १८ × ३ = ५४ दिन अर्थात् १ मास २४ दिन, गुरु १६ × ३ = ४८ दिन अर्थात् १ मास १८ दिन, शनि १९ × ३ = ५७ दिन अर्थात् १ मास २७ दिन, बुध १७ × ३ = ५१

दिन अर्थात् १ मास २१ दिन, केतु ७ × ३ = २१ दिन और शुक्र २० × ३ = ६० दिन अर्थात् २ मास की मुद्दादशा है।

विंशोत्तरी मुद्दादशा चक्र

आ०	चं०	भौ०	रा०	गु०	श०	बु०	के०	शु०	ग्रह
०	१	०	१	१	१	१	०	२	मास
१८	०	२१	२४	१८	२७	२१	२१	०	दिन

वर्षपत्र में विंशोत्तरी मुद्दादशा लिखने का उदाहरण—

जन्म नक्षत्र विशाखा है, अश्विनी से गणना करने पर १६ संख्या हुई, १६ + ३४ = ५० − २ = ४८ ÷ ९ = ५ ल० ३ शे०, भौम दशा में वर्ष-प्रवेश हुआ अतएव प्रारम्भ में भौमदशा रख कर चक्र बना दिया जायेगा।

विंशोत्तरी मुद्दादशा चक्र

भौ०	रा०	जी०	श०	बु०	के०	शु०	आ०	चं०	ग्र०
०	१	१	१	१	०	२	०	१	मास
२१	२४	१८	२७	२१	२१	०	१८	०	दिन
२००३	२००३	२००३	२००३	२००४	२००४	२००४	२००४	२००४	२००४
७	७	९	११	१	२	३	५	६	७
५	२६	२०	८	५	२६	१७	१७	५	५

मुद्दा अन्तर्दशा

मुद्दा अन्तर्दशा निकालने का यह नियम है कि जिस ग्रह की दशा में अन्तर निकालना हो उस ग्रह की दशा को निम्नलिखित ध्रुवांकों से गुणा कर देना चाहिए। गुणा करने पर जो गुणनफल आवे उस में साठ से भाग देने पर अन्तर्दशा के दिनादि होते हैं।

ध्रुवांक—

सूर्य = ४, चन्द्र = ८, भौम = ५, बुध = ७, गुरु = १०, शुक्र = ६, शनि = ९, राहु = ५, केतु = ६

उदाहरण—

सूर्य की अन्तर्दशा निकालनी है, अत. सूर्य मुद्दा की दिन संख्या १८ को उस के ध्रुवाक ४ से गुणा किया। गुणनफल में साठ का भाग दिया तो—

१८ × ४ = ७२; ७२ ÷ ६० = १ दिन, शेष १२ इस में साठ से गुणा किया और साठ का भाग दिया—१२ × ६० = ७२० घटियाँ, ७२० ÷ ६० = १२ घटी। सूर्य की मुद्दादशा में सूर्यान्तर्दशा १।१२ दिन, घटी हुई। सुविधा के लिए यहाँ समस्त ग्रहों की अन्तर्दशा लिखी जाती है।

मुद्दादशान्तर्गत सूर्यान्तर्दशाचक्र

सू०	च०	भौ०	रा०	गु०	श०	बु०	के०	शु०	ग्रहदशा
१	२	१	१	३	२	२	१	१	दिन
१२	२४	३०	३०	०	४२	६	४८	४८	घटी

मुद्दादशान्तर्गत चन्द्रान्तर्दशाचक्र

च०	भौ०	रा०	गु०	श०	बु०	के०	शु०	सू०	ग्रहदशा
४	२	२	५	४	३	३	३	२	दिन
०	३०	३०	०	३०	३०	०	०	०	घटी

मुद्दादशान्तर्गत भौम दशान्तर्दशाचक्र

भौ०	रा०	गु०	श०	बु०	के०	शु०	सू०	चं०	ग्रहदशा
१	१	३	३	२	२	२	१	२	दिन
४५	४५	३०	९	२७	६	६	२४	४८	घटी

मुद्दादशान्तर्गत राहुदशान्तर्चक्र

रा०	गु०	श०	बु०	के०	शु०	सू०	चं०	भौ०	ग्रहदशा
४	९	८	६	५	५	३	७	४	दिन
३०	०	६	१८	२४	२४	३६	१२	३०	घटी

मुद्दादशान्तर्गत गुर्वन्तर्दशाचक्र

गु०	श०	बु०	के०	शु०	सू०	चं०	भौ०	रा०	ग्रहदशा
८	७	५	४	४	३	६	४	४	दिन
०	१२	३६	४८	४८	१२	२४	०	०	घटी

मुद्दादशान्तर्गत शन्यन्तर्दशाचक्र

श०	बु०	के०	शु०	सू०	चं०	भौ०	रा०	गु०	ग्रहदशा
८	६	५	५	३	७	४	४	९	दिन
३३	३९	४२	४२	४८	३६	४५	४५	३०	घटी

मुद्दादशान्तर्गत बुधान्तर्दशाचक्र

बु०	के०	शु०	सू०	चं०	भौ०	रा०	गु०	श०	ग्रहदशा
५	५	५	३	६	४	४	८	७	दिन
४७	६	६	२४	४८	१५	१५	३०	३९	घटी

मुद्दादशान्तर्गत केत्वन्तर्दशाचक्र

के०	शु०	सू०	चं०	भौ०	रा०	गु०	श०	बु०	ग्रहदशा
२	२	१	२	१	१	३	३	२	दिन
६	६	२४	४८	४५	४५	३०	९	२७	घटी

मुद्दादशान्तर्गत शुक्रान्तर्दशाचक्र

शु०	सू०	च०	भौ०	रा०	गु०	श०	बु०	के०	ग्रहदशा
६	४	८	५	५	१०	९	७	६	दिन
०	०	०	०	०	०	०	०	०	घटी

योगिनी मुद्दादशा

अश्विनी से जन्म नक्षत्र तक गिनने से जितनी संख्या हो उस में ३ और गताब्द संख्या जोडने से जो योगफल आये उस में ८ का भाग देने से १ आदि शेष में क्रमश मंगला, पिंगला, धान्या, भ्रामरी, भद्रा, उल्का, सिद्धा और संकटा की दशा होती है।

योगिनी दशा के वर्षों को १० से गुणा करने पर मुद्दा योगिनी दशा की दिनादि संख्या होती है। मंगला १×१० = १० दिन, पिंगला २×१० = २० दिन, धान्या ३×१० = ३० दिन—एक मास, भ्रामरी ४×१० = ४० दिन—१ मास १० दिन, भद्रा ५×१० = ५० दिन—१ मास २० दिन, उल्का ६×१० = ६० दिन—२ मास, सिद्धा ७×१० = ७० दिन—२ मास १० दिन और संकटा ८×१० = ८० दिन—२ मास २० दिन की होती है।

योगिनी मुद्दादशा चक्र

म०	पिं०	धा०	भ्रा०	भ०	उ०	सि०	सं०	ग्रह
०	०	१	१	१	२	२	२	मास
१०	२०	०	१०	२०	०	१०	२०	दिन

उदाहरण—जन्मनक्षत्र विशाखा है, अश्विनी से गिनने पर १६ संख्या हुई। १६ + ३ = १९ + ३४ गताब्द = ५३ ÷ ८ = ६ ल० ५ शे० भद्रा की दशा में वर्षप्रवेश हुआ माना जायेगा।

योगिनी मुद्रादशा चक्र

भ०	उ०	सि०	सं०	मं०	पि०	धा०	भ्रा०	दशा
१	२	२	२	०	०	१	१	मास
२०	०	१०	२०	१०	२०	०	१०	दिन
२००३	२००३	२००३	२००४	२००४	२००४	२००४	२००४	२००४
७	८	१०	१	३	४	४	५	७
५	२५	२५	५	२५	५	२५	२५	५

मासप्रवेश साधन

वर्षप्रवेश का ही सूर्य प्रथम मास का सूर्य है। इस में एक राशि जोडने से द्वितीय मास का सूर्य होता है। द्वितीय मास के सूर्य में एक राशि जोड़ने से तृतीय मास का सूर्य होता है। इसी स्पष्ट सूर्य के समय मास का प्रवेश होता है। मासप्रवेश का समय साधन करने के लिए मासप्रवेश के समय के स्पष्ट सूर्य के तुल्य अथवा कुछ न्यूनाधिक स्पष्ट सूर्य पंचांग में देख कर उस पंचांगस्थ स्पष्ट सूर्य और मासप्रवेश के स्पष्ट सूर्य का अन्तर कर के जो अंशादि शेष रहें उन की विकला बना लेनी चाहिए। इन विकलाओं में सूर्य की गति की विकलाएँ बनाकर भाग देने से लब्ध दिन, शेष को ६० से गुणा कर इसी भाजक का भाग देने से लब्ध घटिकाएँ और शेष को ६० से गुणा कर उक्त भाजक का भाग देने पर लब्ध पल आयेंगे। यदि मास-प्रवेश का सूर्य पंचांग के सूर्य में से घट गया हो तो आये हुए दिनादिको पंचाग के दिनादि में से घटा देना; अन्यथा जोड़ देना चाहिए।

उदाहरण—प्रस्तुत वर्षकुण्डली के प्रथम मास का स्पष्ट सूर्य ७।५।४१।४१ है, इस में एक राशि जोडी—

७।५।४१।४१
१।
―――――
८।५।४१।४१ द्वितीय मासप्रवेश का स्पष्ट सूर्य

सं० २००३ के विश्व पंचाग में ८।५।०।५७ स्पष्ट सूर्य पौष कृष्ण १२ शुक्रवार का ४४।१८ मिश्रमान का दिया है।

८।५।४१।४१ मासप्रवेश के सूर्य में से

८।५।०।५७ पचागस्थ सूर्य को घटाया

०।४०।४४ इस की विकलाएँ वनायीं

२४०० + ४४ = २४४४, सूर्य की गति ६१।२३ है, इस की विकलाएँ

= ६१।२३

६०

३६६० + २३ = ३६८३

२४४४ – ३६८३ = ० लब्धि; २४४४ शेप, २४४४ × ६० =

१४६६४० ÷ ३६८३ = ३९ लब्धि, ३००३ शे०, ३००३ × ६० =

१८०१८० ÷ ३६८३ = ४५।०।३९।४५ दिनादि आया। यहाँ मासप्रवेश के सूर्य में से ही पंचाग के सूर्य को घटाया है, अतएव पचाग के दिनादि में जोडा—

६।४४।१८

०।३९।४५

७।२४।३ अर्थात् शनिवार को २४ घटी ३ पल इष्टकाल पर द्वितीय मासप्रवेश होगा। इस इष्टकाल के लग्न, ग्रहस्पष्ट, भावस्पष्ट आदि पूर्ववत् वना लेने चाहिए तथा मासप्रवेश की कुण्डली भी तैयार कर लेना चाहिए। इस प्रकार द्वादश महीनो की मास-कुण्डलियाँ तैयार कर लेनी चाहिए।

मासप्रवेश और दिनप्रवेश निकालने की अन्य विधि

जन्मकालीन सूर्य जितनी राशि संख्यावाला हो, उस को ग्यारह स्थानो में रखना चाहिए और इस में क्रमश एक-एक राशि जोडने से मासप्रवेश का इष्टकाल आता है। तात्पर्य यह है कि जन्मकालीन स्पष्ट सूर्य और राशि आदि मिलने पर ही वर्षप्रवेश होता है। जितने समय में सूर्य जन्मकाल के

सूर्य के बराबर अंश, कला तथा विकला पर होता है, वही वर्षप्रवेश का इष्ट समय होता है। यदि एक राशि में अधिक सूर्य वहीं स्पष्ट के बराबर मिले तो वह मासप्रवेश का इष्ट समय होता है। एक-एक राशि बढ़ाते जाने से बारह महीनों का इष्ट होता है और कला-विकला में समानता रहती है।

उक्त स्पष्ट सूर्य में एक-एक अंश बढ़ाते जाने से दिनप्रवेश का इष्ट और दिनप्रवेश दोनों निकल आते हैं।

पंचांग से मासप्रवेश की घटी लाने की रीति

एक राशि जोड़ने से मासप्रवेश का सूर्य होता है। इसी के समीपवर्ती पंचांग में स्थित अवधि प्रस्तार तथा मासप्रवेश के सूर्य का अन्तर करे। पुनः इस अन्तर को कला बना ले। उसे अवधिस्थ सूर्य की गति से भाग देने पर वार, घटी और पल निकल आयेंगे। इन को अवधिस्थ वार, घटी, पल में जोड़ दे या घटा दे। अवधिस्थ सूर्य से यदि मासप्रवेश का सूर्य अधिक हो तो उसे अवधिस्थ वार में जोड दे और यदि मासप्रवेश सूर्य से अवधिस्थ सूर्य अधिक हो तो घटा दे। इसी वार-घटी-पलात्मक समय में मासप्रवेश होता है। दिनप्रवेश निकालने की विधि भी यही है।

उदाहरण—स्पष्ट सूर्य ९।७।३०।६। इस की राशि में एक जोड़ दिया तो दूसरे मास के प्रवेश का सूर्य १०।७।३०।६ हुआ। इस के समीपवर्ती फाल्गुन कृष्णा ९ नवमी शुक्रवार की अवधि में स्थित सूर्य १०।१०।१।३८ है। इन दोनों का अन्तर किया—

१०।१०।१।३८
१०।७।३०। ६
०।२।३१।३२ हुआ। अब २ अंश को ६० से गुणा कर कलाएँ बनायीं और इस में ३१ कलाओं को जोड़ा। पश्चात् विकलात्मक मान बनाया—

२ × ६० = १२० + ३१ = १५१ कलाएँ

१५१ × ६० = ९०६०, ९०६० + ३२ = ९०९२ यह भाज्य है।

अवधिस्थ सूर्य की गति ६० विगति ३१ है। इस का विकलात्मक मान = ६० × ६० = ३६०० + ३१ = ३६३१ यह भाजक है।

९०९२ – ३६३१ = २, १८२९ शेष

१८२९ × ६० = १०९७४० ÷ ३६३१ = ३०,८१० शेष

८१० × ६० = ४८६०० ÷ ३६३१ = १३ लब्धि।

२।३०।१३ लब्धि अर्थात् २ दिन ३० घटी १३ पल हुआ।

अब यह सोचना है कि मास प्रवेश के सूर्य से अवधिस्थ सूर्य अधिक है, अत २।३०।१३ को ऋणचालक जान कर इन वारादि को अवधिस्थ वारादि ६।०।० में घटाया तो ३।२९।४७ वार, घटी, पल हुए। अतएव फाल्गुन कृष्णा पचमी भौमवार २९ घटी ४७ पल पर द्वितीय मासप्रवेश होगा। इस प्रकार प्रत्येक महीने का मासप्रवेश तैयार किया जा सकता है।

सारणी पर से मास प्रवेश का ज्ञान

जिस राशि के जितने अश पर वर्ष प्रवेश का इष्ट वार-घटी-पलात्मक मान हो उस में सारणी पर से उसी राशि अश के कोष्ठक में जो वार, घटी, पल हैं, उन को जोड देने से आगे के मासप्रवेश का इष्ट काल होता है।

उदाहरण—

कन्या राशि के ५वें अश पर घटी-पलात्मक ७।३।५ मान है। सारणी में कन्या राशि के ५वें अश के समक्ष कोष्ठक में २।२०।२० फल है। इसे पहले वाले इष्टकाल में जोडा—

७।३।५
२।२०।२०

९।२३।२५ यही अगले महीने का इष्टकाल है। इस इष्टकाल पर से लग्न, तत्त्वादिभाव एव ग्रहयोग आदि का आनयन कर लेना चाहिए। सुविधा की दृष्टि से मासप्रवेश-बोधक सारणी दी जा रही है। इस पर से मास प्रवेश का इष्ट काल निकाल लेना चाहिए।

मासप्रवेश सारणी

अंश / राशि	०	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४
० मेष	२	२	२	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३
	५६	५८	५९	०	१	२	३	४	५	७	८	८	९	१०	११
	५३	२८	४१	५४	३१	३१	२७	२५	५५	७	१९	५४	४८	४२	३६
१ वृष	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३
	२६	२६	२७	२७	२८	२९	३०	३०	३१	३१	३२	३२	३३	३३	३४
	३	१४	७	१०	३१	१७	३	४९	३	३५	७	३५	१२	२०	१६
२ मिथुन	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३
	३८	३८	३८	३८	३८	३८	३८	३८	३७	३७	३७	३७	३७	३६	३६
	२८	१८	१९	२०	२६	२५	२२	७	५	४३	३१	२३	६	४८	१८
३ कर्क	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३
	२७	२७	२६	२५	२५	२४	२३	२२	२१	२१	२०	१९	१८	१७	१६
	५८	१५	३२	५६	१३	२५	२५	४०	५२	१४	१६	१७	२०	३३	२२
४ सिंह	३	२	२	२	२	२	२	२	२	२	२	२	२	२	२
	०	५९	५४	५७	५६	५४	५३	५२	५१	५०	४९	४८	४७	४६	४४
	२५	२८	४१	१०	५७	५२	५४	३९	३४	९	१५	९	३	५७	३८
५ कन्या	२	२	२	२	२	२	२	२	२	२	२	२	२	२	२
	२५	२४	२३	२२	२१	२०	१८	१७	१६	१५	१४	१३	१२	१०	९
	५८	२७	३६	२४	२२	२०	५०	३३	२२	२१	२०	१९	१८	५९	४०

अंश / राशि	१५	१६	१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४	२५	२६	२७	२८	२९
० मेष	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३
	१२	१३	१४	१५	१६	१७	१८	१९	२०	२०	२१	२२	२४	२३	२५
	५०	५५	०	४०	१८	३६	१७	१६	१३	५७	४३	३१	१९	१९	९
१ वृष	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३
	३४	३५	३५	३५	३६	३६	३६	३७	३७	३७	३७	३८	३८	३८	३८
	४३	९	३५	५४	२०	४६	४९	१४	३१	४८	५३	५	१७	२७	३०
२ मिथुन	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३
	३६	३५	३५	३४	३४	३४	३३	३२	३२	३१	३१	३०	३०	२९	२८
	१८	३०	१२	५२	२६	०	२३	४६	९	३२	३१	३१	३१	२५	३९
३ कर्क	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३
	१५	१४	१३	१२	११	१०	९	८	८	७	६	२	२	२	१
	४१	५३	५	५५	५५	५५	५१	५७	३	९	१	४९	३३	२१	३३
४ सिंह	२	२	२	२	२	२	२	२	२	२	२	२	२	२	२
	४३	४२	४०	३९	३८	३७	३६	३५	३४	३२	३१	३०	२९	२८	२७
	१७	५६	५७	५७	५३	४८	४५	३४	१	४१	३५	३२	३१	२२	७
५ कन्या	२	२	२	२	२	२	२	२	२	१	१	१	१	१	१
	८	७	६	५	४	२	१	०	०	५८	५७	५६	५५	५४	५३
	३४	३०	२६	२२	१८	५७	४६	५५	०	५	१०	१५	४६	३१	३४

६ तुला	१ ५२ ३३	१ ५१ ५६	१ ५१ १	१ ० ७	१ ४९ ५६	१ ४९ २	१ ४८ २	१ ४७ ११	१ ४६ २९	१ ४५ २९	१ ४४ ३८	१ ४३ ५०	१ ४२ २१	१ ४१ १८	१ ४० ३६	१ ३९ ४२	१ ३९ २	१ ३८ २०	१ ३७ ५२	१ ३६ ६	१ ३५ ३०	१ ३४ ३६	१ ३४ १	१ ३३ ३६	१ ३२ ३८	१ ३१ ३१	१ ३० ३९	१ ३० २७	१ २९ ४६	१ २९ ११
७ वृश्चिक	१ २८ २५	१ २७ १७	१ २६ २४	१ २६ १८	१ २६ १०	१ २५ ४१	१ २५ १२	१ २४ ४३	१ २४ १४	१ २३ ४५	१ २३ ५	१ २२ २८	१ २२ ५	१ २१ ४१	१ २१ २७	१ २० ५३	१ २० १६	१ २० ५	१ १९ ४१	१ १९ २८	१ १९ १५	१ १९ ११	१ १९ ७	१ १८ ५१	१ १८ ४७	१ १८ ४३	१ १८ ४२	१ १८ ३९	१ १८ ३५	१ १८ ३०
८ धनु	१ १८ १९	१ १८ २५	१ १८ ३६	१ १८ ४१	१ १८ ५१	१ १८ ५४	१ १८ ५७	१ १९ ३	१ १९ १३	१ १९ ३३	१ १९ ४६	१ १९ ४९	१ २० २	१ २० १५	१ २० १८	१ २० ४७	१ २१ १५	१ २१ ३६	१ २१ ५१	१ २१ ५५	१ २१ ५९	१ २२ ७	१ २२ ५७	१ २३ १३	१ २४ ८	१ २४ ३४	१ २५ २	१ २५ २९	१ २५ ५६	१ २६ २३
९ मकर	१ २६ ५६	१ २७ ३६	१ २८ ३	१ २८ ३०	१ २८ ५३	१ २९ ४८	१ २९ ५१	१ २९ ५५	१ ३० ५५	१ ३१ ५४	१ ३२ २४	१ ३३ ९	१ ३४ ४४	१ ३४ ५४	१ ३५ ५७	१ ३६ ३१	१ ३६ ५६	१ ३७ ५०	१ ३८ ३४	१ ३९ ८	१ ४० २	१ ४१ ४७	१ ४३ ६	१ ४३ ५१	१ ४४ ४१	१ ४५ ४१	१ ४६ ३१	१ ४७ ११	१ ४८ १७	१ ४९ २३
१० कुम्भ	१ ५० २५	१ ५१ १८	१ ५२ १२	१ ५३ ६	१ ५४ ०	१ ५५ ०	१ ५६ ०	१ ५७ ११	१ ५८ १५	१ ५९ १४	२ ० १३	२ १ १२	२ २ २०	२ ३ ४१	२ ४ २२	२ ५ ३३	२ ६ ३५	२ ७ ३१	२ ८ ३९	२ १० २	२ ११ २६	२ १२ १२	२ १३ १४	२ १४ १६	२ १५ १८	२ १६ ३०	२ १७ ३७	२ १९ २२	२ २० २४	२ २१ २९
११ मीन	२ २२ ३४	२ २३ २२	२ २४ ३४	२ २५ ४९	२ २७ ३०	२ २८ ३०	२ २९ ४१	२ ३० ४५	२ ३१ ४८	२ ३२ ५३	२ ३३ ५७	२ ३५ ३८	२ ३६ ४४	२ ३७ ५१	२ ३८ ५८	२ ४० ५०	२ ४१ १२	२ ४२ १९	२ ४३ ५१	२ ४४ ५७	२ ४५ ५६	२ ४७ ५	२ ४८ १४	२ ४९ २३	२ ५१ १७	२ ५२ ५०	२ ५३ २३	२ ५३ ५८	२ ५४ ३४	२ ५५ ५४

वर्षेश का फल

पूर्ण बलवान् वर्षेश हो तो सुख, धनप्राप्ति, यशलाभ और निर्बल वर्षेश हो तो नाना प्रकार के कष्ट, धनहानि, शारीरिक रोग होते हैं। वर्षेश ६।८।१२वें स्थानों में स्थित हो तो अनिष्टफल होता है और इन स्थानों से भिन्न स्थानों में स्थित हो तो शुभ होता है।

वर्षेश सूर्य का फल—पूर्णबली सूर्य वर्षेश हो तो प्रतिष्ठा-लाभ, धन, पुत्र, यश का लाभ, कुटुम्बियों को सुख, स्वास्थ्यलाभ, शासन से लाभ, मकान-सुख और सुख-शान्ति होती है। किन्तु यह फल तभी घटता है जब सूर्य जन्मकाल में भी बलवान् हो; जो ग्रह जन्मसमय में निर्बल होता है, उस का फल मध्यम मिलता है।

मध्यमबली सूर्य वर्षेश हो तो अल्पसुख, कलह, स्थानच्युति, भय, अल्प धनलाभ, सन्तान-लाभ और रोगभय होता है। अल्पबली सूर्य वर्षेश हो तो विदेशगमन, धननाश, शोक, शत्रुभय, आलस, अपयश और कलह आदि फल होते हैं।

चन्द्रमा—पूर्णबली चन्द्रमा वर्षेश हो तो धन, स्त्री, पुत्र, गृह-विलासिता की सामग्री, नाना प्रकार के वैभव और उच्चपद आदि फलों की प्राप्ति होती है।

मध्यबली चन्द्रमा वर्षेश हो तो साधारण सुख, कुटुम्बियों से कलह, सम्मान-प्राप्ति, स्थान-त्याग, धनागम और साधारण रोग आदि फल होते हैं। पापग्रह के साथ चन्द्रमा हो तो कफजन्य रोग, कास, ज्वर आदि से पीड़ा होती है।

नष्ट या हीनबली चन्द्रमा वर्षेश हो तो शीतज्वर, कफज्वर, खाँसी, मृत्युतुल्य कष्ट और नाना प्रकार की व्याधियाँ होती हैं।

मंगल—पूर्णबली और वर्षेश हो तो कीर्ति, जयलाभ, नायकत्व, धन-

लाभ, पुत्रलाभ, सम्मानप्राप्ति और नाना प्रकार के वैभव प्राप्त होते हैं। मध्यवली भौम वर्षेश हो तो रुधिरविकार, घाव, फोड़ा-फुन्सियो के कष्ट से पीड़ा, सम्मान, नायकत्व, अल्प धनलाभ और साधारण सुख प्राप्त होते हैं। हीनवली भौम वर्षेश हो तो शत्रुओ से भय, अपवाद, अग्निभय, शस्त्रघात, विदेशगमन और दुराचरण आदि फल मिलते हैं।

बुध—वलवान् बुध वर्षेश हो तो प्रत्युत्पन्नमतित्व, विद्यालाभ, कलाओ में निपुणता, गणित, लेखन-वैद्यविद्या से विशेष सम्मान और शासनाधिकार प्राप्त होते हैं। मध्यवली बुध वर्षेश हो तो व्यापार से लाभ, मित्रों से प्रेम, यश और विद्या में सफलता आदि फल प्राप्त होते हैं। हीनवली बुध वर्षेश हो तो धर्मनाश, उन्मत्तता, धनहानि, पुत्रमृत्यु, दुराचरण और तिरस्कार आदि फल प्राप्त होते हैं।

गुरु—पूर्णवली गुरु वर्षेश हो तो शत्रुनाश, सन्तान-धन-कीर्ति का लाभ, लोक में विश्वास, उत्तम बुद्धि, निधिलाभ और राजमान्यता आदि फल होते हैं। मध्यमवली वर्षेश हो तो उपर्युक्त फल मध्यम रूप में मिलता है। हीनवली वर्षेश हो तो धन, धर्म और सौख्य हानि, लोकनिन्दा, कलह और रोग आदि फल होते हैं।

शुक्र—पूर्णवली शुक्र वर्षेश हो तो मिष्टान्न लाभ, विलास की वस्तुओं की प्राप्ति, प्रतापवृद्धि, विजयलाभ, प्रसन्नता, सुखलाभ, सम्मानप्राप्ति और व्यापार से प्रचुर लाभ होता है। मध्यवली शुक्र वर्षेश हो तो गुप्त रोग, धनहानि, व्यापार से अल्पलाभ, साधारण सुख और यशलाभ आदि फल प्राप्त होते हैं। हीनवली शुक्र वर्षेश हो तो कलह, धननाश, आजीविका-रहित और नाना कष्ट आदि फल होते हैं।

शनि—पूर्णवली शनि वर्षेश हो तो नवीन भूमि, नवीन घर तथा खेत लाभ, वगीचा, तालाव, कुआँ आदि का निर्माण, स्वास्थ्यलाभ, उच्चपद प्राप्ति आदि फल मिलते हैं। मध्यवली शनि वर्षेश हो तो कामुकता,

वासना का प्राबल्य, धनहानि और अल्पसुख प्राप्त होते हैं। अल्पबली शनि वर्षेश हो तो धननाश, विपत्ति, शत्रुभय और कुटुम्बियों से कलह आदि फल प्राप्त होते हैं।

मुन्थाफल

मुन्था लग्न में हो तो आरोग्य, सुख, शान्ति, द्वितीय में हो तो धन-प्राप्ति व्यापार से लाभ, अकस्मात् धनलाभ; तृतीय स्थान मे हो तो बल, गौरव, पराक्रम की प्राप्ति, यशलाभ, सम्मान; चतुर्थ स्थान में हो तो दुःख, कलह, अशान्ति; पंचम स्थान में हो तो आरोग्य, धनलाभ, कुटुम्बियों से प्रेम; छठे स्थान में हो तो रोग, अग्निभय, शत्रुचिन्ता; सप्तम स्थान में हो तो स्त्री को रोग, सन्तान को कष्ट, स्वयं को आधि-व्याधि; अष्टम स्थान में हो तो मृत्यु या मृत्युतुल्य कष्ट; नौवें भाव में हो तो धर्म, धन का लाभ, भाग्य की वृद्धि; दसवें भाव में हो तो मानवृद्धि, शासन में अधिकार, राजमान्यता, ग्यारहवें में हो तो हानि, व्यापार में क्षति एवं व्यय भाव में हो तो रोग, हानि और कष्ट आदि फल प्राप्त होते हैं।

वर्ष-अरिष्ट योग

१—वर्षलग्नेश, अष्टमेश और मुन्थेश ४।८।१२वें स्थान में हो या जन्मलग्नेश अथवा चन्द्रमा अनेक पापग्रहो से युक्त, दृष्ट ८वें स्थान में हो और शनि वर्षलग्न में हो, तो वर्ष अरिष्टकारक होता है।

२—जन्मलग्नेश, त्रिराशीश, मुन्थेश अस्त हों, तथा वर्षलग्नेश और वर्षेश नीच राशि में हो तो वर्ष-अरिष्ट योग होता है।

३—बलवान् अष्टमेश केन्द्र में या वर्षलग्नेश ८वें में अथवा अष्टमेश लग्न में हो और इन पर पापग्रहो की दृष्टि हो तो वर्ष कष्टकारक होता है।

४—शुक्र नीच राशि में या गुरु अन्य ग्रहो के वर्ग में हो अथवा बुध, शुक्र अस्त हो और चन्द्रमा नीच राशि में हो तो अरिष्ट योग होता है।

५—लग्नेश मेष या वृश्चिक राशिगत अष्टम स्थान में मंगल से दृष्ट हो साथ-ही-साथ शुक्र, बुध अस्त हो तो अरिष्ट योग होता है।

६—धनेश, भाग्येश नीच राशि में तथा वर्षेश निर्बल हो, पापग्रहो से दृष्ट हो तो अरिष्ट योग होता है।

७—चन्द्र और सूर्य की युति ६।८।१२वें स्थान में हो या दोनों में १२ अंश से अधिक अन्तर न हो तो अरिष्ट योग होता है।

८—वर्षलग्नेश चन्द्रके साथ अष्टम स्थान में हो और अष्टमेश वर्षलग्न में हो तो अरिष्ट योग होता है।

९—लग्नेश, नवमेश वक्री हो कर ९वें या ७वें स्थान में स्थित हों और शनि अथवा चन्द्रमा ८वें भाव में हों तो अरिष्ट योग होता है।

१०—वर्षलग्नेश शनि पापग्रहो से युत या दृष्ट ३।४।७वें स्थान में हो तो सन्निपात रोग होता है।

११—चन्द्र और मगल की युति ८वें स्थान में हो तो नाना रोग होते हैं।

१२—कर्क राशि का शनि वर्षलग्न से ७ या ८वें भाव में हो तथा जन्मकुण्डली भी इन्ही में हो तो रोग होते हैं।

अरिष्टभंग योग

१—अरिष्टभंग योग वर्षलग्नेश पंचवर्गी में सब से अधिक वलवान् होकर १।४।५।७।९।१०वे भाव में हो तो अरिष्टनाशक योग होता है।

२—सप्तमेश गुरु से युत या दृष्ट हो कर लग्न में हो अथवा त्रिराशीश वलवान् हो कर केन्द्र या त्रिकोण में स्थित हो तो अरिष्टनिवारक योग होता है।

३—उच्चराशि का शनि वलवान् हो कर वर्षेश हो तथा वह ३।११वें भाव में स्थित हो तो अरिष्टनाशक योग होता है।

४—बलवान् सुखेश सुखस्थान में शुभग्रहो से युत या दृष्ट हो अथवा शुभग्रह १।४।५।७।९।१०वें भावों में और पापग्रह ३।६।११वें भावो में हो तो अरिष्टनाशक योग होता है।

धनप्राप्ति का विचार

जन्मकुण्डली में गुरु जिस भाव का स्वामी हो यदि वर्षकुण्डली में वह उसी भाव में बैठा हो और वर्षलग्नेश के साथ मुत्थशिल योग करता हो तो वर्ष-भर व्यक्ति को अर्थलाभ होता है।

वर्षकाल मे गुरु धन स्थान में हो और उस को शुभग्रह देखते हो अथवा शुभग्रहो से युक्त हो तो धनलाभ और सम्मान देने वाला योग होता है।

धनभाव और धनसहम स्थान में बुध, गुरु और शुक्र हो• अथवा इन दोनो पर इन की दृष्टि हो तो प्रचुर धनलाभ होता है।

धनेश और वर्षलग्नेश इन दोनो का मित्रदृष्टि से मुत्थशिल योग हो तो व्यक्ति को बिना प्रयास के धन मिलता है। यदि इन दोनो का मुसरिफ योग हो तो धननाश होता है।

धनभाव का विचार करने के लिए साधारण नियम यह है कि धनेश बलवान् हो कर बली ग्रहो से युत या दृष्ट केन्द्र, त्रिकोण या लाभस्थान में हो और लग्नेश मैत्री तथा इत्थशाल आदि शुभ सम्बन्ध करता हो तो धनलाभ होता है। इसी प्रकार अन्य भावो का विचार करना चाहिए।

स्वास्थ्य विचार

बलवान् वर्षेश, लग्नेश, मुन्थेश तथा मुन्था शुभग्रहों से युक्त, दृष्ट, केन्द्र या त्रिकोण में हो तो शरीर स्वस्थ और सुख एवं उक्त ग्रह नीच, बलहीन, अस्तंगत, शत्रुक्षेत्र में—६।८।१२वें स्थान में पापग्रहो से युत, दृष्ट हो तो महाकष्ट, रोग, पीडा एवं शुभ और पापग्रह दोनो से युत दृष्ट हो तो मिश्रित फल होता है।

इन्ही नियमो से अन्य भावो का भी विचार कर लेना चाहिए।

मासप्रवेश कुण्डली और ग्रहस्पष्टों में प्रत्येक मास का फलाफल ग्रहो के बल तथा स्थित स्थानानुसार निकाल लेना चाहिए।

सहम फल

सहम राशि का स्वामी अपने उच्च, अपने घर, अपने हद्दा, अपने नवमाश में स्थित हो और लग्न को देखता हो तो वली कहा जाता है। और सहम राशि का स्वामी उच्च का, स्वराशि का हो कर भी लग्न को नहीं देखता हो तो निर्वल कहा जाता है। जन्म समय सूर्य जिस राशि में बैठा हो उस का स्वामी तथा चन्द्रमा जिस राशि में बैठा हो उस का स्वामी, इन दोनो ग्रहों के बलाबल का विचार भी कर लेना आवश्यक है।

सहम का फल अपनी राशि के स्वामी की दशा में प्राप्त होता है।

पुण्य सहम—वली पुण्य सहम शुभग्रह या अपने राशीश से युत या दृष्ट हो तो धर्म और धन की वृद्धि होती है। यदि निर्वल पुण्य सहम पाप- ग्रहो से युत या दृष्ट हो तो सचित धन का नाश और अधर्म की वृद्धि होती है। पुण्य सहम वर्षकुण्डली में ६।८।१२वें भाव में हो तो धर्म, धन और यश का नाश करता है और शुभग्रहो से दृष्ट या युत हो तो नाना प्रकार की विभूतियों की वृद्धि होती है। जिस वर्ष में पुण्य सहम फल देने वाला होता है, उस वर्ष व्यक्ति को सभी प्रकार के सुख होते है। उस की उन्नति सर्वतोमुखी होती है।

कार्यसिद्धि सहम—कार्यसिद्धि सहम शुभ ग्रहो से युक्त या दृष्ट हो तो व्यक्ति को जय, सन्मान, अर्थलाभ होता है।

विवाह सहम का फल—वर्षकाल में विवाह सहम अपने स्वामी से युत या दृष्ट हो तथा अन्य शुभग्रहों से युत अथवा दृष्ट हो या शुभग्रहो से मुत्थशिल करता हो तो उस वर्षपत्र वाले का विवाह होता है या उसे उस

वर्ष स्त्रीसुख की प्राप्ति होती है। विवाह सहम पापग्रहों से युत या अष्टमेश से युत अथवा दृष्ट हो तो विवाहसुख नही होता।

यशसहम का फल—वर्षकुण्डली में यशसहम की राशि का स्वामी ८वें स्थान में पापग्रहो से युत या दृष्ट हो तो यश का नाश होता है।

रोग सहम का फल

जिस वर्षकुण्डली में रोग सहम का स्वामी पापग्रह हो या पापग्रहों से युत हो तो व्यक्ति को रोग होता है। यदि रोग सहम का स्वामी अष्टमेश से मुत्थशिल करे तो उस प्राणी का मरण होता है।

इस प्रकार समस्त सहमो का फल शुभग्रह से युत या दृष्ट आदि बला-बलो के अनुसार स्वबुद्धि से जान लेना चाहिए। ६।८।१२वें भाव में सभी सहमों के स्वामियो का रहना हानिकारक होता है। जिस सहम का स्वामी उक्त स्थानो में होता है, उस सहम-सम्बन्धी कार्य उस वर्षपत्र वाले व्यक्ति के बिगड जाते हैं।

वर्ष का विशेष फल

जन्मलग्नेश और वर्षलग्नेश के सम्बन्ध से वर्ष का फल अवगत करना चाहिए। ये दोनो शुभग्रह हो, केन्द्र और त्रिकोण में स्थित हो तथा मित्र और शुभ ग्रहो से दृष्ट हों तो वर्ष अच्छा रहता है। दोनो के पापग्रह होने पर तथा ६।८।१२वें भाव में स्थित होने पर वर्ष अनिष्टकर होता हैं। पदोन्नति के लिए वर्षलग्नेश या मासलग्नेश का उच्चराशि या मूल त्रिकोण में स्थित रहना आवश्यक है।

मासफल अवगत करने के लिए मासकुण्डली निकालनी चाहिए—

मासाधिपति का निर्णय और मासफल

मासाधिपति का निर्णय करने के लिए अधिकारियो का इस क्रम से विचार करें—(१) मासलग्नपति (२) मुन्थहाधिपति (प्रतिमास में २½ अंश

मुन्था बढता है, इस क्रम से मुन्थहा राशि का स्वामी) (३) जन्मलग्न का स्वामी (४) त्रिराशिपति (५) दिन में मास प्रवेश हो तो सूर्यराशि पति और रात्रि में मास प्रवेश हो तो चन्द्रराशिपति (६) वर्षलग्न का स्वामी। इन छह अधिकारियो में जो बलवान् हो कर मास कुण्डली की लग्न को देखता हो, वही मासाधिपति होता है। इस मास स्वामी के शुभाशुभ के अनुसार फल का विचार किया जाता है।

मासफल

मासलग्न का नवांशेश यदि मासलग्नेश तथा नवांश स्वामी के साथ मित्रभाव से स्थित हो, दृष्ट हो और उन दोनों स्वामियों को चन्द्रमा मित्र दृष्टि से देखता हो तो उस मास में नाना प्रकार का सुख मिलता है, शरीर स्वस्थ रहता है, आमदनी उत्तम होती है, प्रभुता बढ़ती है तथा अन्य व्यक्ति उस के अनुयायी बनते हैं।

यदि लग्नांशेश और लग्नेशांशेश दोनों परस्पर में शत्रुभाव से देखते हों और चन्द्रमा भी उन दोनो को शत्रुदृष्टि से देखता हो तो मनोदु:ख देते हुए रोग उत्पत्ति का योग बनता है। यदि पूर्वोक्त स्वामियो के बीच में कोई एक नीच राशि को प्राप्त हो अथवा अस्त हो तो महीने का पूर्वार्ध अंश कष्टकारक और उत्तरार्ध सौख्यप्रद होता है। यदि उक्त दोनो मासकुण्डली लग्नांशेश और मासकुण्डली लग्नेशांशेश नीच राशि में स्थित हों अथवा अस्तगत हो अथवा एक नीच राशि में और दूसरा अस्तगत हो तो उस महीने में मृत्यु योग कहना चाहिए। इस योग का फल तभी ठीक घटता है, जब जन्मकाल और वर्षकाल में अरिष्ट योग होता है और दशा मारकेश ग्रह की चलती है। अन्यथा केवल बीमारी ही समझनी चाहिए।

मासलग्न में जिस भाव के नवांश का स्वामी अपने स्वामी के नवांश स्वामी-द्वारा मित्रदृष्टि से देखा जाता हो अथवा युक्त हो और वहीं चन्द्रमा भी यदि भावनवांश स्वामी और भावेशनवांशस्वामी को मित्र दृष्टि से देखता

हो तो उस भाव से उत्पन्न सुख उसी महीने में प्राप्त होता है। नीच और अस्त आदि के होने पर—भावेश, भावनवांशेश नीच या अस्तंगत हों तो फल अशुभ प्राप्त होता है। दोनों के नीच या अस्त होने पर अधिक अशुभ और एक के नीच या अस्त होने पर अल्प अशुभ होता है।

वर्षलग्नेश, मासलग्नेश, वर्षेश और मासलग्ननवांशेश ये चारों जिस किसी भाव अथवा भावेश तथा नवांशेश के द्वारा मित्रदृष्टि से देखे जाते हों तो अथवा युक्त हो तो उस भाव का सौख्य प्राप्त होता है।

बारहवें, छठे तथा आठवें भावों के नवांशस्वामी निर्बल हों तो शुभ फल प्राप्त होता है; शेष भावों के नवांशस्वामी बलिष्ठ होने पर शुभ फल देते हैं।

वर्षलग्नेश, मासेश, वर्षेश और मुन्थहेश ये चारों पापग्रहों से युक्त होकर यदि छठे या आठवें स्थान में हों और इन चारों को पापग्रह शत्रु-दृष्टि से देखते हों तो उस महीने में नाना प्रकार के कष्ट होते हैं। परिवार के सदस्य भी बीमार पड़ते हैं तथा स्वयं को भी रोग होता है। व्यापार या नौकरी में उक्त योग के होने से क्षति होती है। पुलिस और राजनैतिक कर्मचारियों को अपने अफ़सरों-द्वारा डाँट-डपट सहन करनी पड़ती है। लाल और सफ़ेद वस्तुओं के व्यापारियों को विशेष रूप से हानि होती है। मानसिक संकट अधिक रहता है। मुक़द्दमा आदि में विशेष रूप से परेशान होना पड़ता है।

वर्षलग्नेश, मासेश और वर्षेश यदि ये तीनों बलवान् हो कर १।४।७। १०वें भाव तथा त्रिकोण—५।९वें भाव में स्थित हों तो व्यक्ति को उस महीने में सभी प्रकार का सुख प्राप्त होता है। मासलग्नेश एकादश भाव या १।४।७।१०वें भाव में स्थित हो तो भी जातक को सभी प्रकार की सुखसामग्रियाँ प्राप्त होती हैं। मासेश और मासलग्नेश के दशम या नवम भाव में रहने से विशेष आर्थिक लाभ होता है। राजसम्मान, प्रतिष्ठा और मानसिक शान्ति प्राप्त होती है।

जिस मास में आठवें भाव में पापग्रहो से दृष्ट या युक्त होकर चन्द्रमा स्थित हो उस महीने में शत्रुओं के द्वारा विशेष कष्ट प्राप्त होता है। स्वास्थ्य भी बिगडता है और नाना प्रकार के अन्य कष्ट भी सहन करने पडते हैं।

जिस महीने की मासकुण्डली में प्रवासावस्था में चन्द्रमा हो उस में प्रवास[1], नष्टावस्था में हो तो द्रव्यनाश, मृतावस्था में हो तो मृत्यु या मृत्यु-तुल्य कष्ट, जयावस्था में हो तो विजय, हास्यावस्था में हो तो विलास, रति अवस्था में हो तो पर्याप्त सुख, क्रीडितावस्था में हो तो सौख्य, प्रसुप्तावस्था में हो तो कलह, भुक्ति अवस्था में हो तो शारीरिक कष्ट, ज्वरावस्था में हो तो भय, कम्पितावस्था में हो तो ज्वर, कास एवं सुस्थितावस्था में हो तो सुख प्राप्त होता है।

मास का फल अवगत करने के लिए मासलग्नेश, चन्द्रमा, मासलग्न और मासलग्ननवांश के बलाबल का विचार करना चाहिए। जिस महीने में मासलग्नेश केन्द्र, त्रिकोण में स्थित हो और शुभग्रह की दृष्टि हो, उस महीने में सुख प्राप्त होता है। मानसिक शक्ति मिलती है। इसी प्रकार जिस महीने मे चन्द्रमा उच्चका हो अथवा अपनी राशि में लग्न या दशम में स्थित हो, उस महीने में धन-धान्य की प्राप्ति होती है। अभीष्ट सिद्धि

---

१ विहाय राशिं चन्द्रस्य भागा द्विघ्ना शरोद्धृता ।
लब्ध गता अवस्थास्स्युर्भोग्याया फलमादिशेत ॥
—ताजिकनीलकण्ठी, बनारस १९३९ ई० अ० ८ श्लो० २९

चन्द्रमा की राशि को छोड कर अंशादि को दो से गुणाकर पाँच का भाग देने पर लब्धगत अवस्था और वर्तमान भोग्यावस्था होती है। चन्द्रमा की (१) प्रवासा (२) नष्टा (३) मृता (४) जया (५) हास्या (६) रति (७) क्रीडिता (८) प्रसुप्ता (९) भुक्ति (१०) ज्वरा (११) कम्पिता (१२) सुस्थिता ये बारह अवस्थाएँ मानी गयी है। इन अवस्थाओं के अनुसार दैनिक और मासिक जाना जा सकता है।

के लिए इस प्रकार का चन्द्रमा अत्यन्त उपयोगी होता है। यदि दशमेश चर राशि में स्थिति हो तो उस महीने में 'सरकारी सेवा करनेवालों का स्थानान्तरण होता है। दशमेश शुभग्रहो से दृष्ट या युक्त हो तो पदोन्नति-पूर्वक स्थान परिवर्तन होता है और अशुभ या नीच राशि स्थित ग्रहो से युत या दृष्ट हो तो अपमानपूर्वक स्थान परिवर्तन होता है।

पंचम अध्याय

मेलापक

यह पहले ही लिखा जा चुका है कि ज्योतिष शास्त्र सूचक है। विवाह-के पूर्व वर-कन्या की जन्मपत्रियो को मिलाने का आशय केवल परम्परा का निर्वाह नही है, किन्तु भावी दम्पति के स्वभाव, गुण, प्रेम और आचार-व्यवहार के सम्बन्ध में ज्ञात करना है। जब तक समान आचार-व्यवहार वाले वर-कन्या नही होते तब तक दाम्पत्य-जीवन सुखमय नही हो सकता है। जन्मपत्रियो की मेलनपद्धति वर-कन्या के स्वभाव, रूप और गुणो को अभिव्यक्त करती है। भारतीय सस्कृति में प्रेमपूर्वक विवाह कल्याणकारी नही माना गया है किन्तु दो अपरिचित व्यक्तियों का जीवन-भर के लिए गठबन्धन कर दिया जाता है। यदि ऐसी परिस्थिति में उन दोनो के स्वभाव के बारे में सूचक ज्योतिष-द्वारा कुछ जान लिया जाय तो अत्यन्त उपकार उन व्यक्तियो का हो सकता है। अतएव इस वैज्ञानिक मेलन-पद्धति की उपेक्षा करना नितान्त अनुचित है। ज्योतिष नक्षत्र, योग, ग्रह, राशि आदि के तत्त्वों के आधार पर व्यक्ति के स्वभाव, गुण का निश्चय करता है। वह बतलाता है कि अमुक नक्षत्र, ग्रह और राशि के प्रभाव से उत्पन्न पुरुष का अमुक नक्षत्र, ग्रह और राशि के प्रभाव से उत्पन्न नारी के साथ सम्बन्ध करना अनुकूल है। या प्रभाव-शामक सामजस्य के होने से दोनों के स्वभावगुण में समानता है। अतएव मेलन-पद्धति-द्वारा वर-कन्या की जन्मपत्रियों का विचार अवश्य करना चाहिए। यहाँ सर्वप्रथम ग्रह मिलाने की विधि लिखी जाती है।

ज्योतिष शास्त्र में स्त्रीनाशक और पतिनाशक योग बताये गये हैं, जिन में अधिकाश का उल्लेख तृतीय अध्याय में किया जा चुका है।

जन्मकुण्डली में १।४।७।८।१२वें भाव में पापग्रहों का होना पति या पत्नीनाशक कहा गया है। इन स्थानों में पुरुष की कुण्डली में मंगल होने से समंगल और स्त्री को कुण्डली में मंगल होने से मंगली संज्ञक योग होते हैं। समंगल पुरुष का मंगली स्त्री के साथ सम्बन्ध करना ठीक कहा जाता है, इसी प्रकार मंगली स्त्री का समंगल पुरुष के साथ सम्बन्ध होना अच्छा होता है। ज्योतिष में उपर्युक्त स्थानो में स्थित मंगल सब से अधिक दोष-कारक, उस से कम शनि और शनि से कम अन्य पापग्रह बताये गये हैं। इस योग को चन्द्रमा, शुक्र और सप्तमेश से भी देख लेना चाहिए। स्त्री की कुण्डली में सप्तम और अष्टम स्थान में शनि और मंगल इन दोनों का रहना बुरा माना है। सप्तमेश और अष्टमेश का एक साथ रहना पति या पत्नी की कुण्डली में अनिष्टकारक होता है। यदि यही योग दोनों की कुण्डली में हो तो अच्छा होता है।

ज्योतिष शास्त्र में एक मत यह है कि वर की कुण्डली में लग्न और शुक्र एवं कन्या की कुण्डली में लग्न और चन्द्रमा से १।४।७।८।१२वें स्थान के पापग्रहों का विचार करते हैं। वर और कन्या के अनिष्टकारी पापग्रहों की संख्या समान या कन्या से वर के ग्रहों की संख्या अधिक होनी चाहिए। कन्या का सातवाँ और आठवाँ स्थान विशेष रूप से देखना चाहिए।

वर की कुण्डली में लग्न से ६ठे स्थान में मंगल, ७वें में राहु और ८वें में शनि हो तो भार्याहन्ता योग होता है, इसी प्रकार कन्या की कुण्डली में उपर्युक्त योग हो तो पतिहन्ता योग होता है।

सौभाग्य विचार

सप्तम में शुभग्रह हो तथा सप्तमेश शुभग्रहों से युत या दृष्ट हो तो सौभाग्य अच्छा होता है। अष्टम स्थान में शनि या मंगल होना सौभाग्य को बिगाड़ता है। अष्टमेश स्वयं पापी हो या पापी ग्रहों से युत या दृष्ट हो तो सौभाग्य को खराब करता है। सौभाग्य का विचार वर और कन्या

दोनों की कुण्डली में कर लेना चाहिए। यदि कन्या का सौभाग्य वर के सौभाग्य से यथार्थ न मिलता हो तो सम्वन्ध नही करना चाहिए।

मिलान करने के अन्य नियम

१—वर के सप्तम स्थान का स्वामी जिस राशि में हो, वही राशि कन्या की हो तो दाम्पत्य-जीवन सुखमय होता है।

२—यदि कन्या की राशि वर के सप्तमेश का उच्च स्थान हो तो दाम्पत्य-जीवन में प्रेम बढता हैं। सन्तान और सुख होता है।

३—वर के सप्तमेश का नीच स्थान यदि कन्या की राशि हो तो भी वैवाहिक जीवन सुखी रहता हैं।

४—वर का शुक्र जिस राशि में हो, वही राशि यदि कन्या की हो तो विवाह कल्याणकारी होता है।

५—वर की सप्तमाश राशि यदि कन्या की राशि हो तो दाम्पत्य-जीवन सुखकारक होता है। सन्तान, ऐश्वर्य की बढती होती है।

६—वर का लग्नेश जिस राशि में हो, वही राशि कन्या की हो या वर के चन्द्रलग्न से सप्तम स्थान में जो राशि हो वही राशि यदि कन्या की हो तो दाम्पत्य-जीवन प्रेम और सुखपूर्वक व्यतीत होता है।

७—वर की राशि से सप्तम स्थान पर जिन-जिन ग्रहो की दृष्टि हो, वे ग्रह जिन-जिन राशियो में बैठे हो, उन राशियो में से कोई भी राशि कन्या की जन्मराशि हो तो दम्पति में अपूर्व प्रेम रहता है।

८—जिन कन्याओ की जन्मराशि वृष, सिह, कन्या या वृश्चिक होती हैं, उन को सन्तान कम उत्पन्न होती है।

९—यदि पुरुष की जन्मकुण्डली की षष्ठ और अष्टम स्थान की राशि कन्या की जन्मराशि हो तो दम्पति में परस्पर कलह होता है।

१०—वर-कन्या के जन्मलग्न और जन्मराशि के तत्त्वों[1] का विचार करना चाहिए। यदि दोनों की राशियो के एक ही तत्त्व हों तो मित्रता होती है। अभिप्राय यह है कि कन्या की जन्मराशि या जन्मलग्न जलतत्त्व वाली हो और वर की जन्मराशि या जन्मलग्न जल या पृथ्वीतत्त्व वाली हो तो मित्रता और प्रेम समझना चाहिए। तत्त्वो की मित्रता निम्न-प्रकार है।

पृथ्वीतत्त्व की मित्रता जलतत्त्व के साथ, अग्नितत्त्व की मित्रता वायुतत्त्व के साथ तथा पृथ्वीतत्त्व की अग्नितत्त्व के साथ; जलतत्त्व की अग्नितत्त्व के साथ और जलतत्त्व की वायुतत्त्व के साथ शत्रुता होती है। तत्त्व के इस विचार को जन्मलग्न और जन्मराशि के साथ अवश्य देख लेना चाहिए।

११—वर-कन्या के लग्नेश और राशीशो के तत्त्वों की मित्रता भी देख लेनी चाहिए। यदि दोनो के लग्नेश एक ही तत्त्व या मित्रतत्त्व के हो अथवा दोनों राशीश भी लग्नेश के समान एक ही तत्त्व या मित्रतत्त्व के हो तो दाम्पत्य-जीवन दोनो का सुख-शान्तिपूर्वक व्यतीत होता है। अन्यथा कलह, झगडा और अशान्ति रहती है।

१२—वर और कन्या की कुण्डली में सन्तान भाव का विचार अवश्य करना चाहिए। सन्तान योग तृतीय अध्याय में बताये गये हैं।

ज्योतिष में लग्न को राशि और चन्द्रमा को मन माना गया है। प्रेम मन से होता है, शरीर से नही। इसी लिए आचार्यों ने जन्मराशि मेलापक विधि का ज्ञान करना बताया है। गुण मिलान-द्वारा वर और कन्या को प्रजनन शक्ति, स्वास्थ्य, विद्या एवं आर्थिक परिस्थिति का ज्ञान करना चाहिए। इस गुण मिलान-पद्धति मे निम्न बातें होती है—(१) वर्ण (२) वश्य (३) तारा (४) योनि (५) ग्रहमैत्री (६) गणमैत्री (७) भकूट और (८) नाडी। इन में एक-एक अधिक गुण माने गये हैं। अर्थात् वर्ण का

---

१. ग्रह और राशियो के तत्त्व तृतीय अध्याय में लिखे गये है।

१, वश्यका २, ताराका ३, योनिका ४, ग्रहमैत्री का ५, गणमैत्री का ६, भकूट का ७ और नाडी का ८ गुण होता है। इस प्रकार कुल ३६ गुण होते हैं। इस में कम से कम १८ गुण मिलने पर विवाह किया जा सकता है परन्तु, नाडी और भकूट के गुण अवश्य होने चाहिए। इन के गुण विना १८ गुणो में विवाह मंगलकारी नही माना जाता है।

वर्ण जानने की विधि

मीन, वृश्चिक और कर्क ये राशियां ब्राह्मण वर्ण हैं। मेष, सिंह और धनु ये राशियां क्षत्रिय वर्ण है। मिथुन, तुला और कुम्भ ये राशियां शूद्र वर्ण हैं। कन्या, वृष और मकर ये राशियां वैश्य वर्ण हैं। इस वर्ण-विचार-में श्रेष्ठ वर्ण की कन्या त्याज्य होती है।

वर्ण ज्ञात करने का चक्र

वर्ण	ब्राह्मण	क्षत्रिय	वैश्य	शूद्र
राशि	१२।८।४	१।५।९	६।२।१०	३।७।११

वर्ण गुण वोधक चक्र

वर का वर्ण

	वर्ण	ब्रा०	क्ष०	वै०	शू०
कन्याका वर्ण,	ब्राह्मण	१	०	०	०
	क्षत्रिय	१	१	०	०
	वैश्य	१	१	१	०
	शूद्र	१	१	१	१

पहले वर और कन्या की राशि मालूम कर के वर्ण का ज्ञान करना चाहिए। पश्चात् इस चक्र के अनुसार वर्ण का गुण ज्ञात करना चाहिए।

उदाहरण—इन्दुमती और चन्द्रवश का वर्ण गुण ज्ञात करना हो तो इन्दुमती की वृष राशि हुई तथा इस का क्षत्रिय वर्ण हुआ और चन्द्रवंश की मीन राशि तथा ब्राह्मण वर्ण हुआ। मिलान किया तो एक गुण आया।

वश्य विचार

आधी मकर, मेष, सिंह, वृष और आधी धनु ये राशियाँ चतुष्पद संज्ञक हैं। वृश्चिक की सर्प संज्ञा है। तुला, मिथुन, कन्या और धनु का पहला भाग ये राशियाँ द्विपद संज्ञक है। कर्क राशि कीट संज्ञक है। मकर का उत्तरार्द्ध भाग, कुम्भ और मीन ये राशियाँ जलचर संज्ञक हैं।

वश्य वोधक चक्र

मकरका पूर्वार्द्ध, मेष, सिंह, धनु का उत्तरार्द्ध, वृष	चतुष्पद
कर्क	कीट
वृश्चिक	सर्प
तुला, मिथुन, कन्या, धनु का पूर्वार्द्ध	द्विपद
मकर का उत्तरार्द्ध, कुम्भ, मीन	जलचर

वश्य वोधक चक्र

वर का वश्य

	वश्य	च०	की०	स०	द्वि०	ज०
कन्याका वश्य	च०	२	१	१	१/२	२
	की०	१	२	१	०	१
	स०	१	१	२	०	१
	०	०	०	०	२	१
	ज०	१	१	१	१	२

उदाहरण—पूर्वोक्त इन्दुमती की वृष राशि होने से चतुष्पद वश्य हुआ और चन्द्रवंश की मीन राशि होने से जलचर वश्य हुआ। अत कोष्ठक में मिलाने से दो गुण आये।

तारा-विचार

कन्या के नक्षत्र से वर के नक्षत्र तक गिने और वर के नक्षत्र से कन्या के नक्षत्र तक गिने, गिनने से जो आवे उस में अलग-अलग ९ का भाग देने पर जो शेष बचे उसको ही तारा जानना चाहिए।

तारा गुण-बोधक चक्र

वर की तारा

कन्या की तारा	१	२	३	४	५	६	७	८	९
१	३	३	१॥	३	१॥	३	१॥	३	३
२	३	३	१॥	३	१॥	३	१॥	३	३
३	१॥	१॥	०	१॥	०	१॥	०	१॥	१॥
४	३	३	१॥	३	१॥	३	१॥	३	३
५	१॥	१॥	०	१॥	०	१॥	०	१॥	१॥
६	३	३	१॥	३	१॥	३	१॥	३	३
७	१॥	१॥	०	१॥	०	१॥	०	१॥	१॥
८	३	३	१॥	३	१॥	३	१॥	३	३
९	३	३	१॥	३	१॥	३	१॥	३	३

उदाहरण[1]—इन्दुमती का कृत्तिका नक्षत्र है और चन्द्रवंश का रेवती

---

१ वर और कन्या का जन्म नक्षत्र, नक्षत्रों के चरणों के अक्षरों से मालूम करना चाहिए।

नक्षत्र। कृत्तिका से रेवती तक गिनने से २५ संख्या आयी और रेवती से कृत्तिका तक गिनने से ४ संख्या आयी। इन दोनों में ९ का भाग दिया तो पहले स्थान में ७ संख्या शेष बची। अतः ७वीं तारा कन्या की हुई और दूसरी जगह ९ का भाग देने से चार शेष बचा। अतः वर को ४थी तारा हुई। इन दोनों को उपर्युक्त कोष्ठक में मिलाने से १॥ गुण तारा का प्राप्त हुआ। इसी प्रकार सब जगह तारा मिला लेना चाहिए।

योनि-ज्ञानविधि

अश्विनी, शतभिषा को अश्व योनि; स्वाति, हस्त की महिष योनि; पूर्वाभाद्रपद, धनिष्ठा की सिंह योनि; भरणी, रेवती की गज योनि; कृत्तिका, पुष्य की मेष (मेढा) योनि; श्रवण, पूर्वाषाढा की वानर योनि; उत्तराषाढा, अभिजित् की नेवला योनि, रोहिणी, मृगशिरा की सर्प योनि; ज्येष्ठा, अनुराधा की मृग योनि; मूल, आर्द्रा की श्वान योनि, पुनर्वसु, आश्लेषा की बिलाव योनि; पूर्वाफाल्गुनी, मघा की मूषक योनि; विशाखा, चित्रा की व्याघ्र योनि और उत्तराफाल्गुनी और उत्तराभाद्रपद की गो योनि होती है।

योनिवैर-ज्ञानविधि

गो और व्याघ्र का, महिष और अश्व का, कुत्ता और मृग का, सिंह और गज का, वानर और मेढा का, मूषक और बिलाव का, नेवला और सर्प का वैर होता है।

योनि	अश्व	महिष	सिंह	हस्ती	मेष	वानर	नकुल
नक्षत्र	अ० श०	स्वा० ह०	ध० पू० भा०	भ० रे०	पु० कृ०	श्र० पू० पा०	अभि० उ० पा०
योनि	सर्प	मृग	श्वान	बिल्ली	मूषक	व्याघ्र	गो
नक्षत्र	मृ० रो०	ज्ये० अनु०	मू० आ०	पुन० श्ले०	म० पू०फा०	वि० चि०	उ० भा० उ० फा०

योनि गुण बोधक चक्र

वर

कन्या / योनि	अश्व	गज	मेष	सर्प	श्वान	बिलाव	मूषक	गौ	महिष	व्याघ्र	मृग	वानर	नकुल	सिंह
अश्व	४	२	३	२	२	३	३	३	०	१	३	२	२	१
गज	२	४	३	२	२	३	३	३	३	१	३	२	२	०
मेष	३	३	४	२	२	३	३	३	०	१	३	०	२	१
सर्प	२	२	२	४	२	१	१	२	२	२	२	१	०	२
श्वान	२	२	२	२	४	१	२	२	२	२	०	२	२	२
बिलाव	३	३	३	१	१	४	०	३	३	२	३	२	२	२
मूषक	३	३	३	१	२	०	४	३	३	२	३	२	१	१
गौ	३	३	३	२	२	३	३	३	३	०	३	२	२	१
महिष	०	३	३	२	२	३	३	४	४	१	१	२	२	१
व्याघ्र	१	१	१	२	२	२	२	१	१	४	१	२	२	१
मृग	३	३	३	२	०	३	२	३	३	१	४	२	२	३
वानर	२	२	०	१	२	२	२	२	२	२	२	४	२	२
नकुल	२	२	२	०	२	२	१	२	२	२	२	२	४	२
सिंह	१	०	१	२	२	२	२	१	१	२	१	२	२	४

उदाहरण—इन्दुमती का कृत्तिका नक्षत्र होने से सर्प योनि हुई और चन्द्रवंश का रेवती नक्षत्र होने से गज योनि हुई। मिलाने से दो गुण प्राप्त हुए। इसी प्रकार अन्य जगह भी मिला लेना चाहिए।

ग्रह-मैत्री

सूर्य के मंगल, वृहस्पति और चन्द्रमा मित्र, बुध सम, शुक्र और शनैश्चर शत्रु हैं। चन्द्रमा के बुध और सूर्य मित्र; मंगल, वृहस्पति, शुक्र और शनि सम और शत्रु कोई नहीं है। मंगल के चन्द्रमा, वृहस्पति और सूर्य मित्र; बुध शत्रु; शुक्र और शनैश्चर सम हैं। बुध के शुक्र और सूर्य मित्र; चन्द्रमा शत्रु; वृहस्पति, शनैश्चर और मंगल सम हैं। वृहस्पति के सूर्य, मंगल और चन्द्रमा मित्र, बुध और शुक्र शत्रु तथा शनैश्चर सम है। शुक्र के बुध और शनैश्चर मित्र; चन्द्रमा और सूर्य शत्रु तथा मगल और वृहस्पति सम हैं। शनैश्चर के शुक्र और बुध मित्र, सूर्य, चन्द्रमा और मगल शत्रु तथा वृहस्पति सम है।

ग्रह-मैत्री गुण बोधक चक्र

वर का राशि-स्वामी

कन्या का राशि-स्वामी	रा. स्वा	सू०	च०	मं०	बु०	वृ०	शु०	श०	ग्रह
	सू०	५	५	५	४	५	०	०	गुण विवरण
	चं०	५	५	४	१	४	॥	॥	
	मं०	५	४	५	॥	५	३	॥	
	बु०	४	१	॥	५	॥	५	४	
	वृ०	५	४	५	॥	५	॥	३	
	शु०	०	॥	३	५	॥	५	५	
	श०	०	॥	॥	४	३	५	५	

उदाहरण—इन्दुमती की वृष राशि होने से, राशि-स्वामी शुक्र हुआ और चन्द्रवंश की मीन राशि होने से राशि-स्वामी वृहस्पति हुआ। अतः

उपर्युक्त कोष्ठक में वर और कन्या के राशि-स्वामियों को मिलाने से ½ गुण आया। इसी प्रकार सब जगह ग्रहमैत्री गुण को लाना चाहिए।

गण जानने की विधि

मघा, आश्लेषा, धनिष्ठा, ज्येष्ठा, मूल, शतभिषा, कृत्तिका, चित्रा और विशाखा ये नक्षत्र राक्षसगण, तीनों पूर्वा, तीनों उत्तरा, रोहिणी, भरणी और आर्द्रा ये नक्षत्र मनुष्यगण, और अनुराधा, पुनर्वसु, मृगशिरा, श्रवण, रेवती, स्वाति, हस्त, अश्विनी और पुष्य ये नक्षत्र देवतागण संज्ञक हैं।

गण बोधक चक्र

म०	आश्ले०	घ०	ज्ये०	मू०	श०	कृ०	चि०	वि०	राक्षस
पू०भा०	पू०षा०	पू०फा०	उ०भा०	उ०षा०	उ०फा०	रो०	भ०	आ०	मनुष्य
अनु०	पुन०	मृ०	श्र०	रे०	स्वा०	ह०	अ०	पु०	देवता

गण-गुण-बोधक चक्र

वर का गण

	गण	दे०	म०	रा०
कन्याका गण	दे०	६	५	१
	म०	६	६	०
	रा०	०	०	६

उदाहरण—इन्दुमती का कृत्तिका नक्षत्र होने से राक्षस गण हुआ और चन्द्रवश का रेवती नक्षत्र होने से देवगण हुआ। उपर्युक्त कोष्ठक में वर और कन्या के गण को मिलाने से शून्य गुण आया। इसी प्रकार अन्यत्र भी गण मिलाना चाहिए।

भकूट जानने की विधि और उस का फल

कन्या की जन्मराशि से वर की जन्मराशि तक गिनना चाहिए तथा इसी प्रकार वर की जन्मराशि से कन्या की जन्मराशि तक भी गिनना चाहिए। यदि गिनने से दोनो की राशि छठी और आठवी हो तो दोनो की मृत्यु, नवमी और पाँचवी हो तो सन्तान की हानि तथा दूसरी और बारहवी हो तो निर्धन होते हैं। इस से भिन्न राशियो में दोनो सुखी रहते हैं।

भकूट-गुण बोधक चक्र

वर की राशि

कन्या की राशि	राशि	मे०	वृ०	मि	क०	सि.	क०	तु०	वृ०	ध०	म०	कुं.	मी
	मे०	७	०	७	७	०	०	७	०	०	७	७	०
	वृ०	०	७	०	७	७	०	०	७	०	०	७	७
	मि०	७	०	७	०	७	७	०	०	७	०	०	७
	क०	७	७	०	७	०	७	७	०	०	७	०	०
	सिं०	०	०	७	०	७	०	७	७	०	०	७	०
	क०	०	०	७	७	०	७	०	७	७	०	०	७
	तु०	७	०	०	७	७	०	७	०	७	७	०	०
	वृ०	०	७	०	०	७	७	०	७	०	७	७	०
	ध०	०	०	७	७	०	७	७	०	७	०	७	७
	म०	७	०	०	७	०	०	७	७	०	७	०	७
	कुं०	७	७	०	०	७	०	०	७	७	०	७	०
	मी०	०	७	७	७	०	७	०	०	७	७	०	७

उदाहरण—इन्दुमती की वृष राशि और चन्द्रवंश की मीन राशि है। इन को कोष्ठक में मिलाया तो ७ गुण भकूट का हुआ। इसी प्रकार अन्यत्र भी भकूट मिलाना चाहिए।

नाड़ी जानने की विधि

ज्येष्ठा, मूल, आर्द्रा, पुनर्वसु, शतभिषा, पूर्वाभाद्रपद, उत्तराफाल्गुनी, हस्त, अश्विनी इन नक्षत्रो की आदि नाडी, मृगशिरा, चित्रा, अनुराधा, भरणी, धनिष्ठा, पूर्वाषाढा, पूर्वाफाल्गुनी, उत्तराभाद्रपद इनकी मध्य नाडी और स्वाति, विशाखा, कृत्तिका, रोहिणी, आश्लेषा, मघा, उत्तराषाढा, श्रवण, रेवती इन नक्षत्रों की अन्त्य नाड़ी होती है।

नाड़ी का फल

यदि आदि और अन्त्य नाड़ी के नक्षत्र वर और कन्या के हो तो विवाह अशुभ होता है। मध्य नाडीके नक्षत्र होने पर दोनो को मृत्यु होती है।

नाड़ी बोधक चक्र

अ०	आ	पुन०	उ०फा०	ह०	ज्ये०	मू०	श०	पू०भा०	आदि नाडी
भ०	मृ०	पु०	पू० फा०	चि.	अनु०	पू. षा	ध०	उ० भा०	मध्य नाडी
कृ०	रो.	आश्ले	म०	स्वा	वि०	उ षा	श्र०	रे०	अन्त्य नाडी

नाडी-गुण बोधक चक्र

वर की नाडी

	नाडी	आ०	म०	अ०
कन्या की नाडी	आ०	०	८	८
	म०	८	०	८
	अ०	८	८	०

उदाहरण—इन्दुमती का कृतिका नक्षत्र होने से अन्त्य नाड़ी हुई और चन्द्रवंश का रेवती नक्षत्र होने से अन्त्य हुई। कोष्ठक में दोनो की नाडी मिलायी तो शून्य गुण प्राप्त हुआ। इसी प्रकार अन्यत्र भी मिलान करें। कुमारी इन्दुमती और कुमार चन्द्रवंश के गुण निम्न प्रकार सिद्ध हुए।

वर्ण-गण-योनि आदि बोधक शतपदचक्र

नक्षत्राणि	अ	भ	कृ	रो	मृ	आ	पु	पु	आश्ले	म	पू.फा	उ.फा	ह
अक्षर	चू चे चो ला	ली लू ले लो	अ इ उ ए	ओ वा वी वु	वे वो का की	कु घ ङ छ	के को हा ही	हु हे हो डा	डी डू डे डो	मा मी मू मे	मो टा टी टू	टे टो पा पी	पू ष ण ठ
रा	मे	मे	मे १ वृ ३	वृ	वृ २ मि २	मि	मि ३ क १	क	क	सिं	सिं	सिं १ क ३	क
वर्ण	क्ष	क्ष	क्ष १ वै ३	वै	वै २ शू २	शू	शू ३ ब्रा १	ब्रा	ब्रा	क्ष	क्ष	क्ष १ वै ३	वै
वश्य	च	च	च	च	च २ न २	न	न ३ ज १	ज	ज	व	व	व १ न ३	न
योनी	अश्व	गज	छाग	सर्प	सर्प	श्वान	मार्जार	छाग	मार्जार	मूषक	मूषक	गौ	महिष
राशीश	मं	मं	मं १ शु ३	शु	शु २ बु २	बु	बु ३ चं १	चं	चं	सू	सू	सू १ बु ३	बु
गण	दे	म	रा	म	दे	म	दे	दे	रा	रा	म	म	दे
नाडी	आ	म	अं	अं	म	आ	आ	म	अं	अं	म	आ	आ

नक्षत्राणि	चि	स्वा	वि	अ.	ज्ये	मू	पू.षा	उ.षा	श्र	ध	श	पू.भा	उ.भा	रे
अक्षर	पे पो रा री	रू रे रो ता	ती तू ते तो	ना नी नू ने	नो या यी यू	ये यो भा भी	भू धा फा ढा	भे भो जा जी	खी खू खे खो	गा गी गू गे	गो सा सी सू	से सो दा दी	दू थ झ ञ	दे दो चा ची
रा	क २ तु २	तु	तु ३ वृ १	वृ	वृ	ध	ध	ध १ म ३	म	म २ कुं २	कुं	कुं ३ मी १	मी	मी
वर्ण	वै २ शू २	शू	शू ३ ब्रा १	ब्रा	ब्रा	क्ष	क्ष	क्ष १ वै ३	वै	वै २ शू २	शू	शू ३ ब्रा १	ब्रा	ब्रा
वश्य	न	न	न ३ की १	की	की	न	।।।म ३।।च	च	।।।च २।ज	ज २ न २	न	न ३ ज १	ज	ज
योनी	व्याघ्र	महिष	व्याघ्र	मृग	मृग	श्वान	मर्कट	नकुल	मर्कट	सिंह	अश्व	सिंह	गौ	गज
राशीश	बु २ शु २	शु	शु ३ मं १	मं	मं	बृ	बृ	बृ १ श ३	श	श	श	श ३ बृ १	बृ	बृ
गण	रा	दे	रा	दे	रा	रा	म	म	दे	रा	रा	म	म	दे
नाडी	म	अं	अं	म	आ	आ	म	अं	अं	म	आ	आ	म	अं

वर	गुण	कन्या
ब्राह्मण वर्ण	१	क्षत्रियवर्ण
जलचर वश्य	२	चतुष्पद वश्य
चतुर्थी तारा	१॥	सातवीं तारा
गजयोनि	२	सर्पयोनि
राशीश वृहस्पति	॥	राशीश शुक्र
देवगण	०	राक्षस गण
मीनराशि (भकूट)	७	वृषराशि (भकूट)
अन्त्य नाडी	०	अन्त्य नाडी

इस प्रकार कुल १४ गुण प्राप्त हुए। किन्तु कम से कम १८ गुण होना परमावश्यक था। अत गुणो की दृष्टि से कुण्डली नही मिली।

मुहूर्त्त विचार

प्राचीन काल से ही प्रत्येक मागलिक कार्य के लिए शुभ समय का विचार किया जाता रहा है। क्योकि समय का प्रभाव जड और चेतन सभी प्रकार के पदार्थों पर पडता हैं, इसी लिए हमारे आचार्यों ने गर्भाधानादि अन्यान्य संस्कार एव प्रतिष्ठा, गृहप्रवेश, यात्रा आदि सभी मागलिक कार्यो के लिए मुहूर्त्त का आश्रय लेना आवश्यक वतलाया है। अतएव नीचे प्रमुख आवश्यक मुहूर्त्त दिये जाते हैं।

सूतिका स्नान मुहूर्त्त

रेवती, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपद, रोहिणी, मृगशिर, हस्त, स्वाति, अश्विनी और अनुराधा इन नक्षत्रो में, रवि, मंगल और वृहस्पति इन वारों में प्रसूता स्त्री को स्नान कराना शुभ है। आर्द्रा, पुनर्वसु,

पुष्य, श्रवण, मघा, भरणी, विशाखा, कृत्तिका, मूल और चित्रा इन नक्षत्रों में बुध और शनि इन वारो में एवं अष्टमी, षष्ठी, द्वादशी, चतुर्थी, नवमी और चतुर्दशी इन तिथियो में प्रसूता स्त्री को स्नान कराना वर्जित है।

विशेष—प्रत्येक शुभ कार्य में व्यतीपात योग, भद्रा, वैधृति नामक योग, क्षयतिथि, वृद्धितिथि, क्षयमास, अधिकमास, कुलिक, अर्द्धयाम, महापात, विष्कम्भ और वज्र के आदि की तीन-तीन घटियाँ, परिघ योग का पूर्वार्द्ध, शूलयोग की पाँच घटियाँ, गण्ड और अतिगण्ड की छह-छह घटियाँ एवं व्याघात योग की नौ घटियाँ त्याज्य हैं।

स्तन-पान मुहूर्त्त

अश्विनी, रोहिणी, पुष्य, पुनर्वसु, उत्तराफाल्गुनी, हस्त, चित्रा, अनुराधा, मूल, उत्तराषाढा, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, उत्तराभाद्रपद और रेवती इन नक्षत्रों; सोम, बुध, गुरु और शुक्र इन वारों में तथा शुभ लग्नो में स्तनपान कराना चाहिए।

जातकर्म और नामकर्म मुहूर्त्त

यदि किसी कारणवश जन्म-काल में जातकर्म नही किया गया हो तो अष्टमी, चतुर्दशी, अमावस्या, पौर्णमासी, सूर्यसंक्रान्ति तथा चतुर्थी और नवमी छोड़ अन्य तिथियो में; सोम, बुध, गुरु और शुक्र इन वारों में, जन्म काल से ग्यारहवें या वारहवें दिन में; मृगशिर, रेवती, चित्रा, अनुराधा, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपद, रोहिणी, श्रवण, धनिष्ठा और शतभिषा इन नक्षत्रों में जातकर्म और नामकर्म करना शुभ है। जैन मान्यता के अनुसार नामकर्म जन्मदिन से ४५ दिन तक किया जा सकता है।

दोलारोहण मुहूर्त्त

रेवती, मृगशिर, चित्रा, अनुराधा, हस्त, अश्विनी, पुष्य, अभिजित्,

उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपद और रोहिणी इन नक्षत्रों में तथा सोम, बुध, गुरु और शुक्र इन वारों में पहले-पहल बालक को पालने में झुलाना शुभ है।

भूम्युपवेशन मुहूर्त्त

रोहिणी, मृगशिर, ज्येष्ठा, अनुराधा, हस्त, अश्विनी, पुष्य, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा और उत्तराभाद्रपद इन नक्षत्रों में, चतुर्थी, नवमी और चतुर्दशी को छोड शेष तिथियो में एवं सोम, बुध, गुरु और शुक्र इन वारो में बालक को भूमि पर बैठाना शुभ है।

बालक को बाहर निकालने का मुहूर्त्त

अश्विनी, मृगशिर, पुनर्वसु, पुष्य, हस्त, अनुराधा, श्रवण, धनिष्ठा और रेवती इन नक्षत्रो में द्वितीया, पचमी, सप्तमी, दशमी, एकादशी और त्रयोदशी इन तिथियों में एव सोम, बुध, गुरु, शुक्र और रवि इन वारो में बालक को पहले-पहल घर से बाहर निकालना शुभ है।

अन्नप्राशन मुहूर्त्त

चतुर्थी, नवमी, चतुर्दशी, प्रतिपदा, षष्ठी, एकादशी, अष्टमी, अमावस्या और द्वादशी तिथि को छोड अन्य तिथियो में; जन्मराशि अथवा जन्मलग्न से आठवी राशि, आठवाँ नवाश, मीन, मेष और वृश्चिक को छोड अन्य लग्नों में; तीनों उत्तरा, रोहिणी, मृगशिर, रेवती, चित्रा, अनुराधा, हस्त, अश्विनी, पुष्य, अभिजित्, स्वाति, पुनर्वसु, श्रवण, धनिष्ठा और शतभिषा नक्षत्र में, छठे मास से ले कर सम मास में अर्थात् छठे, आठवें, दशवें इत्यादि मासों में बालको का और पाँचवें मास से ले कर विषम मासो में अर्थात् पाँचवें, सातवें, नवें इत्यादि मासो में कन्याओं का अन्नप्राशन शुभ होता है। परन्तु अन्नप्राशन शुक्लपक्ष में दोपहर के पूर्व कराना चाहिए।

अन्नप्राशन के लिए लग्न शुद्धि

लग्न से पहले, चौथे, सातवें और तीसरे स्थान में शुभग्रह हों; दसवें स्थान में कोई ग्रह न हो; तृतीय, षष्ठ और एकादश स्थान में पापग्रह हों और लग्न, आठवें तथा छठे स्थान को छोड़ अन्य स्थानो में चन्द्रमा स्थित हो ऐसे लग्न में अन्नप्राशन शुभ होता है।

अन्नप्राशन मुहूर्त्त चक्र

नक्षत्र	रो० उ०भा० उ०षा०उ०फा० रे०चि० अनु०हृ०पु०अश्वि० अभि० पुन० स्वा० श्र० ध० श०
वार	सो० बु० बृ० शु०
तिथि	२।३।५।७।१०।१३।१५
लग्न	२।३।४।५।६।७।८।९।१०।११
लग्न शुद्धि	शुभग्रह १।४।७।९।५।३ में; पापग्रह ३।६।११ इन स्थानो में

कर्णवेध मुहूर्त्त

चैत्र, पौष, आषाढ़ शुक्ल एकादशी से कार्त्तिक शुक्ल एकादशी तक, जन्ममास, रिक्तातिथि (४।९।१४), सम वर्ष और जन्मतारा को छोड़ कर जन्म से छठे, सातवे, आठवें महीने में अथवा बारहवें या सोलहवें दिन, बुध, गुरु, शुक्र, सोमवार में और श्रवण, धनिष्ठा, पुनर्वसु, मृगशिर, रेवती, चित्रा, अनुराधा, हस्त, अश्विनी और पुष्य नक्षत्र में बालक का कर्णवेध शुभ होता है।

कर्णवेध मुहूर्त्त चक्र

नक्षत्र	श्र० ध० पुन० मृ० रे० चि० अनु० ह० अश्वि० पुन० अभि०
वार	सो० बु० बृ० शु०
तिथि	१।२।३।५।६।७।१०।११।१२।१३।१५
लग्न	२।३।४।६।७।९।१२
लग्न शुद्धि	शुभग्रह १।३।४।५।७।९।१०।११ इन स्थानो में, पापग्रह ३।६।११ इन स्थानों में शुभ होते हैं। अष्टम में कोई ग्रह न हो। यदि गुरु लग्न में हो तो विशेष उत्तम होता है।

चूडाकर्म (मुण्डन) का मुहूर्त्त

जन्म से तीसरे, पाँचवें, सातवें इत्यादि विषम वर्षों में, अष्टमी, द्वादशी, चतुर्थी, नवमी, चतुर्दशी, प्रतिपदा, षष्ठी, अमावस्या, पूर्णमासी और सूर्य-सक्रान्ति को छोड अन्य तिथियों में, चैत्र महीने को छोड उत्तरायण में; बुध, चन्द्र, शुक्र और बृहस्पति वारों में, शुभग्रहो के लग्न अथवा नवांश में, जिस का मुण्डन कराना हो उस के जन्मलग्न अथवा जन्मराशि से आठवीं राशि को छोड कर अन्य लग्न व राशि में, लग्न से आठवें स्थान में शुक्र को छोड अन्य ग्रहो के न रहते, ज्येष्ठा, मृगशिर, रेवती, चित्रा, स्वाति, पुनर्वसु, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, हस्त, अश्विनी और पुष्य नक्षत्र में, लग्न से तृतीय, एकादश और षष्ठ स्थान में पापग्रहों के रहते मुण्डन कराना शुभ है।

मुण्डन मुहूर्त्त चक्र

नक्षत्र	ज्ये० मृ० रे० चि० हृ० अश्वि० पु० अभि० स्वा० पुन० श्र० ध० श०
वार	सो० बु० बृ० शु०
तिथि	२।३।५।७।१०।११।१३
लग्न	२।३।४।६।९।१२
लग्नशुद्धि	शुभग्रह १।२।४।५।७।९।१० इन स्थानोंमें शुभ होते हैं। पापग्रह ३।६।११ में शुभ है। अष्टम में कोई ग्रह न हो।

अक्षरारम्भ मुहूर्त्त

जन्म से पाँचवें वर्ष में, एकादशी, द्वादशी, दशमी, द्वितीया, षष्ठी, पञ्चमी और तृतीया तिथि में, उत्तरायण में; हस्त, अश्विनी, पुष्य, श्रवण, स्वाति, रेवती, पुनर्वसु, आर्द्रा, चित्रा और अनुराधा नक्षत्र में; मेष, मकर, तुला और कर्क को छोड अन्य लग्न में बालक को अक्षरारम्भ कराना शुभ है।

अक्षरारम्भ मुहूर्त्त चक्र

नक्षत्र	हृ० अश्वि० पु० श्र० स्वा० रे० पुन० चि० अनु०
वार	सो० बु० शु० श०
तिथि	२।३।५।६।१०।११।१२
लग्न	२।३।६।१२ इन लग्नों में परन्तु अष्टम में कोई ग्रह न हो।

विद्यारम्भ का मुहूर्त्त

मृगशिर, आर्द्रा, पुनर्वसु, हस्त, चित्रा, स्वाति, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, अश्विनी, मूल, तीनों पूर्वा (पूर्वाभाद्रपद पूर्वाषाढा, पूर्वाफाल्गुनी), पुष्य, आश्लेषा इन नक्षत्रो में, रवि, गुरु, शुक्र इन वारो में, षष्ठी, पचमी, तृतीया, एकादशी, द्वादशी, दशमी, द्वितीया इन तिथियो में और लग्न से नवमें, पाँचवें, पहले, चौथे, सातवें, दसवें स्थान में शुभग्रहो के रहने पर विद्यारम्भ करना शुभ है। किसी-किसी आचार्य के मत से तीनों उत्तरा, रेवती और अनुराधा में भी विद्यारम्भ करना शुभ कहा गया है।

वाग्दान मुहूर्त्त

उत्तराषाढा, स्वाति, श्रवण, तीनो पूर्वा, अनुराधा, धनिष्ठा, कृत्तिका, रोहिणी, रेवती, मूल, मृगशिरा, मघा, हस्त, उत्तराफाल्गुनी और उत्तराभाद्रपद नक्षत्रों में वाग्दान करना शुभ है।

विवाह मुहूर्त्त

मूल, अनुराधा, मृगशिर, रेवती, हस्त, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपद, स्वाति, मघा, रोहिणी इन नक्षत्रों में और ज्येष्ठ, माघ, फाल्गुन, वैशाख, मार्गशीर्ष, आषाढ इन महीनो में विवाह करना शुभ है।

विवाह में कन्या के लिए गुरुबल, वर के लिए सूर्यबल और दोनों के लिए चन्द्रबल का विचार करना चाहिए।

प्रत्येक पचाग में विवाह के मुहूर्त लिखे रहते है। इन में शुभ-सूचक खडी रेखाएँ और अशुभ-सूचक टेढी रेखाएँ होती है। ज्योतिष में दस दोष बताये गये हैं, जिस विवाह के मुहूर्त में जितने दोष नही होते है, उतनी ही खडी रेखाएँ होती हैं और दोषसूचक टेढी रेखाएँ मानी जाती हैं। सर्वश्रेष्ठ मुहूर्त दस रेखाओ का होता है, मध्यम सात-आठ रेखाओ का और जघन्य पाँच रेखाओ का होता है। इस से कम रेखाओ के मुहूर्त को निन्द्य कहते हैं।

गुरुबल विचार

बृहस्पति कन्या की राशि से नवम, पंचम, एकादश, द्वितीय और सप्तम राशि में शुभ; दशम, तृतीय, षष्ठ और प्रथम राशि में दान देने से शुभ और चतुर्थ, अष्टम, द्वादश राशि में अशुभ होता है।

सूर्यबल विचार

सूर्य वर की राशि से तृतीय, षष्ठ, दशम, एकादश राशि में शुभ; प्रथम द्वितीय, पंचम, सप्तम, नवम राशि में दान देने से शुभ और चतुर्थ, अष्टम, द्वादश राशि में अशुभ होता है।

चन्द्रबल विचार

चन्द्रमा वर और कन्या की राशि से तीसरा, छठा, सातवाँ, दसवाँ, ग्यारहवाँ शुभ; पहला, दूसरा, पाँचवाँ, नौवाँ दान देने से शुभ और चौथा, आठवाँ, बारहवाँ अशुभ होता है।

विवाह में अन्धादि लग्न

दिन मे तुला और वृश्चिक; रात्रि में तुला और मकर बधिर हैं। तथा दिन में सिंह, मेष, वृष और रात्रि में कन्या, मिथुन, कर्क, अन्ध संज्ञक है। दिन में कुम्भ और रात्रि में मीन ये दो लग्न पंगु होते हैं। किसी-किसी आचार्य के मत से धनु, तुला, वृश्चिक ये अपराह्न में बधिर हैं; मिथुन, कर्क, कन्या ये लग्न रात्रि में अन्धे हैं; सिंह, मेष, वृष ये लग्न दिन में अन्धे हैं और मकर, कुम्भ, मीन ये लग्न प्रातःकाल तथा सायंकाल में कुबडे होते हैं।

अन्धादि लग्नों का फल

यदि विवाह बधिर लग्न में हो तो वर कन्या दरिद्र; दिवान्ध लग्न में हो तो कन्या विधवा; रात्र्यन्ध लग्न में हो तो सन्तति मरण और पंगु में हो तो धन-नाश होता है।

विवाह के शुभ लग्न

तुला, मिथुन, कन्या, वृष एवं धनु लग्न शुभ हैं, अन्य लग्न मध्यम हैं।

लग्न शुद्धि

लग्न से बारहवें शनि, दसवें मंगल, तीसरे शुक्र, लग्न में चन्द्रमा और क्रूर ग्रह अच्छे नहीं होते। लग्नेश, शुक्र, चन्द्रमा छठे और आठवें में शुभ नही होते। लग्नेश और सौम्य ग्रह आठवें में अच्छे नही होते हैं और सातवें में कोई भी ग्रह शुभ नही होता है।

ग्रहों का बल

प्रथम, चौथे, पाँचवें, नवें और दसवें स्थान में स्थित बृहस्पति सब दोषो को नष्ट करता है। सूर्य ग्यारहवें स्थान में स्थित तथा चन्द्रमा वर्गोत्तम लग्न में स्थित नवांश दोषो को नष्ट करता है। बुध लग्न, चौथे, पाँचवें, नवें और दसवें स्थान में हो तो सौ दोषो को दूर करता है। यदि शुक्र इन्ही स्थानो में हो तो दो सौ दोषों को दूर करता है। यदि इन्हीं स्थानों में बृहस्पति स्थित हो तो एक लाख दोषो को दूर करता है। लग्न का स्वामी अथवा नवांश का स्वामी यदि लग्न, चौथे, दसवें, ग्यारहवें स्थान में स्थित हो तो अनेक दोषों को शीघ्र ही भस्म कर देता है।

वधूप्रवेश मुहूर्त्त

विवाह के दिन से १६ दिन के भीतर नव, सात, पाँच दिन में वधूप्रवेश शुभ है। यदि किसी कारण से १६ दिन के भीतर वधूप्रवेश न हो सके तो विषम मास, विषम दिन और विषम वर्ष में वधूप्रवेश करना चाहिए।

तीनों उत्तरा (उत्तराभाद्रपद, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा), रोहिणी, अश्विनी, पुष्य, हस्त, चित्रा, अनुराधा, रेवती, मृगशिर, श्रवण, धनिष्ठा,

मूल, मघा और स्वाती नक्षत्र में; रिक्ता (४।९।१४) को छोड शुभ तिथियो-में और रवि, मंगल, बुध छोड़ शेष वारो में वधूप्रवेश करना शुभ है।

द्विरागमन मुहूर्त्त

विषम (१।३।५।७) वर्षों में; कुम्भ, वृश्चिक, मेष राशियो के सूर्य में; गुरु, शुक्र, चन्द्र इन वारो में; मिथुन, मीन, कन्या, तुला, वृष इन लग्नो में और अश्विनी, पुष्य, हस्त, उत्तराषाढा, उत्तराफाल्गुनी, उत्तरा-भाद्रपद, रोहिणी, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, पुनर्वसु, स्वाती, मूल, मृग-शिरा, रेवती, चित्रा, अनुराधा इन नक्षत्रो में द्विरागन शुभ है। द्विरागमन में सम्मुख शुक्र त्याज्य है। रेवती नक्षत्र के आदि मृगशिरा के अन्त तक चन्द्रमा के रहने से शुक्र अन्ध माना जाता है। इन दिनो में द्विरागमन होने से दोष नही होता। शुक्र का दक्षिण भाग में रहना भी अशुभ है।

द्विरागमन मुहूर्त्त चक्र

समय	१।३।५।७।९ विवाह के बाद इन वर्षों में कुं०वृ०मे० के सूर्य में
नक्षत्र	अश्वि० पु०ह०उ० षा० उ० भा० उ० फा० रो० श्र०ध० श० पुन० स्वा० मू० मृ० रे० चि० अनु० इन नक्षत्रों में।
वार और तिथि	बु० वृ० शु० सो०—१।२।३।५।७।१०।११।१२।१३।१५ इन तिथियो में।
लग्न और उन की शुद्धि	२।३।६।७।१२ इन लग्नों में; लग्न से १।२।३।५।७।१०।११ इन स्थानों में शुभग्रह और ३।६।११ में पापग्रह शुभ होते है।

यात्रा मुहूर्त्त

अश्विनी, पुनर्वसु, अनुराधा, मृगशिरा, पुष्य, रेवती, हस्त, श्रवण और धनिष्ठा ये नक्षत्र यात्रा के लिए उत्तम; रोहिणी, उत्तराफाल्गुनी,

उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपद, पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढा, पूर्वाभाद्रपद्र, ज्येष्ठा, मूल और शतभिषा ये नक्षत्र मध्यम एवं भरणी, कृत्तिका, आर्द्रा, आश्लेषा, मघा, चित्रा, स्वाती और विशाखा ये नक्षत्र निन्द्य हैं। तिथियों में द्वितीया तृतीया, पचमी, सप्तमी, दशमी, एकादशी और त्रयोदशी शुभ बतायी गयी हैं। यात्रा के लिए वारशूल, नक्षत्रशूल, दिक्शूल, चन्द्रवास और राशि से चन्द्रमा का विचार करना आवश्यक हैं। कहा भी गया है—

"दिशाशूल ले आओ वामें राहु योगिनी पीठ
सम्मुख लेवे चन्द्रमा, लावे लक्ष्मी लूट"

वार शूल और नक्षत्र शूल

ज्येष्ठा नक्षत्र, सोमवार तथा शनिवार को पूर्व, पूर्वाभाद्रपद नक्षत्र और गुरुवार को दक्षिण, शुक्रवार और रोहिणी नक्षत्र को पश्चिम और मगल तथा बुधवार को उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र में उत्तर दिशा को नहीं जाना चाहिए। यात्रा में चन्द्रमा का विचार अवश्य करना चाहिए। दिशाओं में चन्द्रमा का वास निम्न प्रकार से जाना जाता है।

चन्द्रवास विचार

मेष, सिंह और धनु राशि का चन्द्रमा पूर्व दिशा में; वृष, कन्या और मकर राशि का चन्द्रमा दक्षिण दिशा में, तुला, मिथुन और कुम्भ राशि का चन्द्रमा पश्चिम दिशा में, कर्क, वृश्चिक और मीन का चन्द्रमा उत्तर दिशा में वास करता है।

चन्द्र फल

सम्मुख चन्द्रमा धनलाभ करने वाला, दक्षिण चन्द्रमा सुख-सम्पत्ति देने वाला, पृष्ठ चन्द्रमा शोक-सन्ताप देने वाला और वाम चन्द्रमा धननाश करने वाला होता है।

यात्रा मुहूर्त्त चक्र

नक्षत्र	अश्वि० पुन० अनु० मृ० पु० रे० ह० श्र० ध० ये उत्तम हैं। रो० उ० षा० उ० भा० उ० फा० पू० षा० पू० भा० ज्ये० मू० श० ये मध्यम हैं। भ० कृ० आ० आश्ले० म० चि० स्वा० वि० ये निन्द्य हैं।
तिथि	२।३।५।७।१०।११।१३

चन्द्रवास चक्र

पूर्व	पश्चिम	दक्षिण	उत्तर
मेष	मिथुन	वृष	कर्क
सिंह	तुला	कन्या	वृश्चिक
धनु	कुम्भ	मकर	मीन

समय शूल चक्र

पूर्व	प्रातःकाल
पश्चिम	सायंकाल
दक्षिण	मध्याह्नकाल
उत्तर	अर्धरात्रि

दिक्शूल चक्र

पूर्व	दक्षिण	पश्चिम	उत्तर
चं० श०	गु०	सू० शु०	मं० बु०

योगिनी चक्र

पू०	आ०	द०	नै०	प०	वा०	उ०	ई०	दिशा
९।१	३।११	१३।५	१२।४	१४।६	१५।७	१०।२	३०।८	तिथि

गृहारम्भ मुहूर्त्त

मृगशिर, पुष्य, अनुराधा, धनिष्ठा, शतभिषा, चित्रा, हस्त, स्वाती, रोहिणी, रेवती, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपद इन नक्षत्रो में, चन्द्र, बुध, गुरु, शुक्र, शनि इन वारो में और द्वितीया, तृतीया, पंचमी, सप्तमी, दशमी, एकादशी, त्रयोदशी इन तिथियो में गृहारम्भ श्रेष्ठ होता है।

नींव खोदने के लिए दिशा का विचार

देवालय, जलाशय और घर बनाते समय नीव खोदने के लिए दिशा का विचार करना आवश्यक होता है। देवालय की नीव खुदवाने के समय मीन, मेष और वृष का सूर्य हो तो राहु का मुख ईशान कोण में; मिथुन, कर्क और सिंह में सूर्य हो तो राहु का मुख वायव्य कोण में, कन्या, तुला और वृश्चिक में सूर्य हो तो नैर्ऋत्यकोणमें एवं धनु, मकर और कुम्भ में सूर्य हो तो अग्निकोण में राहु का मुख रहता है। गृह बनवाना हो तो सिंह, कन्या और तुला के सूर्य में राहु का मुख ईशानकोण में, वृश्चिक, धनु और मकर के सूर्य में राहु का मुख वायव्यकोण में, कुम्भ, मीन और मेष राशि के सूर्य में राहु का मुख नैर्ऋत्य कोण में एवं वृष, मिथुन और कर्क राशि के सूर्य में राहु का मुख आग्नेयकोण में रहता है। जलाशय—कुँआ, तालाब खुदवाने के समय मकर, कुम्भ और मीन राशि के सूर्य में राहु का मुख ईशानकोण में, मेष, वृष और मिथुन के सूर्य में राहु का मुख वायव्यकोण में, कर्क, सिंह और कन्या के सूर्य में राहु का मुख नैर्ऋत्य-कोण में एवं तुला, वृश्चिक और धनु के सूर्य में राहु का मुख आग्नेयकोण में रहता है। नीव या जलाशय आदि खोदते समय मुख भाग को छोड कर पृष्ठ भाग से खोदना शुभ होता है।

राहुचक्र[1]

राहु	ईशान (पूर्व-उत्तर)	वायव्य (उत्तर-पश्चिम)	नैर्ऋत्य (दक्षिण-पश्चिम)	आग्नेय (पूर्व-दक्षिण)	शुभ
देवालयारम्भ	मी० मे० वृ०	मि० क० सि०	क० तु० वृ०	ध० म० कुं०	सूर्य स्थिति
गृहारम्भ	सि० क० तु०	वृ० ध० म०	कु० मी० मे०	वृ० मि० क०	सूर्य स्थिति
जलाशयारम्भ	म० कुं० मी०	मे० वृ० मि०	क० सि० कन्या	तु० वृ० ध०	सूर्य स्थिति
राहु	आग्नेय (पूर्व और दक्षिण का मध्य)	ईशान (पूर्व और उत्तर का मध्य)	वायव्य (उत्तर और पश्चिम का मध्य)	नैर्ऋत्य (दक्षिण और पश्चिम का मध्य)	पृष्ठ

गृहारम्भ में वृपवास्तु चक्र

गृहनिर्माण करते समय शुभाशुभत्व अवगत करने के लिए वैल के आकार का चक्र वनाना चाहिए। सूर्य के नक्षत्र से तीन नक्षत्र उस चक्र के सिर में स्थापित करे। यदि उन तीन नक्षत्रो में घर का आरम्भ किया जाये तो घर में आग लगती है। उन से आगे के चार नक्षत्र उस चक्र के अगले पैरो पर स्थापित करे। इन नक्षत्रो में घर का आरम्भ होने पर घर में शून्यता रहती है। उन से आगे के चार नक्षत्र पिछले पैरो पर स्थापित करे। इन नक्षत्रो मे गृहारम्भ होने से घर वहुत दिनो तक स्थिर रहता है। उन से

---

१ देवालये गेहविधौ जलाशये राहोर्मुखं शम्भुदिशो विलोमतः।
मीनार्कसिंहार्कमृगार्कतस्त्रिभे खाते मुखात्पृष्ठविदिक् शुभा भवेत्॥
—मुहूर्त्तचिन्तामणि, बनारस, सन् १६३६ ई०, वास्तुप्रकरण, श्लोक १६

आगे के तीन नक्षत्र पीठ पर स्थापित करे। इन नक्षत्रों में गृहारम्भ करने से लक्ष्मी की प्राप्ति होती है। इस से आगे के चार नक्षत्र दक्षिण कुक्षि में स्थापित करे। इन नक्षत्रो में गृहारम्भ करने से लाभ होता है। अनन्तर तीन नक्षत्र पुच्छ में स्थापित करे। इन नक्षत्रो में गृहारम्भ करने से स्वामी का नाश होता है। पश्चात् चार नक्षत्र वाम कुक्षि में स्थापित करे। इन नक्षत्रो में गृह बनाने से दरिद्रता रहती है। आगे के तीन नक्षत्र मुख में स्थापित करे। इन नक्षत्रो में घर बनवाने से सर्वदा रोग, पीडा और भय व्याप्त रहता है।

वृषवास्तु चक्र

सिर	अग्र-पाद	पृष्ठपाद	पृष्ठ	दक्षिण कुक्षि	पुच्छ	वाम कुक्षि	मुख	वृषभ के अंग
३	४	४	३	४	३	४	३	नक्षत्र
दाह	शून्य	स्थिर-रता	श्री	लाभ	स्वामि नाश	दारि-द्रय	सर्वदा पीडा	फल

गृहारम्भ विचार

गृहारम्भ चक्र

घर बनाने का आरम्भ करने के लिए सूर्य के नक्षत्र से सात नक्षत्र अशुभ, आगे के ग्यारह नक्षत्र शुभ और इस से आगे के दस नक्षत्र अशुभ माने गये है। इस गणना में अभिजित् भी सम्मिलित है।

७	११	१०	नक्षत्र सूर्य नक्षत्र से
अशुभ	शुभ	अशुभ	फल

घर के लिए दरवाजे का विचार

कुम्भराशि के सूर्य के रहते फाल्गुन महीने में; कर्क और सिंह राशि के सूर्य के रहते श्रावण महीने में तथा मकर राशि में सूर्य के रहते पौष महीने में घर बनावे तो उस घर का दरवाजा पूर्व या पश्चिम दिशा में शुभ होता है। मेष और वृष राशि में सूर्य के रहते वैशाख महीने में तथा तुला और वृश्चिक राशि में सूर्य के रहते अगहन महीने में घर बनावे तो उस का दरवाजा उत्तर या दक्षिण दिशा में शुभ होता है।

पूर्णमासी से ले कर कृष्णाष्टमी पर्यन्त पूर्व दिशा में, कृष्ण पक्ष की नवमी से ले कर चतुर्दशी पर्यन्त उत्तर दिशा में, अमावास्या से ले कर शुक्लाष्टमी पर्यन्त पश्चिम दिशा में और शुक्लपक्ष की नवमी से शुक्लपक्ष की चतुर्दशी पर्यन्त दक्षिण दिशा में बनाया हुआ घर का द्वार शुभ नहीं होता। द्वितीया, तृतीया, पंचमी, षष्ठी, सप्तमी, दशमी, एकादशी और द्वादशी में बनाया हुआ द्वार शुभ होता है। दरवाजे का निर्माण शुक्ल पक्ष में करने से शुभफल और कृष्णपक्ष में करने से अनिष्टफल होता है। कृष्णपक्ष में द्वार का निर्माण करने से चोरी होने की आशंका सर्वदा बनी रहती है।

जिस नक्षत्र में सूर्य स्थित हो उस से चार नक्षत्र सिर—उत्तमाग में स्थापित करे। इन नक्षत्रों में घर का दरवाजा लगाया जाये तो लक्ष्मी की प्राप्ति होती है। इस के पश्चात् आगे के आठ नक्षत्र चारो कोनो में स्थापित करना चाहिए। इन नक्षत्रों में दरवाजा लगाने से घर नष्ट हो जाता है। इस के पश्चात् आगे के आठ नक्षत्र शाखा-बाजुओं में स्थापित करना चाहिए। इन नक्षत्रों में घर का दरवाजा लगाने से सुख, सम्पत्ति और वैभव की प्राप्ति होती है। इस के आगे के तीन नक्षत्र देहली में और उस से आगे के चार नक्षत्र मध्य में स्थापित करने चाहिए। देहली वाले नक्षत्रों में दरवाजा लगाने से स्वामी का मरण और मध्यवाले नक्षत्रों में दरवाजा लगाने से सुख-सम्पत्ति की प्राप्ति होती है।

द्वारचक्र

सिर	कोण	बाजू	देहली	मध्य
४	८	८	३	४
लक्ष्मी	उजाड	सौख्य	स्वामिमरण	सौख्य-सम्पत्ति

गृहारम्भ में निषिद्धकाल

गृहारम्भकाल में यदि सूर्य निर्बल, अस्त या नीच स्थान में हो तो घर के स्वामी का मरण, यदि चन्द्रमा अस्त या नीच स्थान में हो अथवा निर्बल हो तो उस की स्त्री का मरण होता है। यदि वृहस्पति निर्बल, अस्त या नीच स्थान में हो तो सुख का नाश; यदि शुक्र निर्बल, अस्त या नीच स्थान में हो तो धन का नाश होता है। गृहारम्भकाल में चन्द्रमा का नक्षत्र या वास्तु का नक्षत्र घर के आगे पडता हो तो उस घर में स्वामी की स्थिति नहीं होती और पीछे पडता हो तो उस घर में चोरी होती है। जिस नक्षत्र में चन्द्रमा स्थित हो, वह चन्द्र नक्षत्र कहलाता है।

गृह की आयु

जिस गृह के निर्माण के समय वृहस्पति लग्न में, सूर्य छठे स्थान में, बुध सातवें स्थान में, शुक्र चतुर्थ स्थान में और शनि तीसरे स्थान में स्थित हो उस घर की आयु सौ वर्ष की होती है। जिस घर के आरम्भ में शुक्र लग्न में, सूर्य तीसरे स्थान में, मंगल छठे स्थान में और वृहस्पति पांचवें स्थान में स्थित हो तो उस की आयु दो सौ वर्ष होती है। जिस के आरम्भकाल में शुक्र लग्न में, बुध दशम में, सूर्य एकादश में और वृहस्पति

केन्द्र में हो तो उस घर की आयु एक सौ पचीस वर्ष होती है। उच्चराशि का गुरु केन्द्र में स्थित हो तो और अन्य ग्रह पूर्ववत् स्थित हो तो तीन सौ वर्ष की आयु होती है। गुरु शुक्र, चन्द्रमा और वुध उच्चराशि के होकर चतुर्थ भाव में शुभग्रहो से दृष्ट हो तो घर की आयु दो सौ वर्ष से अधिक होती है। शुक्र मूलत्रिकोण या उच्चराशि का होकर चतुर्थ भाव में अवस्थित हो तो गृहस्वामी सुखी और सन्तुष्ट रहता है तथा घर सौ वर्षों से अधिक काल तक सुदृढ वना रहता है। जिस घर के आरम्भ में वृहस्पति चतुर्थ स्थान में, चन्द्रमा दसवें स्थान में स्थित हो तो उस घर की आयु अस्सी वर्ष की होती है।

जिस गृह के आरम्भ में कोई भी ग्रह शत्रु के नवांश में स्थित होकर लग्न या सप्तम अथवा दशम में स्थित हो तो वह घर एक-दो वर्षों में ही दूसरे के हाथ में वेच दिया जाता है।

पिण्डसाधन तथा आय-व्यय-आयु आदि विचार

गृहपति के हाथ प्रमाण घर की लम्बाई और चौडाई को गुणा कर गृहपिण्ड निकाल लेना चाहिए। इस पिण्ड को नौ स्थानो में स्थापित कर क्रमशः १,२,६,८,३,८,८,४ और ८ से गुणा कर गुणनफल में ८,७,९,१२,८, २७,१५,२७, और १२० का भाग देने पर शेष क्रमशः आय, वार, अंश, द्रव्य, ऋण, नक्षत्र, तिथि, योग और आयु होते हैं। यदि वहुत ऋण और अल्प द्रव्य हो तो गृह अशुभ होता है। गृह की आयु भी उक्त क्रमानुसार जानी जा सकती है। सुविधा के लिए दैर्घ्य और विस्तार चक्र दिया जाता है।

चक्र का विवरण

इस चक्र-द्वारा आय, वार, अंश, धन (द्रव्य), ऋण, नक्षत्र, तिथि, योग और आयु निकालने का उद्देश्य यह है कि विषम आयवाला गृह शुभ और सम आयवाला दुःख देने वाला होता है। सूर्य और मंगल के वार, राशि और अंशवाले घर में अग्नि का भय रहता है। अतः ये त्याज्य और अन्य

ग्रहो के वार, राशि और अश ग्रहण करने योग्य हैं। इसी प्रकार अधिक धन और न्यून ऋण वाला घर शुभ तथा न्यून धन (द्रव्य) और अधिक ऋण वाला घर अशुभ होता है। नक्षत्र जानने का प्रयोजन यह है कि मकान के नक्षत्र से गृहारम्भ के दिन नक्षत्र तक तथा स्वामी के नक्षत्र तक जिन की जितनी सख्या हो, उस में नौ का भाग देने से यदि १।३।५।७ शेष रहें तो मकान अशुभ और यदि २।४।६।८।० शेष रहें तो मकान शुभ होता है। तिथि का प्रयोजन शुभाशुभत्व की जानकारी प्राप्त करना है। यदि चतुर्थी, नवमी, चतुर्दशी और अमावास्या इन में से कोई तिथि आती हो तो गृह अशुभ होता है। शेष तिथियो के आने पर घर को शुभ समझा जाता है। योग के सम्बन्ध में भी यह ध्यान रखना चाहिए कि अतिगण्ड, शूल, विष्कम्भ, गण्ड, व्याघात, वज्र, व्यतीपात और वैधृति नितान्त अशुभ है। शेष योग प्राय शुभ हैं। आयु का तात्पर्य स्पष्ट है कि अधिक दिन रहने वाला मकान शुभ और कम दिन रहने वाला अशुभ होता है।

स्वामी के नक्षत्र से विचार करने का अभिप्राय यह है कि स्वामी तथा घर का यदि एक ही नक्षत्र हो तो मृत्यु होती है, परन्तु यदि राशि एक न हो तो यह दोष नही आता है। यहाँ नाडीवेध को दोषकारक नही माना गया है।

इस सन्दर्भ में राशि ज्ञात करने की विधि यह है कि अश्विनी, भरणी और कृत्तिका नक्षत्र की मेष राशि, मघा, पूर्वाफाल्गुनी और उत्तराफाल्गुनी की सिंह राशि तथा मूल, पूर्वाषाढा और उत्तराषाढा की धनु राशि होती है। और शेष नक्षत्रो में उचित क्रम से नौ राशियो की अवस्था अवगत कर लेनी चाहिए।

आय, वार, नक्षत्र, तिथि और योग में क्रमश ध्वज, धूम, सिंह, श्वान, गाय, गर्दभ, हस्ति और काक, रवि, सोम, भौम, बुध, गुरु, शुक्र और शनि, अश्विनी, भरणी, कृत्तिका, रोहिणी, मृगशिरा, आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य, आश्लेषा, मघा, पूर्वाफाल्गुनी, उत्तराफाल्गुनी, हस्त, चित्रा, स्वाती

विशाखा, अनुराधा, ज्येष्ठा, मूल, पूर्वाषाढा, उत्तराषाढा, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, पूर्वाभाद्रपदा, उत्तराभाद्रपदा और रेवती; प्रतिपदा, द्वितीया, तृतीया, चतुर्थी, पंचमी, षष्ठी, सप्तमी, अष्टमी, नवमी, दशमी, एकादशी, द्वादशी, त्रयोदशी, चतुर्दशी और पूर्णिमा–अमावस्या एवं विष्कम्भ, प्रीति, आयुष्मान्, सौभाग्य, शोभन, अतिगण्ड, सुकर्मा, धृति, शूल, गण्ड, वृद्धि, ध्रुव, व्याघात, हर्षण, वज्र, सिद्धि, व्यतीपात, वरीयान्, परिघ, शिव, सिद्धि, साध्य, शुभ, शुक्ल, ब्रह्म, ऐन्द्र और वैधृति अवगत करना चाहिए। पिण्ड-द्वारा घर का शुभाशुभत्व पूर्णतया जाना जा सकता है।

गृह निर्माण के लिए सप्तसकार योग

शनिवार, स्वाती नक्षत्र, सिंहलग्न, शुक्लपक्ष, सप्तमी तिथि, शुभयोग और श्रावण मास में गृह निर्माण करने से हाथी, घोड़ा, धन-सम्पत्ति की प्राप्ति के साथ पुत्र-पौत्र आदि की वृद्धि होती है। उक्त योग सप्तसकार योग कहलाता है। इस में गृह निर्माण करने का उत्तम फल बताया गया है। गृह निर्माण प्रायः शुक्लपक्ष में श्रेष्ठ होता है, कृष्णपक्ष में गृहनिर्माण करने से चोरों का भय रहता है। श्रावण, वैशाख और अगहन के महीने गृह निर्माण के लिए उत्तम माने गये हैं।

शल्य शोधन

गृहनिर्माण की भूमि को शुद्ध कर लेना आवश्यक है। अत: सर्वप्रथम उस भूमि—गृहनिर्माण वाली भूमि से शल्य–हड्डी को निकालकर बाहर कर देना चाहिए। शल्य अवगत करने की विधि ज्योतिष शास्त्र में कई प्रकार से बतलायी गयी है। गृहनिर्माण करने वाला व्यक्ति जब सामने आये और प्रश्न करे तो उस के प्रश्नाक्षरों की संख्या को दूना कर लेना चाहिए। मात्राओं को चार से गुणा कर पूर्वोक्त गुणनफल में जोड़ देना चाहिए। इस योगफल में नौ का भाग देने से विषम शेष १।३।५।७ रहे तो शल्य–

हड्डी भूमि में रहती है और सम शेष २।४।६।८ रहे तो भूमि नि.शल्य-अस्थिरहित होती है। प्रश्नाक्षरों के लिए पुष्प, देव, नदी एवं फल का नाम पूछना चाहिए।

शल्य का अस्तित्व रहने पर यदि प्रश्नाक्षरों में पहला अक्षर व हो तो शल्य पूर्व भाग में होता है। पूर्व भाग में भी नौवां भाग समझना चाहिए। इस भूमि में डेढ हाथ खोदने से मनुष्य की अस्थि प्राप्त होती है। कवर्ग के अन्तर रहने से अग्निकोण में दो हाथ नीचे गधे की अस्थि निकलती है। चवर्ग के अक्षर रहने पर दक्षिण में कमर-भर भूमि खोदने पर मनुष्य का शल्य रहता है'। तवर्ग के प्रश्नाक्षर होने से नैर्ऋत्य कोण में कुत्ता का शल्य डेढ़ हाथ नीचे निकलता है। स्वर वर्ण प्रश्नाक्षर होने पर पश्चिम भाग में डेढ हाथ नीचे बच्चे की अस्थि निकलती है। ह प्रश्नाक्षर रहने पर वायव्य कोण में चार हाथ नीचे खोदने पर केश, कपाल, अस्थि, रोम आदि पदार्थ निकलते हैं। श प्रश्नाक्षर होने से उत्तर भाग में एक हाथ नीचे खोदने से ब्राह्मण का शल्य उपलब्ध होता है। पवर्ग के प्रश्नाक्षर होने से ईशान कोण में डेढ हाथ नीचे खोदने पर गाय की अस्थियाँ मिलती हैं। य प्रश्नाक्षर होने पर मध्य भाग में छाती-भर जमीन खोदने पर भस्म, लोहा, कपास आदि पदार्थ मिलते हैं। मतान्तर से ह य प वर्ण प्रश्नाक्षर होने से मध्य भाग में शल्य उपलब्ध होता है।

शल्योद्धार के सम्बन्ध में विशेष जानकारी अहिबल चक्र के द्वारा प्राप्त करनी चाहिए। भूमि की श्रेष्ठता अवगत करने के लिए सन्ध्या समय एक हाथ लम्बा, चौड़ा और गहरा गड्ढा खोद कर जल से भर देना चाहिए। प्रात.काल उस गड्ढे में जल शेष रह जाये तो शुभ, निर्जल चौकोर भूमि दिखलाई पडे तो मध्यम और निर्जल फटा हुआ गड्ढा मिले तो जमीन को अशुभ समझना चाहिए। इस विधि को देश-काल के अनुसार ही प्रयोग में श्रेयस्कर होता है।

गृहारम्भ मुहूर्त्त चक्र

नक्षत्र	मृ० पु० अनु० उ०फा०उ०भा० उ०षा० ध० श० चि० ह० स्वा० रो० रे०
वार	चं० बु० बृ० शु० श०
तिथि	२।३।५।७।१०।११।१३।१५
मास	वै० श्रा० मा० पौ० फा०
लग्न	२।३।५।६।८।९।११।१२
लग्न-शुद्धि	शुभग्रह लग्न से १।४।७।१०।५।९ इन स्थानो में एवं पाप-ग्रह ३।६।११ इन स्थानो मे शुभ होते हैं। ८।१२ स्थान में कोई ग्रह नही होना चाहिए।

नूतन गृहप्रवेश मुहूर्त्त

उत्तराभाद्रपद, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा, रोहिणी, मृगशिरा, चित्रा, अनुराधा, रेवती इन नक्षत्रो में; चन्द्र, बुध, गुरु, शुक्र, शनि इन वारो में और द्वितीया, तृतीया, पंचमी, षष्ठी, सप्तमी, दशमी, एकादशी, द्वादशी, त्रयोदशी इन तिथियो में गृहप्रवेश करना शुभ है।

नूतन गृहप्रवेश मुहूर्त्त चक्र

नक्षत्र	उ० भा० उ० षा० उ० फा० रो० मृ० चि० अनु० रे०
वार	च० बु० गु० शु०
तिथि	२।३।५।६।७।१०।११।१३
लग्न	२।५।८।११ उत्तम है। ३।६।९।१२ मध्यम हैं।
लग्नशुद्धि	लग्नसे १।२।३।५।७।९।१०।११ इन स्थानो में शुभग्रह शुभ होते हैं। ३।६।११ इन स्थानो में पापग्रह शुभ होते हैं। ४।८ इन स्थानों में कोई ग्रह नही होना चाहिए।

जीर्ण गृहप्रवेश मुहूर्त्त

शतभिषा, पुष्य, स्वाती, धनिष्ठा, चित्रा, अनुराधा, मृगशिर, रेवती, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपद, रोहिणी इन नक्षत्रों में चन्द्र, बुध, गुरु, शुक्र, शनि इन वारों में और द्वितीया, तृतीया पचमी, षष्ठी, सप्तमी, दशमी, एकादशी, त्रयोदशी इन तिथियो में जीर्ण गृहप्रवेश करना शुभ है।

जीर्ण गृहप्रवेश मुहूर्त्त चक्र

नक्षत्र	श० पु० स्वा० ध० चि० अनु० मृ० रे० उ० भा० उ० षा० उ० फा० रो०
वार	च० बु० बृ० शु० श०
तिथि	२।३।५।७।१०।११।१२।१३
मास	का० मार्ग० श्रा० मा० फा० वै० ज्ये०

शान्तिक और पौष्टिक मुहूर्त्त

अश्विनी, पुष्य, हस्त, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपद, रोहिणी, रेवती, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, पुनर्वसु, स्वाती, अनुराधा, मघा इन नक्षत्रों में; रिक्ता (४।९।१४), अष्टमी, पूर्णमासी, अमावस्या इन तिथियो को छोड अन्य तिथियो में और रवि, मंगल, शनि इन वारो को छोड़ शेष वारो में शान्तिक और पौष्टिक कार्य करना शुभ है।

शान्तिक और पौष्टिक कार्य के मुहूर्त्त का चक्र

नक्षत्र	अश्वि० पु० ह० उ० षा० उ० फा० उ० भा० रो० रे० श्र० ध० श० पुन० स्वा० अनु० म०
वार	चं० बु० गु० शु०
तिथि	२।३।५।७।१०।११।१२।१३

कुँआ खुदवाने का मुहूर्त्त

हस्त, अनुराधा, रेवती, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपद, धनिष्ठा, शतभिषा, मघा, रोहिणी, पुष्य, मृगशिर, पूर्वाषाढा इन नक्षत्रो में; बुध, गुरु, शुक्र इन वारो में और रिक्ता (४।९।१४) छोड़ सभी तिथियों में शुभ होता है।

कुँआ खुदवाने के मुहूर्त्त का चक्र

नक्षत्र	ह० अनु० रे० उ० फा० उ० षा० उ० भा० ध० श० म० रो० पु० मृ० पू० षा०
वार	बु० गु० शु०
तिथि	२।३।५।७।१०।११।१२।१३।१५

दूकान करने का मुहूर्त्त

रोहिणी, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपद, हस्त, पुष्य, चित्रा, रेवती, अनुराधा, मृगशिर, अश्विनी इन नक्षत्रो में तथा शुक्र, बुध, गुरु, सोम इन वारो में और रिक्ता, अमावस्या को छोड शेष तिथियों में, दूकान करना शुभ है।

दूकान करने के मुहूर्त्त का चक्र

नक्षत्र	रो० उ०षा०उ०भा०उ०फा०हृ०पु०चि०रे०अनु०मृ०अश्वि०
वार	शु० गु० बु० सो०
तिथि	२।३।५।७।१०।१२।१३

बड़े-बड़े व्यापार करने का मुहूर्त्त

हस्त, पुष्य, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराभाद्रपद, उत्तरापाढा, चित्रा, इन नक्षत्रो में, शुक्र, बुध, गुरु इन वारो में और द्वितीया, तृतीया, पंचमी, सप्तमी, एकादशी, त्रयोदशी इन तिथियों में बडे-बडे व्यापार-सम्बन्धी कारोबार करना शुभ है।

बड़े-बड़े व्यापारिक कार्य प्रारम्भ करने के मुहूर्त्त का चक्र

नक्षत्र	हृ० पु० उफा० उभा० उपा० चि०
वार	बु० गु० शु०
तिथि	२।३।५।७।११।१३

राजा से मिलने का मुहूर्त्त

श्रवण, धनिष्ठा, उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपद, उत्तराफाल्गुनी, मृगशिर, पुष्य, अनुराधा, रोहिणी, रेवती, अश्विनी, चित्रा, स्वाति इन नक्षत्रो में और रवि, सोम, बुध, गुरु, शुक्र इन वारो में राजा से मिलना शुभ है।

बगीचा लगाने का मुहूर्त्त

शतभिषा, विशाखा, मूल, रेवती, चित्रा, अनुराधा, मृगशिर, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपद, रोहिणी, हस्त, अश्विनी, पुष्य इन नक्षत्रों में तथा शुक्र, सोम, वुध, गुरु इन वारों में बगीचा लगाना शुभ है।

रोगमुक्त होने पर स्नान करने का मुहूर्त्त

उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपद, रोहिणी, आश्लेषा, पुनर्वसु, स्वाति, मघा, रेवती इन नक्षत्रों को छोड शेष नक्षत्रों में; रवि, मंगल, गुरु इन वारो में और रिक्तादि तिथियो में रोगी को स्नान कराना शुभ है।

नौकरी करने का मुहूर्त्त

हस्त, चित्रा, अनुराधा, रेवती, अश्विनी, मृगशिर, पुष्य इन नक्षत्रो में; वुध, गुरु, शुक्र, रवि इन वारो में और शुभ तिथियो में नौकरी शुभ है।

मुकद्दमा दायर करने का मुहूर्त्त

ज्येष्ठा, आर्द्रा, भरणी, पूर्वाषाढा, पूर्वाभाद्रपद, पूर्वाफाल्गुनी, मूल, आश्लेषा, मघा इन नक्षत्रो में, तृतीया, अष्टमी, त्रयोदशी, पंचमी, दशमी, पूर्णमासी इन तिथियो में और रवि, वुध, गुरु, शुक्र इन वारों में मुकद्दमा दायर करना शुभ है।

मुकद्दमा दायर करने के मुहूर्त्त का चक्र

नक्षत्र	ज्ये० आ० भ० पू०षा० पू० भा० पू० फा० मू० आश्ले० म०
वार	र० वु० गु० शु०
तिथि	३।५।८।१०।१३।१५
लग्न	३।६।७।८।,१
लग्नशुद्धि	सूर्य, वुध, गुरु, शुक्र, चन्द्र य ग्रह १।४।७।१०। इन स्थानो में और पापग्रह ३।६।११ इन स्थानों में शुभ होते हैं, परन्तु अष्टम में कोई ग्रह नही होना चाहिए।

औषध बनाने का मुहूर्त्त

हस्त, अश्विनी, पुष्य, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, मूल, पुनर्वसु, स्वाति, मृगशिरा, चित्रा, रेवती, अनुराधा इन नक्षत्रो में और रवि, सोम, बुध, गुरु, शुक्र इन वारो में ओषध निर्माण करना शुभ है।

मन्त्र सिद्ध करने का मुहूर्त्त

उत्तराफाल्गुनी, हस्त, अश्विनी, श्रवण, विशाखा, मृगशिर इन नक्षत्रो में रवि, सोम, बुध, गुरु, शुक्र इन वारो में और द्वितीया, तृतीया, पचमी, सप्तमी, दशमी, एकादशी, त्रयोदशी, पूर्णिमा इन तिथियों में यन्त्र-मन्त्र सिद्ध करना शुभ होता है।

सर्वारम्भ मुहूर्त्त

लग्न से बारहवाँ और आठवाँ स्थान शुद्ध हो और कोई ग्रह नही हो तथा जन्मलग्न व जन्मराशि से तीसरा, छठा, दसवाँ, ग्यारहवाँ लग्न हो और शुभग्रहो की दृष्टि हो तथा शुभग्रहयुक्त हों, चन्द्रमा जन्मलग्न व जन्म-राशि से तीसरे, छठे, दशवें, ग्यारहवें स्थान में हो तो सभी कार्य प्रारम्भ करना शुभ होता है।

मन्दिर-निर्माण का मुहूर्त्त

पुष्य, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराभाद्रपद, उत्तराषाढा, मृगशिर, श्रवण, अश्विनी, चित्रा, पुनर्वसु, विशाखा, आर्द्रा, हस्त, धनिष्ठा और रोहिणी इन नक्षत्रो में, सोम, बुध, शुक्र और रवि इन वारो में एव द्वितीया, तृतीया, पंचमी, सप्तमी, एकादशी, द्वादशी और त्रयोदशी इन तिथियो में मन्दिर निर्माण करना शुभ है।

मन्दिर निर्माण के मुहूर्त्त का चक्र

मास	माघ, फाल्गुन, वैशाख, ज्येष्ठ, मार्गशीर्ष, पौष (मतान्तर से)
नक्षत्र	पु०, उत्तराफा० उत्तराषा० उत्तराभा० मृ० श्र० अश्वि० चि० पुन० वि० आ० ह० ध० रो०
वार और तिथि	सोम, बुध, गु०, शु०, रवि,—२।३।५।७।११।१२।१३। ये तिथियाँ

प्रतिमा-निर्माण का मुहूर्त्त

पुष्य, रोहिणी, श्रवण, चित्रा, धनिष्ठा, आर्द्रा, अश्विनी, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपद, हस्त, मृगशिर, रेवती और अनुराधा इन नक्षत्रों में; सोम, गुरु और शुक्र इन वारों में एवं द्वितीया, तृतीया, पंचमी, सप्तमी, एकादशी और त्रयोदशी इन तिथियों में प्रतिमा-निर्माण करना शुभ है।

प्रतिष्ठा मुहूर्त्त

अश्विनी, रोहिणी, मृगशिर, पुनर्वसु, पुष्य, हस्त, श्रवण, धनिष्ठा, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपद और रेवती इन नक्षत्रों में, सोम, बुध, गुरु और शुक्र इन वारों में एवं शुक्लपक्ष की प्रतिपदा, द्वितीया, पंचमी, दशमी, त्रयोदशी और पूर्णिमा तथा कृष्णपक्ष की प्रतिपदा, द्वितीया और पंचमी इन तिथियों में प्रतिष्ठा करना शुभ है,। प्रतिष्ठा के लिए स्थिर संज्ञक राशियाँ लग्न के लिए शुभ बतायी गयी हैं।

प्रतिष्ठा मुहूर्त्त का चक्र

समय	उत्तरायण में, वृहस्पति, शुक्र और मगल के वलवान् होने पर
तिथि	शुक्लपक्ष की १।२।५।१०।१३।१५ और कृष्णपक्ष की १।२।५ मतान्तर से शुक्लपक्ष की ७।११
नक्षत्र	पु० उत्तराफा० उ० षा० उ० भा० ह० रे० रो० अश्वि० मृ० श्र० ध० पुन० मतान्तर से—चि० स्वा० भ० मू० (आवश्यक होने पर)
वार	सो० वु० गु० शु०
लग्नशुद्धि	२।३।५।६।८।९।११।१२ लग्नराशियाँ—शुभग्रह १।४।७।५।९।१० में शुभ हैं और पापग्रह ३।६।११ में शुभ हैं, अष्टम में कोई भी ग्रह शुभ नही होता है

मण्डप वनाने का मुहूर्त्त

सोम, वुध, गुरु और शुक्र इन वारों में, २।५।७।११।१२।१३ इन तिथियो में एव मृगशिर, पुनर्वसु, पुष्य, अनुराधा, श्रवण उत्तराफाल्गुनी, उत्तरापाढा और उत्तराभाद्रपद इन नक्षत्रों में मण्डप वनाना शुभ है ।

होमाहुति का मुहूर्त्त

सूर्य जिस नक्षत्र में स्थित हो उस से तीन-तीन नक्षत्रो का एक-एक त्रिक होता है, ऐसे सत्ताईस नक्षत्रो के नौ त्रिक होते हैं। इन में पहला सूर्य-का, दूसरा वुध का, तीसरा शुक्र का, चौथा शनैश्चर का, पाँचवाँ चन्द्रमा का, छठा मंगल का, सातवाँ वृहस्पति का, आठवाँ राहु का और नौवाँ केतु का त्रिक होता है । होम के दिन का नक्षत्र जिस के त्रिक में पडे उसी ग्रह के

अनुसार फल समझना चाहिए। रवि, मंगल, शनि, राहु और केतु इन ग्रहो के त्रिक में हवन करना वर्जित है।

अग्निवास और उस का फल

शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा से ले कर अभीष्ट तिथि तक गिनने से जितनी संख्या हो, उस में एक और जोडे; फिर रविवार से ले कर इष्टवार तक गिनने से जितनी संख्या हो, उस को भी उसी में जोड़े। जोडने से जो राशि आवे उस में ४ का भाग दे। यदि तीन अथवा शून्य शेष रहे तो अग्नि का वास पृथ्वी में होता है। यह होम करने के लिए उत्तम होता है। एक शेष में अग्नि का आवास आकाश में होता है, इसका फल प्राणों को नाश करने वाला वताया गया है और दो शेष में अग्नि का वास पाताल में होता है, इसका फल अर्थनाशक कहा गया है।

प्रश्नविचार

जिस समय किसी भी कार्य के लाभालाभ, शुभाशुभ जानने की इच्छा हो उस समय का इष्टकाल वना कर प्रश्नकुण्डली, ग्रहस्पष्ट, भावस्पष्ट, नवमांश कुण्डली और चलित कुण्डली वना कर विचार करना चाहिए। प्रश्नलग्न मे चरराशि, वलवान् लग्नेश, कार्येश शुभग्रहो से युत या दृष्ट हो तथा वे १।४।५।७।९।१० स्थानो में हो तो प्रश्नकर्ता जिस कार्य के सम्वन्ध मे पूछ रहा है, वह जल्दी पूरा होगा। यदि स्थिर लग्न हो, लग्नेश और कार्येश वलवान् हो तो विलम्व से कार्य होता है। द्विस्वभाव राशि लग्न में हो तथा १।४।५।७।९।१०वें भाव में वलवान् पापग्रह हो, लग्नेश, कार्येश हीनवल, नीच, अस्तगत या शत्रुक्षेत्री हो तो कार्य सफल नही होता। धन प्राप्ति के प्रश्न में लग्न-लग्नेश, धन-धनेश और चन्द्रमा से; यश प्राप्ति के लिए लग्न, तृतीय, दशम और इन के स्वामी तथा चन्द्रमा से, सुख, शान्ति, गृह, भूमि आदि की प्राप्ति के लिए लग्न, चतुर्थ, दशम स्थान,

इन के स्वामी और चन्द्रमा से, परीक्षा में यश प्राप्ति के लिए लग्न, पचम, नवम, दशम स्थान, इन के स्वामी और चन्द्रमा से, विवाह के लिए लग्न, द्वितीय, सप्तम स्थान, इन स्थानो के स्वामी और चन्द्रमा से; नौकरी, व्यवसाय और मुक़द्दमा में विजय प्राप्त करने के लिए लग्न-लग्नेश, दशम-दशमेश, एकादश-एकादशेश और चन्द्रमा से, वडे व्यापार के लिए लग्न-लग्नेश, द्वितीय-द्वितीयेश, सप्तम-सप्तमेश, दशम-दशमेश, एकादश-एकादशेश और चन्द्रमा से, लाभ के लिए लग्न-लग्नेश, एकादश-एकादशेश और चन्द्रमा से एव सन्तान प्राप्ति के लिए लग्न-लग्नेश, द्वितीय-द्वितीयेश, पचम-पचमेश और गुरु से विचार करना चाहिए।

रोगी के स्वस्थ-अस्वस्थ होने का विचार

प्रश्नलग्न में पापग्रह की राशि हो, लग्न पापग्रह से युत या दृष्ट हो या अष्टम स्थान में चन्द्रमा अथवा पापग्रह हो तो रोगी का मरण होता है।

प्रश्नलग्नकुण्डली में पापग्रह आठवे या वारहवें स्थान में हो या चन्द्रमा १।६।७।८वें स्थान में हो तो शीघ्र ही रोगी की मृत्यु होती है। चन्द्रमा लग्न में, सूर्य सप्तम में, मगल मेप राशिस्थ वृश्चिक के नवमाश में, चन्द्रमा से युक्त हो तो रोगी का शीघ्र मरण होता है। प्रश्नलग्न से सातवें स्थान में पापग्रह हों तो रोगी को महाकष्ट और शुभग्रह हो तो रोगी स्वस्थ होता है। सप्तम स्थान में शुभ-अशुभ दोनों प्रकार के ग्रह हो तो मिश्रित फल होता है।

लग्नेश निर्वल हो, अष्टमेश वली हो और चन्द्रमा छठें या आठवें भाव में हो अथवा अष्टम में शनि मगल से दृष्ट हो तो रोगी की मृत्यु होती है। आठवें में सूर्य हो तो रक्तपित्त, वुध हो तो सन्निपात, राहु से युक्त सूर्य आठवें में हो तो कुष्ट, राहु से युक्त शनि आठवें में हो तो वायुविकार एवं चन्द्रमा और शुक्र आठवें में हों तो सन्निपात होता है।

लग्नेश वलवान् और अष्टमेश निर्वल हो तो रोगी का रोग जल्दी अच्छा हो जाता है।

नक्षत्रानुसार रोगी के रोग की अवधि का ज्ञान

स्वाति, ज्येष्ठा, पूर्वाषाढा, पूर्वाभाद्रपद, पूर्वाफाल्गुनी, आर्द्रा और आश्लेषा में जिस व्यक्ति को रोग हो उस की मृत्यु होती है। रेवती और अनुराधा में रोग हो तो रोग अधिक दिन तक जाता है; भरणी, श्रवण, शतभिषा और चित्रा में रोग हो तो ११ दिन तक रोग; विशाखा, हस्त और धनिष्ठा में हो तो १५ दिन तक रोग; मूल, कृत्तिका और अश्विनी में हो तो ९ दिन तक; मघा में हो तो ७ दिन तक रोग; मृगशिरा और उत्तराषाढा में हो तो एक महीना रोग रहता है। भरणी, आश्लेषा, मूल, कृत्तिका, विशाखा, आर्द्रा और मघा नक्षत्र में किसी को सर्प काटे तो उस की मृत्यु होती है।

शीघ्र मृत्यु योग

आर्द्रा, आश्लेषा, ज्येष्ठा, शतभिषा, भरणी, पूर्वाषाढा, पूर्वाभाद्रपद, पूर्वाफाल्गुनी, विशाखा, धनिष्ठा और कृत्तिका नक्षत्र; रवि, मंगल और शनि ये वार एवं चतुर्थी, नवमी, चतुर्दशी, एकादशी और षष्ठी इन तिथियों के योग में रोगग्रस्त होने वाले व्यक्ति की मृत्यु होती है।

चोरज्ञान

प्रश्नलग्न स्थिर राशि हो या स्थिर राशि के नवमांश में प्रश्नलग्न हो अथवा अपने वर्गोत्तम नवमांश की प्रश्नलग्न राशि हो तो बन्धु, स्वजातीय, उच्चजातीय व्यक्ति या दास को चोर समझना चाहिए।

प्रश्नलग्न प्रथम द्रेष्काण में हो तो चोरी गयी चीज घर के द्वार के पास; द्वितीय द्रेष्काण मे हो तो घर के मध्य में और तृतीय द्रेष्काण में हो तो घर के पीछे के भाग में होती है।

लग्न में पूर्ण चन्द्र हो और उस के ऊपर गुरु की दृष्टि हो तथा शीर्षोदय राशि ३।५।६।७।८।११ लग्न हो तथा लग्न में बलवान् और शुभग्रह स्थित

हों और लग्नेश, सप्तमेश, दशमेश, लाभेश, बलवान् चन्द्रमा परस्पर मित्र हों या इत्थशाल आदि शुभ योग करते हो तो चोरी गयी वस्तु की पुन प्राप्ति हो जाती है।

बली या पूर्ण चन्द्र लग्न में, शुभग्रह शीर्षोदय या एकादश में हो तथा शुभग्रह से युत या दृष्ट हों तो नष्ट धन—चोरी गया धन मिल जाता है। पूर्ण चन्द्र लग्न में हो, गुरु या शुक्र की उस पर दृष्टि अथवा शुभग्रह ११वें भाव में हो तो भी चोरी गया धन मिल जाता है।

प्रश्नकाल में जो ग्रह केन्द्र में हो उस की दिशा में चोरी की वस्तु को कहना चाहिए। यदि केन्द्र में दो या बहुत से ग्रह हों तो उन में से जो बली हो उस ग्रह की दिशा में नष्टधन कहना चाहिए। यदि केन्द्र में ग्रह नही हो तो लग्नराशि की दिशा में चोरी गयी वस्तु बतलानी चाहिए।

सप्तम स्थान में शुभग्रह हो या लग्नेश सप्तम स्थान में बैठा हो अथवा क्षीण चन्द्रमा सप्तम भवन में हो तो चोरी गयी या भूली हुई वस्तु मिलती नही है। सप्तमेश और चन्द्रमा सूर्य के साथ स्थित हो तो चोरी गयी वस्तु मिलती नही। ३।५।७।११वें स्थान में शुभग्रह हों तो प्रश्नकर्त्ता का धन मिल जाता है।

लग्नपर सूर्य, चन्द्रमा की दृष्टि हो तो आत्मीय चोर होता है, लग्नेश और सप्तमेश लग्न में हों तो कुटुम्ब का व्यक्ति चोर होता है। सप्तमेश २।१२वें स्थान में हो तो नौकर चोर होता है। मेष प्रश्न लग्न हो तो ब्राह्मण चोर, वृष हो तो क्षत्रिय चोर, मिथुन लग्न हो तो वैश्य चोर, कर्क लग्न हो तो शूद्र चोर, सिंह लग्न हो तो अन्त्यज चोर, कन्या लग्न हो तो स्त्री चोर, तुला लग्न हो तो पुत्र, भाई या मित्र चोर, वृश्चिक हो तो नौकर, धनु हो तो स्त्री या भाई चोर, मकर हो तो वैश्य, कुम्भ हो तो मनुष्येतर प्राणी चूहा आदि और मीन हो तो ऐसे ही भूली हुई समझना चाहिए।

चर प्रश्न लग्न हो तो दो अक्षर के नामवाला चोर, स्थिर हो तो चार

अक्षर के नाम वाला चोर और द्विस्वभाव लग्न हो तो तीन अक्षर के नाम वाला चोर होता है।

ज्योतिष में एक सिद्धान्त यह भी बताया गया है कि प्रश्नलग्न चर हो तो चोर के नाम का पहला अक्षर संयुक्त होता है, जैसे द्वारिका, ब्रजरत्न आदि। स्थिर लग्न हो तो कृदन्त—पदसंज्ञक वर्ण चोर के नाम का प्रथम अक्षर होता है, जैसे मंगलसेन, भवानी शंकर इत्यादि। द्विस्वभाव लग्न हो तो स्वरवर्ण चोर के नाम का प्रथम अक्षर होता है, जैसे ईश्वरीप्रसाद, उजागरसिंह, उग्रसेन इत्यादि। चोर का विशेष स्वरूप लग्न के द्रेष्काण[1] के अनुसार जानना चाहिए।

प्रश्नलग्नानुसार चोर और चोरी की वस्तु का विचार

मेषलग्न में वस्तु चोरी गयी हो अथवा प्रश्नकाल में मेष लग्न हो तो चोरी की वस्तु पूर्व दिशा में समझनी चाहिए। चोर ब्राह्मण जाति का व्यक्ति होता है और उस का नाम स अक्षर से आरम्भ होता है। नाम में दो या तीन ही अक्षर होते हैं।

वृषलग्न में वस्तु चोरी गयी हो अथवा प्रश्नकाल में वृषलग्न हो तो चोरी की वस्तु पूर्व दिशा में समझनी चाहिए। चोरी करने वाला व्यक्ति क्षत्रिय जाति का होता है और उस के नाम में आदि अक्षर न रहता है तथा नाम चार अक्षरों का रहता है।

मिथुनलग्न में चोरी गयी वस्तु अथवा प्रश्नकाल में मिथुन लग्न के होने से चोरी की वस्तु आग्नेयकोण में रहती है। चोरी करने वाला व्यक्ति वैश्यवर्ण का होता है और उसका नाम ककार से आरम्भ होता है। नाम में तीन वर्ण होते हैं।

कर्क लग्न में वस्तु के चोरी जाने पर अथवा प्रश्नकाल में कर्कलग्न के होने पर चोरी की वस्तु दक्षिण दिशा में मिलती है और चोरी करने वाला

---

१ देखें बृहज्जातक का द्रेष्काणाध्याय।

शूद्र या अन्त्यज होता है। इस का नाम तकार से आरम्भ होता है और नाम में तीन वर्ण होते हैं।

प्रश्नकाल या चोरी के समय में सिंह लग्न के होने पर चोरी की वस्तु नैर्ऋत्य कोण में पायी जाती है। चोरी करने वाला सेवक (नौकर) होता है और यह अन्त्यज या अन्य किसी निम्नश्रेणी की जाति का रहता है। चोर का नाम नकार से आरम्भ होता है तथा नाम तीन या चार वर्णों का रहता है।

प्रश्नकाल या चोरी के समय में कन्या लग्न हो तो चोरी गयी वस्तु पश्चिम दिशा में समझनी चाहिए। चोरी करने वाला कोई पुरुष नही होता, वल्कि चोरी करने वाली कोई नारी होती है। इस का नाम मकार से आरम्भ होता है और नाम में कई वर्ण पाये जाते हैं। कन्या लग्न में बुध और चन्द्रमा का नवांश हो तो ब्राह्मणी चोर होती है और मंगल का नवांश होने पर क्षत्रियाणी चोर होती है। शुक्र का नवांश होने पर वैश्य जाति की स्त्री चोर और शनि-रवि का नवांश होने पर शूद्रा या अन्य अन्त्यज जाति की स्त्री चोरी करती है।

तुलालग्न के होने पर चोरी गयी वस्तु पश्चिम दिशा में समझनी चाहिए। चोरी करने वाला पुत्र, मित्र, भाई या अन्य कोई सम्बन्धी ही होता है। इसका नाम भी मकार से आरम्भ रहता है और नाम में तीन वर्ण होते हैं। तुला लग्न में गुरु, चन्द्र और बुध का नवांश हो तो चोरी करने वाला परिवार का ही व्यक्ति होता है। मंगल और रवि के नवांश म दूर का सम्बन्धी चोरी करता है तथा शनि के नवांश में आया हुआ अतिथि या अन्य परिचित व्यक्ति—जिस से केवल जान-पहिचान का ही सम्बन्ध होता है, चोरी करता है। तुलालग्न में चोरी गयी हुई वस्तु वडी कठिनाई से प्राप्त होती है।

वृश्चिकलग्न होने पर चोरी गयी हुई वस्तु पश्चिम दिशा में समझनी चाहिए। इस प्रश्नलग्न के होने पर चोरी की वस्तु घर से सौ-डेढ सौ गज की दूरी पर ही रहती है। चोर घर का नौकर ही होता है और इस का

नाम सकार से आरम्भ रहता है। नाम चार अक्षरों का होता है। इस लग्न का नवांश यदि गुरु या शुक्र का हो तो चोरी की वस्तु मिल जाती है तथा चोरी करने वाला किसी उत्तम वर्ण का होता है। बुध के नवांश के होने पर चोरी करने वाला कोई पडौसी भी हो सकता है तथा यह पड़ौसी गौरवर्ण का होता है और इस का कद ५ फीट ६ इंच का रहता है। देखने में भव्य और बातूनी होता है।

प्रश्नकाल में धनुलग्न हो या धनु का नवांश हो तो चोरी गयी वस्तु वायुकोण में रहती है। चोरी करने वाली नारी होती है तथा इस का नाम सकार से आरम्भ होता है और नाम में कुल चार वर्ण पाये जाते हैं। मंगल का नवांश रहने पर चोरी करने वाली युवती होती है और बुध के नवांश में चोरी किसी कन्या के द्वारा की जाती है। शुक्र के नवांश में चोरी करने वाले की आयु ७-८ वर्ष की होती है तथा यह चोरी किसी ब्राह्मण या अन्त्यज के बालक-द्वारा ही की जाती है। धनुलग्न के होने पर गुरु त्रिकोण या केन्द्र में स्थित हो तो चोरी की गयी वस्तु उपलब्ध नही होती। यह चोरी किसी आत्मीय-द्वारा ही की गयी होती है। शनि का नवांश प्रश्नकाल मे रहने से चोरी पुरुष और नारी दोनों के द्वारा मिल कर की जाती है। पुरुष का नाम ह या र अक्षर से आरम्भ होता है और नारी का स से। धनुलग्न में साधारणत. चोरी गयी वस्तु मिलती नही। यदि प्रश्नकाल में धनुलग्न के अन्तिम छः अंश शेष रह गये हों तो प्रयास करने से चोरी की गयी वस्तु मिलती है।

प्रश्नकाल में मकरलग्न हो तो चोरी की वस्तु उत्तर दिशा में समझनी चाहिए। चोरी करने वाला वैश्य जाति का व्यक्ति होता है। नाम का आदि अक्षर स और चार वर्णों का नाम होता है। मकर लग्न में शनि का ही नवांश हो तो चोरी की वस्तु उपलब्ध नही होती। गुरु के नवांश के रहने से किसी धर्म स्थान, मन्दिर, कूप या अन्य किसी तीर्थ स्थान में वस्तु को समझना चाहिए।

प्रश्नकाल में कुम्भलग्न के होने पर चोरी गयी वस्तु उत्तर या उत्तर-पश्चिम के कोने में रहती है। इस प्रश्नलग्न के अनुसार चोरी करने वाला कोई व्यक्ति नहीं होता, वल्कि मूषकों (चूहो) के द्वारा ही वस्तु इधर-उधर कर दी जाती है। इस की प्राप्ति एक महीने के भीतर हो सकती है। प्रश्नकाल में वुध का नवाश हो तो चक्की या चारपाई के पीछे वस्तु की स्थिति समझनी चाहिए। शुक्र और चन्द्रमा के नवाश में चोरी की गयी वस्तु की स्थिति शयनकक्ष में या शयनकक्ष के वग़ल वाले कमरे में समझनी चाहिए।

मीनलग्न में वस्तु की चोरी हुई हो अथवा प्रश्नकाल में मीनलग्न हो तो ईशानकोण में वस्तु की स्थिति रहती है। चोरी करने वाला शूद्र या अन्त्यज होता है और चुरा कर वस्तु को जमीन के नीचे रख देता है। इस का नाम 'व' अक्षर से आरम्भ होना चाहिए और नाम में तीन अक्षर रहते हैं। मीनलग्न में तृतीय नवांश के होने पर चोर स्त्री भी होती है। यह घर का कार्य करने वाली नौकरानी या अन्य कोई परिचित महिला ही रहती है।

वर्गानुसार चोर और चोरी की वस्तु का विचार

प्रश्नकाल में फल, पुष्प, देव, नदी, तीर्थ एवं पर्वत का नामोच्चारण कराके प्रश्नाक्षर ग्रहण करने चाहिए। प्रात काल में आवे तो पुष्प का नाम; मध्याह्न में फल का नाम, अपराह्न में दिन के तीसरे पहर में देवता का नाम और सायकाल में नदी या पहाड का नाम पूछ कर प्रश्नाक्षर ग्रहण करने चाहिए। अवर्ग के वर्ण प्रश्नाक्षर हों अथवा प्रश्नाक्षरो में अवर्ग के वर्गों की प्रधानता हो तो ब्राह्मण चोर होता है। चोर पुरुष न हो कर कोई नारी होती है और चोरी गयी वस्तु मिल जाती है। प्रश्नाक्षर में कवर्ग के वर्ण प्रधान हों तो क्षत्रिय जाति का व्यक्ति चोर होता है। इस प्रकार के प्रश्नाक्षरो के होने पर दो पुरुप चोरी करते हैं और चोरी की वस्तु वहुत दूर पहुँच जाती है। प्रयास करने पर इस प्रकार के प्रश्नाक्षरों की वस्तु

प्राप्त होती है। चोर व्यक्तियो का कद मध्यम दर्जे का होता है और एक व्यक्ति के दाहिने अंग में किसी अस्त्र की चोट का चिह्न रहता है अथवा वह पैर का लँगड़ा होता है। चवर्ग के प्रश्नाक्षर होने पर चोर वैश्य वर्ण का व्यक्ति होता है। चोरी करने वाला अत्यन्त कापुरुष, सन्तानहीन, व्यसनी एवं दुराचारी होता है। टवर्ग के वर्ण प्रश्नाक्षर होने से शूद्र जाति का व्यक्ति चोर होता है और चोरी करने वाला नपुंसक होता है। इस प्रकार के प्रश्नाक्षरो से यह सूचना भी मिलती है कि चोर का सम्बन्ध पुराना है और उस का विश्वास होता चला आ रहा है। उस के गाल या मस्तक पर मस्सा अथवा तिल का दाग भी है।

तवर्ग के प्रश्नाक्षरो के होने से चोरी करने वाला अन्त्यज होता है। चोरी के समय उस की सहायता दो-तीन व्यक्ति करते है या चोरी करने मे उन की भी सहमति रहती है। यह चोरी अत्यन्त विश्वसनीय व्यक्तियो से मिल कर की जाती है। चोरी गये पदार्थ घर से आधा मील की दूरी पर रहते है तथा रुपये खर्च करने पर वे पदार्थ मिल भी जाते हैं।

पवर्ग के वर्ण प्रश्नाक्षर हो तो घर की दासी या नौकरानी चोर होती है। चोरी का सामान भी मिल जाता है। चोरी करने वाली निम्न श्रेणी की होती है तथा उस की आयु ४५-५० वर्ष की होती है। चोरी में इसे किसी से सहायता प्राप्त नही होती है, पर इस की जानकारी घर के किसी न किसी व्यक्ति को अवश्य रहती है।

यवर्ग के वर्ण प्रश्नाक्षर होने पर चोर शूद्र वर्ण का व्यक्ति होता है। बहुत सम्भव है कि यह घर का कोई नौकर ही रहता है अथवा उस घर से उस का सम्बन्ध रहता है। इन प्रश्नाक्षरो से यह भी ज्ञात होता है कि चोर किसी नौकरानी से भी मिला है और चोरी में उस ने भी सहायता प्रदान की है।

शवर्ग के वर्ण प्रश्नाक्षर हों तो चोरी करने वाला वैश्य जाति का व्यक्ति होता है। इस व्यक्ति के सिर पर बाल कम होते है और इस के बाल झड़

जाते हैं तथा खोपडी दिखलाई पडती है। इस का कद मध्यम होता है और अवस्था ३५ या ४० वर्ष के बीच की होती है। चोर अपने व्यवसाय में अत्यन्त प्रवीण होता है तथा चोरी करने का उस का अभ्यास रहता है। उस के दाहिने कन्धे पर लहसुन या किसी शस्त्र का चिह्न अंकित रहता है।

नक्षत्रानुसार चोरी गयी वस्तु की प्राप्ति का विचार

रोहिणी, पुनर्वसु, उत्तराफाल्गुनी, विशाखा, पूर्वाषाढ़ा, धनिष्ठा और रेवती ये नक्षत्र अन्धलोचन संज्ञक हैं। इन में खोयी या चोरी गयी वस्तु पूर्वदिशा में होती है और शीघ्र मिल जाती है। मृगशिर, आश्लेषा, हस्त, अनुराधा, उत्तराषाढा, शतभिषा और अश्विनी इन नक्षत्रो की मन्दलोचन संज्ञा है। इन में खोयी या चोरी गयी वस्तु पश्चिम दिशा में होती है और अधिक प्रयत्न करने पर मिलती है। आर्द्रा, मघा, चित्रा, ज्येष्ठा, अभिजित्, पूर्वाभाद्रपद और भरणी इन नक्षत्रों की काणलोचन या मध्यलोचन संज्ञा है। इन में खोयी या चोरी गयी वस्तु दक्षिण दिशा में होती है और उस वस्तु की प्राप्ति नही होती, किन्तु बहुत दिनो के बाद समाचार उस के सम्बन्ध में सुनने को मिलते हैं। पुनर्वसु, पूर्वाफाल्गुनी, स्वाति, मूल, श्रवण, उत्तराभाद्रपद और कृत्तिका सुलोचन संज्ञक हैं। इन नक्षत्रों में खोयी या चोरी गयी वस्तु उत्तर दिशा में रहती है और कभी भी प्राप्त नहीं होती तथा न उस के सम्बन्ध में कभी समाचार ही मिलते हैं।

मघा से उत्तराफाल्गुनी पर्यन्त नक्षत्रों में खोयी हुई वस्तु पास ही में मिल जाती है, उस के लिए विशेष झंझट नहीं करना पडता। हस्त से धनिष्ठा पर्यन्त नक्षत्रों में खोयी हुई वस्तु अन्य व्यक्ति के हाथ में दिखलाई पडती है। शतभिषा से भरणी पर्यन्त नक्षत्रो में खोयी हुई वस्तु अपने घर में ही दिखलाई पड़ती है। कृत्तिका से आश्लेषा पर्यन्त नक्षत्रों में खोयी हुई वस्तु देखने में नही आती, कही दूर चली जाती है।

प्रवासी प्रश्न विचार

प्रश्नकुण्डली में शुक्र और गुरु २।३ स्थानों में हो तो प्रवासी विलम्ब से; यदि ये ग्रह १।४ स्थान में हो तो जल्दी ही घर वापस आता है। ६।७वें स्थान मे कोई ग्रह हो, केन्द्र में गुरु हो और त्रिकोण में बुध अथवा शुक्र हो तो जल्दी ही प्रवासी लौटता है। लग्न में चर राशि हो या चन्द्रमा चर अथवा द्विस्वभाव राशि में चर नवमांश का हो कर स्थित हो तो प्रवासी लौट आता है। यदि स्थिर लग्न हो तो वह वापस नहीं आता। लग्नेश २।३।८।९वें स्थान में हो तो प्रवासी लौट कर रास्ते में ठहरा हुआ होता है। २।३।५।६।७वें स्थान में वक्रीग्रह हो, केन्द्र में गुरु या बुध हो और त्रिकोण में शुक्र हो तो प्रवासी जल्दी वापस आता है।

प्रश्नकर्त्ता के प्रश्नाक्षरो की संख्या को ६ से गुणा कर जो गुणनफल हो, उस में एक जोड़ने से जो आवे उस में ७ का भाग दे। एक शेष रहे तो प्रवासी आधे मार्ग में, दो शेष रहे तो घर के समीप, तीन शेष रहे तो घर पर, चार शेष रहे तो लाभयुक्त, पाँच शेष रहे तो रोगी, छह शेष रहे तो पीड़ित और शून्य शेष रहे तो आने को तत्पर होता है।

सन्तान सम्बन्धी प्रश्न

सन्तान की प्राप्ति होगी या नही, इस प्रश्न का उत्तर देने के लिए, जिस तिथि को पृच्छक आया हो उस तिथि संख्या को चार से गुणा कर एक जोड देना। इस योगफल में दिन संख्या और योग संख्या—रविवार, सोमवार आदि; विष्कम्भ, प्रीति आदि योग संख्या—उस दिन जो वार और योग हो उस की संख्या जोड देना। इस योगफल में दो से भाग देना, तब जो लब्धि हो उस को तीन से गुणा कर चार से भाग देना। यदि भाग करते समय एक शेष रहे तो विलम्ब से सन्तान की सम्भावना, दो शेष रहने पर सन्तान का अभाव और शून्य शेष रहने पर सन्तान की शीघ्र प्राप्ति होती है।

दिन सख्या—रविवार आदि को क्रम से तीन से गुणा कर उस में तिथिसख्या जोड देना और योगफल में दो का भाग देने से एक शेप रहने पर 'सन्तान की प्राप्ति सम्भव और शून्य शेप रहने पर सन्तान प्राप्ति का अभाव समझना चाहिए।

प्रश्नलग्न के अनुसार सन्तान सम्वन्धी प्रश्नों में लग्नेश और पचमेश तथा लग्न और पचम के सम्वन्ध का विचार करना चाहिए। लग्नेश और पचमेश परस्पर में एक-दूसरे को देखते हो तो सन्तान सात और परस्पर में दृष्टि न हो तो सन्तान का अभाव समझना चाहिए। इस प्रसंग में यह ज्ञातव्य है कि लग्न और पचम पर लग्नेश और पचमेश की दृष्टि का होना तथा शुभ ग्रहों के साथ इत्थशाल योग का रहना सन्तान प्राप्ति के लिए आवश्यक है। दृष्टि न होने पर सन्तानभाव समझना चाहिए। प्रश्नलग्न, जन्मलग्न और चन्द्रमा से पंचम स्थान में सिंह, वृष, वृश्चिक और कन्या राशियां स्थित हों तो प्रश्नकर्त्ता को विलम्ब से सन्तान लाभ होता है। यदि पचम भाव में पापग्रह हो अथवा पापदृष्ट ग्रह हो तो भी विलम्ब से सन्तान प्राप्ति होती है। यदि प्रश्न के समय अष्टम भाव में सूर्य और शनि सिंह, मकर या कुम्भ राशि में स्थित हो तो सन्तान का अभाव समझना चाहिए। चन्द्र और बुध अष्टम स्थान में स्थित हों तो विलम्ब से एक सन्तान की प्राप्ति होती है। चन्द्रमा के वलवान् होने से कन्या सन्तान होती है। यदि अष्टम में केवल वुध स्थित हो तो सन्तान का अभाव रहता है। शुक्र और गुरु अष्टम स्थान में स्थित हो तो सन्तान उत्पन्न होने के अनन्तर उस की मृत्यु हो जाती है। मगल अष्टम में हो तो गर्भपात हो जाता है। प्रश्न लग्न में अष्टमेश अष्टम भाव में स्थित हो तो पृच्छक को सन्तान लाभ नहीं होता। शुक्र और सूर्य अष्टम स्थान में स्थित हों तथा पापग्रह द्वितीय, द्वादश और अष्टम स्थान मे हो तो सन्तान लाभ नही होता तथा पृच्छक को कष्ट भी होता है। यदि द्वादश भाव का स्वामी केन्द्र में हो और उसे शुभग्रह देखते हों तो एक दीर्घजीवी वालक उत्पन्न होता है। पचमेश

अथवा लग्नेश मेष, मिथुन, सिंह, तुला, धनु और कुम्भ राशियों में स्थित हो तो एक पुत्र की प्राप्ति होती है। यदि उक्त ग्रह वृष, कर्क, कन्या, वृश्चिक, मकर और मीन राशियो में स्थित हों तो पुत्रलाभ और वही सम स्थान में स्थित हो तो कन्या की प्राप्ति होती है। पंचम भाव का स्वामी लग्नेश या चन्द्रमा से इत्थशाल करता हो और शुभ ग्रहो से युक्त या दृष्ट हो तो पृच्छक को सन्तान लाभ होता है।

लाभालाभ प्रश्न

प्रश्नकालीन कुण्डली बनाने के अनन्तर विचार करना—यदि लग्नेश और अष्टमेश दोनों आठवें स्थान में हो तथा ये दोनों एक ही द्रेष्काण में स्थित हों तो पृच्छक को अवश्य लाभ होगा। प्रश्नकाल में लग्न में सौम्य ग्रहो का वर्ग हो तो ग्रहभाव की अपेक्षा शुभ फल समझना चाहिए। लग्न में चन्द्रमा और लाभभाव में गुरु या शुक्र हो तथा लाभ भाव के ऊपर शुभ ग्रहों की दृष्टि हो तो पृच्छक को विशेष रूप से लाभ होता है। लग्नेश और लाभेश एक साथ हो तो भी लाभ होता है। लग्नेश और लाभेश का इत्थशाल योग होने पर भी लाभ होता है। यदि लग्नेश चन्द्रमा से दृष्ट होकर लाभ स्थान में स्थित हो तो दूसरो की सहायता से लाभ होता है। दशमेश और चन्द्रमा का इत्थशाल होने पर भी लाभ की प्राप्ति होती है। कर्माधिपति का लग्नेश के साथ रहना, उस के साथ इत्थशाल होना एवं कर्माधिपति और लाभेश का योग होना भी लाभ का सूचक है। लाभेश और अष्टमेश का योग और इत्थशाल होने पर भी लाभ नहीं होता। जिस-जिस स्थान पर चन्द्रमा की दृष्टि हो उस-उस स्थान से पुण्य की वृद्धि तथा कर्म की सिद्धि होती है। अष्टम भाव पर चन्द्रमा की दृष्टि रहने से लाभ नही होता तथा धर्म-कर्म का भी ह्रास होता है। लग्नेश षष्ठ या अष्टम में हो तो लाभ नही होता तथा नाना प्रकार के कष्ट भी सहन करने पड़ते है। लग्नेश द्वादश भाव मे स्थित हो तो व्यय अधिक होता है और

लाभ कुछ नही। पृच्छक की प्रश्नकुण्डली में लग्न में वुध स्थित हो और चन्द्रमा की दृष्टि हो अथवा पाप ग्रहो की वुध पर दृष्टि हो तो शीघ्र ही लाभ होता है।

प्रश्नलग्न में जो राशि हो उस की कला वना कर उस पिण्ड को छाया के अंगुलो से गुणा करे और सात से भाग दे तो जो शेष वचे उसे एक स्थान में रखे। यदि शुभ ग्रह का उदयाक हो तो प्रश्नकर्त्ता के कार्य की सिद्धि कहना और अन्य ग्रह का उदयाक हो तो कार्यसिद्धि का अभाव समझना चाहिए।

वाद-विवाद या मुकद्मे का प्रश्न

विवाद के प्रश्न में यदि लग्न में पापग्रह हो तो प्रश्नकर्त्ता निश्चयत उस मुकद्मा में विजयी होगा। सप्तम भाव में नीच ग्रह के रहने से मुकद्मे में विजय लाभ नही होता। लग्न और सप्तम में क्रूर ग्रहो के रहने से मुकद्मा वर्षों चलता है और कई वर्ष के पश्चात् वादी की विजय होती है। लग्नेश, पचमेश और शुभ ग्रह केन्द्र में हों तो सन्धि हो जाती है। लग्नेश, सप्तमेश और षष्ठेश छठे स्थान में हो तो परस्पर कलह कुछ अधिक दिनों तक चलती है, पर अन्त में विजयलाभ होता है। मुकद्मे के प्रश्न में लग्न, पचम और षष्ठ तथा इन स्थानो के स्वामियों से विचार करना चाहिए। लग्न के निर्वल होने से विजय की सम्भावना नहीं रहती। लग्नेश और पंचमेश भी हीनवल हो या इनके ऊपर क्रूर ग्रह की दृष्टि हो तो नाना प्रकार के कष्ट सहन करने पडते हैं तथा मुकद्मे में पराजय होती है। चन्द्रमा लग्न या पचम को देखता हो तथा उस का लग्नेश या पंचमेश के साथ इत्थशाल योग हो तो भी विजयलाभ होता है।

पृच्छक से किसी फूल का नाम पूछ कर उस की स्वर संख्या को व्यंजन संख्या से गुणा कर दें, गुणनफल में पृच्छक के नाम के अक्षरो की सख्या जोड कर योगफल में ९ का भाग दे। एक शेष में शीघ्र कार्यसिद्धि, ०।२।५ में विलम्ब से कार्यसिद्धि और ४।६।८ शेष में कार्यनाश तथा अव-

शिष्ट शेष में कार्य मन्दगति से होता है।

पृच्छक के नाम के अक्षरों को दो से गुणा कर गुणनफल में ७ जोड़ दे। इस योगफल में तीन का भाग देने पर सम शेष में कार्य नाश और विषम शेष में कार्यसिद्धि समझना चाहिए।

पृच्छक से एक से ले कर नौ तक की अंक संख्या में से कोई भी अंक पूछना चाहिए। बतायी गयी अंक संख्या को उस के नाम की अक्षर संख्या से गुणा कर देना चाहिए। इस गुणनफल में तिथिसंख्या और प्रहर संख्या को जोड़ देना चाहिए। तिथि की गणना शुक्लपक्ष की प्रतिपदा से होती है, अतः शुक्लपक्ष की प्रतिपदा की संख्या १, द्वितीया २, इसी प्रकार अमावास्या की ३० मानी जाती है। बार संख्या रविवार की १, सोमवार २, मंगल ३ इसी प्रकार उत्तरोत्तर बढ़ती हुई शनि की ७ संख्या मानी गयी है। उपर्युक्त योग संख्या में ८ का भाग देने पर ०।१।७ शेष में कार्यसिद्धि, मतान्तर से १।७ में विलम्ब से सिद्धि; २।४।६ में सिद्धि और ३।५ शेष में विलम्ब से सिद्धि होती है।

पृच्छक यदि ऊपर देखता हुआ प्रश्न करे तो कार्यसिद्धि और जमीन को देखता हुआ प्रश्न करे तो विलम्ब से कार्यसिद्धि होती है। जमीन देखते समय उस की दृष्टि किसी गड्ढे या नीचे स्थान की ओर हो तो कार्य सिद्धि नहीं होती। अपने शरीर को खुजलाते हुए प्रश्न करे तो विलम्ब से कार्यसिद्धि; जमीन खरोचता हुआ प्रश्न करे तो कार्य असिद्धि एवं इधर-उधर देखता हुआ प्रश्न करे तो विलम्ब से कार्यसिद्धि होती है।

मेष, मिथुन, कन्या और मीन लग्न में प्रश्न किया गया हो तो कार्य-सिद्धि; तुला, कर्क, सिंह और वृष लग्न में प्रश्न किया हो तो विलम्ब से सिद्धि एवं वृश्चिक, धनु, मकर और कुम्भ में प्रश्न किया गया हो तो प्रायः कार्य की सिद्धि नहीं होती। मतान्तर से धनु और कुम्भ लग्न में प्रश्न किये जाने पर कार्यसिद्ध मानी गयी है। मकर लग्न में प्रश्न करने पर कार्यसिद्धि नहीं होती। यदि लग्नेश चतुर्थ, पंचम और दशम भाव-

में से किसी भी स्थान में स्थित हो तो कार्य की सिद्धि होती है। चन्द्रमा या चतुर्थेश या दशमेश में से कोई भी हो तो कार्य सफल होता है। दशम भाव में उच्च का मगल या सूर्य हो तो अवश्य ही कार्य सिद्ध होता है। दशमेश का चन्द्रमा अथवा लग्नेश के साथ इत्थशाल योग हो और चन्द्रमा की उस के ऊपर दृष्टि हो तो कार्य सिद्ध होता है। लग्न स्थान में मंगल हो और उस पर गुरु की दृष्टि हो तो कार्य सिद्ध होता है। शनि का नवाश लग्न में ही तथा लग्न में राहु अथवा केतु में से कोई एक ग्रह स्थित हो तो कार्य सफल नहीं होता। दशम या दशमेश पाप ग्रहो से युक्त या दृष्ट हो तो कार्य का नाश होता है। पचमेश और चतुर्थेश दशम भाव में हों तो वडी सफलता के साथ कार्य सिद्ध होता है। चतुर्थेश या दशमेश का वक्री होना कार्यसिद्धि में वाधक है।

भोजन सम्वन्धी प्रश्न

आज मै ने कितनी वार भोजन किया है और कैसा भोजन किया है, इस प्रश्न के उत्तर को समझने के लिए लग्न स्वभाव का विचार करना चाहिए। यदि प्रश्नलग्न स्थिर हो तो एक वार भोजन, द्विस्वभाव हो तो दो वार भोजन और चर लग्न हो तो कई वार भोजन किया है, यह समझना चाहिए। यदि चन्द्रमा लग्न में हो तो नमकीन, मगल हो तो कड ुआ तथा खट्टा, गुरु हो तो मीठा, सूर्य हो तो तिक्त, शुक्र हो तो स्निग्ध और वुध लग्न में हो तो समस्त रसो का भोजन किया है। शनि लग्न में हो तो कपायला भोजन किया है, यह कहना चाहिए। भोजन के सम्वन्ध में चन्द्रमा, गुरु, मगल से भी विचार करना चाहिए। ज्योतिप में सूर्य का कटु रस, चन्द्रमा का नमकीन, मगल का तिक्त, वुध का मिश्रित, गुरु का मधुर, शुक्र का खट्टा और शनि का कपायला रस कहा है। जो ग्रह लग्न में हो अथवा लग्न को देखता हो, उसी के अनुसार भोजन का रस समझना चाहिए। चन्द्रमा जिस ग्रह के साथ इत्थशाल योग कर रहा

हो, उस ग्रह का रस भोजन में प्रधान रूप से रहता है। लग्न में राहु या शनि सूर्य से दृष्ट हो तो भोजन अच्छा नही मिलता या अभाव रहता है।

विवाह प्रश्न

प्रश्नलग्न से विवाह के सम्बन्ध में विचार करते समय सप्तमेश का लग्नेश अथवा चन्द्रमा के साथ इत्यशाल योग हो तो शीघ्र ही विवाह होता है। यदि लग्नेश अथवा चन्द्रमा सप्तम भाव में हो तो भी शीघ्र विवाह होता है। सप्तमेश का जिस ग्रह के साथ इत्यशाल योग हो और वह ग्रह निर्बल, पापयुक्त या पापदृष्ट हो तो विवाह नही होता अथवा बहुत बडी परेशानी के बाद विवाह होता है। सप्तम भाव में पापग्रह हो अथवा अष्टमेश हो तो विवाह होने के पश्चात् पति-पत्नी में से किसी एक की मृत्यु होती है तथा विवाह अत्यन्त अशुभ माना जाता है। सप्तम स्थान पर अथवा सप्तमेश पर शुभ ग्रह की दृष्टि हो तो विवाह तीन महीने के मध्य में हो जाता है। लग्नेश, सप्तमेश तथा चन्द्रमा इन तीनो ग्रहो के स्वभाव, गुण, स्थान, दृष्टि आदि के द्वारा विवाह प्रश्न का उत्तर देना चाहिए।

कार्यसिद्धि-असिद्धि प्रश्न

पृच्छक का मुख जिस दिशा में हो उस दिशा की अंक संख्या (पूर्व १, पश्चिम २, उत्तर ३, दक्षिण ४), प्रहर संख्या (जिस प्रहर में प्रश्न किया गया है, उस की संख्या-तीन-तीन घण्टे का एक प्रहर होता है। प्रातः-काल सूर्योदय से तीन घण्टे तक प्रथम प्रहर, आगे तीन-तीन घण्टे पर एक-एक प्रहर की गणना कर लेनी चाहिए।), वार संख्या (रविवार १, सोमवार २, मंगलवार ३, बुधवार ४, बृहस्पतिवार ५, शुक्रवार ६, शनिवार ७) और नक्षत्र संख्या (अश्विनी १, भरणी २, कृत्तिका ३, रोहिणी ४ इत्यादि गणना) को जोड़ कर योगफल में आठ का भाग देना

चाहिए। एक अथवा पाँच शेप रहे तो शीघ्र कार्यसिद्धि, छह अथवा चार शेष में तीन दिन में कार्यसिद्धि; तीन अथवा सात शेप में विलम्ब से कार्यसिद्धि एव शून्य शेप में कार्य की सिद्धि नहीं होती।

पृच्छक से एक से लेकर एक सौ आठ अंक के बीच की एक अक संख्या पूछनी चाहिए। इस अंक संख्या में १२ का भाग देने पर १।७।९ शेष वचे तो विलम्ब से कार्यसिद्धि, ८।४।५।१० शेष में कार्यनाश एवं २।६।०।११ शेष में कार्यसिद्धि होती है।

गर्भस्थ सन्तान पुत्र है, या पुत्री का विचार

१—प्रश्नकुण्डली में लग्न में सूर्य, गुरु या मगल हो अथवा ये ग्रह ३।५।७।९वें स्थान में हों तो पुत्र, और अन्य कोई ग्रह इन स्थानो में हो तो कन्या होती है।

२—प्रश्नलग्न विषम राशि या विषम नवमाश में हो और लग्न में सूर्य, गुरु तथा चन्द्रमा वलवान् होकर स्थित हों तो पुत्र का जन्म होता है। समराशि या समराशि के नवमाश में ये ग्रह स्थित हों तो कन्या का जन्म होता है। गुरु और सूर्य विपम राशि में हों तो पुत्र; चन्द्रमा, शुक्र और मगल समराशि में हो तो कन्या का जन्म होता है।

३—शनि लग्न के सिवा अन्य विषम राशि में स्थित हो तो पुत्र एवं द्विस्वभाव लग्न पर बुध की दृष्टि हो तो यमल सन्तान उत्पन्न होती है।

४—लग्न में पुरुष राशि हो और वलवान् पुरुष ग्रह की उस पर दृष्टि हो तो पुत्र, समराशि हो और स्त्री ग्रह की दृष्टि हो तो कन्या का जन्म होता है।

५—पचमेश और लग्नेश समराशि में हो तो कन्या, विपमराशि में हो तो पुत्र उत्पन्न होता है। लग्नेश, पंचमेश एक साथ वैठे हो अथवा एक दूसरे को देखते हो अथवा परस्पर एक-दूसरे के स्थान में हो तो पुत्र योग होता है।

६—पुरुषग्रह—सूर्य, मंगल, गुरु बलवान् हों तो पुत्रजन्म और स्त्री-ग्रह—चन्द्र, शुक्र बलवान् हो तो कन्या का जन्म होता है। प्रश्नकुण्डली में ३।५।९।११वें स्थान में सूर्य, मंगल और गुरु हो तो पुत्र का जन्म अथवा ५।९वें भाव में बलवान् गुरु बैठा हो तो पुत्र का जन्म होता है।

७—पृच्छक जिस दिन पूछ रहा है, शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा से लेकर उस दिन तक की तिथिसंख्या, प्रहरसंख्या वारसंख्या, नक्षत्रसंख्या को जोड़ कर, योगफल में से एक घटा कर सात का भाग देने से विषम अंक शेष रहे तो पुत्र और सम अंक रहे तो कन्या होती है।

८—गर्भिणी के नाम के अक्षरों में वर्तमान तिथिसंख्या तथा पन्द्रह जोड़ कर ९ का भाग देने से विषम अंक शेष रहे तो पुत्र और सम अंक शेष रहे तो कन्या होती है।

९—तिथि, वार, नक्षत्र-संख्या में गर्भिणी के नाम के अक्षरों को जोड़कर सात का भाग देने से एकादि शेष में रविवार आदि होते है। इस प्रक्रिया से रवि, भौम और गुरुवार निकले तो पुत्र; शुक्र, चन्द्र और बुधवार निकले तो कन्या एव शनिवार निकले तो क्षीण सन्तति समझना चाहिए।

१०—गर्भिणी के नाम के अक्षरो में २० का अक, वर्तमान तिथिसंख्या और ४ का अंक जोड़कर ९ का भाग देने से सम अंक शेष रहे तो कन्या और विषम अंक शेष रहे तो पुत्र उत्पन्न होता है।

११—यदि प्रश्नकर्त्ता प्रश्न करते समय अपने दाहिने अंग का स्पर्श करते हुए प्रश्न करे तो पुत्र और बायें अंग का स्पर्श करते हुए प्रश्न करे तो कन्या का जन्म होता है।

मूक प्रश्न विचार

यदि प्रश्नलग्न मेष हो तो प्रश्नकर्त्ता के मन में मनुष्यों की चिन्ता, वृष हो तो चौपायों या मोटर की चिन्ता, मिथुन हो तो गर्भ की चिन्ता, कर्क हो तो व्यवसाय की चिन्ता, सिंह हो तो जीव की चिन्ता, कन्या हो तो स्त्री की

चिन्ता, तुला हो तो धन की चिन्ता, वृश्चिक हो तो रोगी की चिन्ता, मकर हो तो शत्रु की चिन्ता, कुम्भ हो तो स्थान की चिन्ता और मीन हो तो दैव-सम्बन्धी चिन्ता समझनी चाहिए।

१—लग्नेश या लाभेश से जिस स्थान मे चन्द्रमा वैठा हो उसी भाव की चिन्ता पृच्छक के मन में होती है।

२—वलवान् चन्द्रमा से जिस स्थान में लग्नेश वैठा हो उस भाव का प्रश्न जानना चाहिए।

३—जिस स्थान में चन्द्रमा वैठा हो उस स्थान का प्रश्न या उच्च और सब से अधिक वलवान् ग्रह जिस भाव में वैठा हो उस भाव का प्रश्न जानना चाहिए।

४—लाभेश से जो ग्रह वलवान् (निसर्ग, काल, चेष्टा, दृष्टि, दिशा आदि बल से युक्त) हो उस से चन्द्रमा जिस भाव में हो उस भाव-सम्बन्धी प्रश्न प्रश्नकर्ता के मन में जानना चाहिए।

५—यदि लग्न में वलवान् ग्रह हो तो अपने विषय में, तीसरे स्थान में वलवान् ग्रह हो तो भाई के विषय में, पंचम स्थान में हो तो सन्तान के विषय में, चतुर्थ स्थान में हो तो माता और मौसी के विषय में, छठे स्थान में हो तो शत्रु के विषय में, सप्तम स्थान में हो तो स्त्री के विषय में, नवम स्थान में हो तो धर्म या भाग्य के विषय में, दशम में हो तो राजा के विषय में प्रश्न समझना चाहिए।

६—सूर्य अपने घर का हो तो राजा, राज्य के सम्वन्ध में अपनी या पिता की चिन्ता, चन्द्रमा स्वगृही हो तो जल, खेत, गढा, धन और माता की चिन्ता, मंगल स्वगृही हो तो शत्रुभय, राजभय, भूमि, जमीदारी की चिन्ता, वुध स्वगृही हो तो खेत, आयुध, चाचा और स्वामी की चिन्ता; गुरु स्वगृही हो तो धर्म, मित्र, विद्या, गुरु और शासन के सम्वन्व में चिन्ता, शुक्र स्वगृही हो तो अच्छी वातो की चिन्ता और शनि हो तो घर और भूमि की चिन्ता पृच्छक के मन में होती है।

७—चन्द्रमा लग्न में हो तो मार्ग, या शत्रु की चिन्ता, धन में हो तो क्षेत्र, धन, भोज्य पदार्थों की चिन्ता; तीसरे स्थान में हो तो प्रवास की चिन्ता; चतुर्थ स्थान में हो तो घर और माता के विषय में चिन्ता; पंचम में हो तो सन्तान की चिन्ता; षष्ठ में हो तो रोगचिन्ता; सप्तम में हो तो स्त्री की चिन्ता, अष्टम स्थान में हो तो मृत्यु की चिन्ता; नवम में हो तो यात्रा की; दशम मे हो तो खेत, कार्यसिद्धि की; एकादश में हो तो वस्त्र-लाभ की; और बारहवें में हो तो चोरी गयी वस्तु के लाभ की चिन्ता पृच्छक के मन में होती है।

८—मंगल बलवान् हो तो अपने विषय में; गुरु बलवान् हो तो स्त्री के विषय में; चन्द्रमा बलवान् हो तो माता के विषय में; शुक्र बलवान् हो तो वंश के विषय में; शनि बलवान् हो तो शत्रु के विषय में और सूर्य बलवान् हो तो पिता के विषय में प्रश्न पृच्छक के मन में होता है।

मुष्टिका प्रश्न विचार

प्रश्न समय मेष लग्न हो तो मुट्ठी की वस्तु का लाल रंग; वृष लग्न हो तो पीला; मिथुन हो तो नीला; कर्क हो तो गुलाबी, सिंह हो तो धूमिल; कन्या हो तो नीला, तुला हो तो पीला; वृश्चिक हो तो लाल; धनु हो तो पीला; मकर तथा कुम्भ में कृष्ण वर्ण और मीन में पीला वर्ण होता है। वस्तु का विशेष स्वरूप लग्नेश के स्वरूप, गुण और आकृति से कहना चाहिए।

केरल मतानुसार प्रश्न विचार

प्रात:काल पृच्छक आये तो उस के प्रश्नाक्षरो को या बालक के मुख से किसी पुष्प का नाम, मध्याह्न में बालक के मुख से फल का नाम, दिन के तीसरे पहर में बालक के मुख से देव का नाम और सायंकाल में नदी या तालाब का नाम ग्रहण करना चाहिए। बालक के अभाव में प्रश्नकर्त्ता के मुख से ही पुष्पादि का नाम ग्रहण चाहिए। जो पृच्छक का प्रश्नवाक्य हो उस के स्वर और व्यंजनो का विश्लेषण कर निम्न प्रकार से पिण्ड बना लेना चाहिए।

अ = १२, आ = २१, इ = ११, ई = १८, उ = १५, ऊ = २२, ए = १८, ऐ = ३२, ओ = २५, = औ १९, अ = २५, क = १३, ख = ११, ग = २१, घ = ३०, ङ = १०, च = १५, छ = २१, ज = २३, झ = २६, ञ = २६, ट = १०, ठ = १३, ड = २२, ढ = ३५, ण = ४५, त = १४, थ = १८, द = १७, ध = १३, न = ३५, प = २८, फ = १८, ब = २६, भ = १७, म = ८६, य = १६, र = १३, ल = १३, व = ३५, श = २६, ष = ३५, स = ३५, ह = १२।

मात्रा-वर्ण ध्रुवांक चक्र

अ	१२	क	१३	ठ	१३	ब	२६
आ	२१	ख	१२	ड	२२	भ	२७
इ	११	ग	२१	ढ	३५	म	८६
ई	१८	घ	३०	ण	४५	य	१६
उ	१५	ङ	१०	त	१४	र	१३
ऊ	२२	च	१५	थ	१८	ल	१३
ए	१८	छ	२१	द	१७	व	३५
ऐ	३२	ज	२३	ध	१३	श	२६
ओ	२५	झ	२६	न	३५	ष	३५
औ	१९	ञ	२६	प	२८	स	३५
अ	२५	ट	१७	फ	१८	ह	१२

लाभालाभ के प्रश्न में पिण्ड-संख्या में ४२ क्षेपक का अंक जोड देना चाहिए और जो योगफल आवे उस में तीन का भाग देने पर १ शेष बचे तो पूर्ण लाभ, २ शेष बचे तो अल्प लाभ और शून्य शेष बचे तो हानि कहना चाहिए ।

उदाहरण—गोपाल प्रात काल लाभालाभ का प्रश्न पूछने के लिए आया, इसलिए उस से किसी फूल का नाम पूछा, उस ने चमेली का नाम लिया । 'चमेली' प्रश्नवाक्य में च + अ + म् + ए + ल् + ई ये स्वर और व्यजन हैं । मात्रा और वर्ण ध्रुवाक पर से पिण्ड बनाया—

च = १५, अ = १२ म् = ८६, ए = १८, ल् = १३, ई = १८, १५ + १२ + ८६ + १८ + १३ + १८ = १६२ पिण्डाक, इस में क्षेपाक जोडा। १६२ + ४२ = २०४ ÷ ३ = ६८ लब्ध, शेष ०। यहाँ शून्य शेष रहा है, अतएव हानि फल समझना चाहिए।

जय-पराजय—पिण्डांक में ३४ जोड़ कर तीन का भाग देने से १ शेष रहे तो जय, २ शेष में सन्धि और शून्य में पराजय कहनी चाहिए।

सुख-दु.ख—पिण्डाक में ३८ जोड कर २ का भाग देने से एक शेष में सुख और शून्य मे दु:ख समझना चाहिए।

गमनागमन—यात्रा के प्रश्न में पिण्डाक में ३३ जोड़ कर ३ का भाग देने से १ शेष रहे तो तत्काल यात्रा, दो शेष में यात्रा का अभाव और शून्य शेष में पीड़ा और कष्ट फल समझना चाहिए।

जीवन-मरण—किसी रोगी या अन्य किसी व्यक्ति के सम्बन्ध में कोई पूछे कि अमुक जीवित रहेगा या मरेगा अथवा जीवित है या मर गया है? तो इस प्रकार के प्रश्न मे पिण्डांक में ४० जोड़ कर ३ का भाग देने से एक शेष रहने से जीवित; दो रहने से कष्टसाध्य और शून्य शेष रहने से मृत समझना चाहिए।

वर्षा प्रश्न—वर्षा होगी या नही? इस प्रकार के प्रश्न में पिण्डांक में ३२ जोड़ कर ३ का भाग देने से एक शेष में वर्षा, दो में अल्पवृष्टि और शून्य शेष मे वर्षा का अभाव ज्ञात करना चाहिए।

गर्भ का प्रश्न—गर्भ है या नही, इस प्रकार के प्रश्न में पिण्डाक में २६ जोड़ कर ३ का भाग देने से एक शेष रहे तो गर्भ, दो शेष में सन्देह और शून्य शेष में गर्भ का अभाव समझना चाहिए।

उदाहरण—देवदत्त अपने मुकदमा के सम्बन्ध में पूछने आया कि मैं उस मे विजय प्राप्त करूँगा या नही? उस के मुख से फल का नाम उच्चारण कराया तो उसने नीबू का नाम लिया। इस प्रश्न-वाक्य का पिण्डाक बनाने के लिए स्वर व्यंजनो का विश्लेषण किया तो—

न् + ई + व् + ऊ = ३५ + १८ + २६ + २२ = १०१ पिण्डाक। जयपराजय का प्रश्न होने के कारण पिण्डाक में ३४ जोडा तो—

१०१ + ३४ = १३४ ÷ ३ = ४५ लब्ध, शेष शून्य रहा। अतएव यहाँ मुकदमे में पराजय समझना चाहिए। इसी प्रकार उपर्युक्त सभी प्रकार के प्रश्नो के उदाहरण समझ लेना चाहिए।

प्रकारान्तर से पुत्र-कन्या प्रश्न—यदि कोई प्रश्न करे कि कन्या होगी या पुत्र ? तो प्रश्न समय के तिथि, वार, नक्षत्र और योग को जोड कर उस में नाम की अक्षर संख्या को भी जोड कर ७ से भाग देना चाहिए। भाग देने से सम अंक—२।४।६ शेष रहें तो कन्या और विषम अक—१।३।५।७ शेष रहें तो पुत्र का जन्म कहना चाहिए।

प्रश्नपिण्डाक में ३ का भाग देने से १ शेष में पुत्र का जन्म, २ में कन्या का जन्म और ० में गर्भ का अभाव समझना चाहिए।

उदाहरण—प्रश्नकर्त्ता का प्रश्नवाक्य यमुना नदी है, इस का विश्लेषण किया तो—य् + अ + म् + उ + न् + आ हुआ। १६ + १२ + ८६ + १५ + ३५ + २१ = १८५ पिण्डाक, १८५ ÷ ३ = ६१ लब्ध, २ शेष, यहाँ दो शेष रहा है अत कन्या का जन्म समझना चाहिए।

कार्यसिद्धि की समय-मर्यादा—कोई पूछे हमारा कार्य कब तक होगा ? ऐसे प्रश्न में उस समय भी तिथिसख्या, वारसख्या और नक्षत्र-सख्या का योग कर, योगफल को ३ से गुणा कर ६ और जोड दें। इस योगफल में ९ का भाग देने से १ शेष में पक्ष, २ में मास, ३ शेष में ऋतु, ४ शेष में अयन अर्थात् ६ मास, ५ शेष में दिन, ६ शेष में रात, ७ शेष रहे तो प्रहर, ८ शेष में घटी और ९ शेष रहे तो एक मिनिट कार्य होने की अवधि समझना चाहिए।

उदाहरण—हरि पूछने आया कि मेरा कार्य कितने समय में होगा ?

जिस दिन हरि आया उस दिन सप्तमी तिथि[1] गुरुवार और मघा नक्षत्र था। इन तीनों की संख्या का योग किया ७+५+१०=२२, २२×३ =६६+६=७२, ७२÷९=८ ल० ९ शे०, १ मिनिट में अर्थात् तत्काल ही पृच्छक का कार्य सिद्ध होगा।

विवाह प्रश्न—पृच्छक पूछे कि मेरा या अन्य किसी का विवाह होगा अथवा नहीं ? यदि होगा तो कम परिश्रम से होगा या अधिक से ? इस प्रकार के प्रश्न की पिण्डाक-संख्या में ८ से भाग देने पर १ शेप रहे तो अनायास ही विवाह, २ शेष रहे तो कष्ट से विवाह; ३ शेष रहे तो विवाह का अभाव, ४ शेष में जिस कन्या के साथ विवाह होने वाला है उस की मृत्यु, ५ में किसी कुटुम्बी की मृत्यु, ६ शेष में विवाह के समय राजभय; ७ शेष रहे तो दम्पति का मरण अथवा ससुर का मरण, और ८ शेप रहे तो सन्तान की मृत्यु समझनी चाहिए।

उदाहरण—पृच्छक का प्रश्न-वाक्य यमुना है जिस की पिण्डाक संख्या १८५ है, इस में ८ से भाग दिया—

१८५÷८=२३ लब्ध, १ शेष। यहाँ १ शेष रहा है अत. आसानी से बिना कष्ट के विवाह होगा, ऐसा फल कहना चाहिए।

चमत्कार प्रश्न

१—जन्मपत्री मृतक की है, या जीवित की—इस प्रश्न में जन्मलग्न अष्टम स्थान की राशि और प्रश्नलग्न इन तीनो की संख्या को जोड कर जन्मकुण्डली के अष्टमेश की राशिसंख्या से गुणा कर लग्नेश की राशिसंख्या से भाग देने पर विषम अंक १।३।५।७।९।११ शेष रहे तो जीवित की और सम अंक २।४।६।८।१०।१२ शेष रहें तो मृतक की पत्रिका होती है।

---

१. तिथि गणना प्रतिपदा से, नक्षत्र गणना अश्विनी से और वार गणना रविवार से ली जाती है।

उदाहरण—प्रश्नलग्न तुला, जन्मलग्न मीन, अष्टमेश की राशि ९, लग्नेश की राशि ५ है।

७ + १२ + ७ = २६ × ९ = २३४ ÷ ५ = ४६ लब्ध ४ शेष। अतएव मृतक की जन्मपत्रिका कहनी चाहिए।

२—जन्मलग्न, प्रश्नलग्न और जन्मकुण्डली के अष्टमेश की राशि, इन तीनो को जोडने से जो योगफल आवे उस में अष्टमेश की राशि से गुणा करना चाहिए और गुणनफल में प्रश्न-समय में सूर्य जिस नक्षत्र पर हो उस की सख्या में भाग देना चाहिए। सम शेष में मृतक की जन्मपत्री और विषम शेष में जीवित की जन्मपत्री होती है।

उदाहरण—जन्मल० १२ + ७ प्रश्नल० + अष्टमेश रा० ९ = १२ + ७ + ९ = २८
२८ × ९ = २५२, प्रश्न समय में सूर्य ५ राशि का है अत ५ से भाग दिया तो—२५२ – ५ = ५० लब्ध २ शेष। सम शेष रहने से मृतक की जन्मपत्री समझनी चाहिए।

१—पुरुष-स्त्री की जन्मपत्री का विचार—राहु और सूर्य जिस राशि पर हो उस राशि की अकसख्या तथा लग्नाक संख्या को जोड कर ३ का भाग देवे से शून्य और १ शेष में स्त्री की और २ शेष में पुरुष की जन्मपत्री होती है।

उदाहरण—राहु कन्याराशि, सूर्य कर्कराशि में और लग्न धनुराशि है।
६ + ४ + ९ = १९ ÷ ३ = ६ लब्ध १ शेष। स्त्री की जन्मपत्री है।

२—जन्मलग्न को छोड अन्यत्र विषम स्थान में शनि स्थित हो और पुरुषग्रह बलवान् हों तो पुरुष की कुण्डली; इस से विपरीत हो तो स्त्री की कुण्डली समझनी चाहिए।

दम्पति की मृत्यु का ज्ञान—स्त्री-पुरुष में किस की मृत्यु पहले होगी, इस का विचार करने के लिए नामाक्षर संख्या को तिगुना करना और

मात्रा संख्या को चौगुना कर, दोनो संख्याओ को जोडकर ३ का भाग देने पर १, शून्य शेष रहे तो पुरुष की पहले मृत्यु और २ शेष रहे तो स्त्री की मृत्यु पहले होती है।

३—पुरुष-स्त्री की जन्मराशि-संख्या को जोड़कर ३का भाग देने से ० और १ शेष रहे तो पुरुष की मृत्यु एवं २ शेष रहे तो पहले स्त्री की मृत्यु होती है। इस प्रकार प्रश्नो का फल निकाल लेना चाहिए।

इस प्रकार भारतीय ज्योतिष के व्यावहारिक सिद्धान्त वैदिक काल से आज तक उत्तरोत्तर विकसित होते चले आ रहे है। ऋग्वेद, कृष्ण यजुर्वेद, अथर्ववेद, शतपथ ब्राह्मण, मुण्डकोपनिषद्, छान्दोग्योपनिषद्, तैत्तिरीय ब्राह्मण, मैत्रायणी संहिता, काठक संहिता, अनुयोगद्वार सूत्र एवं समवायांग आदि में प्राचीन काल में ज्योतिष की महत्त्वपूर्ण चर्चाएँ लिखी गयी हैं। मेरा विश्वास है कि भारतीय वाङ्मय का ऐसा एक भी ग्रन्थ नही है, जिस में ज्योतिष का उपयोग न किया गया हो। यह विज्ञान निरन्तर विकसित होता हुआ अपनी प्रभारश्मियो को दर्शनादि शास्त्रों पर विकीर्ण करता रहा है।

मैं ने अथाह ज्योतिष-सागर में से कतिपय रत्नो को निकाल कर राष्ट्र-भाषा के प्रेमी पाठको के समक्ष रखने का प्रयास किया है। यद्यपि इन रत्नों के साथ फेन भी मिलेगा; जिस से इन की चमक मटमैली प्रतीत होगी, तो भी व्यावहारिक जीवनोपयोगी ज्ञान को ये अवश्य आलोकित करेंगे, इस मे सन्देह नही।

ज्योतिष के सैद्धान्तिक गणित को मैं ने इस में नही छुआ है। अवसर मिलने पर एक स्वतन्त्र पुस्तक ग्रहण, ग्रहो की गतियाँ एवं उन के बीज संस्कार आदि पर लिखूँगा। हिन्दी भाषा के प्रेमी पाठक इस आनन्दवर्द्धक विषय का आस्वादन करें, यही मेरी आकांक्षा है।

ॐ शान्तिः ! ॐ शान्तिः !! ॐ शान्तिः !!!

■

लेखन में प्रयुक्त ग्रन्थों की अनुक्रमणिका

अकलंक संहिता—अकलंकदेवकृत, हस्तलिखित, जैन-सिद्धान्त-भवन, आरा
अथर्व ज्योतिष—सुधाकर सोमाकर भाष्य सहित, मास्टर खेलाडीलाल ऐण्ड सन्स, काशी
अथर्ववेद—सायण भाष्य
अथर्ववेद संहिता—हिन्दी भाष्य
अद्भुततरंगिणी—नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ
अद्भुतसागर—वल्लालसेन विरचित, प्रभाकरी यन्त्रालय, काशी
अद्वैतसिद्धि—गवर्नमेंट सस्कृत लाइब्रेरी, मैसूर।
अनन्तफलदर्पण—हस्तलिखित
अर्घकाण्ड—दुर्गदेव, हस्तलिखित
अर्घप्रकाश—निर्णयसागर प्रेस, बम्बई
अर्हच्चूडामणिसार—भद्रबाहु स्वामी, महावीर ग्रन्थमाला, धुलियान
अलबरूनीज इण्डिया—अँगरेजी
आचाराङ्ग सूत्र—आगमोदय समिति
आयज्ञानतिलक संस्कृत टीका—भट्टवोसरि, जैन-सिद्धान्त-भवन, आरा
आयसद्भाव प्रकरण—मल्लिषेण, जैन-सिद्धान्त-भवन आरा
आरम्भसिद्धि—हेमहंसगणि टीका सहित, लब्धिसूरीश्वर जैन ग्रन्थमाला, छाणी
आर्यभटीय—व्रजभूषणदास ऐण्ड सन्स, बनारस
आर्य सिद्धान्त—व्रजभूषणदास ऐण्ड सन्स, बनारस
इण्डिया ह्वाट कैन इट टीच अस—अँगरेजी
उत्तरकालामृत—अँगरेज़ी अनुवाद, बेंगलोर

ऋग्वेद—सायण भाष्य सहित, पूना
ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका
ऋग्वेदिक इण्डिया
ऋग्वेद अँगरेज़ी अनुवाद—मैक्समूलर
ऋग्वेद ज्योतिष—सोम-सुधाकर भाष्य
एवरी डे एस्ट्रोलाजी—वी० ए० ऐयर, तारापोरेवाला सन्स ऐण्ड को०, बम्बई
एस्ट्रोनामी इन ए नट्शेल—गैरट पी० सर्विस विरचित तारापोरेवाला सन्स ऐण्ड को०, बम्बई
एस्ट्रोनामी—टॉमस हीथ, तारापोरेवाला सन्स ऐण्ड को०, बम्बई
एस्ट्रोनामी—टेट्स विरचित तारापोरेवाला सन्स ऐण्ड को०, बम्बई
एन्साइक्लोपीडिया ऑफ ब्रिटैनिका—
ऐतरेय ब्राह्मण—सायण भाष्य, सं० काशीनाथ
एन्सेण्ट ऐण्ड मिडिएवुल इण्डिया—
करण कुतूहल—बनारस
करण प्रकाश—चौखम्भा संस्कृत सीरीज, काशी
काठक संहिता—
कालज्ञातक—हस्तलिखित
केरल प्रश्नरत्न—वेंकटेश्वर स्टीम प्रेस, बम्बई
केरल प्रश्न संग्रह— „ „ „
केवलज्ञानप्रश्नचूडामणि—भारतीय ज्ञानपीठ, काशी
केवलज्ञानहोरा—चन्द्रसेन मुनि, जैन-सिद्धान्त-भवन, आरा
खण्डकखाद्य—ब्रह्मगुप्त, कलकत्ता विश्वविद्यालय
खेटकौतुक—सुखसागर, ज्ञान प्रचारक सभा, लोहावट (मारवाड़)
गणकतरंगिणी—सुधाकर द्विवेदी, गवर्नमेंट संस्कृत कालेज, काशी
गणितसार संग्रह—महावीराचार्य

गर्गमनोरमा—वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई
गर्गमनोरमा—सीताराम झा की टीका, बनारस
गौरीजातक—हस्तलिखित
ग्रहलाघव—सुधामंजरी टीका, बनारस
ग्रहलाघव—सुधाकर टीका
चन्द्रार्क ज्योतिष—नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ
चन्द्रोन्मीलन प्रश्न—हस्तलिखित, जैन-सिद्धान्त-भवन, आरा
चन्द्रोन्मीलन प्रश्न—वृहद्ज्योतिषार्णव के अन्तर्गत
चमत्कार चिन्तामणि—भाव प्रबोधिनी टीका, चौखम्भा संस्कृत सिरीज, काशी
छान्दोग्योपनिषद्—निर्णय सागर प्रेस, बम्बई
छान्दोग्य ब्राह्मण—हिन्दी भाष्य
जातकतत्त्व—महादेवशर्मा, रतलाम
जातक पद्धति—केशवीय, वामनाचार्य संशोधन सहित, काशी
जातकपारिजात—परिमल टीका, चौखम्भा, काशी
जातकाभरण—ढुण्ढिराज, बम्बई भूषण प्रेस, मथुरा
जातकक्रोड़पत्र—शशिकान्त झा, मुजफ्फरपुर
ज्योतिर्गणित कौमुदी—रजनीकान्त, बम्बई
ज्योतिष तत्त्वविवेक निबन्ध—बम्बई
ज्योतिर्विवेकरत्नाकर—कर्मवीर प्रेस, जबलपुर
ज्योतिषसार—हस्तलिखित, नया मन्दिर, दिल्ली
ज्योतिषसार संग्रह (प्राकृत)—भगवानदास टीका नरसिंह प्रेस, २०१ हरिसन रोड, कलकत्ता
ज्योतिष श्याम संग्रह—वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई
ज्योतिष सिद्धान्तसार संग्रह—नवलकिशोर प्रेस लखनऊ
ज्योतिष सागर— ,, ,,

ज्योतिष सिद्धान्तसार—नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ
ज्ञानप्रदीपिका—जैन-सिद्धान्त-भवन, आरा
ठाणाङ्ग—हस्तलिखित, आरा
तत्त्वार्थसूत्र—पन्नालाल बाकलीवाल टीका
ताजिक नीलकण्ठी—शक्तिधर टीका
त्रिलोक प्रज्ञप्ति—जीवराज ग्रन्थमाला, शोलापुर
त्रिलोकसार—माधवचन्द्रत्रैवेद्य संस्कृत टीका, बम्बई
दशाफल दर्पण—महादेव पाठक, भुवनेश्वरी प्रेस, रतलाम
दैवज्ञकामधेनु—व्रजभूषणदास ऐण्ड सन्स, काशी
दैवज्ञ कल्पद्रुम—धौलपुर
दैवज्ञ वल्लभ—चौखम्भा संस्कृत सीरीज, काशी
नरपतिजयचर्या—निर्णय सागर प्रेस, बम्बई
नारचन्द्र ज्योतिष—हस्तलिखित, जैन-सिद्धान्त-भवन, आरा
नारचन्द्र ज्योतिष प्रकाश—रतीलाल-प्राणभुवनदास, चूडीवाला, हीरापुर, सूरत
निमित्तशास्त्र—ऋषिपुत्र, शोलापुर
पञ्चाङ्गतत्त्व—निर्णय सागर प्रेस, बम्बई
पञ्चसिद्धान्तिका—डॉ० थीवो तथा सुधाकर टीका
पञ्चाङ्गफल—ताडपत्रीय, जैन-सिद्धान्त-भवन, आरा
पाशाकेवली—हस्तलिखित, जैन-सिद्धान्त-भवन, आरा
प्रश्नकुतूहल—वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई
प्रश्नोपनिषद्—हस्तलिखित, जैन-सिद्धान्त-भवन, आरा
प्रश्नकौमुदी—वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई
प्रश्नचिन्तामणि—,, ,,
प्रश्ननारदीय—बम्बई भूषण प्रेस, मथुरा
प्रश्न वैष्णव—वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई

प्रश्नसिद्धान्त—वेंकटेश्वर प्रेस, वम्बई
प्रश्नसिन्धु—मनोरंज प्रेस, वम्बई
वृहद्ज्योतिषार्णव—वम्बई
वृहज्जातक—मास्टर खेलाडीलाल ऐण्ड सन्स, काशी
वृहत्पाराशरी—मास्टर खेलाडीलाल ऐण्ड सन्स, काशी
वृहत्संहिता—वी० जे० लॉजरस कम्पनी, काशी
ब्रह्मसिद्धान्त—व्रजभूषणदास ऐण्ड सन्स, काशी
भविष्यज्ञान ज्योतिष—तिलकविजय रचित, कटरा खुशालराम, देहली
भावप्रकरण—विमलगणि विरचित, सुखसागर ज्ञानप्रचारक सभा लोहावट (मारवाड)
भावकुतूहल—व्रजवल्लभ हरिप्रसाद कालवादेवी रोड, रामवाडी वम्बई
भावनिर्णय—नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ
भुवनदीपक—पद्मप्रभसूरिदेव, वेंकटेश्वर प्रेस, वम्बई
मण्डलप्रकरण—मुनि चतुरविजय कृत, आत्मानन्द जैन सभा, भावनगर
महाभारत—आदिपर्व और वनपर्व हिन्दी टीका
मानसागरी पद्धति—निर्णय सागर प्रेस, वम्बई
मानसागरी पद्धति—चौखम्भा संस्कृत सीरोज, काशी
मुहूर्त्त चिन्तामणि—पीयूषधाराटीका
मुहूर्त्त चिन्तामणि—मिताक्षराटीका
मुहूर्त्त मार्त्तण्ड—चौखम्भा संस्कृत सीरीज, काशी
मुहूर्त्तदर्पण—आरा
मुण्डकोपनिषद्—निर्णय सागर प्रेस, वम्बई
मुहूर्त्त संग्रह—नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ
मुहूर्त्तसिन्धु—नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ
मुहूर्त्तगणपति—चौखम्भा संस्कृत सीरीज, काशी
यजुर्वेद संहिता—वाजसनेय-माध्यन्दिन-संहिता, संस्कृत भाष्य

यन्त्रराज—महेन्द्रगुरु रचित, निर्णयसागर प्रेस, बम्बई
रिष्टसमुच्चय—दुर्गदेव रचित, गोधा ग्रन्थमाला, इन्दौर
लघुजातक—मास्टर खेलाड़ीलाल ऐण्ड सन्स, काशी
वर्षप्रबोध—मेघविजयगणि कृत, भावनगर
विद्यामाधवीय—गवर्नमेंट संस्कृत लाइब्रेरी, मैसूर
विवाहवृन्दावन—मास्टर खेलाड़ीलाल ऐण्ड सन्स, काशी
वैजन्ती गणित—राचायन्त्रालय, बीजापुर
शतपथ ब्राह्मण—सत्यव्रत सामश्रमी, सायण भाष्य सहित
समरसार—वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई
समवायाङ्ग—जैन-सिद्धान्त-भवन, आरा, हस्तलिखित भण्डार
सर्वानन्दकरण—लोकसंग्रह मुद्रणालय, पूना
सामवेद—सायण भाष्य, दुर्गादास, लाहिडी
सारावली—कल्याणवर्मा विरचित, निर्णयसागर प्रेस, बम्बई
सुगम ज्योतिष—देवीदत्त जोशीकृत, मास्टर खेलाडीलाल ऐण्ड सन्स, काशी
सूर्यसिद्धान्त—सुधाकर भाष्य सहित